शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखीय

रुद्रपद्धतिः

(रुद्र-उपासना का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

'प्रकाशाख्य'हिन्दीटीकया विभूषिता

वेदाचार्य दौलतरामशर्मा गौड़

SCANNED

श्री लक्ष्मी
धार्मिक पुस्तक भण्डार
1476, बिजली दफ्तर के सामने
[illegible] बस स्टैण्ड, नजफगढ़, न० दि०-43
मो० नं० - 9891139839

शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखीय

रुद्रपद्धतिः

(रुद्र-उपासना का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

448

शुक्लयजुर्वेदीयमाध्यन्दिनशाखीय

रुद्रपद्धतिः

(रुद्र-उपासना का साङ्गोपाङ्ग विवेचन)

म०म०श्रीप्रभुदत्तजीशास्त्रिणां पौत्रेण श्रीयाज्ञिकमूर्धन्यविद्याधरशास्त्रिणां पुत्रेण वेदाचार्य
दौलतरामशर्मगौड़पौरोहित्यरत्नेन विरचितया '**प्रकाशाख्य**' हिन्दीटीकया विभूषिता

उपयुक्तटिप्पण्यादिमिश्च समलङ्कृता

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : 2335263

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

संस्करण 2008

मूल्य 200.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : 23286537

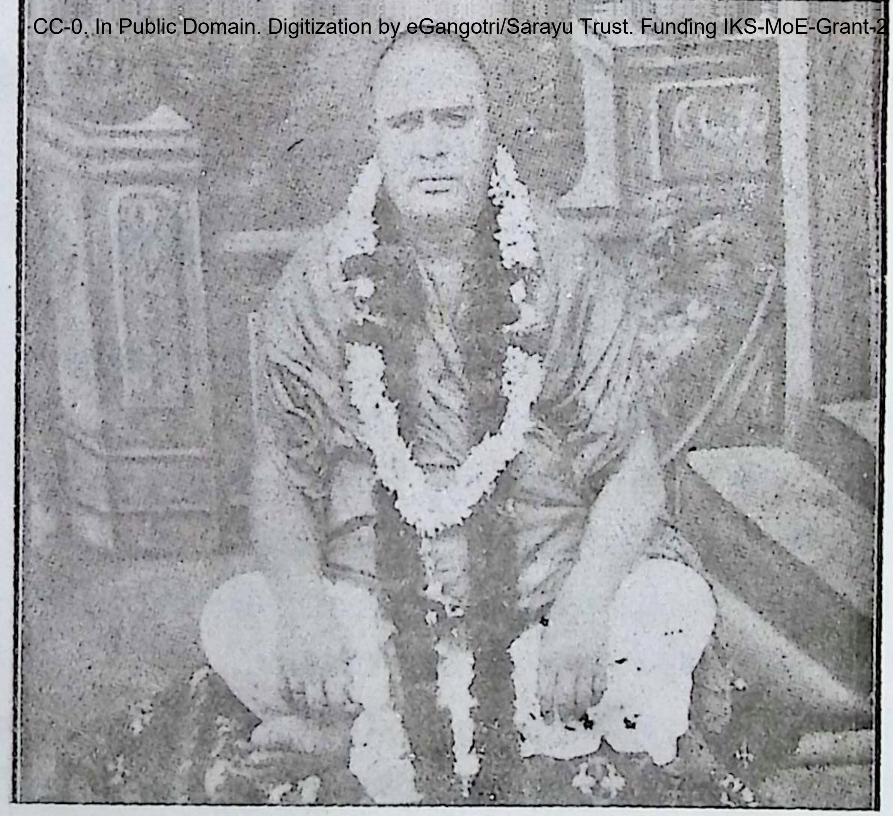

श्रीविद्याधरजी गौड़ वेदाचार्य

समर्पणम्

यैर्नः श्रौतगिरां गिरा मधुरया पात्रं कृतं मानसं
येषामेव गतञ्च नश्चरणयोर्बाल्यं नवीनं वयः ।
येषामङ्कगतैश्च चुम्बितमुखैरौद्धत्यमाचेष्टितं
येषां श्रीपदरेणुकातरलता नोऽद्यापि चित्ते स्थिता ॥१॥

श्रौतस्मार्त्तसनातने पथि ततं वर्णाश्रमाणां मतं
यज्ञध्यानपदक्रमोपशमनं प्रोज्जीवयन् यः स्थितः ।
यः साक्षादिव पौरुषं श्रुतिगिरां किञ्चिन्महत्तन्महः
श्रीविद्याधरशास्त्रिणेऽत्रभवते देवाय तुभ्यं नमः ॥२॥

श्रीमन् ! पितस्तव महत्करुणाकटाक्षात् धन्येन यत्किमपि चापि मयाधिकाशि ।
सञ्चीकृतां जनक-! तां कुसुमाञ्जलिं स्वामेतां तवैव चरणं शरणीकरोमि ॥३॥

अभिषेक पूजन सामग्री–

केसर
रोली
मौली
धूप
रूई
नैवेद्य
पान
अबीर
बुक्का
यज्ञोपवीत
सुपारी
चावल
गङ्गाजल

पुष्पमाला
लवङ्ग
इलायची
दूध
दधि
घृत
सहत
चीनी
पीलीसरसों
सकोरा
नारिकेल
गिरिगोला

कपूर
कुशा
दूर्वा
तुलसी
बिल्वपत्र
धतूर के फल
वस्त्र
कुशासन
धोती
दुपट्टा
अंगोछा
पेड़ा
} चढ़ाने को और ब्राह्मणों केलिए

बतासा
मोतीचूरके लड्डू
पंचपात्र
आचमनी
तष्टा
अर्घा
लोटा
गिलास
सामग्री रखने के लिए थाली
दियासलाई
शंख
कटोरी

पत्तल पुरवा गोमूत्र

आमुख

हिन्दूजाति का प्राचीन धर्मग्रन्थ वेद है। वेदों में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड इन तीनों विषयों का मुख्यतः वर्णन मिलता है। किन्तु इन तीनों में प्रधान स्थान 'कर्मकाण्ड' को ही प्राप्त है। इसका मुख्य कारण यह है कि वेदों में यज्ञ-यागादि के विविध क्रियाकलापों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है।

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् शिव में विद्यमान् है। शिव पूर्णरूपेण शक्तिमान् हैं, उनके बिना यह संसार नहीं चल सकता। शिव एक रस, अपरिणामी हैं, शिव से शक्ति का आविर्भाव होकर ही तीनों लोक एवं चौदह भुवन उत्पन्न हुए हैं। व्याकरण शास्त्र के अनुसार शिव शब्द की व्युत्पत्ति 'वशकान्तौ' धातु से हुई है।

भगवान् शिव वैसे तो एक ही हैं, किन्तु संसार के कल्याण हेतु अनेक नाम रूपों से अवतरित होते हैं। मुख्य रूप से ग्यारह रुद्र हैं, किन्तु विभिन्न पुराणों में इनके नामों में भी मतभेद मिलता है। श्रीमद्‌भागवत (३।१२।१२) में ग्यारह रुद्रों के नाम इस प्रकार से वर्णित किए गए हैं—१. मन्यु, २. मनु, ३. महिनस, ४. महान्, ५. शिव, ६. ऋतध्वज, ७. उग्ररेता, ८. भव, ९. काल, १०. वामदेव, ११. धृतव्रत।

देवाधिदेव भगवान् शिव जिन्होंने भक्तों के कल्याण, भोग तथा मोक्ष प्रदान करने के लिए निम्न दस अवतारों को भी धारण किया। यथा—१. महाकाल, २. तार, ३. बालभुवनेश, ४. षोडश श्रीविद्येश, ५. भैरव, ६. छिन्नमस्तक, ७. धूमवान्, ८. बगलामुख, ९. मातङ्ग, १०. कमल।

देवाधिदेव भगवान् शिवजी की अष्टमूर्तियां भी प्राप्त होती हैं। इन अष्टमूर्तियों के नाम क्रमशः शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव व ईशान है। शास्त्रों के मतानुसार इन आठों मूर्तियों में से किसी भी एक मूर्ति की पूजा करने से सभी मूर्तियों की पूजा व अर्चना का फल निःसंदेह प्राप्त होता है।

वाराहकल्प के सातवें मन्वन्तर में देवाधिदेव शिवजी के द्वारा लिए गए अट्ठाइस योगेश्वरावतारों के नाम इस प्रकार से हैं—१. महामुनि श्वेत, २. सुतार, ३. दमन, ४. सुहोत्र, ५. कङ्क, ६. लोकाक्षि, ७. जैगीषव्य, ८. दधिवाहन, ९. ऋषभ, १०. उग्र, ११. तप, १२. अत्रि, १३. महामुनि बलि, १४. गौतम, १५. वेदशिरा, १६. गोकर्ण, १७. गुहावासी, १८. शिखण्डी, १९. माली, २०. अट्टहास, २१. दारुक, २२. लाङ्गली भीम, २३. श्वेत, २४. शूली, २५. मुण्डीश्वर, २६. सहिष्णु, २७. सोमशर्मा, २८. लकुली। इन योगेश्वरावतारों के द्वारा भगवान् शिवजी निवृत्ति मार्ग को सुदृढ़ करते हैं।

सर्वव्यापी भगवान् शिवजी ने कल्प-कल्पान्तरों में असंख्य अवतार लिए किन्तु उनमें से उनके पाँच अवतार अति महत्वपूर्ण हैं, जिनके नाम इस प्रकार से हैं—१. सद्योजात—श्वेतलोहित नामक उन्नीसवें कल्प में भगवान् शिवजी का सद्योजात नामक अवतार हुआ। यह इनका पहला अवतार कहा जाता है। २. वामदेव—देवाधिदेव भगवान् शिवजी ने दूसरा अवतार वामदेव नामक लिया। ३. तत्पुरुष—इनका तीसरा तत्पुरुष नामक अवतार पीतवासा नामक इक्कीसवें कल्प में हुआ। ४. अघोर—शिव नामक कल्प में देवाधिदेव भगवान् शिवजी का अघोर नामक चौथा अवतार हुआ। ५. ईशान—चतुर्मुख ब्रह्माजी के विश्वरूप नामक कल्प में शिवजी का ईशान नाम का पाँचवाँ अवतार हुआ।

देवाधिदेव सर्वशक्तिमान् सर्वत्रव्यापी भगवान् शिवजी के द्वादश ज्योतिर्लिंगों के नाम श्रीशिवपुराण में इस प्रकार बताए गये हैं—१. सौराष्ट्र में सोमनाथ, २. श्रीशैल में मल्लिकार्जुन, ३. उज्जैन में महाकाल, ४. ओंकार में परमेश्वर, ५. हिमालय में केदारनाथ, ६. डाकिनी में भीमशंकर, ७. काशी में विश्वनाथ, ८. गौतमी नदी के तट पर त्र्यम्बकनाथ, ९. चित्ताभूमि में वैद्यनाथ, १०. दारुकवन में नागेश, ११. सेतुबन्धन में रामेश्वर और १२. शिवालय में घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिंग विराजित है। इन्हीं बारह अवतारों को देवाधिदेव शिवजी का अवतार द्वादशचक्र कहा गया है तथा इनके दर्शन व स्पर्श से सभी प्रकार के आनन्द की प्राप्ति होती है।

हमारे शास्त्रकारों ने देश में उपद्रव, मानसिककष्ट, शत्रुभय, मृत्यु के मुँह में पड़ने पर रुद्रयज्ञ और सविधि रुद्राभिषेक करने का निर्देश दिया है; क्योंकि स्वयं शिव अपने विषय में कहते हैं—

इज्यया चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये।
न तेषां भयमस्तीति भव रुद्रं यजन्ति यत्॥

(मत्स्यपुराण १८२-४३)

सौरपुराण (७।१४) के अनुसार-वस्तुतः भगवान् शिव समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। मत्स्यपुराण (१८२। २४) के अनुसार जो भक्तगण इनका का यजन करते हैं, उनकी सैकड़ों, करोड़ों कल्पों तक संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती। विष्णुसंहिता (१।४) में वर्णित है कि स्वयं ब्रह्माजी ने ऋषियों को भगवान्

शिवजी को प्रसन्न करने के लिये रुद्रयज्ञ का आयोजन करने को प्रेरित किया था। क्योंकि वे भगवान् रुद्र के महत्त्व से भलीभाँति परिचित थे। क्योंकि ये शिव निर्गुण, निराकार, निरंजन, परब्रह्म और परमात्मा हैं। अपने भक्तों के कष्टों का निवारण व कल्याण करने के लिए ये समय-समय पर विभिन्न अवतारों को लेकर नाना प्रकार की लीलाएँ करते हैं। इतना ही नहीं भगवान् शिव गर्वापहारी हैं। ये किसी के भी गर्व को नष्ट करने में सक्षम हैं। इन्होंने देवराज इन्द्र के गर्व का भी मर्दन किया था। क्योंकि ये परमेश्वर हैं, अलौकिक और लौकिक समस्त प्रकार की विभूतियों को देनेवाले ये दाता हैं। ये सर्वज्ञ सर्वकर्ता और समस्त शक्तियों को धारित करने वाले सभी के स्वामी हैं।

रुद्र के भेद

शास्त्रों में 'रुद्र' के पाँच भेद कहे गये हैं—रूपक, रुद्र, रुद्री, महारुद्र और अतिरुद्र।

रुद्रकल्पद्रुम ग्रन्थ में लिखा है कि—'आचार्यों के द्वारा रुद्रयाग उत्तरोत्तर एक से एक श्रेष्ठ पाँच प्रकार के कहे गए हैं। अङ्गसहित शीर्षयुक्त 'रूपक' नाम का पहला रुद्र कहा जाता है। वैसे ही ग्यारह आवृत्तियों वाला 'रुद्री' नामका दूसरा रुद्र कहा जाता है। एकादश (ग्यारह) रुद्रियों से 'लघुरुद्र' नामका तीसरा रुद्र कहा जाता है। ग्यारह लघुरुद्रों से 'महारुद्र' नामका चौथा रुद्र कहा जाता है। ग्यारह महारुद्रों से 'अतिरुद्र' नामका पाँचवाँ रुद्र अन्तिम कहा जाता है। अतिरुद्र सब रुद्रों से उत्तमोत्तम है।

१-छः अङ्ग के सहित रुद्राध्याय को 'रूपक' कहते हैं। २-रूपक में 'वर्यठ० सोम' (शीर्षसंज्ञक) यह आठ मन्त्र मिला दिये जाएँ, तो वह 'रुद्र' (रुद्री) हो जाता है। ३-सब अङ्ग के सहित ११ 'नमस्ते' पढ़ी जाय और 'वयर्ठ०, उग्रश्च, वाजश्च, ऋचं वाचम्' भी पढ़ा जाय, तो वह 'रुद्री' हो जाती है। ४-रुद्री को ११ गुना करने से वह 'लघुरुद्र' हो जाता है, इसमें १२१ नमस्ते का पाठ होता है। ५-लघुरुद्र को ११ गुना करने से 'महारुद्र' हो जाता है। इसमें १३३१ 'नमस्ते' का पाठ होता है। ६-महारुद्र को ११ गुना करने से 'अतिरुद्र' हो जाता है। ७-'शतरुद्रिय' नाम वस्तुतः 'नमस्ते' अध्याय का है।

देवाधिदेव भगवान् शिव तो स्वयं ही आनन्दकन्द हैं और आनन्दपूर्वक इस मुक्ति देनेवाली काशी नगरी में वास करते हैं। काशी नगरी में तो इनके अभिषेक करने की प्रथा आज से ही नहीं प्राचीनकाल से चली आ रही है। भारतवर्ष में ऐसा कोई भी प्रान्त नहीं होगा जहाँ इनका रुद्राभिषेक न होता हो।

यह कृति मेरे पूज्यनीय पिताश्री स्व० पं० दौलतराम गौड वेदाचार्य के द्वारा रचित है। जिसका संशोधन व सम्पादन करके आप सभी सुधिजनों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। यदि इस पुस्तक में किसी प्रकार की कोई त्रुटि हो गई हो तो, मुझे अवश्यमेव सूचित करने की कृपा करेंगे। जिससे कि मैं अगले संस्करण में उन त्रुटियों को सुधारने की चेष्टा कर सकूँ।

भवदीय

दौलतराम गौड वेदाचार्य

अशोक कुमार गौड वेदाचार्य

भारतीय कर्मकाण्ड मण्डल,
म०म०पा० पं० विद्याधर गौड लेन,
डी. ७/१४ सकरकन्द गली, वाराणसी
फोन : ६५३४९८६, मो० : ९७९२३५३७४५

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ सं०
अथ पुरुषसूक्तस्य क्रम उच्यते	१
अथ पुरुषसूक्तस्य क्रमजटोच्यते	९
अथ पुरुषसूक्तघनपाठः	२७
'नमस्ते' इत्यध्यायस्य स्वाहाकारप्रयोगः	५९
रुद्रपद्धतिप्रारम्भः	१
शान्तिपाठः	१९
संकल्पः	३१
गणेशाम्बिकापूजनम्	३५
वरणम्	९०
अथ शिवार्चनविधिः	११३
अथ लघुषडङ्गन्यासविधिः	१७३

विषय	पृष्ठ सं०
अभिषेकात्मकमहान्यासविधिः	१७५
अथ प्रथमोध्यायः	१८७
अथ द्वितीयोध्यायः	२२२
अथ तृतीयोध्यायः	२४८
अथ चतुर्थोध्यायः	२७१
अथ पञ्चमोध्याय	२९४
अथ षष्ठोध्यायः	४०५
अथ सप्तमोध्यायः	४१६
अथ अष्टमोध्यायः	४३२
अथ नवमोध्यायः	४६१
अथ शान्तिपाठमन्त्राः	४८९

विषय	पृष्ठ सं०
परिशिष्टो भागः	
रुद्रयाग का संक्षिप्त परिचय	४९८
रुद्रयाग का महत्व	४९९
रुद्रयाग का मुहूर्त	५००
रुद्र के भेद	५०१
रुद्रयागन्यासविधिः	५०२
अथ रुद्रयागस्य षड्भिःप्रकारैर्हवन-, मन्त्रविभागस्तत्र	५२१
शिवादिप्रतिष्ठासु चतुर्वेदोक्तमन्त्रैर्वास्तु-पूजनम्	५४३
शिवविषये विशेषविचारः	५७२
रुद्रयागसामग्री	५७५

॥ इति विषयानुक्रमणिका ॥

"निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥"

भावार्थ—निषेक (गर्भाधान) से लेकर श्मशान तक जिसकी विधि (संस्कार) मन्त्र के द्वारा उदित (किए जाते) हैं। उन्हीं का इस शास्त्र में अधिकार है, अन्य किसी का नहीं।

अथ पुरुषसूक्तस्य क्रम उच्यते-

ओ३म् । स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः । स॒हस्र॑शी॒र्षेति॑ स॒हस्र॑ शीर्षा॑ । पुरु॑षः स॒हस्रा॒क्षः । स॒हस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् । स॒हस्रा॒क्ष ऽइति॑ स॒हस्र॑ अ॒क्षः । स॒हस्र॑पा॒दिति॑ स॒हस्र॑ पात् ॥ स भूमि॑म् । भूमि॑ꣳ स॒र्वत॑ः । स॒र्वत॑ स्पृ॒त्वा । स्पृ॒त्वाति॑ । अत्य॑तिष्ठत् । अ॒ति॒ष्ठ॒द्द॒शा॒ङ्गु॒लम् । द॒शा॒ङ्गु॒लमिति॑ द॒श अ॒ङ्गु॒लम् ॥ १ ॥ पुरु॑ष ऽए॒व । ए॒वेदम् । इ॒दꣳ सर्व॑म् । सर्व॒ꣳ यत् । यद् भू॒तम् । भू॒तँ यत् । यच्च॑ । च॒ भा॒ऽव्य᳚म् । भा॒ऽव्य᳚मिति॑ भा॒ऽव्य᳚म् ॥ उ॒ताम॑ृत॒त्वस्य॑ । अ॒मृ॒त॒त्वस्येशा॑नः । अ॒मृ॒त॒त्वस्येत्य॑मृ॒त त्वस्य॑ । ईशा॑नो॒ यत् । यदन्ने॑न । अ॒न्नेना॑ति॒रोह॑ति । अ॒ति॒रोह॒तीत्य॑ति॒ रोह॑ति ॥ २ ॥ ए॒ताव॑ानस्य । अ॒स्य॒ म॒हि॒मा । म॒हि॒माऽत॑ः । अतो॒ ज्याया॑न् । ज्याया॑ꣳश्च ।

च पूरुषः । पुरुष ऽइति पुरुषः ॥ पादोऽस्य । अस्य विश्श्वा । व्विश्श्वा भूतानि । भूतानि त्रिपात् । त्रिपादस्य । त्रिपादिति त्रि पात् । अस्यामृतम् । अमृतन्दिवि । दिवीति दिवि ॥ ३ ॥ त्रिपादूर्द्ध्वः । त्रिपादिति त्रि पात् । ऊर्ध्व ऽउत् । उदैत् । ऐत्पुरुषः । पुरुषः पादः । पादोऽस्य । अस्येह । इहाभवत् । अभवत्पुनः । पुनरिति पुनः ॥ ततो व्विष्वङ् । व्विष्वङ् व्व्यक्रामत् । अक्रामत्साशनानशने । साशनानशने ऽअभि । साशनानशने ऽइति साशनानशने । अभीत्त्यभि ॥ ४ ॥ ततो व्विराट् । व्विराडजायत । व्विराडिति व्वि राट् । अजायत व्विराजः । व्विराजो ऽअधि । व्विराज ऽइति व्वि राजः । अधि पूरुषः । पुरुष ऽइति पुरुषः ॥ सजातः । जातोऽअति । अत्त्यरिच्च्यत । अरिच्च्यत पश्श्चात् । पश्श्चाद् भूमिम् । भूमिमथो । अथो पुरः । अथो ऽइत्त्यथो । पुर ऽइति पुरः ॥५॥ तस्म्माद्यज्ञात् ।

य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॑÷ । स॒र्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तम् । स॒र्व्व॒हुत॒ ऽइति॑ सर्व्व॒ हुत॑÷ । सम्भृ॑त-
म्पृषद॒ाज्यम् ! सम्भृ॑त॒मिति॒सम् भृ॑तम् । पृ॒ष॒द॒ाज्यमिति॑पृषत् आ॒ज्यम् ॥
प॒शूँस्तान् । ताँश्च॑क्रे । च॒क्रे॒ व्वा॒य॒व्व्या॑न् । व्वा॒य॒व्व्या॑नार॒ण्ण्या? । आ॒र॒ण्ण्या
ग्ग्रा॒म्म्या? । ग्ग्रा॒म्म्याश्च॑ । च॒ ये । य ऽइति॒ ये ॥ ६ ॥ ऋच॒ः सामा॑नि ।
सामानि जज्ञिरे । जज्ञिर॒ऽइति॑ जज्ञिरे ॥ छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे । ज॒ज्ञि॒रे॒ तस्म्मा॑त् ।
तस्म्मा॒द्यजु॑÷ । य॒जु॒स्तस्म्मा॑त् । तस्म्मा॑दजायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥७॥
तस्म्मा॒दश्श्वा॑÷ । अश्श्वा॑ ऽअजायन्त । अ॒जा॒य॒न्त॒ ये । ये के । के च॑ । चो॒भ॒-
याद॑तः । उ॒भ॒यद॑त ऽइत्त्यु॑भ॒य द॑तः ॥ गावो॑ ह । ह॒जज्ञि॒रे॒ । जज्ञि॒रे॒ तस्म्मा॑त् ।
तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑त् । तस्म्मा॑ज्जा॒ता? । जा॒ता ऽअ॑जा॒वय॑÷ । अ॒जा॒व॒य ऽइत्त्य॑-
जा॒वय॑÷ ॥ ८ ॥ तँ य॒ज्ञम् । य॒ज्ञम्ब॒र्हिषि॑ । ब॒र्हिषि॒ प्प्र । प्प्रौक्ष॑न् ।
औ॒क्ष॒न्पुरु॑षम् । पुरु॑षञ्जा॒तम् । जा॒तम॑ग्ग्र॒तः । अग्ग्र॒त ऽइत्त्य॑ग्ग्र॒त? ॥

तेन॑ दे॒वाः । दे॒वा ऽअ॑यजन्त । अ॒य॒ज॒न्त॒ सा॒द्ध्याः । सा॒द्ध्या ऽऋष॑यः । ऋष॑यश्च । च॒ य़े । य़ ऽइति॒ य़े ॥ ९ ॥ य़त्पुरु॑षम् । पुरु॑ष॒ं वि । व्य॑दधुः । अद॑धुः कति॒धा । क॒ति॒धा वि । व्य॑कल्पयन् । अ॒क॒ल्प॒य॒न्नित्य॑कल्पयन् ॥ मुख॒ङ्किम् । किम॑स्य । अ॒स्या॒सी॒त् । आ॒सी॒द्बा॒हू । बा॒हू ऽऊ॒रू । बा॒हू ऽइति॑ बा॒हू । ऊ॒रू पादौ॑ । ऊ॒रू ऽइत्यु॒रू । पादा॑ ऽउच्च्यते॒ । उ॒च्च्ये॒ते॒ऽइत्यु॑च्च्येते ॥ १० ॥ ब्रा॒ह्म॒णो॑स्य । अ॒स्य॒ मुख॑म् । मुख॑मासीत् । आ॒सी॒द्बा॒हू । बा॒हू रा॑ज॒न्यः । बा॒हू ऽइति॑ बा॒हू । रा॒ज॒न्न्यः कृ॒तः । कृ॒तऽइति॑कृ॒तः ॥ ऊ॒रू तत् । ऊ॒रू ऽइत्यू॒रू । तद॑स्य । अ॒स्य॒ य़त् । य़द्वैश्य॑ः । वैश्य॑ः प॒द्भ्याम् । प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रः । प॒द्भ्यामिति॑ प॒त्ऽभ्याम् । शू॒द्रो ऽअ॑जायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥ ११ ॥ च॒न्द्रमा॒ मन॑सः । मन॑सो जा॒तः । जा॒तश्चक्षोः॑ । चक्षो॒ः सूर्य्य॑ः । सूर्य्यो॑ऽअजायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥

श्श्रोत्राद्वायुः । व्वायुश्च । च प्प्राणः । प्प्राणश्च । च मुखात् । मुखा-
दग्निः । अग्निरजायत । अजायतेत्यजायत ॥ १२ ॥ नाब्भ्या ऽआ-
सीत् । आसीदन्तरिक्षम् । अन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णः । शीर्ष्णो द्यौः । द्यौःसम् ।
समवर्त्तत । अवर्त्ततेत्यवर्त्तत ॥ पद्भ्याम्भूमिः । पद्भ्यामितिपत्ऽभ्याम् ।
भूमिर्द्दिशः । दिशꣳ श्श्रोत्रात् । श्श्रोत्रात्तथा । तथा लोकान् । लोकाँ२-
ऽअकल्पयन् । अकल्प्पयन्नित्यकल्प्पयन् ॥ १३ ॥ यत्पुरुषेण । पुरुषेण हविषा ।
हविषा देवाः । देवा यज्ञम् । यज्ञमतन्न्वत । अतन्न्वतेत्यतन्न्वत ॥ व्वसन्तोस्य ।
अस्यासीत् । आसीदाज्ज्यम् । आज्ज्यङ्ग्रीष्मः । ग्ग्रीष्मऽइध्मः । इध्मःशरत् ।
शरद्धविः । हविरिति हविः ॥ १४ ॥ सप्तास्य । अस्यासन् । आसन्न्प
रिधयः । परिधयस्त्रिः । परिधयऽइतिपरि धयः । त्रिः सप्त । सप्त स-
मिधः । समिधः कृताः । समिधऽइतिसम् इधः । कृताऽइति कृताः ॥ देवा

षत् । ष॒ज्ञम् । ष॒ज्ञन्त॑न्न्व॒ानाः । त॒न्न्व॒ानाऽअ॑बध्न॒न् । अ॑बध्न॒न्न्पु॑रुषम् । पु॑रुषम्प॒शुम् । प॒शुमिति॑ प॒शुम् ॥१५॥ ष॒ज्ञेन॑ ष॒ज्ञम् । ष॒ज्ञम॑यजन्त । अ॒य॒जन्त॒ दे॒वाः । दे॒वास्तानि॑ । तानि॒ धर्म्मा॑णि । धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मानि॑ । प्प्रथ॒मान्न्या॑सन् । आ॒स॒न्नित्या॑सन् ॥ ते ह॑ । ह॒ नाक॑म् । नाक॑म्महि॒मानः । म॒हि॒मानः सचन्त । स॒च॒न्त॒ षत्र॑ । षत्र॒ पूर्व्वे॑ । पूर्व्वे॑ सा॒ध्याः । सा॒ध्याः सन्ति॑ । सन्ति॑ दे॒वाः । दे॒वा ऽइति॑ दे॒वाः ॥ १६ ॥ अ॒द्ब्भ्यऽ सम्भृ॑तः । अ॒द्ब्भ्यऽइत्य॒त् ब्भ्यः । सम्भृ॑तः पृथि॒व्व्यै । सम्भृ॑त॒ ऽइति॒ सम् भृ॑तः । पृथि॒व्व्यै रसा॑त् । रसा॑च्च । च॒ व्वि॒श्श्वक॑र्म्मणः । व्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सम् । व्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ ऽइति॑ व्वि॒श्श्व क॑र्म्मणः । सम॑वर्त्तत । अ॒व॒र्त्त॒ताग्ग्रे॑ । अग्ग्र॒ ऽइत्त्यग्ग्रे॑ ॥ तस्य॒ त्त्वष्टा॑ । त्त्वष्टा॑ व्वि॒दध॑त् । व्वि॒दध॑द्द्रू॒पम् । व्वि॒दध॒दिति॑ वि॒ दध॑त् । रू॒पमे॑ति । एति॒ तत् । तन्न्मर्त्त्य॑स्य । मर्त्त्य॑स्य दे॒व॒त्त्वम् ।

दे॒व॒त्त्वमा॒जान॑म्। दे॒व॒त्त्वमिति॑ दे॒व॒ त्त्वम्॒। आ॒जान॒मग्ग्रे॑। आ॒जान॒मित्त्या॒जान॑म्। अग्ग्र॒ ऽइत्त्यग्ग्रे॑ ॥ १७ ॥ व्वेदा॒हम्। अ॒हमे॒तम्। ए॒तम्पुरु॑षम्। पुरु॑षम्म॒हान्त॑म्। म॒हान्त॑मादि॒त्त्यव॑र्ण्णम्। आ॒दि॒त्त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑सः। आ॒दि॒त्त्यव॑र्ण्ण॒मित्त्या॑दित्त्य व्व॑र्ण्णम्। तम॑सः प॒रस्त्ता॑त्। प॒रस्त्ता॒दिति॑ प॒रस्ता॑त् ॥ तमे॒व। ए॒वव्वि॑दित्त्वा। व्वि॒दि॒त्त्वाति॑। अति॑ मृ॒त्त्युम्। मृ॒त्त्युमे॑ति। ए॒ति॒ न। ना॒न्न्यः। अ॒न्न्यः पन्था॑ः। पन्था॑ व्विद्यते। व्वि॒द्य॒ते य॑नाय। अय॑नायेत्त्यय॑नाय ॥ १८ ॥ प्प्र॒जाप॑तिश्श्चरति। प्प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्प्र॒जा प॑तिः। च॒र॒ति॒गर्ब्भे॑। गर्ब्भे॑ ऽअ॒न्तः। अ॒न्तरजा॑यमानः। अजा॑यमानोबहु॒धा। ब॒हु॒धाव्वि। व्विजा॑यते। जा॒य॒त॒ ऽइति॑ जायते ॥ तस्य॒ य़ोनि॑म्। य़ोनि॒म्परि॑। परि॑ पश्श्यन्ति। पश्श्यन्ति॒ धीरा॑ः। धी॒रा॒स्त्तस्स्मि॑न्। तस्स्मि॑न्न्ह। ह॒त॒स्त्थुः। त॒स्त्थुर्ब्भुव॑नानि। भुव॑नानि॒ व्विश्श्वा॑। व्विश्श्वे-

ति॒ विश्वा॑ ॥ १९ ॥ यो दे॒वेब्भ्य॑ः । दे॒वेब्भ्य॑ऽआ॒तप॑ति । आ॒तप॑ति॒ यः । आ॒तप॒तीत्या॒ तप॑ति । यो दे॒वाना॑म् । दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः । पु॒रोहि॑त॒ऽइति॑ पु॒रः हि॑तः ॥ पू॒र्व्वो॑ यः । यो दे॒वेब्भ्य॑ः । दे॒वेब्भ्यो॑ जा॒तः । जा॒तो नम॑ः । नमो॑ रु॒चाय॑ । रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये । ब्ब्राह्म॑य॒ऽइति॒ ब्ब्राह्म॑ये ॥२०॥ रु॒चम्ब्रा॒ह्मम् । ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तः । ज॒नय॑न्तो दे॒वाः । दे॒वाऽअग्ग्रे॑ । अग्ग्रे॒ तत् । तद॑ब्रुवन् । अ॒ब्रु॒व॒न्नित्य॑ब्रुवन् ॥ यस्त्वा॑ । त्वै॒वम् । ए॒वम्ब्ब्रा॑ह्म॒णः । ब्रा॒ह्म॒णो व्वि॒द्यात् । व्वि॒द्यात्तस्य॑ । तस्य॑ दे॒वाः । दे॒वाऽअ॑सन् । अ॒स॒न्वशे॑ । वश॒ऽइति॒ वशे॑ ॥ २१ ॥ श्रीश्च्च॑ । च॒ ते॒ । ते ल॒क्ष्मीः । ल॒क्ष्मीश्च्च॑ । च॒ पत्न्यौ॑ । पत्न्या॑वहोरा॒त्रे । अ॒हो॒रा॒त्रे पा॒र्श्वे । अहो॒रा॒त्रेऽइत्य॑होरा॒त्रे । पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि । पा॒र्श्वेऽइति॑ पा॒र्श्वे । नक्ष॑त्राणिरू॒पम् । रू॒पम॒श्विनौ॑ । अ॒श्विनौ॒ व्व्यात्त॑म् । व्व्या॑त्त॒मिति॑वि॒ आत्त॑म् ॥ इष्णान्नि॑षाण । इषा॒णा॒मुम् ।

अ॒मुम्मे॑ । म॒ ऽइ॒षा॒ण॒ । इ॒षा॒ण॒ स॒र्व्वँ॒लो॒कम् । स॒र्व्वँ॒लो॒कम्मे॑ । स॒र्व्वँ॒लो॒कमिति॑-सर्व्वँ लो॒कम् । ॑म॒ ऽइ॒षा॒ण॒ । इ॒षा॒णेती॑षाण ॥ २२ ॥ ❀

इति माध्यन्दिनशाखीयरुद्रपद्धतौ क्रमपाठे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ पुरुषसूक्तस्य जटोच्यते-

ॐ स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षꣳ॒ पुरु॑षꣳ स॒हस्र॑शीर्षा स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षꣳ ॥ स॒हस्र॑शी॒र्षेति॑ स॒हस्र॑ शीर्षा॑ ॥ पुरु॑षꣳ सह॒स्रा॒क्षꣳ॑ संह॒स्राक्षꣳ॑ पुरु॑षꣳ पुरु॑षꣳ सहस्राक्षꣳ॑ ॥ स॒ह॒स्रा॒क्षꣳ॑ । स॒हस्र॑पात् स॒हस्र॑पात्सह॒स्राक्षꣳ॑ संह॒स्राक्षꣳ॑ स॒हस्र॑पात् ॥ स॒ह॒स्रा॒क्षऽ इति॑ सहस्र अ॒क्षꣳ॑ ॥ स॒हस्र॑पा॒दिति॑ स॒हस्र॑ पात् ॥ सं भू॒मि॒म्भूमि॑ꣳ स स भूमि॑म् ॥

भूमिꣳ सर्वतः सर्वतो भूमिम्भूमिꣳ सर्वतः ॥ सर्वतस्पृत्त्वा स्पृत्त्वा सर्वतः सर्वतं स्पृत्त्वा ॥ स्पृत्त्वाऽत्त्यति स्पृत्त्वा स्पृत्त्वाति ॥ अत्त्यतिष्ठदतिष्ठदत्त्यत्त्यतिष्ठत् ॥ अतिष्ठद्दशाङ्गुलन्दशाङ्गुलमतिष्ठदतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ दशाङ्गुलमिति दश अङ्गुलम् ॥ १ ॥ पुरुष ऽएवैव पुरुषꣳ पुरुष ऽएव ॥ एवेदमिदमेवैवेदम् ॥ इदꣳ सर्वꣳ सर्वमिदमिदꣳ सर्वम् । सर्वं यद्यत्सर्वꣳ सर्वं यत् ॥ यद्भूतम्भूतं यद्यद्भूतम् ॥ भूतं यद्यद्भूतम्भूतं यत् ॥ यच्च च यद्यच्च । च भाऽव्यम्भाऽव्यञ्च च भाऽव्यम् ॥ भाऽव्यमिति भाऽव्यम् ॥ उतामृतत्त्वस्यामृतत्त्वस्योतोतामृतत्त्वस्य । अमृतत्त्वस्येशान ऽईशानोऽमृतत्त्वस्यामृतत्त्वस्येशानꣳ । अमृतत्त्वस्येत्त्यमृतत्त्वस्य ॥ ईशानो यद्यदीशानऽ ईशानो यत् । यदन्नेनान्नेन यद्यदन्नेन । अन्नेनातिरोहत्त्यतिरोहत्त्यन्नेनान्नेनातिरोहति । अतिरोहतीत्त्यति रोहति

॥ २ ॥ ए॒तावा॑नस्यास्यै॒तावा॑ने॒तावा॑नस्य ॥ अ॒स्य॒ म॒हि॒मा म॑हि॒माऽस्या॑स्य महि॒मा ॥ म॒हि॒मा॑ऽतोतो॑महि॒मा म॑हि॒माऽतः॑ । अ॒तो॒ ज्याया॒ञ्ज्याया॒नतोऽतो॒ ज्याया॑न् । ज्यायाँ॑श्च च॒ ज्याया॒ञ्ज्यायाँ॑श्च । च॒ पूरु॑ष॒ꣳ पुरु॑षश्च च॒ पूरु॑षꣳ । पुरु॑ष॒ ऽइति॒ पुरु॑षꣳ ॥ पादो॑ऽस्यास्य॒ पाद॒ꣳ पादो॑ऽस्य । अ॒स्य॒ व्विश्श्वा॒ व्विश्श्वा॑ऽस्यास्य॒ व्विश्श्वा॑ । व्विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ भू॒तानि॒ व्विश्श्वा॒ व्विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ । भू॒तानि॑ त्रि॒पात्त्रि॒पाद्भू॒तानि॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पात् । त्रि॒पाद॑स्यास्य त्रि॒पात्त्रि॒पाद॑स्य । त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ पात् । अ॒स्या॒मृत॑म॒मृत॑मस्यास्या॒मृत॑म् । अ॒मृत॑न्दि॒वि दि॒ऽव्य॒मृत॑म॒मृत॑न्दि॒वि । दि॒वीति॑ दि॒वि ॥ ३ ॥ त्रि॒पादू॒र्ध्व ऽऊ॒र्ध्वस्त्रि॒पात्त्रि॒पादू॒र्ध्वः । त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ पात् । ऊ॒र्ध्व ऽउदुदू॒र्ध्व ऽऊ॒र्ध्व ऽउत् । उदै॑दै॒दुदुदै॑त् । ऐ॒त्पुरु॑ष॒ꣳ पुरु॑ष ऽऐदै॒त्पुरु॑षꣳ । पुरु॑ष॒ꣳ पाद॒ꣳ पाद॒ꣳ पुरु॑ष॒ꣳ पुरु॑ष॒ꣳ पादः॑ । पादो॑ऽस्यास्य॒

पादु॒ꣳ पादो॑ऽस्य । अ॒स्ये॒हे॒हास्या॒स्ये॒ह । इ॒हाभ॑वद॒भव॑दि॒हे॒हाभ॑वत् । अ॒भ॒व॒त्पुन॒ꣳ पुन॑रभवद॒भव॒त्पुन॑ः । पुन॒रिति॒ पुन॑ः । त॒तो व्विष्व॒ङ्विष्व॒ङ् त॒तस्त॒तो व्विष्व॑ङ् । व्विष्व॒ङ्वि वि व्विष्व॒ङ्विष्व॒ङ् वि । व्व्यं॑क्रामद॒क्रामद्वि व्व्यं॑क्रामत् । अ॒क्रा॒म॒त्सा॒श॒ना॒न॒श॒ने सा॑शनानश॒नेऽक्रा॑मद॒क्रामत्साशनानश॒ने । सा॒श॒ना॒न॒श॒ने ऽअ॒भ्यु॒भि सा॑शनानश॒ने सा॑शनानश॒ने ऽअ॒भि । सा॒श॒ना॒न॒श॒ने ऽइति॑ साशनानश॒ने । अ॒भीत्य॒भि ॥ ४ ॥ ततो॑ व्वि॒राड्विराट् त॒तस्ततो॑ व्वि॒राट् । व्वि॒राड॑जायताजायतव्वि॒राड्विराड॑जायत । व्वि॒राडिति॑ वि॒ राट् । अ॒जा॒य॒त व्वि॒राजो॑ व्वि॒राजो॑ऽजायताजायत व्वि॒राज॑ः । व्वि॒राजो॒ ऽअध्यधि॑ वि॒राजो॑ व्वि॒राजो॒ ऽअधि॑ । व्वि॒राज॒ऽइति॑ व्वि॒ राज॑ः । अधि॒पू॑रुष॒ꣳ पु॒रु॒षोऽध्यधि॒ पूरु॑षꣳ । पुरु॑ष॒ ऽइति॒ पुरु॑षꣳ ॥ स जा॒तो जा॒तः स स जा॒तः । जा॒तो ऽअत्यति॑ जा॒तो जा॒तो ऽअति॑ । अत्य॑रिच्यतारिच्य-

तात्त्यत्त्य॑रिच्यत । अ॒रि॒च्य॒त॒ प॒श्चात्प॒श्चाद॑रिच्यतारिच्यत प॒श्चात् ।
प॒श्च्चाद्भू॑मि॒म्भूमि॑म्प॒श्च्चात्प॒श्च्चाद्भू॑मि॑म् । भूमि॒मथो॒ ऽअथो॒
भूमि॒म्भूमि॒मथो॑ । अथो॑ पु॒रः ऽपु॒रोथो॒ ऽअथो॑ पु॒रः । अथो॒ ऽइत्यथो॑ । पु॒र
ऽइति॑ पु॒रः ॥ ५ ॥ तस्म्मा॑द्य॒ज्ञाद्य॒ज्ञात्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑द्य॒ज्ञात् । य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हु॑तः सर्व्व॒हुतो॑ य॒ज्ञाद्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हु॑तः । स॒र्व्व॒हु॒तꣳ सम्भृ॑त॒ꣳ सम्भृ॑तꣳ सर्व्व॒हु॑तः सर्व्व॒हु॒तꣳ सम्भृ॑तम् । स॒र्व्व॒हु॒त ऽइति॑ सर्व्व॒हु॑तः । सम्भृ॑तम्पृषदा॒ज्यम्पृ॑षदा॒ज्यꣳ सम्भृ॑त॒ꣳ सम्भृ॑तम्पृषदा॒ज्यम् । सम्भृ॑त॒मिति॒सम् भृ॑तम् ।
पृ॒ष॒दा॒ज्यमिति॑पृषत् आ॒ज्यम् । प॒शूँस्ताँस्तान्प॒शून्प॒शूँस्तान् । ताँश्च॑क्रे
च॒क्रे॒ तास्ताश्च॑क्रे । च॒क्रे॒ वा॒य॒व्व्या॒न्वा॒य॒व्व्याँश्चक्रे च॒क्रे वा॒य॒व्व्यान् ।
वा॒य॒व्व्याना॒र॒ण्ण्या ऽआ॑र॒ण्ण्या वा॑य॒व्व्यान्वा॒य॒व्व्याना॒र॒ण्ण्याः । आ॒र॒ण्ण्यां॑ग्रा॒म्म्या॑ग्रा॒म्म्या ऽआ॑र॒ण्ण्या ऽआ॑र॒ण्ण्या ग्रा॒म्म्याः । ग्रा॒म्म्याश्च॑

च ग्ग्रा॒म्म्या ग्ग्रा॒म्म्याश्च॒चं । च॒ षे षे च च॒ षे । ष ऽइति॒ षे ॥ ६ ॥ ऋच॒ः सामा॑नि॒ सामा॒न्यृच॒ ऽऋच॒ꣳ सामा॑नि । सामा॑नि षज्ञिरे षज्ञिरे॒ सामा॑नि॒ सामा॑नि षज्ञिरे ॥ ज॒ज्ञि॒र॒ ऽइति॑ षज्ञिरे ॥ छन्दा॑ꣳसि षज्ञिरे षज्ञिरे च्छन्दा॑ꣳसि॒ छन्दा॑ꣳसि ज॑ज्ञि॒रे॒ ज॒ज्ञि॒रे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जज्ञि॑रे षज्ञिरे॒ तस्मा॑त् । तस्मा॒द्यजु॒॑र्षजु॒स्त॒स्मात्त स्मा॒द्यषु॑ः । षजु॒स्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॒द्यजु॒ऽर्षजु॒स्तस्म्मा॑त् । तस्म्मा॑द्जायताजायत॒ तस्म्मा॒त्तस्मा॑द्जायत । अ॒जा॒यते॒त्त्यंजायत ॥ ७ ॥ तस्म्मा॒दश्श्वा॒ ऽअश्श्वा॒स्तस्मा॒त्तस्म्मा॒दश्श्वा॑÷ । अश्श्वा॑ ऽअजायन्ताजाय॒न्ताश्श्वा॒ ऽअश्श्वा॑ ऽअजायन्त। अ॒जा॒य॒न्त॒ षे षैं ऽजा॑यन्ता जायन्त॒ षे । षे के के षे षे के । के चं च॒ के के चं । चो॒भ॒याद॑त ऽउ॒भ॒यद॑तश्चचो॒भ॒याद॑तꣳ । उ॒भ॒यद॑त॒ ऽइत्त्युं॒भ॒य द॑तꣳ ॥ गावो॑हह॒गावो॒ गावो॑ह । ह॒ ष॒ज्ञि॒रे॒

ष॒ज्ञि॒रे॒ ह॒ ह॒ ष॒ज्ञि॒रे॒ । ष॒ज्ञि॒रे॒ तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑जज्ञिरेषज्ञि॒रे॒ तस्म्मा॑त् । तस्म्मा॒त्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑त् । तस्मा॑ज्जा॒ता जा॒तास्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑ज्जा॒ताऽ । जा॒ता ऽअ॑जा॒वयो॑जा॒वयो॒ जा॒ता जा॒ता ऽअ॑जा॒वय॑÷ । अ॒जा॒वय॒ ऽइ॒त्यं॑जा॒व्वय॑÷ ॥ ८ ॥ तँऽ॒ष॒ज्ञँऽ॒ष॒ज्ञन्तन्तऽ॒ष॒ज्ञम् । ष॒ज्ञम्ब॒र्हिषि॑ ब॒र्हिषि॑ष॒ज्ञँष॒ज्ञम्ब॒र्हिषि॑ । ब॒र्हिषि॒प्रप्रब॒र्हिषि॑ब॒र्हि॒षिप्र । प्रौक्ष॑न्नौक्ष॒न्प्रप्रौक्ष॑न् । औ॒क्ष॒न्न्पुरु॑ष॒म्पुरु॑ष॒मौक्ष॒न्नौक्ष॒न्न्पुरु॑षम् । पुरु॑षञ्जा॒तञ्जा॒तम्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षञ्जा॒तम् । जा॒तम॑ग्ग्र॒तो॒ऽग्ग्र॒तोजा॒तञ्जा॒तम॑ग्ग्र॒तऽ । अ॒ग्ग्र॒त ऽइ॒त्यं॑ग्ग्र॒तऽ । तेन॑ दे॒वादे॒वास्तेन॒तेन॑दे॒वाऽ । दे॒वाऽअ॑जयन्ताऽयज्ञन्तदे॒वादे॒वाऽअ॑यजन्त । अ॒य॒ज॒न्त॒सा॒ध्याऽ सा॒ध्याअ॑यजन्तायजन्त सा॒ध्याऽ । सा॒ध्या ऽऋष॑य॒ ऽऋष॑यऽ सा॒ध्याऽ सा॒ध्या ऽऋष॑यऽ । ऋष॑यश्च्च च॒ ऽऋष॑य॒ ऽऋष॑यश्च्च । च॒ षे षे॑ च॒ च॒ ये । ष इति॒ ये ॥ ९ ॥ षत्पुरु॑ष॒-

म्पुरुषयद्यत्पुरुषम् । पुरुषं व्विविपुरुषम्पुरुषँव्वि । व्व्यदधुरदधुर्व्विव्व्यदधुꣳ । अदधुꣳ कतिधा कतिधादधुरदधुꣳ कतिधा । कतिधाव्विव्वि कतिधा कतिधाव्वि । व्व्यकल्प्पयन्नकल्प्पयन्व्विव्व्यकल्प्पयन् । अकल्प्पयन्नित्यकल्प्पयन् ॥ मुखङ्किम्मुखम्मुखङ्किम् । किमस्यास्यकिङ्किमस्य । अस्यासीदासीदस्यास्यासीत् । आसीद्बाहू बाहूऽआसीदासीद्बाहू । बाहूऽऊरू ऽऊरू बाहू बाहू ऽऊरू । बाहूऽइति बाहू । ऊरू पादौ पादा ऽऊरू ऽऊरूपादौ । ऊरूऽइत्यूरू । पादाऽउच्च्येते ऽउच्च्येते पादौपादा ऽउच्च्यते । उच्च्यते ऽइत्त्युच्च्येते ॥ १० ॥ ब्राह्मणोऽस्यास्य ब्राह्मणोब्राह्मणोऽस्य । अस्य मुखम्मुखमस्यास्य मुखम् । मुखमासीदासीन्मुखम्मुखमासीत् । आसीद्बाहू ऽआसीद्बाहू । बाहू राजन्न्यो राजन्न्यो बाहू बाहू राजन्न्य÷ । बाहू ऽइति बाहू । राजन्न्य÷ कृतऽ कृतो राजन्न्यो राजन्न्य÷ कृतऽ ।

कृ॒त ऽइति॑ कृ॒तः ॥ ऊ॒रू तत्तदू॒रू ऽऊ॒रू तत् । ऊ॒रू ऽइत्यू॒रू । तद॑स्यास्य॒ तत्तद॑स्य । अ॒स्य॒ यद्यद॑स्यास्य॒ यत् । यद्वै॑श्यो॒ वै॑श्यो॒ यद्यद्वै॑श्यः॑ । वै॑श्यः॑ प॒द्भ्याम्प॒द्भ्यां वै॑श्यो॒ वै॑श्यः॑ प॒द्भ्याम् । प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रः शू॒द्रः प॒द्भ्याम्प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रः । प॒द्भ्यामिति॑ प॒त्ऽभ्याम् । शू॒द्रो ऽअ॑जायताजायत शू॒द्रः शू॒द्रो ऽअ॑जायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥११॥

च॒न्द्रमा॒ मन॑सो॒ मन॑सश्च॒न्द्रमा॑श्च॒न्द्रमा॒ मन॑सः । मन॑सो जा॒तो जा॒तो मन॑सो॒ मन॑सो जा॒तः । जा॒तश्चक्षो॒श्चक्षो॑र्जा॒तो जा॒तश्चक्षो॑ः । चक्षो॒ः सूर्य॒ः सूर्य॒श्चक्षो॒श्चक्षो॒ः सूर्यः॑ । सूर्यो॑ ऽअजायताजायत॒ सूर्य॒ः सूर्यो॑ ऽअजायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥ श्रोत्रा॑द्वा॒युर्वा॒युः श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॑द्वा॒युः । वा॒युश्च॑ च वा॒युर्वा॒युश्च॑ । च॒ प्रा॒णः प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णः । प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णः प्रा॒णश्च॑ । च॒ मुखा॒न्मुखा॑च्च च॒ मुखा॑त् । मुखा॑द॒ग्निर॒ग्निर्मुखा॒न्मुखा॑-

दुग्निः । अ॒ग्निर॑जायताजायता॒ग्निर॒ग्निर॑जायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥ १२ ॥ नाभ्या॑ ऽआसीदासी॒न्नाभ्या॒ नाभ्या॑ ऽआसीत् । आ॒सी॒दु॒न्तरि॑क्षम॒न्तरि॑क्षमासीदासीदु॒न्तरि॑क्षम् । अ॒न्तरि॑क्षꣳ शी॒र्ष्णः शी॒र्ष्णो॑ ऽन्तरि॑क्षम॒न्तरि॑क्षꣳ शी॒र्ष्णः । शी॒र्ष्णो॑ द्यौर्द्यौः शी॒र्ष्णः शी॒र्ष्णो॑ द्यौः । द्यौः सꣳ सन्द्यौर्द्यौः सम् । सम॑वर्त्ततावर्त्तत॒ सꣳ सम॑वर्त्तत । अ॒व॒र्त्ते॒त्य॑वर्त्तत ॥ प॒द्भ्याम्भूमि॒र्भूमि॑÷ प॒द्भ्याम्प॒द्भ्याम्भूमि॑÷ । प॒द्भ्यामिति॑ प॒त् भ्याम् । भूमि॒र्द्दि॒शो दि॒शो भूमि॒र्भूमि॒र्द्दिश॑÷ । दि॒शꣳ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒द्दि॒शो दि॒शꣳ श्रोत्रा॑त् । श्रोत्रा॒त्तथा॒ तथा॒ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒त्तथा॑ । तथा॑ लो॒काँल्लो॒काँस्तथा॒ तथा॑ लो॒कान् । लो॒काँ२ ऽअ॑कल्पयन्नकल्पयँल्लो॒काँल्लो॒काँ२ ऽअ॑कल्पयन् । अ॒क॒ल्प॒य॒न्नित्य॑कल्पयन् ॥ १३ ॥ यत्पु॑रुषेण॒ पुरु॑षेण॒ यद्यत्पुरु॑षेण । पुरु॑षेण ह॒विषा॑ ह॒विषा॒ पुरु॑षेण॒ पुरु॑षेण ह॒विषा॑ ।

ह॒विषा॑ दे॒वा दे॒वा ह॒विषा॑ ह॒विषा॑ दे॒वाः । दे॒वा य॒ज्ञँय॒ज्ञन्दे॒वा दे॒वा य॒ज्ञम् । य॒ज्ञम॑तन्न्व॒तात॑न्न्वत य॒ज्ञँ य॒ज्ञम॑तन्न्वत । अं॑तन्न्व॒तेत्य॑तन्न्वत ॥ व॒स॒न्तो॒ऽस्यास्य व॒स॒न्तो व॑स॒न्तो॒स्य । अ॒स्या॒सी॒दा॒सी॒द॒स्या॒स्या॒सी॒त् । आ॒सी॒दाज्य॒माज्य॑मासीदा॒सी॒दाज्य॑म् । आज्य॑ङ्ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽआज्य॒माज्य॑ङ्ग्री॒ष्मः । ग्री॒ष्म ऽइ॒ध्म ऽइ॒ध्मो ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽइ॒ध्मः । इ॒ध्मः श॒रच्छ॒रदि॒ध्म ऽइ॒ध्मः श॒रत् । श॒रद्ध॒विर्ह॒विः श॒रच्छ॒रद्ध॒विः । ह॒विरिति॑ ह॒विः ॥ १४ ॥

स॒प्तास्या॑स्य स॒प्त स॒प्तास्य॑ । अ॒स्या॒स॒न्ना॒स॒न्न॒स्या॒स्या॒स॒न् । आ॒स॒न्प॒रि॒ध॒य॑÷ प॒रि॒ध॒य॑ऽ आस॒न्नास॒न्प॒रि॒ध॒य॑÷ । प॒रि॒ध॒य॒स्त्रिस्त्रिः प॑रि॒ध॒य॑÷प॒रि॒ध॒य॒स्त्रिः । प॒रि॒ध॒य॒ऽ इति॑ प॒रि॒ ध॒य॑÷ । त्रिः स॒प्त स॒प्त त्रिस्त्रिः स॒प्त । स॒प्त स॒मिध॑÷ स॒मिध॑÷स॒प्त स॒प्त स॒मिध॑÷ । स॒मिध॑÷ कृ॒ताः कृ॒ताः स॒मिध॑÷स॒मिध॑÷ कृ॒ताः । स॒मिध॒ ऽइति॑ स॒म् इध॑÷ । कृ॒ता ऽइति॑ कृ॒ताः ॥ दे॒वा यद्य॒द्दे॒वा दे॒-

वा षत्। यद्यज्ञं षज्ञं षद्यद्यज्ञम्। षज्ञन्तन्वानास्तन्वाना षज्ञँ ꣳषज्ञन्तन्वानाः। तन्वाना ऽअबध्नन्नबध्नँस्तन्वानास्तन्वाना ऽअबध्नन्। अबध्नन्पुरुषम्पुरुषमबध्नन्नबध्नन्पुरुषम्। पुरुषम्पशुम्पशुम्पुरुषम्पुरुषम्पशुम्। पशुमिति पशुम्॥ १५॥ षज्ञेन षज्ञँ षज्ञँ षज्ञेन षज्ञेन षज्ञम्। षज्ञमयजन्तायजन्त षज्ञँ ꣳषज्ञमयजन्त। अयजन्त देवा देवा ऽअयजन्तायजन्त देवाः। देवास्तानि तानि देवा देवास्तानि। तानि धर्म्माणि धर्म्माणि तानि तानि धर्म्माणि। धर्म्माणि ᳲप्रथमानि ᳲप्रथमानि धर्म्माणि धर्म्माणि ᳲप्रथमानि। ᳲप्रथमान्न्यासन्नासन्प्रथमानि ᳲप्रथमान्यासन्। आसन्नित्यासन्॥ ते ह ह ते ते ह। ह नाकन्नाकꣳ ह ह नाकम्। नाकम्महिमानो महिमानो नाकन्नाकम्महिमान–। महिमान÷ सचन्त सचन्त महिमानो महिमान÷ सचन्त। सचन्त षत्र षत्र सचन्त स

चन्त यत्र॑। यत्र॒ पूर्व्वे॒ पूर्व्वे॒ यत्र॒ यत्र॒ पूर्व्वे॑। पूर्व्वे॑ सा॒ध्याः सा॒ध्याः पूर्व्वे॒ पूर्व्वे॑ सा॒ध्याः। सा॒ध्याः सन्ति॒ सन्ति॑ सा॒ध्याः सा॒ध्याः सन्ति। सन्ति॑ दे॒वा दे॒वाः सन्ति॒सन्ति॑ दे॒वाः। दे॒वा ऽइति॑ दे॒वाः ॥१६॥ अ॒द्भ्यः सम्भृ॑तः सम्भृ॑तो॒ऽद्भ्यो॒द्भ्यः सम्भृ॑तः। अ॒द्भ्य ऽइत्य॒त् भ्यः। सम्भृ॑तः पृथि॒व्व्यै पृ॑थि॒व्व्यैसम्भृ॑त॒ः सम्भृतः पृथि॒व्व्यै। सम्भृ॑त॒ ऽइति॒ सम् भृ॑तः। पृ॒थि॒व्व्यै रसा॒द्रसा॑त्पृथि॒व्व्यै पृ॑थि॒व्व्यै रसा॑त्। रसा॑च्च च॒ रसा॒द्रसा॑च्च। च॒ व्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो व्वि॒श्श्वक॑र्म्मणश्च च व्वि॒श्श्वक॑र्म्मणः। व्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सꣳ सँव्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो व्वि॒श्श्वक॑र्म्मणः सम्। व्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ ऽइति॑ व्वि॒श्श्व क॑र्म्मणः। सम॑वर्त्तताव॑र्त्तत॒ सꣳ सम॑वर्त्तत। अ॒व॒र्त्त॒ताग्ग्रेग्ग्रेऽवर्त्तताव॑र्त्त॒ताग्ग्रे॑। अग्र॒ ऽइत्यग्ग्रे॑ ॥ त॑स्य॒ त्वष्टा॒ त्वष्टा॒ तस्य॒ तस्य॒ त्वष्टा॑। त्वष्टा॑ व्वि॒दध॑द्वि॒दध॒त्त्वष्टा॒ त्वष्टा॑ व्वि॒दध॑त्। व्वि॒दध॑द्रू॒पꣳ रू॒पं व्वि॒दध॑द्वि॒दध॑द्रू॒पम्। व्वि॒दध॒दिति॑

विदधत् । रूपमैत्त्येति रूपꣳ रूपमैति । एति तत्तदैत्त्येति तत् । तन्मर्त्यस्य मर्त्यस्य तत्तन्मर्त्यस्य । मर्त्यस्य देवत्त्वन्देवत्त्वम्मर्त्यस्य मर्त्यस्य देवत्त्वम् । देवत्त्वमाजानमाजानन्देवत्त्वन्देवत्त्वमाजानम् । देवत्त्वमिति देव त्त्वम् । आजानमग्रेऽग्र ऽआजानमाजानमग्ग्रे । आजानमित्त्या जानम् । अग्ग्र ऽइत्त्यग्ग्रे ॥१७॥ वेदाहमहँ वेद वेदाहम् । अहमेतमेतमहमहमेतम् । एतम्पुरुषम्पुरुषमेतमेतम्पुरुषम् । पुरुषम्महान्तम्महान्तम्पुरुषम्पुरुषम्महान्तम् । महान्तमादित्त्यवर्ण्णमादित्त्यवर्ण्णम्महान्तम्महान्तमादित्त्यवर्ण्णम् । आदित्त्यवर्ण्णन्तमसस्तमसऽ आदित्त्यवर्ण्णमादित्त्यवर्ण्णन्तमसः आदित्त्यवर्ण्णमित्त्यादित्त्य वर्ण्णम् । तमसः परस्तात् परस्तात्तमसस्तमसः परस्तात् । परस्तादिति परस्तात् ॥ तमेवैव तन्तमेव । एव विदित्त्वा विदित्त्वैवव विदित्त्वा । विदित्त्वात्त्यति विदित्त्वा विदित्त्वाति । अति मृत्त्युम्मृत्त्युमत्त्य-

ति॑ मृ॒त्युम् । मृ॒त्युमे॑त्त्येति मृ॒त्युम्मृ॒त्युमे॑ति । ए॒ति॒ न नैत्त्ये॑ति॒ न । नान्न्यो॑न्न्यो न नान्न्यः । अ॒न्न्यः पन्था॒ः पन्था॑ ऽअ॒न्न्यो॒न्न्यः पन्था॑ः । पन्था॑व्विद्यते व्विद्यते॒ पन्था॒ः पन्था॑ व्विद्यते । व्वि॒द्य॒ते ऽय॑ना॒याय॑नाय व्विद्यते व्विद्य॒तेऽय॑नाय । अय॑ना॒येत्त्यय॑नाय ॥ १८ ॥ प्प्र॒जाप॑तिश्चरति चरति प्प्र॒जाप॑तिः प्प्र॒जाप॑तिश्श्चरति । प्प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्प्र॒जा प॑तिः । च॒र॒ति॒ गर्भे॒ गर्भे॑ चरति चरति॒ गर्ब्भे॑ । गर्ब्भे॑ ऽअ॒न्तर॒न्तर्गर्ब्भे॒ गर्ब्भे॑ ऽअ॒न्तः । अ॒न्तरजा॑यमा॒नो जा॑यमाना॒न्तर॒न्तरजा॑यमानः । अजा॑यमानो बहु॒धा ब॑हु॒धाजा॑यमा॒नो जा॑यमानो बहु॒धा । बहु॒धा व्वि वि ब॑हु॒धा ब॑हु॒धा व्वि । व्वि जा॑यते जायते॒ व्वि विजा॑यते । जायत॒ ऽइति॑ जायते ॥ तस्य॒ षोनि॒ꣳषोनि॒न्तस्य॒ तस्य॒ षोनि॑म् । षोनि॒म्परि॒परि॒योनि॒ꣳष्योनि॒म्परि॑ । परि॑पश्श्यन्ति पश्श्यन्ति॒ परि॒परि॑पश्श्यन्ति । प॒श्य॒न्ति॒ धीरा॒धीरा॑ः पश्यन्ति पश्श्यन्ति॒ धीरा॑ः । धीरा॒स्तस्मि॒ꣳस्तस्म्मि॒न्धीरा॒-

धीरा॒स्तस्मि॑म्मन्। तस्मि॑म्मन्न्ह ह॒ तस्मिँ॑म॒स्तस्मि॑म्मन्न्ह । ह॒ त॒स्त्थु॒स्त॒स्त्थु॒र्ह॒ ह॒ त॒स्त्थुः। त॒स्त्थु॒र्ब्भुव॑नानि॒भुव॑नानि तस्त्थुस्तस्त्थु॒र्ब्भुव॑नानि। भुव॑नानि॒व्विश्श्वा॒ व्विश्श्वा॒ भुव॑नानि॒ भुव॑नानि॒ व्विश्श्वा॑। व्विश्श्वेति॒ विश्श्वा॑ ॥१९॥ षो दे॒वेब्भ्यो॑ दे॒वेब्भ्यो॒ षो षो दे॒वेब्भ्य॑ः। दे॒वेभ्य॑ऽ आ॒तप॑त्त्या॒तप॑ति दे॒वेब्भ्यो॑ दे॒वेब्भ्य॑ऽ आ॒तप॑ति । आ॒तप॑ति॒ षो षऽ आ॒तप॑त्त्या॒तप॑ति॒ षः। आ॒तप॒तीत्त्या॒ त॑पति । षो दे॒वाना॑न्दे॒वाना॒ँ ऽषो षो दे॒वाना॑म् । दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॒तः पु॒रोहि॑तो दे॒वाना॑न्दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः । पु॒रोहि॑त॒ऽ इति॒ पुरः॑ हि॑तः ॥ पू॒र्व्वो॑ षो षः पू॒र्व्व॒ः पू॒र्व्वो॑षः। षो दे॒वेब्भ्यो॑ दे॒वेब्भ्यो॒ षो षो दे॒वेब्भ्य॑ः। दे॒वेब्भ्यो॑ जा॒तो जा॒तो दे॒वेब्भ्यो॑ दे॒वेब्भ्यो॑ जा॒तः। जा॒तो न॒मो नमो॑ जा॒तो जा॒तो नम॑ः। नमो॑ रु॒चाय॑ रु॒चाय॒ न॒मोनमो॑ रु॒चाय॑। रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये॒ ब्ब्राह्म॑ये रु॒चाय॑ रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये । ब्राह्म॑य॒ ऽइति॒ ब्राह्म॑ये ॥ २० ॥ रु॒चम्ब्रा॒ह्मँ ब्रा॒ह्मꣳ रु॒चꣳ रु॒चम्ब्रा॒-

ह्मम् । ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो ब्ब्रा॒ह्मँ ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तः । ज॒नय॑न्तो दे॒वा
दे॒वा ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो दे॒वाः । दे॒वाऽ अग्ग्रे॒ग्ग्रे॑दे॒वा दे॒वाऽ अग्ग्रे॑ । अग्ग्रे॒-
तत्तदग्ग्रेग्ग्रे॒तत् । तद॑ब्रुवन्नब्रुव॒ँस्तत्तद॑ब्रुवन् । अ॒ब्रु॒व॒न्नित्य॑ब्ब्रुवन् ॥ षस्त्वा॑
त्वा॒ षो षस्त्वा॑ । त्वै॒वमे॒वन्त्वा॑ त्वै॒वम् । ए॒वम्ब्रा॑ह्म॒णो ब्रा॑ह्म॒णऽ ए॒वमे॒व-
ब्राह्म॒णः । ब्रा॒ह्म॒णो व्वि॒द्या॒द्वि॒द्याद्ब्रा॑ह्म॒णो ब्रा॑ह्म॒णो व्वि॒द्यात् । व्वि॒द्या॒त्तस्य॒ तस्य॑
व्वि॒द्या॒द्वि॒द्यात्तस्य॑ । तस्य॑ दे॒वा दे॒वास्तस्य॒तस्य॑ दे॒वाः । दे॒वा ऽअ॑सन्नसन्दे॒वा-
दे॒वा ऽअ॑सन् । अ॒स॒न्न्वशे॒ व्वशे॑सन्नस॒न्न्वशे॑ । व्वशा॒ऽ इति॒ वशे॑ ॥२१॥ श्रीश्च॑-
च॒ श्रीः श्रीश्च॑ । च॒ ते॒ ते॒ च॒ च॒ ते॒ । ते॒ ल॒क्ष्म्मीर्ल्ल॒क्ष्म्मीस्ते॑ ते ल॒क्ष्म्मीः ।
ल॒क्ष्मीश्च॑ च ल॒क्ष्म्मीर्ल्ल॒क्ष्म्मीश्च॑ । च॒ पत्न्यौ॒ पत्न्यौ॑ च च॒ पत्न्यौ॑ । पत्न्या॑व-
हो॒रा॒त्रे ऽअ॑हो॒रा॒त्रे पत्न्यौ॑ पत्न्या॑वहो॒रा॒त्रे॒ । अ॒हो॒रा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ पा॒र्श्वे॑
ऽअ॑हो॒रा॒त्रे ऽअ॑हो॒रा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ । अहो॒रा॒त्रे ऽइत्य॑हो॒रा॒त्रे । पा॒र्श्वे॑नक्ष॑त्राणि॒

नक्ष॑त्राणि पा॒र्श्वे पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि । पा॒र्श्वे ऽइति॑ पा॒र्श्वे । नक्ष॑त्राणि-रू॒पꣳ रू॒पन्नक्ष॑त्राणि॒नक्ष॑त्राणि रू॒पम् । रू॒पम॒श्विना॑व॒श्विनौ॑ रू॒पꣳ रू॒पम॒श्विनौ॑ । अ॒श्विनौ॒ व्व्या॑त्तँ॒ व्व्या॑त्तम॒श्विना॑व॒श्विनौ॒ व्या॑त्तम् । व्यात्त॒मिति॑ वि॒ आ॑त्तम् ॥ इष्णन्नि॑षाणेषाणे॒ष्णन्नि॒ष्णन्नि॑षाण । इ॒षा॒णा॒मु॒ममि॑षाणेषाणा॒मुम् । अ॒मुम्मे॑ मे॒ ऽमुम॒मुम्मे॑ । म॒ ऽइ॒षा॒णे॒षा॒ण॒ मे॒ म॒ऽइ॒षा॒ण॒ । इ॒षा॒ण॒ स॒र्व्व॒लो॒कꣳ स॑र्व्वलो॒कमि॑षाणेषाण स॒र्व्वलो॒कम् । स॒र्व्व॒लो॒कम्मे॑मे सर्व्वलो॒कꣳ स॑र्व्वलो॒कम्मे॑ । स॒र्व्व॒लो॒कमिति॑ सर्व्व लो॒कम् । म॒ ऽइ॒षा॒णे॒षा॒ण॒ मे॒ म॒ ऽइ॒षा॒ण॒ । इ॒षा॒णेती॑षाण ।

इति पुरुषसूक्तजटापाठे द्वितीयोऽध्यायः ।

अथ पुरुषसूक्तघनपाठः-

ॐ स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑ष॒ः पुरु॑षः स॒हस्र॑शीर्षा स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॑हस्रा॒क्षः पुरु॑षः स॒हस्र॑शीर्षा स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः । स॒हस्र॑शी॒र्षेति॑ स॒हस्र॑ शीर्षा । पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॑हस्रा॒क्षः पुरु॑ष॒ः पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्स॒हस्र॑पात्सहस्रा॒क्षः पुरु॑ष॒ः पुरु॑षः सहस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् । स॒ह॒स्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात्स॒हस्र॑पात्सहस्रा॒क्षः स॑हस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् । स॒ह॒स्रा॒क्ष ऽइति॑ सहस्र, अ॒क्षः । स॒हस्र॑पा॒दिति॑ स॒हस्र॑ पात् ॥ स भूमि॒ꣳ भूमि॒ꣳ स स भूमि॑ꣳ स॒र्व्वत॑ः स॒र्व्वतो॒ भूमि॒ꣳ स स भूमि॑ꣳ स॒र्व्वत॑ः । भूमि॑ꣳ स॒र्व्वत॑ः स॒र्व्वतो॒ भूमि॑ꣳ भूमि॑ꣳ स॒र्व्वत॑ स्पृ॒त्वा स्पृ॒त्वा स॒र्व्वतो॒ भूमि॒ꣳ भूमि॑ꣳ स॒र्व्वत॑ स्पृ॒त्वा । स॒र्व्वत॑ स्पृ॒त्वा

स्पृत्वा सर्वतः सर्वत स्पृत्वाऽत्याति स्पृत्वा सर्वतः सर्वत स्पृत्वाऽति । स्पृत्वाऽत्याति स्पृत्वा स्पृत्वात्यतिष्ठदतिष्ठदति स्पृत्वा स्पृत्वाऽत्यतिष्ठत् । अत्यतिष्ठदतिष्ठदत्यत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलन्दशाङ्गुलमतिष्ठदत्यत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् । अतिष्ठद्दशाङ्गुलन्दशाङ्गुलमतिष्ठदतिष्ठदतिष्ठद्दशाङ्गुलम् । दशाङ्गुलमिति दश अङ्गुलम् ॥ १ ॥ पुरुषऽ एवैव पुरुषः पुरुषऽ एवेदमिदमेव पुरुषः पुरुषऽएवेदम् । एवेदमिदमेवैवेदꣳ सर्वꣳ सर्वमिदमेवैवेदꣳ सर्वम् । इदꣳ सर्वꣳ सर्वमिदमिदꣳ सर्वं षद्यत्सर्वमिदमिदꣳ सर्वं षत् । सर्वं षद्यत्सर्वꣳ सर्वं षद् भूतं भूतं षत्सर्वꣳ सर्वं षद् भूतम् । षद् भूतं भूतं षद्यद् भूतं षद्यद् भूतं षद्यद्भूतं षत् । भूतं षद्यद् भूतं भूतं षच्च च षद् भूतं भूतं षच्च । षच्च च षद्यच्च भाव्यं भाव्यं च षद्यच्च भाव्यम् । च भाव्यं भाव्यं च च भाव्यम् । भाव्यमिति भाव्यम् ॥ उतामृतत्वस्यामृतत्वस्योतोता-

मृ॑त॒त्वस्येशा॑न॒ऽ ईशा॑नोऽमृत॒त्वस्यो॒तोतामृ॑त॒त्वस्येशा॑नः । अ॒मृ॒त॒त्वस्येशा॑न॒ऽईशा॑नोऽमृत॒त्वस्या॑मृत॒त्वस्येशा॑नो॒ यद्यदीशा॑नो ऽमृतत्व॒स्या॑मृत॒त्वस्येशानो॒ यत् । अ॒मृ॒त॒त्वस्येत्य॑मृत॒ त्वस्य॑ । ईशा॑नो॒ यद्यदीशा॑न॒ऽ ईशा॑नो॒ यदन्ने॒नान्ने॑न॒ य॒दीशा॑न॒ ऽईशा॑नो॒ यदन्ने॑न । यदन्ने॒नान्ने॑न॒ यद्यन्ने॑नाति॒रोह॑त्यति॒रोह॑त्य॒न्ने॑न॒ यद्यदन्ने॒नाति॒रोह॑ति । अन्ने॑नाति॒रोह॑त्यति॒रोह॒त्यन्ने॒नान्ने॑नाति॒रोह॑ति । अ॒ति॒रोह॒तीत्यति॒ रोह॑ति ॥२॥ ए॒तावा॑नस्यास्यै॒तावा॑ने॒तावा॑नस्य महि॒मा म॑हि॒माऽस्यै॒तावा॑ने॒तावा॑नस्य महि॒मा । अ॒स्य॒ महि॒मा म॑हि॒माऽस्या॑स्य महि॒माऽतोतो॑ महि॒माऽस्या॑स्य महि॒माऽत॑ः । म॒हि॒माऽतोऽतो॑ महि॒मा म॑हि॒माऽतो॒ ज्याया॒ञ्ज्याया॒नतो॑ महि॒मा म॑हि॒माऽतो॒ ज्याया॑न् । अतो॒ ज्याया॒ञ्ज्याया॒नतोऽतो॒ ज्याया॑ंश्च च॒ ज्याया॒नतोऽतो॒ ज्याया॑ंश्च । ज्याया॑ँश्च च॒ ज्याया॒ञ्ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः पुरु॑षश्च॒ ज्याया॒ञ्ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः । च॒ पूरु॑ष॒ः पुरु॑षश्च च॒ पूरु॑षः । पुरु॑ष॒ऽ

इति॒ पुरु॑षः ॥ पादो॑ऽस्यास्य॒ पाद॒ः पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॒ विश्वा॑स्य॒ पाद॒ः
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ । अ॒स्य॒ विश्श्वा॒ विश्श्वा॑स्यास्य॒ विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ भू॒तानि॒
विश्श्वा॑ऽस्याऽस्य॒ विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ । विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ भू॒तानि॒ विश्श्वा॒
विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पात्रि॒पाद् भू॒तानि॒ विश्श्वा॒ विश्श्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पात् ।
भू॒तानि॑ त्रि॒पात्रि॒पाद् भू॒तानि॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्यास्य त्रि॒पाद् भू॒तानि॑
भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्य । त्रि॒पाद॑स्यास्य त्रि॒पात्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑म॒मृत॑मस्य त्रि॒पात्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑म् । त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ पात् । अ॒स्या॒मृत॑म॒मृत॑मस्यास्या॒मृत॑न्दि॒वि दि॒व्य॒मृत॑मस्यास्या॒मृत॑न्दि॒वि । अ॒मृत॑न्दि॒वि दि॒व्य॒मृत॑म॒मृत॑न्दि॒वि ।
दि॒वीति॑ दि॒वि ॥३॥ त्रि॒पादू॒र्ध्वँऽऊ॒र्ध्वँस्त्रि॒पात्रि॒पादू॒र्ध्वँ ऽउदुदू॒र्ध्वँस्त्रि॒पात्रि॒पादू॒र्ध्वँऽउत् । त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ । पात् । ऊ॒र्द्ध्वँ ऽउदुदू॒र्द्ध्वँ ऽऊ॒र्द्ध्वँ ऽउदै॑दै॒दुदू॒र्द्ध्वँ ऽऊ॒र्द्ध्वँ
ऽउदै॑त् । उदै॑दै॒दुदुदै॒त्पुरु॑ष॒ः पुरु॑ष ऽऐ॒दुदुदै॒त्पुरु॑षः । ऐ॒त्पुरु॑ष॒ः पुरु॑ष

ऽऐदै॒त्पुरु॑ष॒ᳶ पाद॒ᳶ पाद॒ᳶ पुरु॑ष ऽऐदै॒त्पुरु॑ष॒ᳶ पाद॑ः । पुरु॑ष॒ᳶ पाद॒ᳶ पाद॒ᳶ पुरु॑ष॒ᳶ पुरु॑ष॒ᳶ पादो॑ ऽस्यास्य॒ पाद॒ᳶ पुरु॑ष॒ᳶ पुरु॑ष॒ᳶ पादो॑ऽस्य । पादो॑ऽस्यास्य॒ पाद॒ᳶ पादो॑ ऽस्ये॒हेहास्य॒ पाद॒ᳶ पादो॑ऽस्ये॒ह । अ॒स्ये॒हेहास्या॑स्ये॒हाभ॑वद्भवदि॒हास्या॑स्ये॒हाभ॑वत् । इ॒हाभ॑वद्भवदि॒हेहाभ॑व॒त्पुन॒ᳶ पुन॑रभवदि॒हेहाभ॑व॒त्पुन॑ः । अ॒भ॒व॒त्पुन॒ᳶ पुन॑रभवद्भव॒त्पुन॑ः । पुन॒रिति॒ पुन॑ः ॥

ततो॒ विष्व॒ङ् विष्व॒ङ् तत॒स्ततो॒ विष्व॒ङ् वि वि विष्व॒ङ् तत॒स्ततो॒ विष्व॒ङ् वि । विष्व॒ङ् वि॒ वि विष्व॒ङ् विष्व॒ङ् व्यक्रामदक्राम॒द्वि विष्व॒ङ् विष्व॒ङ् व्यक्रामत् । व्यक्रामदक्राम॒द्वि व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने सा॑शनानश॒ने ऽक्रा॑म॒द्वि व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने । अ॒क्राम॒त्सा॒श॒ना॒न॒श॒ने सा॑शनानश॒ने ऽक्रा॑मदक्रामत्साशनानश॒नेऽअ॒भ्यु॑भि सा॑शनानश॒ने ऽक्रा॑मदक्रामत्साशनानश॒ने ऽअ॒भि । सा॒श॒ना॒न॒श॒नेऽअ॒भ्यु॑भि सा॑शनानश॒ने

सा॑शनानश॒नेऽअ॒भि। सा॒श॒ना॒न॒श॒ने ऽइति॑ साशनानश॒ने। अ॒भीत्य॒भि ॥४॥
ततो॑ ब्वि॒राड् ब्वि॒राट् तत॒स्ततो॑ ब्वि॒राड॑जायताजायत ब्वि॒राट् तत॒स्ततो॑
ब्वि॒राड॑जायत । ब्वि॒राड॑जायताजायत ब्वि॒राड् ब्वि॒राड॑जायत ब्वि॒राजो॑
ब्वि॒राजो॑ ऽजायत ब्वि॒राड् ब्वि॒राड॑जायत ब्वि॒राज÷ । ब्वि॒राडिति॑ वि॒ राट् ।
अ॒जा॒य॒त॒ ब्वि॒राजो॑ ब्वि॒राजो॑ ऽजायताजायत ब्वि॒रा॒जोऽअध्यधि॑ वि॒राजो॑
ऽजायताजायत ब्वि॒रा॒जो ऽअधि॑। ब्वि॒रा॒जो ऽअध्यधि॑ वि॒राजो॑ ब्वि॒रा॒जो
ऽअधि॒ पूरु॑ष॒ः पुरु॒षोधि॑ वि॒राजो॑ ब्वि॒रा॒जो ऽअधि॒ पूरु॑षः । ब्वि॒रा॒ज इति॑
विराज॑÷ । अधि॒ पूरु॑ष॒ः पुरु॒षोऽध्यधि॒ पूरु॑षः । पुरु॑ष॒ इति॒ पुरु॑षः ॥
स जा॒तो जा॒तः स स जा॒तो ऽअत्यति॑ जातः स स जा॒तोऽअति॑ ।
जा॒तो ऽअत्यति॑ जा॒तो जा॒तो ऽअत्य॑रिच्यतारिच्य॒ताति॑ जा॒तो जातो
ऽअत्य॑रिच्यत । अत्य॑रिच्यतारिच्य॒तात्यत्य॑रिच्यत प॒श्चात्प॒श्चाद॑रिच्य॒ता

त्यत्य॑रिच्यत प॒श्चात् । अ॒रि॒च्य॒त॒ प॒श्चात्प॒श्चाद॑रिच्यतारिच्यत प॒श्चाद् भूमि॒ं भूमि॑ं प॒श्चाद॑रिच्यतारिच्यत प॒श्चाद् भूमि॑म् । प॒श्चाद्भूमि॒ं भूमि॑ं प॒श्चात्प॒श्चाद् भूमि॒मथो॒ ऽअथो॒ भूमि॑ं प॒श्चात्प॒श्चाद् भूमि॒मथो᳚ । भूमि॒मथो॒ऽअथो॒ भूमि॒ं भूमि॒मथो᳚ पु॒रः पु॒रोऽथो॒ भूमि॒ं भूमि॒मथो᳚ पु॒रः । अथो᳚ पु॒रः पु॒रोऽथो॒ऽअथो᳚ पुरः । अथो॒ इत्यथो᳚ । पु॒रऽइति॑ पु॒रः ॥ ५ ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञाद्य॒ज्ञात्तस्मा॒त्तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॑ः सर्व्व॒हुतो᳚ य॒ज्ञात्तस्मा॒त्तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॑ः । य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॑ः सर्व्व॒हुतो᳚ य॒ज्ञाद्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑त॒ꣳ सम्भृ॑तꣳ सर्व्व॒हुतो᳚ य॒ज्ञाद्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तम् । स॒र्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑त॒ꣳ सम्भृ॑तꣳ सर्व्व॒हुत॑ः सर्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं पृष॒दाज्य॑ꣳ पृ॑ष॒दाज्य॑ꣳ सम्भृ॑तꣳ सर्व्व॒हुत॑ः सर्व्व॒हुत॒ः सम्भृ॑तं पृष॒दाज्य॑म् । स॒र्व्व॒हु॒त॒ ऽइति॑ सर्व्व॒हुत॑ः । सम्भृ॑तं पृष॒दाज्य॑ं पृ॑ष॒दाज्य॑ꣳ सम्भृ॑त॒ꣳ सम्भृ॑तं पृष॒दाज्य॑म् ।

सम्भृ॑त॒मिति॒ सम् । भृ॑तम् । पृ॒ष॒दा॒ज्यमिति॑ पृषत् आ॒ज्यम् ॥ प॒शूंस्तांस्तान्प॒शून्प॒शूंस्तांश्च॑क्रे च॒क्रे तान् प॒शून्प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे । ताँश्च॑क्रे च॒क्रे ताँस्ताँश्च॑क्रे वा॒य॒व्या॑न् वा॒य॒व्याँ॑श्चक्रे ताँस्ताँश्च॑क्रे वा॒य॒व्या॑न् । च॒क्रे वा॒य॒व्या॑न् वा॒य॒व्याँ॑श्चक्रे च॒क्रे वा॒य॒व्याना॑र॒ण्याऽ आ॑र॒ण्या वा॑य॒व्याँश्चक्रे चक्रे वा॒य॒व्याना॑र॒ण्याः । वा॒य॒व्याना॑र॒ण्याऽ आ॑र॒ण्या वा॑य॒व्यान् वा॒य॒व्याना॑र॒ण्या ग्रा॒म्या ग्रा॒म्याऽ आ॑र॒ण्या वा॑य॒व्यान् वा॒य॒व्याना॑र॒ण्याग्रा॒म्याः । आ॒र॒ण्या ग्रा॒म्या ग्रा॒म्याऽ आ॑र॒ण्याऽआ॑र॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॑ च ग्रा॒म्याऽ आ॑र॒ण्याऽ आ॑र॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॑ । ग्रा॒म्याश्च॑ च ग्रा॒म्या ग्रा॒म्याश्च॒ षे षे च॑ ग्रा॒म्या ग्रा॒म्याश्च॒ षे । च॒ षे षे च॑ च॒ षे । ष ऽइति॒ ये ॥६॥ ऋच॒ः सामा॑नि॒ सामा॒न्षृच॒ऽ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे जज्ञिरे॒ सामा॒न्षृच॒ऽ ऋच॒ः सामा॑नि जज्ञिरे । सामा॑नि जज्ञिरे जज्ञिरे॒ सामा॑नि॒ सामा॑नि

जज्ञिरे । ज॒ज्ञि॒रे॒ ऽइति॑ जज्ञिरे ॥ छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे जज्ञिरे॒ च्छन्दा॑ꣳसि॒ च्छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे॒ तस्मा॒त् तस्मा॑ज्जज्ञिरे॒ च्छन्दा॑ꣳसि॒ च्छन्दा॑ꣳसि जज्ञिरे॒ तस्मा॑त् । ज॒ज्ञि॒रे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जज्ञिरे जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजु॒र्षजु॒स्तस्मा॑ज्जज्ञिरे जज्ञिरे॒ तस्मा॒द्यजुः॑ । तस्मा॒द्यजु॒र्षजु॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒द्यजु॒स्तस्मा॑त् । षजु॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒द्यजु॒र्षजु॒स्तस्मा॑दजायताजायत॒ तस्मा॒द्यजु॒र्षजु॒स्तस्मा॑दजायत । तस्मा॑दजायताजायत॒ तस्मा॒त्तस्मा॑दजायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥ ७ ॥

तस्मा॒दश्वा॒ ऽअश्वा॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒दश्वा॑ ऽअजायन्ताजाय॒न्ताश्वा॒स्तस्मा॒त्तस्मा॒दश्वा॑ ऽअजायन्त । अश्वा॑ ऽअजायन्ताजाय॒न्ताश्वा॒ ऽअश्वा॑ ऽअजायन्त॒ षे षे॑ ऽजाय॒न्ताश्वा॒ ऽअश्वा॑ ऽअजायन्त॒ षे । अ॒जा॒य॒न्त॒ षे षे ऽजा॑यन्ताजायन्त॒ षे के के षे ऽजा॑यन्ताजायन्त॒ षे के । षे के॑ के

षे षे के च॑ च॒ के षे षे के च॑। के च॑ च॒ के के चो॑भ॒याद॑त ऽउभ॒यद॑तश्च॒ के के के चो॑भ॒याद॑तः। चो॒भ॒याद॑त ऽउभ॒यद॑तश्च चो॑भयाद॑तः उ॒भ॒यद॑त॒ इत्यु॑भ॒य द॑तः॥ गावो॑ ह ह॒ गावो॒ गावो॑ ह जज्ञिरे जज्ञिरे ह॒ गावो॒ गावो॑ ह जज्ञिरे। ह॒ ज॒ज्ञि॒रे॒ जज्ञि॒रे॒ ह॒ ह॒ ष॒ज्ञि॒रे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑द्यज्ञिरे ह ह जज्ञिरे॒ तस्मा॑त्। ज॒ज्ञि॒रे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑द्यज्ञिरे जज्ञिरे॒ तस्मा॒त्तस्मा॒त्तस्मा॑द्यज्ञिरे जज्ञिरे॒ तस्मा॑त्। तस्मा॒त् तस्म्मा॒त्तस्मा॒त्तस्मा॒त्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑ज्जा॒ता जातास्तस्मा॒त्तस्मा॒त्तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ताः। तस्मा॑ज्जा॒ता जा॒तास्तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता ऽअ॑जा॒वयो॑ ऽजा॒वयो॑ जा॒तास्तस्म्मा॒त्तस्म्मा॑ज्जा॒ता ऽअ॑जा॒वय॑ः। जा॒ता ऽअ॑जा॒वयो॑ ऽजा॒वयो॑ जा॒ता जा॒ता ऽअ॑जा॒वय॑ः। अ॒जा॒वय॒ ऽइत्य॑जावय॑ः॥ ८॥ तं ष॒ज्ञं ष॒ज्ञं तन्तँ॑ ष॒ज्ञं ब॒र्हिषि॑ ब॒र्हिषि॑ ष॒ज्ञन्तन्तँ॑ ष॒ज्ञम्ब॒र्हिषि॑। ष॒ज्ञं ब॒र्हिषि॑ ब॒र्हिषि॑ ष॒ज्ञं ष॒ज्ञं

ब॒र्हिषि॒ प्र प्र ब॒र्हिषि॑ य॒ज्ञं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्र । ब॒र्हिषि॒ प्र प्र ब॒र्हिषि॑ ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॑न्नौक्ष॒न्प्र ब॒र्हिषि॑ ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॑न् । प्रौक्ष॑न्नौक्ष॒न्प्र प्रौक्ष॒न् पुरु॑षं॒ पुरु॑ष॒मौक्ष॒न्प्र प्रौक्ष॒न्पुरु॑षम् । औक्ष॒न्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षमौक्षन्नौक्ष॒न्पुरु॑षञ्जा॒तञ्जा॒तम्पुरु॑षमौक्षन्नौक्ष॒न्पुरु॑षञ्जा॒तम् । पुरु॑षञ्जा॒तञ्जा॒तम्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षञ्जा॒तम॑ग्र॒तो ऽग्र॒तो जा॒तं पुरु॑षं॒ पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः । जा॒तम॑ग्र॒तो ऽग्र॒तो जा॒तञ्जा॒तम॑ग्र॒तः । अ॒ग्र॒तऽ इत्य॑ग्र॒तः ॥ तेन॑ दे॒वा दे॒वास्तेन॒ तेन॑ दे॒वा ऽअ॑यजन्तायजन्त दे॒वास्तेन॒ तेन॑ दे॒वाऽ अ॑यजन्त । दे॒वा ऽअ॑यजन्तायजन्त दे॒वा दे॒वा ऽअ॑जयन्त सा॒ध्याः सा॒ध्या अ॑यजन्त दे॒वा दे॒वाऽ अ॑यजन्त सा॒ध्याः । अ॒य॒ज॒न्त॒ सा॒ध्याः सा॒ध्या ऽअ॑यजन्तायजन्त सा॒ध्याऽ ऋष॑य॒ऽ ऋष॑यः सा॒द्ध्याऽ अ॑यजन्तायजन्त सा॒ध्या ऽऋष॑यः । सा॒द्ध्या ऽऋष॑य॒ ऽऋष॑यः सा॒द्ध्याः सा॒द्ध्या ऽऋष॑यश्च॒ च॒ऽ ऋष॑यः

सा॒द्ध्याः सा॒द्ध्याऽ ऋष॑यश्च । ऋष॑यश्च च॒ ऽऋष॑य॒ ऽऋष॑यश्च॒ ये ये च॒ऽ ऋष॑य॒ ऽऋष॑यश्च॒ ये । च॒ ये ये च च॒ ये । य ऽइति॒ ये ॥ ९ ॥ यत्पुरु॑षं॒ पुरु॑षं॒ यद्यत्पुरु॑षं॒ व्वि वि पुरु॑षं॒ यद्यत्पुरु॑षं॒ व्वि । पुरु॑षं॒ व्वि वि पुरु॑षं॒ पुरु॑षं॒ ऽव्यद॑धु॒रद॑धु॒र्व्वि पुरु॑षं॒ पुरु॑षं॒ ऽव्यद॑धुः । ऽव्यद॑धु॒रद॑धु॒र्व्वि ऽव्यद॑धुः कति॒धा क॑ति॒धा ऽद॑धु॒र्व्वि ऽव्व्यद॑धुः कति॒धा । अद॑धुः कति॒धा क॑ति॒धाऽद॑धु॒रद॑धुः कति॒धा व्वि वि क॑ति॒धा ऽद॑धु॒रद॑धुः कति॒धा व्वि । क॒ति॒धा व्वि त्रि क॑ति॒धा क॑ति॒धा ऽव्य॑कल्पयन्नकल्प॒यन्व्वि क॑ति॒धा क॑ति॒धा ऽव्य॑कल्पयन् । ऽव्य॑कल्पयन्नकल्प॒यन्व्वि ऽव्य॑कल्पयन् । अ॒क॒ल्प॒य॒न्नित्य॑कल्पयन् ॥ मुखं॒ किं किं मुखं॒ मुखं॒ किम॑स्यास्य॒ किं मुखं॒ मुखं॒ किम॑स्य । किम॑स्यास्य॒ किङ्किम॑स्यासीदासीदस्य॒ किं किम॑स्यासीत् । अ॒स्या॒सी॒दा॒सी॒द॒स्या॒स्या॒सी॒द्बा॒हू बा॒हू ऽआ॑सीदस्यास्यासीद्बा॒हू । आ॒सी॒द्बा॒हू बा॒हू ऽआ॑सीदासीद्बा॒हू

ऽऊ॒रू ऽऊ॒रू बा॒हू ऽआ॑सीदासीद्बा॒हूऽ ऊ॒रू । बा॒हू ऽऊ॒रू ऽऊ॒रू बा॒हू बा॒हू ऽऊ॒रू पा॑दौ॒ पादा॑ ऽऊ॒रू बा॒हू बा॒हूऽ ऊ॒रू पादौ॑ । बा॒हू इति॑ बा॒हू । ऊ॒रू पा॑दौ॒ पादा॑ ऽऊ॒रू ऊ॒रू पादा॑ ऽउच्च्येते ऽउच्च्येते॒ पादा॑ ऽऊ॒रू ऽऊ॒रू पादा॑ऽ उच्च्येते । ऊ॒रू ऽइत्यू॒रू । पादा॑ ऽउच्च्येते ऽउच्च्येते॒ पादौ॑ पादा॑ ऽउच्च्येते । उ॒च्च्ये॒ते॒ ऽइत्यु॑च्च्येते ॥ १० ॥ ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्यास्य ब्ब्राह्म॒णो ब्रा॑ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मु॒ख॒ं मुखं॑मस्य ब्ब्राह्म॒णो ब्ब्रा॑ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑म् । अ॒स्य॒ मु॒ख॒ं मुखं॑मस्यास्य॒ मुखं॑मासीदासी॒न्मुखं॑मस्यास्य॒ मुखं॑मासीत् । मुखं॑मासीदासी॒न्मु॒ख॒ं मुखं॑मासीद्बा॒हू बा॒हूऽ आ॑सी॒न्मु॒ख॒ं मुखं॑मासीद्बा॒हू । आ॒सी॒द्बा॒हू बा॒हू ऽआ॑सीदासीद्बा॒हू रा॑ज॒न्यो॑ राज॒न्यो॑ बा॒हू ऽआ॑सीदासीद्बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ । बा॒हू रा॑ज॒न्यो॑ राज॒न्यो॑ बा॒हू बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः कृ॒तो रा॑ज॒न्यो॑ बा॒हू बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः । बा॒हू ऽइति॑ बा॒हू ।

रा॒ज॒न्य॑÷ कृ॒तᳵ कृ॒तो रा॑ज॒न्यो॑ रा॒ज॒न्य॑÷ कृ॒तᳵ। कृ॒त ऽइति॑ कृ॒तᳵ॥ ऊ॒रू तत्त॒दू॒रू ऽऊ॒रू तद॑स्यास्य॒ तदू॒रू ऽऊ॒रू तद॑स्य। ऊ॒रू इत्यू॒रू। तद॑स्यास्य॒ तत्तद॑स्य॒ षद्यद॑स्य॒ तत्तद॑स्य॒ षत्। अ॒स्य॒ षद्यद॑स्यास्य॒ षद्वै॑श्श्यो॒ व्वै॑श्यो॒ षद॑स्यास्य॒ षद्वै॑श्श्यं॑÷। षद्वै॑श्श्यो॒ व्वै॑श्यो॒ षद्यद्वै॑श्श्यं॑÷ पद्भ्याम्प॒द्भ्यां व्वै॑श्यो॒ षद्यद्वै॑श्श्यं॑÷ प॒द्भ्याम्। वै॑श्श्यं॑÷ प॒द्भ्याम्प॒द्भ्यां व्वै॑श्यो॒ व्वै॑श्यं॑÷ प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रᳵ शू॒द्रᳵ प॒द्भ्यां व्वै॑श्यो॒ व्वै॑श्यं॑÷ प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रᳵ। प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रᳵ शू॒द्रᳵ प॒द्भ्यां प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रो ऽअ॑जायताजायत शू॒द्रᳵ प॒द्भ्यां प॒द्भ्याꣳ शू॒द्रोऽअ॑जायत। प॒द्भ्यामिति॑ प॒त् भ्याम्। शू॒द्रोऽअ॑जायताजायत शू॒द्रᳵ शू॒द्रो ऽअ॑जायत। अ॒जा॒य॒तेत्यजायत॥ ११॥ च॒न्द्रमा॒ मन॑सो॒ मन॑सश्च॒न्द्रमा॑श्च॒न्द्रमा॒ मन॑सो जा॒तो जा॒तो मन॑स-

श्च॒न्द्रमा॑श्च॒न्द्रमा॒ मन॑सो जा॒तः । मन॑सो जा॒तो जा॒तो मन॑सो॒ मन॑सो॒ जा॒तश्चक्षो॒श्चक्षो॑र्जा॒तो मन॑सो॒ मन॑सो जा॒तश्चक्षोः॑ । जा॒तश्चक्षो॒श्चक्षो॑र्जा॒तो जा॒तश्चक्षो॒ः सूर्यः॒ सूर्य॒श्चक्षो॑र्जा॒तो जा॒तश्चक्षो॒ः सूर्यः॑ । चक्षो॒ः सूर्यः॒ सूर्य॒श्चक्षो॒श्चक्षो॒ः सूर्यो॑ऽ अजायताजायत॒ सूर्य॒श्चक्षो॒श्चक्षो॒ः सूर्यो॑ऽ अजायत । सूर्यो॑ऽ अजायताजायत॒ सूर्यः॒ सूर्यो॑ऽ अजायत । अ॒जा॒य॒तेत्य॑जायत ॥ श्रोत्रा॑द्वा॒युर्वा॒युः श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ च वा॒युः श्रो॒त्रा॒च्छ्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ । वा॒युश्च॑ च वा॒युर्वा॒युश्च॑ प्रा॒णः प्रा॒णश्च॑ वा॒युर्वा॒युश्च॑ प्रा॒णः । च॒ , प्रा॒णः प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णश्च॑ । प्रा॒णश्च॑ च प्रा॒णः प्रा॒णश्च॒ मु॒खान्मुखा॑च्च प्रा॒णः प्रा॒णश्च॒ मुखा॑त् । च॒ मु॒खान्मुखा॑च्च च॒ मुखा॑द॒ग्निर॒ग्निर्मुखा॑च्च च॒ मुखा॑द॒ग्निः । मुखा॑द॒ग्निर॒ग्निर्मु॒खान्मुखा॑द॒ग्निर॑जायता-

जायताग्निर्मुखान्मुखादग्निरजायत । अग्निरजायताजायताग्निरग्निरजायत । अजायतेत्यजायत ॥ १२ ॥ नाभ्याऽ आसीदासीन्नाभ्या नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्षमन्तरिक्षमासीन्नाभ्या नाभ्याऽआसीदन्तरिक्षम् । आसीदन्तरिक्षमन्तरिक्षमासीदासीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णः शीर्ष्णो ऽन्तरिक्षमासीदासीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णः । अन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णः शीर्ष्णोऽन्तरिक्षमन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौ द्यौः शीर्ष्णोऽन्तरिक्षमन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः । शीर्ष्णो द्यौ द्यौः शीर्ष्णः शीर्ष्णो द्यौः सꣳ सन्द्यौः शीर्ष्णः शीर्ष्णो द्यौः सम् । द्यौः सꣳ सन्द्यौर्द्यौः समवर्त्ततावर्त्तत सन्द्यौर्द्यौः समवर्त्तत । समवर्त्ततावर्त्तत सꣳ समवर्त्तत । अवर्त्ततेत्यवर्त्तत ॥ पद्भ्यां भूमिर्भूमिः पद्भ्यां पद्भ्यां भूमिर्दिशो दिशो भूमिः पद्भ्यां पद्भ्यां भूमिर्दिशः । पद्भ्यामिति पत्

भ्याम् । भूमि॒र्द्दि॑शो॒ दिशो॒ भूमि॒र्भूमि॒र्द्दि॑श॒ᳲ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒द्दि॑शो॒ भूमि॒र्भूमि॒र्द्दि॑श॒ᳲ श्रोत्रा॑त् । दिश॒ᳲ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒द्दि॑शो॒ दिश॒ᳲ श्रोत्रा॒त्तथा॒ तथा॒ श्रोत्रा॒द्दि॑शो॒ दिश॒ᳲ श्रोत्रा॒त्त॑था । श्रोत्रा॒त्तथा तथा॒ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒काँल्लो॒काँस्तथा॒ श्रोत्रा॒च्छ्रोत्रा॒त्तथा॑ लो॒कान् । तथा॑ लो॒काँल्लो॒काँस्तथा॒ तथा॑ लो॒काँ२ अ॑कल्पयन्नकल्पयँल्लो॒काँस्तथा॒ तथा॑ लो॒काँ२ अ॑कल्पयन् । लो॒काँ२ अ॑कल्पयन्नकल्पयँल्लोकाँ ल्लो॒काँ२ अ॑कल्पयन् । अ॒क॒ल्पय॒न्नित्य॑कल्पयन् ॥१३॥ यत्पुरु॑षेण॒ पुरु॑षेण॒ य॒द्यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ ह॒विषा॒ पुरु॑षेण॒ य॒द्यत्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ । पुरु॑षेण ह॒विषा॑ ह॒विषा॒ पुरु॑षेण॒ पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा दे॒वा ह॒विषा॑ पुरु॑षेण॒ पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वाः । ह॒विषा॑ दे॒वा दे॒वा ह॒विषा॑ ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञं य॒ज्ञन्दे॒वा ह॒विषा॑ ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञम् । दे॒वा य॒ज्ञं य॒ज्ञन्दे॒वा दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्व॒तात॑न्वत य॒ज्ञन्दे॒वा दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत । य॒ज्ञमत॑न्व॒तात॑-

न्वत य॒ज्ञं य॒ज्ञमत॑न्वत । अत॑न्व॒तेत्यत॑न्वत ॥ व॒स॒न्तो ऽस्यास्य वस॒न्तो व॑स॒न्तो ऽस्यासीदासीदस्य वस॒न्तो व॑स॒न्तोऽस्यासीत् । अ॒स्या॒सी॒दा॒सी॒द॒स्या॒स्या॒सी॒दाज्यं॑माज्यं॑मासीदस्यास्या॒सी॒दाज्यं॑म् । आ॒सी॒दाज्य॒माज्यं॑मासी दा॒सी॒दाज्यं॑ङ्ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽआज्यं॑मासीदा॒सी॒दाज्यं॑ङ्ग्री॒ष्मः । आज्यं॑ङ्ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽआज्य॒माज्यं॑ङ्ग्री॒ष्म इ॒द्ध्मऽ इ॒द्ध्मो ग्री॒ष्म ऽआज्य॒माज्यं॑ङ्ग्री॒ष्म ऽइ॒द्ध्मः । ग्री॒ष्म ऽइ॒द्ध्म ऽइ॒द्ध्मो ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽइ॒द्ध्मः श॒रच्छ॒र॒दि॒ध्मो ग्री॒ष्मो ग्री॒ष्म ऽइ॒ध्मः श॒रत् । इ॒ध्मः श॒रच्छ॒र॒दि॒ध्म ऽइ॒ध्मः श॒रद्ध॒विर्ह॒विः श॒रदि॒ध्म ऽइ॒द्ध्मः श॒रद्ध॒विः । श॒रद्ध॒विर्ह॒विः श॒रच्छ॒रद्ध॒विः । ह॒विरिति॑ ह॒विः ॥ १४ ॥ स॒प्तास्यां॑स्य स॒प्त स॒प्तास्यां॑सन्नासन्नस्य स॒प्त स॒प्तास्यां॑सन् । अ॒स्या॒स॒न्ना॒स॒न्न॒स्या॒स्या॒स॒न् प॒रि॒धयं॑ः परि॒धयं॑ऽआसन्नस्यास्यासन्परि॒धयं॑ः । आ॒स॒-

न्प॒रि॒धय॑÷ परि॒धय॑ऽ आसन्नासन्परि॒धय॒स्त्रिस्त्रिः प॑रि॒धय॑ ऽआसन्नासन्परि॒धय॒स्त्रिः । प॒रि॒धय॒स्त्रिस्त्रिः प॑रि॒धय॑÷ परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त स॒प्त त्रिः प॑रि॒धय॑÷ परि॒धय॒स्त्रिः स॒प्त । प॒रि॒धय॒ ऽइति॑ परि॒धय॑÷ । त्रिः स॒प्त स॒प्त त्रिस्त्रिः स॒प्त स॒मिध॑÷ स॒मिध॑÷ स॒प्त त्रि॒स्त्रिः स॒प्त स॒मिध॑÷ । स॒प्त स॒मिध॑÷ स॒मिध॑÷ स॒प्त स॒प्त स॒मिध॑÷ कृ॒ताः कृ॒ताः स॒मिध॑÷ स॒प्त स॒प्त स॒मिध॑÷ कृ॒ताः । स॒मिध॑÷ कृ॒ताः कृ॒ताः स॒मिध॑÷ स॒मिध॑÷ कृ॒ताः । स॒मिध॒ ऽइति॑ स॒म् इध॑÷ । कृ॒ता ऽइति॑ कृ॒ताः ॥ दे॒वा षद्यद्दे॒वा दे॒वा षद्य॒ज्ञं ष॒ज्ञं षद्दे॒वा दे॒वा षद्य॒ज्ञम् । षद्य॒ज्ञं ष॒ज्ञं षद्यद्य॒ज्ञन्त॑न्न्वा॒नास्त॑न्न्वा॒ना ष॒ज्ञं षद्यद्य॒ज्ञन्त॑न्न्वा॒नाः । ष॒ज्ञन्त॑न्न्वा॒नास्त॑न्न्वा॒ना ष॒ज्ञं ष॒ज्ञन्त॑न्न्वा॒ना ऽअब॑ध्न॒न्नब॑ध्नँस्तन्न्वा॒ना ष॒ज्ञं ष॒ज्ञन्त॑न्न्वा॒नाऽ अब॑ध्नन् । त॒न्न्वा॒ना ऽअब॑ध्न॒न्नब॑ध्नँ॒स्तन्वा॒नास्त॑न्वा॒ना ऽअब॑ध्न॒न्पुरु॑षं॒ पुरु॑ष॒मब॑ध्नँ-

स्तन्व॒ानास्त॑न्व॒ानाऽ अब॑ध्ध॒न्न्पुरु॑षम् । अब॑ध्न॒न्पुरु॑ष॒ं पुरु॑ष॒मब॑ध्न॒न्नब॑ध्न॒न्पुरु॑षं प॒शुं प॒शुं पुरु॑ष॒मब॑ध्न॒न्नब॑ध्न॒न्पुरु॑षं प॒शुम् । पुरु॑षं प॒शुं प॒शुं पुरु॑ष॒ं पुरु॑षं प॒शुम् । प॒शुमिति॑ प॒शुम् ॥ १५ ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञं य॒ज्ञं य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्तायजन्त य॒ज्ञं य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त । य॒ज्ञम॑यजन्तायजन्त य॒ज्ञं य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वा दे॒वा ऽअ॑यजन्त य॒ज्ञं य॒ज्ञम॑यज॒न्त दे॒वाः । अ॒य॒ज॒न्त॒ दे॒वा दे॒वा ऽअ॑यज॒न्तायजन्त दे॒वास्तानि॒ तानि॑ दे॒वा ऽअ॑यजन्तायजन्त दे॒वास्तानि॑ । दे॒वास्तानि॒ तानि॑ दे॒वा दे॒वास्तानि॒ धर्म्मा॑णि॒ धर्म्मा॑णि॒ तानि॑ दे॒वा दे॒वास्तानि॒ धर्म्मा॑णि । तानि॒ धर्म्मा॑णि॒ धर्म्मा॑णि॒ तानि॒ तानि॒ धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मानि॑ प्प्रथ॒मानि॒ धर्म्मा॑णि॒ तानि॒ तानि॒ धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मानि॑ । धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मानि॑ प्प्रथ॒मानि॒ धर्म्मा॑णि॒ धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मान्या॑सन्नासन्प्रथ॒मानि॒

धर्म्मा॑णि॒ धर्म्मा॑णि प्प्रथ॒मान्या॑सन्। प्रथ॒मान्या॑सन्नासन्प्प्रथ॒मानि॑
प्प्रथ॒मान्या॑सन्। आ॒स॒न्नित्या॑सन्॥ ते ह॑ ह॒ ते ते ह॒ नाक॒ꣳ नाकꣳ॑ ह॒ ते
ते ह॒ नाक॑म्। ह॒ नाक॒ꣳ नाकꣳ॑ ह ह॒ नाक᳚ꣳ महि॒मानो᳚ महि॒मा॒नो नाकꣳ॑
ह॑ ह॒ नाक॑म्महि॒मान॑–। नाक॑म्महि॒मानो᳚ महि॒मा॒नो नाक॒ꣳ नाक॑म्महि॒-
मान॑÷ सचन्त सचन्त महि॒मा॒नो नाक॒न्नाक॑म्महि॒मान॑÷ सचन्त।
म॒हि॒मान॑÷ सचन्त सचन्त महि॒मानो᳚ महि॒मान॑÷ सच॒न्त॒ यत्र॒ यत्र॑
सचन्त महि॒मानो᳚ महि॒मान॑÷ सच॒न्त॒ यत्र॑। स॒च॒न्त॒ यत्र॒ यत्र॑ सचन्त
सच॒न्त॒ यत्र॒ पूर्वे॒ पूर्वे॒ यत्र॑ सचन्त सच॒न्त॒ यत्र॒ पूर्वे᳚। यत्र॒ पूर्वे॒ पूर्वे॒
यत्र॒ यत्र॒ पूर्वे᳚ सा॒ध्याः सा॒ध्याः पूर्वे॒ यत्र॒ यत्र॒ पूर्वे᳚ सा॒ध्याः। पूर्वे᳚ सा॒ध्याः
सा॒ध्याः पूर्वे॒ पूर्वे᳚ सा॒ध्याः सन्ति॒ सन्ति॑ सा॒ध्याः पूर्वे॒ पूर्वे᳚ सा॒ध्याः सन्ति॑।
सा॒ध्याः सन्ति॒ सन्ति॑ सा॒ध्याः सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वा दे॒वाः सन्ति॑ सा॒ध्याः

सा॒द्ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः। सन्ति॑ दे॒वा दे॒वाः सन्ति॒ सन्ति॑ दे॒वाः। दे॒वा इति॑ दे॒वाः ॥१६॥ अ॒द्ब्भ्यः सम्भृ॑त॒ः सम्भृ॑तो॒ऽद्ब्भ्यो॒ऽद्ब्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै पृ॑थि॒व्यै सम्भृ॑तो॒ऽद्ब्भ्यो॒द्ब्भ्यः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै। अ॒द्ब्भ्यऽ इत्य॒त् ब्भ्यः। सम्भृ॑तः पृथि॒व्व्यै पृ॑थि॒व्व्यै सम्भृ॑त॒ः सम्भृ॑तः पृथि॒व्व्यै र॒साद्र॑सात्पृथि॒व्व्यै सम्भृ॑तः सम्भृ॑तः पृथि॒व्यै र॑सात्। सम्भृ॑त॒ ऽइति॒ सम्भृ॑तः। पृ॒थि॒व्व्यै र॒साद्र॑सात्पृथि॒व्व्यै पृ॑थि॒व्व्यै र॑साच्च॑ च॒ र॑सात्पृथि॒व्व्यै पृ॑थि॒व्यै र॑साच्च। र॑साच्च॑ च॒ र॒साद्र॑साच्च ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणश्च॒ र॒साद्र॑साच्च ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणः। च॒ ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणश्च च ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सꣳ सम्ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणश्च च ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सम्। ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सꣳ सम्ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सम॑वर्त्तताव॑र्त्तत॒ सम्ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मणो ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ः सम॑वर्त्तत। ब्वि॒श्श्वक॑र्म्मण॒ ऽइति॑

वि॒श्वक॑र्म्मणः॒ । सम॑वर्त्तताव॑र्त्तत॒ सꣳसम॑वर्त्त॒ताग्ग्रेऽ ग्ग्रेऽव॑र्त्त॒त सꣳ सम॑वर्त्त॒ताग्ग्रे॑ । अ॒व॒र्त्त॒ताग्ग्रेऽ ग्ग्रेऽव॑र्त्तताव॑र्त्त॒ताग्ग्रे॑ । अग्ग्र॒ऽ इत्यग्ग्रे॑ ॥ तस्य॒ त्वष्टा॒ त्वष्टा॒ तस्य॒ तस्य॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्वि॒द॒ध॒त्त्वष्टा॒ तस्य॒ तस्य॒ त्त्वष्टा॑ वि॒दध॑त् । त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्वि॒द॒ध॒त्त्वष्टा॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रूपꣳ रू॒पं वि॒द॒ध॒त्त्वष्टा॒ त्वष्टा॑ वि॒दध॑द्रूपम् । वि॒दध॑द्रूपꣳ रू॒पं वि॒दध॑द्वि॒दध॑द्रूपमे॑त्येति रू॒पं वि॒दध॑द्वि॒दध॑द्रूपमे॑ति । वि॒द॒धदिति॑ वि॒ दध॑त् । रू॒पमे॑त्येति रू॒पꣳ रू॒पमे॑ति॒ तत्तदे॑ति रू॒पꣳ रू॒पमे॑ति॒ तत् । ए॒ति॒ तत्तदे॑त्येति॒ तन्मर्त्य॑स्य॒ मर्त्य॑स्य॒ तदे॑त्येति॒ तन्मर्त्य॑स्य । तन्मर्त्य॑स्य॒ मर्त्य॑स्य॒ तत्तन्मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वन्दे॑व॒त्वम्मर्त्य॑स्य॒ तत्तन्मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वम् । मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वं दे॑व॒त्वम्मर्त्य॑स्य॒ मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वमा॒जान॑मा॒जान॑न्दे॒व॒त्वं मर्त्य॑स्य॒ मर्त्य॑स्य दे॒व॒त्वमा॒जान॑म् । दे॒व॒त्वमा॒जान॑मा॒जान॑न्दे॒व॒त्वन्दे॑व॒त्वमा॒जान॒ मग्ग्रेऽ ग्ग्रऽ आ॒-

जान॑न्दे॒व॒त्वन्दे॑व॒त्वमा॒जान॒मग्ग्रे॑ । दे॒व॒त्वमिति॑ दे॒व । त्वम् । आ॒जान॒मग्ग्रेऽ ग्ग्रे॑ऽ आ॒जान॑माजा॒न॒मग्ग्रे॑ । आ॒जा॒न॒मित्या॒ । जान॑म् । अग्ग्र॒ ऽइत्यग्ग्रे॑ ॥१७॥ वे॒दा॒हम॒हं वे॑द॒ वे॑दा॒हमे॒तमे॒तम॒हं वे॑द॒ वे॑दा॒हमे॒तम् । अ॒हमे॒तमे॒तम॒हम॒हमे॒तम्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षमे॒तम॒हम॒हमे॒तं पुरु॑षम् । ए॒तम्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षमे॒तमे॒तम्पुरु॑षम्म॒हान्तं॑ म॒हान्त॒म्पुरु॑षमे॒तमे॒तम्पुरु॑षं म॒हान्त॑म् । पुरु॑षं म॒हान्तं॑ म॒हान्त॒म्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्ण्णमादि॒त्यव॑र्ण्णम्म॒हान्त॒म्पुरु॑ष॒म्पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्ण्णम् । म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्ण्णमादि॒त्यव॑र्ण्णं म॒हान्तं॑ म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑स॒स्तम॑स ऽआदि॒त्यव॑र्ण्णं म॒हान्तं॑ म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑सः । आ॒दि॒त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑स॒स्तम॑स ऽआदि॒त्यव॑र्ण्णमादि॒त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑सः प॒रस्ता॑त्प॒रस्ता॒त्तम॑स ऽआदि॒त्यव॑र्ण्णमादि॒त्यव॑र्ण्ण॒न्तम॑सः प॒रस्ता॑त् । आ॒दि॒त्यव॑र्ण्ण॒मित्या॑दि॒त्य । व॑र्ण्णम् । तम॑सः प॒रस्ता॑त्प॒रस्ता-

त्तम॑स॒स्तम॑सः प॒रस्ता॑त् । प॒रस्ता॒दिति॑ प॒रस्ता॑त् ॥ त॒मे॑वैव तन्तमे॒व वि॑दि॒त्वा वि॑दि॒त्वैव तन्तमे॒व वि॑दि॒त्वा । ए॒व वि॑दि॒त्वा वि॑दि॒त्वैवैव वि॑दि॒त्वात्य॑ति॑ वि॑दि॒त्वैवैव वि॑दि॒त्वाऽति॑ । वि॒दि॒त्वाऽत्य॑ति॑ वि॑दि॒त्वा वि॑दि॒त्वाऽति॑ मृ॒त्यु मृ॒त्युम॑ति॑ विदि॒त्वा वि॑दि॒त्वाऽति॑ मृ॒त्युम् । अति॑ मृ॒त्युं मृ॒त्युमत्य॑ति॑ मृ॒त्युमे॑त्येति मृ॒त्युमत्य॑ति॑ मृ॒त्युमे॑ति । मृ॒त्युमे॑त्येति मृ॒त्युं मृ॒त्युमे॑ति॒ न नैति॑ मृ॒त्युं मृ॒त्युमे॑ति॒ न । ए॒ति॒ न नैत्ये॑ति॒ नान्यो॒ऽन्यो नैत्ये॑ति॒ नान्यः॑ । नान्यो॒ऽन्यो न नान्यः॑ पन्था॒ः पन्था॑ऽअ॒न्यो न नान्यः॑ पन्था॑ः । अ॒न्यः॑ पन्था॒ः पन्था॑ ऽअ॒न्यो॒ऽन्यः॑ पन्था॑ वि॑द्यते वि॑द्यते॒ पन्था॑ ऽअ॒न्यो॒ऽन्यः॑ पन्था॑ वि॑द्यते । पन्था॑ वि॑द्यते वि॒द्य॒ते॒ पन्था॒ः पन्था॑ वि॒द्य॒तेऽय॑ना॒याय॑नाय वि॑द्यते॒ पन्था॒ः पन्था॑ वि॒द्य॒ते ऽय॑नाय । वि॒द्य॒ते ऽय॑ना॒याय॑नाय वि॑द्यते वि॒द्य॒ते ऽय॑नाय । अय॑ना॒येत्यय॑नाय ॥१८॥

प्र॒जाप॑तिश्चरति चरति प्प्र॒जाप॑तिः प्प्र॒जाप॑तिश्चरति॒ ग॒ब्भे॒ गब्भे॑ चरति प्प्र॒जाप॑तिः प्प्र॒जाप॑तिश्चरति॒ गब्भे॑। प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्प्र॒जाऽप॑तिः। च॒र॒ति॒ गब्भे॒ गब्भे॑ चरति चरति॒ गब्भे॑ ऽअ॒न्तर॒न्तर्गब्भे॑ चरति चरति॒ गब्भे॑ ऽअ॒न्तः। गब्भे॑ अ॒न्तर॒न्तर्ग॑ब्भे॒ गब्भे॑ ऽअ॒न्तरजा॑यमा॒नो ऽजा॑यमा॒नोऽन्तर्गब्भे॒ गब्भे॑ ऽअ॒न्तरजा॑यमानः। अ॒न्तरजा॑यमा॒नो ऽजा॑यमा॒नोऽन्तर॒न्तरजा॑यमानो बहु॒धा ब॑हु॒धा ऽजा॑यमा॒नोऽन्तर॒न्तरजा॑यमानो ब॒हु॒धा। अजा॑यमानो ब॒हु॒धा ब॑हु॒धा ऽजा॑यमा॒नोऽजा॑यमानो ब॒हु॒धा व्वि वि ब॑हु॒धा ऽजा॑यमा॒नोऽजा॑यमानो बहु॒धा व्वि। ब॒हु॒धा व्वि वि ब॑हु॒धा ब॑हु॒धा व्वि जायते जाय॑ते॒ व्वि ब॑हु॒धा ब॑हु॒धा व्वि जा॑यते। व्वि जा॑यते जाय॑ते॒ व्वि व्विजा॑यते। जा॒य॒त॒ ऽइति॑ जायते॥ तस्य॒ योनि॒ं योनि॒न्तस्य॒ तस्य॒ योनि॒म्परि॒ परि॒ योनि॒न्तस्य॒ तस्य॒ योनि॒म्परि॑।

यो॒नि॒म्परि॒ परि॒ योनिं॒ यो॒नि॒म्पारि॑ पश्यन्ति पश्यन्ति॒ परि॒ योनिं॒ योनि॒म्पारि॑ पश्यन्ति । परि॑ पश्यन्ति पश्यन्ति॒ परि॒ परि॑ पश्यन्ति॒ धीरा॒ धीरा॑ः पश्यन्ति॒ परि॒ परि॑ पश्यन्ति॒ धीरा॑ः । प॒श्य॒न्ति॒ धीरा॒ धीरा॑ः पश्यन्ति पश्यन्ति॒ धीरा॒स्तस्मिं॑स्तस्मि॒न्धीरा॑ः पश्यन्ति पश्यन्ति॒ धीरा॒स्तस्मि॑न् । धीरा॒स्तस्मिँ॒स्तस्मि॒न्धीरा॒ धीरा॒स्तस्मि॑न्ह ह॒ तस्मि॒न्धीरा॒ धीरा॒स्तस्मि॑न्ह । तस्मि॑न्ह ह॒ तस्मि॒स्तस्मि॑न्ह तस्थुस्तस्थुर्ह॒ तस्मिँ॒स्तस्मि॑न्ह तस्थुः । ह॒ त॒स्तु॒स्त॒स्थु॒र्ह॒ ह॒ त॒स्थु॒र्भुव॑नानि॒ भुव॑नानि तस्थुर्ह॒ ह तस्थुर्भुव॑नानि । त॒स्थु॒र्भुव॑नानि॒ भुव॑नानि॒ तस्थुस्तस्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॒ विश्वा॒ भुव॑नानि तस्थुस्तस्थु॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॒ वि॒श्वा भुव॑नानि॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ । विश्वेति॒ विश्वा॑ ॥ १९ ॥

यो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्यो॒ यो यो दे॒वेभ्य॑ऽआ॒तप॑त्या॒तप॑ति दे॒वेभ्यो॒ यो यो

दे॒वेभ्य॑ ऽआ॒तप॑ति । दे॒वेभ्य॑ ऽआ॒तत्या॒तप॑ति दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्य॑ आ॒तप॑ति॒ षो ष ऽआ॒तप॑ति दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्य॑ ऽआ॒तप॑ति॒ षः । आ॒तप॑ति षो ष ऽआ॒तप॑त्या॒तप॑ति॒ षो दे॒वाना॑ं दे॒वाना॒ं ष ऽआ॒तप॑त्या॒तप॑ति॒ षो दे॒वाना॑म् । आ॒तप॒तीत्या॒ऽतप॑ति । षो दे॒वाना॑न्दे॒वाना॒ं षो षो दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः पु॒रोहि॑तो दे॒वाना॒ं षो दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः । दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः पु॒रोहि॑तो दे॒वाना॑ं दे॒वाना॑म्पु॒रोहि॑तः । पु॒रोहि॑त॒ ऽइति॑ पु॒रः ऽहि॑तः ॥ पूर्व्वो॒॑ षो षः पूर्व्व॒ः पूर्व्वो॒॑ षो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्यो॒ षः पूर्व्व॒ः पूर्व्वो॒॑ षो दे॒वेभ्य॑÷ । षो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्यो॒ षो षो दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो जा॒तो दे॒वेभ्यो॒ षो षो दे॒वेभ्यो॑ जा॒तः । दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो जा॒तो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्यो॑ जातो नमो॒ नमो॑ जा॒तो दे॒वेभ्यो॑ दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो नम॑÷ । जा॒तो नमो॒ नमो॑ जा॒तो जा॒तो नमो॑ रु॒चाय॑ रु॒चाय॒ नमो॑ जा॒तो जा॒तो नमो॑

रु॒चाय॑ । नमो॑ रु॒चाय॑ रु॒चाय॒ नमो॒ नमो॑ रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये॒
ब्ब्राह्म॑ये रु॒चाय॒ नमो॒ नमो॑ रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये । रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये॒
ब्ब्राह्म॑ये रु॒चाय॑ रु॒चाय॒ ब्ब्राह्म॑ये । ब्ब्राह्म॑य॒ ऽइति॒ ब्ब्राह्म॑ये ॥ २० ॥
रु॒चम्ब्ब्रा॒ह्मं ब्ब्रा॒ह्मꣳ रु॒चꣳ रु॒चम्ब्ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो ब्ब्रा॒ह्मꣳ
रु॒चꣳ रु॒चम्ब्ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तः । ब्ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो ब्ब्रा॒ह्मं
ब्ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तो दे॒वा दे॒वा ज॒नय॑न्तो ब्ब्रा॒ह्मं ब्ब्रा॒ह्मञ्ज॒नय॑न्तो दे॒वाः ।
ज॒नय॑न्तो दे॒वा दे॒वा ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो दे॒वा ऽअग्ग्रे ऽग्ग्रे॑ दे॒वा
ज॒नय॑न्तो ज॒नय॑न्तो दे॒वा ऽअग्ग्रे॑ । दे॒वाऽ अग्ग्रे ऽग्ग्रे॑ दे॒वा दे॒वा ऽअग्ग्रे॒
तत्तद्ग्ग्रे॑ दे॒वा दे॒वा ऽअग्ग्रे॒ तत् । अग्ग्रे॒ तत्तद्ग्ग्रेऽ ग्ग्रे॒ तद्॑ब्ब्रुवन्नब्ब्रुवँ॒स्तद्ग्ग्रे ऽग्ग्रे॒ तद्॑ब्ब्रुवन् । तद्॑ब्रुवन्नब्रुवँ॒स्तत्तद्॑ब्रुवन् । अ॒ब्रुव॒न्नित्य॑ब्रुवन् ॥ षस्त्वा॑ त्वा॒ षो षस्त्वै॒वमे॒वं त्वा॒ षो षस्त्वै॒वम् । त्वै॒वमे॒वं त्वा॑

त्वैवं ब्राह्मणो ब्राह्मणऽ एवं त्वां त्वैवं ब्राह्मणः । एवम्ब्राह्मणो ब्राह्मण ऽएवमेवं ब्राह्मणो विद्याद्विद्याद् ब्राह्मणऽ एवमेवं ब्राह्मणो विद्यात् । ब्राह्मणो विद्याद्विद्याद् ब्राह्मणो ब्राह्मणो विद्यात्तस्य तस्यं विद्याद्ब्राह्मणो ब्राह्मणो विद्यातस्यं । विद्यात्तस्य तस्यं विद्याद्विद्यात्तस्यं देवा देवास्तस्यं विद्याद्विद्यात्तस्यं देवाः । तस्यं देवा देवास्तस्य तस्यं देवा ऽअसन्नसन्देवास्तस्य तस्यं देवा ऽअसन् । देवाऽ असन्नसन्देवा देवाऽ असन्वशे वशेँऽसन्देवा देवाऽअसन्वशेँ । असन्वशे वशेँऽसन्नसन्वशेँ । वश इति वशेँ ॥ २१ ॥ श्रीश्च च श्रीः श्रीश्च ते ते च श्रीः श्रीश्च ते । च ते ते च चते लक्ष्मीर्लक्ष्मीस्ते च च ते लक्ष्मीः । ते लक्ष्मीर्लक्ष्मीस्ते ते लक्ष्मीश्च च लक्ष्मीस्ते ते लक्ष्मीश्च । लक्ष्मीश्च च लक्ष्मीर्लक्ष्मीश्च पत्न्यौ पत्न्यौ च लक्ष्मीर्लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । च पत्न्यौ पत्न्यौ च च

पत्न्याव॑होरा॒त्रे ऽअ॑होरा॒त्रे पत्न्यौ॑ च च॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे । पत्न्या॑वहोरा॒त्रेऽअ॑होरा॒त्रे पत्न्यौ॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ पा॒र्श्वे॑ ऽअ॑होरा॒त्रे ऽपत्न्यौ॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ । अ॒हो॒रा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ पा॒र्श्वे॑ ऽअ॑होरा॒त्रे ऽअ॑होरा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ नक्ष॑त्राणि॒ नक्ष॑त्राणि पा॒र्श्वे॑ ऽअ॑होरा॒त्रेऽ अ॑होरा॒त्रे पा॒र्श्वे॑ नक्ष॑त्राणि । अ॒हो॒रा॒त्रे ऽइत्य॑होरा॒त्रे । पा॒र्श्वे॑ नक्ष॑त्राणि॒ नक्ष॑त्राणि पा॒र्श्वे॑ पा॒र्श्वे॑ नक्ष॑त्राणि रू॒पꣳ रू॒पन्नक्ष॑त्राणि पा॒र्श्वे॑ पा॒र्श्वे॑ नक्ष॑त्राणि रू॒पम् । पा॒र्श्वे॒ इति॑ पा॒र्श्वे॑ । नक्ष॑त्राणि रू॒पꣳ रू॒पन्नक्ष॑त्राणि॒ नक्ष॑त्राणि रू॒पम॒श्विना॑व॒श्विनौ॑ रू॒पन्नक्ष॑त्राणि॒ नक्ष॑त्राणिरू॒पम॒श्विनौ॑ । रू॒पम॒श्विना॑व॒श्विनौ॑ रू॒पꣳ रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्तं॑ व्यात्त॑म॒श्विनौ॑ रू॒पꣳ रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म् । अ॒श्विनौ॒ व्यात्तं॒ व्यात्त॑म॒श्विना॑व॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म् । व्यात्त॒मिति॑ वि॒ । आत्त॑म् ॥ इ॒ष्णान्नि॑षाणेषाणे॒-

ष्णान्निष्णान्निंषाणामुमुमिंषाणेष्णान्निष्णान्निंषाणामुम् । इषाणामुममुमिंषाणेषाणामुम्मैं मेऽमुमिंषाणेषाणामुम्मैं । अमुम्मैं मेऽमुममुम्मंऽ इषाणेषाण मेऽमुममुम्मं ऽइषाण । मऽइषाणेषाण मे मऽइषाण सर्व्वलोकꣳ संर्व्वलोकमिंषाण मे मऽ इषाण सर्व्वलोकम् । इषाण सर्व्वलोकꣳ संर्व्वलोकामिंषाणेषाण सर्व्वलोकम्म मे सर्व्वलोकमिंषाणेषाण सर्व्वलोकम्मैं । सर्व्वलोकम्मैं मे सर्व्वलोकꣳ संर्व्वलोकम्मंऽ इषाणेषाण मे सर्व्वलोकꣳ संर्व्वलोकम्मंऽ इषाण । सर्व्वलोकमितिं सर्व्वऽ लोकम् । मऽ इषाणेषाण मे मऽ इषाण । इषाणेतीषाणं[१] ॥ २२ ॥

---

(१) एक अध्याय से चालीस अध्याय तक क्रमपाठ भी निकलेगा ।

"नमस्ते" इत्याध्यायस्य स्वाहाकारः प्रयोगः—

(१) ॐ नमस्ते रुद्द्रमन्न्यव ऽउतोत ऽइषवे नमः। बाहुब्भ्यामुत ते नमः स्वाहा।

(२) ॐ या ते रुद्द्र शिवातनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्न्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा।

(३) ॐ यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यंस्तवे। शिवाङ्गिरित्रताङ्कुरु मा हि सीः पुरुषञ्जगत् स्वाहा।

(४) शिवेन व्वचसा त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि। यथा नः सर्व्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽअसत् स्वाहा।

(५) ॐ अद्ध्यवोचदधिवक्क्ता प्प्रथमो दैव्व्यो भिषक्। अहीँश्च सर्व्वाञ्जम्भयन्त्सर्व्वाँश्च यातुधान्न्योऽधराचीः परा सुव स्वाहा।

(६) ॐ असौ यस्ताम्म्रो ऽअरुण उत बब्भ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्द्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशो वैषाꣳ हेड ईमहे स्वाहा।

(७) ॐ असौ यो वसर्प्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनङ्गोपा ऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः सदृष्टोमृडयाति नः स्वाहा।

(८) ॐ नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये ऽअस्य सत्वानो ऽहन्तेभ्यो करन्नमः स्वाहा।

(९) ॐ प्रमुञ्च धन्न्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्ज्याम्। याश्च ते हस्त ऽइषवः पराता भगवो वप स्वाहा।

(१०) ॐ विज्ज्यन्धनुः कपर्द्दिनो विशल्ल्यो बाणवाँ ऽउत। अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः स्वाहा।

(११) ॐ या ते हेतिर्म्मीढुष्टमहस्ते वभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज स्वाहा।

(१२) ॐ परि ते धन्न्वनो हेतिरस्मान्न्वृणक्तु विश्वतः। अथो य ऽइषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् स्वाहा।

(१३) ॐ अवतत्त्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशोर्य्यशल्ल्यानाम्मुखा शिवोनः सुमना भव स्वाहा।

(१४) ॐ नमस्त ऽआयुधायानातताय धृष्ण्णवे। उभाभ्यामुतते नमो बाहुभ्यान्तव धन्न्वने स्वाहा।

(१५) ओ३म् मानो महान्तमुतमा नो ऽअर्ब्भकम्मान ऽउक्षन्तमुत मा न ऽउक्षितम्। मानो ऽवधीः पितरम्मोत मातरम्मानः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः स्वाहा।

(१६) ओ३म् मा नस्तोके तनये मान ऽआयुषि मा नो गोषु मा नो ऽअश्वेषु रीरिषः। मा नो ऽवीरान्रुद्र भामिनो ऽवधीर्हविष्मन्तः सद्मित्वा हवामहे स्वाहा॥

(१७) ओ३म् नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमः स्वाहा।

(१८) ओ३म् नमो ऽवृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमः स्वाहा।

(१९) ओ३म् नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनाम्पतये नमः स्वाहा।

(२०) ओ३म् नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः स्वाहा।

(२१) ओ३म् नमो बभ्लुशाय ऽव्याधिनेऽन्नानाम्पतये नमः स्वाहा।

(२२) ओ३म् नमो भवस्य हेत्यै जगताम्पतये नमः स्वाहा।

(२३) ओ३म् नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमः स्वाहा।

(२४) ओ३म् नमः सूताया हन्त्यै ऽवनानाम्पतये नमः स्वाहा।

(२५) ओ३म् नमो रोहिताय स्थपतये ऽवृक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा।

(२६) ओ३म् नमो भुवन्तये ऽवारिवस्कृतायौषधीनाम्पतये नमः स्वाहा।

(२७) ॐ नमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा ।

(२८) ॐ नम ऽउच्चैर्घोषायाक्क्रन्दयते पत्तीनाम्पतये नमः स्वाहा ।

(२९) ॐ नमः कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३०) ॐ नमः सहमानाय निव्व्याधिन ऽआव्व्याधिनीनाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३१) ॐ नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३२) ॐ नमो निचेरवे परिचरायारण्यानाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३३) ॐ नमो व्वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३४) ॐ नमो निषङ्गिण ऽइषुधिमते तस्कराणाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३५) ॐ नमः सृकायिब्भ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमः स्वाहा ।

(३६) ॐ नमो ऽसिमद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो व्विकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३७) ॐ नम ऽउष्णीषिणे गिरीचराय कुलुञ्चानाम्पतये नमः स्वाहा ।

(३८) ॐ नम ऽइषुमद्भ्यो धन्न्वायिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(३९) ॐ नमो ऽआतन्न्वानेब्भ्यः प्प्रतिदधानेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(४०) ॐ नम ऽआयच्छद्भ्यो ऽस्यद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(४१) ॐ नमो विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४२) ॐ नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४३) ॐ नमः शयानेभ्यऽ आसीनेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४४) ॐ नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४५) ॐ नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४६) ॐ नमो ऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४७) ॐ नम ऽआव्याधिनीभ्यो विविद्ध्यन्तीभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४८) ॐ नम ऽउगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(४९) ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(५०) ॐ नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(५१) ॐ नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(५२) ॐ नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(५३) ॐ नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।
(५४) ॐ नमो रथिभ्यो ऽअरथेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(५५) ॐ नमः क्षत्तृभ्यः सङ्ग्रहीतृभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(५६) ॐ नमो महद्भ्यो ऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(५७) ॐ नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(५८) ॐ नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(५९) ॐ नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(६०) ॐ नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(६१) ॐ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः स्वाहा ।

(६२) ॐ नमो भवाय च रुद्राय च स्वाहा ।

(६३) ॐ नमः शर्वाय च पशुपतये च स्वाहा ।

(६४) ॐ नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च स्वाहा ।

(६५) ॐ नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च स्वाहा ।

(६६) ॐ नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च स्वाहा ।

(६७) ॐ नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च स्वाहा ।

(६८) ॐ नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च स्वाहा ।

(६९) ॐ नमो ह्रस्वाय च ॰वामनाय च स्वाहा ।
(७०) ॐ नमो बृहते च ॰वर्षीयसे च स्वाहा ।
(७१) ॐ नमो ॰वृद्धाय च सवृधे च स्वाहा ।
(७२) ॐ नमो ऽग्र्याय च ॰प्रथमाय च स्वाहा ।
(७३) ॐ नम ऽआशवे चाजिराय च स्वाहा ।
(७४) ॐ नमः शीघ्र्याय च शी॰भ्याय च स्वाहा ।
(७५) ॐ नम ऽऊर्म्याय चावस्वन्याय च स्वाहा ।
(७६) ॐ नमो नादेयाय च द्वीप्याय च स्वाहा ।
(७७) ॐ नमो ॰ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च स्वाहा ।
(७८) ॐ नमः पू॰र्वजाय चापरजाय च स्वाहा ।
(७९) ॐ नमो मध्यमाय चापगल॰भाय च स्वाहा ।
(८०) ॐ नमो जघन्याय च बुध्न्याय च स्वाहा ।
(८१) ॐ नमः सो॰भ्याय च ॰प्रतिसर्याय च स्वाहा ।
(८२) ॐ नमो याम्याय च क्षेम्याय च स्वाहा ।

(१११) ॐ नमोऽग्ग्रे वधाय च दूरेवधाय च स्वाहा ।
(११२) ॐ नमो हन्त्रे च हनीयसे च स्वाहा ।
(११३) ॐ नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः स्वाहा ।
(११४) ॐ नमस्ताराय स्वाहा ।
(११५) ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च स्वाहा ।
(११६) ॐ नमः शङ्कराय च मयस्कराय च स्वाहा ।
(११७) ॐ नमः शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ।
(११८) ॐ नमः पार्य्याय च चावार्य्याय च स्वाहा ।
(११९) ॐ नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च स्वाहा ।
(१२०) ॐ नमस्तीर्त्थ्याय च कूल्ल्याय च स्वाहा ।
(१२१) ॐ नमः शष्प्याय च फेन्न्याय च स्वाहा ।
(१२२) ॐ नमः सिकत्त्याय च प्रवाह्याय च स्वाहा ।
(१२३) ॐ नमः किꣳ शिलाय च क्षयणाय च स्वाहा ।
(१२४) ॐ नमः कपर्दिने च पुलस्तये च स्वाहा ।

(१२५) ॐ नमऽ इरिण्याय च प्रपथ्याय च स्वाहा ।
(१२६) ॐ नमो व्व्रज्ज्याय च गोष्ठ्याय च स्वाहा ।
(१२७) ॐ नमस्तल्प्प्याय च गेह्याय च स्वाहा ।
(१२८) ॐ नमो हृदय्याय च निवेष्प्प्याय च स्वाहा ।
(१२९) ॐ नमः काट्ट्याय च गह्वरेष्ठाय च स्वाहा ।
(१३०) ॐ नमः शुष्क्क्याय च हरित्याय च स्वाहा ।
(१३१) ॐ नमः पाꣳ सव्व्याय च रजस्याय च स्वाहा ।
(१३२) ॐ नमो लोप्प्याय चोलप्प्याय च स्वाहा ।
(१३३) ॐ नम ऽऊर्व्व्याय च सूर्व्व्याय च स्वाहा ।
(१३४) ॐ नमः पर्ण्णाय च पर्ण्णशदाय च स्वाहा ।
(१३५) ॐ नम ऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च स्वाहा ।
(१३६) ॐ नम ऽआखिदते च प्रखिदते च स्वाहा ।
(१३७) ॐ नम ऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्चवो नमः स्वाहा ।
(१३८) ॐ नमोवः किरिकेभ्यो देवानाꣳ- हृदयेभ्यः स्वाहा ।
(१३९) ॐ नमो विचिन्न्वत्केभ्यो देवानाꣳ- हृदयेभ्यः स्वाहा ।

(१४०) ॐ नमो व्विक्षिणत्केभ्यो देवानाꣳ- हृदयेभ्यः स्वाहा ।

(१४१) ॐ नम ऽआनिर्हतेभ्यो देवानाꣳ- हृदयेभ्यः स्वाहा ।

(१४२) ॐ द्रापेऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ॥ आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्माभेर्म्मा रोङ्मो च नः किञ्च नाममत् स्वाहा ॥

(१४३) ॐ इमा रुद्द्राय तवसे कपर्द्दिने क्षयद्द्वीराय प्प्रभरामहे मतीः । यथाशमसद्द्विपदे चतुष्प्पदे व्विश्श्वम्पुष्टङ्ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरं स्वाहा ।

(१४४) ॐ या ते रुद्द्र शिवा तनूः शिवा व्विश्श्वाहा भेषजी । शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे स्वाहा ॥

(१४५) ॐ परि नो रुद्द्रस्य हेतिर्व्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्म्मतिरघायोः । अवस्थिरामघवद्द्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड स्वाहा ।

(१४६) ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे व्वृक्ष ऽआयुधन्निधाय कृत्तिं व्वसान ऽआचर पिनाकम्बिभ्रदागहि स्वाहा ।

(१४७) ॐ व्विकिरिद्द्र व्विलोहित नमस्ते ऽअस्तु भगवः ।यास्ते सहस्रꣳ- हेतयोऽन्न्यमस्म्मन्निवपन्तु ताः स्वाहा ।

(१४८) ॐ सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा,कृधि स्वाहा ।

(१४९) ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽअधि भूम्म्याम्। तेषांꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५०) ॐ अस्मिन्न्महत्यर्ण्णवेऽन्तरिक्षे भवा ऽअधि । तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५१) ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳ रुद्रा ऽउपश्रिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५२) ॐ नीलग्ग्रीवाꣳ शितिकण्ठाः शर्व्वाः अधः क्षमाचरा। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५३) ॐ ये व्वृक्षेषु शष्प्पिञ्जरा नीलग्ग्रीवा व्विलोहिताः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५४) ॐ ये भूतानाम्मधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५५) ॐ ये पथाम्पथिरक्षय ऽऐलबृदा ऽआयुर्य्युधः । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्न्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५६) ॐ ये तीर्त्थानि प्रचरन्ति सृका हस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५७) ॐ येन्नेषु विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५८) ॐ य ऽएतावन्तश्च भूयाꣳ सश्च दिशो रुद्द्रा वितस्थिरे । तेषाꣳ सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्न्मसि स्वाहा ।

(१५९) नमोस्तु रुद्द्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीची र्दशोर्दीचीर्दशोर्द्ध्वाः । तेभ्यो नमो ऽअस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्द्वेष्टितमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा ।

(१६०) ॐ नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां वातमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्ध्वाः । तेभ्यो नमो ऽअस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा ।

(१६१) नमोस्तु रुद्द्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो दीचीर्दशोर्द्ध्वाः । तेभ्यो नमो ऽअस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु तेष्मो यश्च्च नो द्द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा ।

इति स्वाहाकारः समाप्तः

❁ श्रीगणेशाय नमः ❁

माध्यन्दिनशाखीया रुद्रपद्धतिः

(भाषाभाष्य-समन्विता)

सर्वैश्वर्य विधातारं सर्वस्फूर्तिविधायकम् ।
सर्वमङ्गलदं नित्यं गणराजं नमाम्यहम् ॥ १ ॥
भो ! भो ! भासुरभूसुराः सुमतयः काले कलौ साम्प्रतम् ।
वेदो वै भगवान् हिताय विदुषां चात्रावतीर्षः स्वयम् ॥
यत्पादस्रवसंश्रयेण शतशो वेदार्थपारङ्गताः ।
श्री विद्याधरसंज्ञितं स्वपितरं प्रख्यातकीर्तिं भजे ॥ २ ॥
मया दौलतरामेण तदीय तनुजन्मना ।
रुद्राध्यायस्य साङ्गस्य भाषा भाष्यं वितन्यते ॥

अत्र सर्वं विधानञ्च पूर्वापर विचारतः ।
न्यवेशि येन सौकर्यं कर्मकाण्डे भवेत्सताम् ॥ ३ ॥

तत्रादौ गणपतिपूजनं, षोडशभिरुपचारैः शिवार्चनं, ब्राह्मणलक्षणं, विहितपुष्पादि, महारुद्रादि लक्षणम्, अन्या च रुद्रपूजोपयोगिनी परिभाषा सङ्ग्रहेण कथ्यते ।

तत्र स्नपनद्रव्याणि रुद्रचिन्तामणौ—

"जलेन वृष्टिमाप्नोति व्याधिशान्त्यै कुशोदकैः ।
दध्ना च पशुकामाय श्रिया इक्षुरसेन च ॥ १ ॥

मध्वाज्येन धनार्थी च मुमुक्षुस्तीर्थवारिणा ।
पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति पयसाञ्चाऽभिषेचनात् ॥ २ ॥

बन्ध्या वा काकबन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना ।
सद्यः पुत्रमवाप्नोति पयसाञ्चाऽभिषेचनात्" ॥ ३ ॥

महाकालसंहितायाम्—

ज्वरप्रकोपशान्त्यर्थं जलधारा शिवप्रिया ।
प्रमेहरोगशान्त्यर्थं प्राप्नुयान्मानसेप्सितम् ॥ १ ॥

शिव पु० रुद्र सं० सृ० ख० १ अ० १५ ।

"घृतधारा शिवे कार्या यावन्मन्त्रसहस्रकम् ।
तदा वंशस्य विस्तारो जायते नाऽत्र संशयः ॥ १ ॥
केवलं दुग्धधारा च तदा कार्या विशेषतः ।
शर्करामिश्रिता तत्र यदा बुद्धिर्जडा भवेत् ॥ २ ॥
श्रेष्ठा बुद्धिर्भवेत्साऽपि कृपया शङ्करस्य च ।
तस्य संजायते जीवसदृशी बुद्धिरुत्तमा ॥ ३ ॥
यदा चोच्चाटनं देहे जायते कारणं विना ।
यत्र कुत्रापि वा प्रेम दुःखं च परिवर्धते ॥ ४ ॥

स्वगृहे कलहो नित्यं यदा चैव प्रजायते।
तद्धारायां कृतायां वै सर्वं दुःखं विलीयते ॥ ५ ॥
सार्षपेणैव तैलेन शत्रुनाशो भवेदिह।
मधुना यक्षराजो वै गच्छेच्च शिवपूजनात् ॥ ६ ॥
धारा चेक्षुरसस्यापि सर्वानन्दकरी शिव।
धारा गङ्गाजलस्यैव भुक्ति मुक्ति फलप्रदा" ॥ ७ ॥

पराशरोऽपि—

"पापक्षयार्थी मधुना निर्व्याधिः सर्पिषा तथा।
जीवनार्थी तु पयसा श्रीकामीक्षुरसेन वै ॥ १ ॥
सन्तानार्थी शर्करया रसेनार्चेच्छिवन्तथा।
पूजनीयो महादेवः श्रेयः सन्ततिमिच्छता ॥ २ ॥
केवलेनोदकेनैव स्नपनं मे भवेत्सदा।
गन्धोदकं शतगुणं पञ्चगव्यं तिलोदकम् ॥ ३ ॥

तस्माच्छतगुणं क्षीरं सहस्रं कापिलं भवेत् ।
ततः शतगुणं प्रोक्तं सर्पिषा स्नानमेव च" ॥ ४ ॥

"ऋग्भिः स्तुवन्ति, यजुर्भिर्यजन्ति, सामभिर्गायन्ति, इत्युक्तेर्यजनार्थकस्य यजुर्वेदस्याऽयं षोडशाध्यायो "रुद्राध्यायः" इत्युच्यते । अतएवाऽस्य "नमस्ते" (अ० १६।१।६६) इत्याध्यायस्य कर्मकाण्डे सन्निवेशात् कर्माङ्गत्वम् । तथा च श्रुतिस्मृती—

"अथ हैनं ब्रह्म[1]हारिण ऊचुः किंजप्येनैवाऽमृतत्वमश्नुत इति ब्रूहीति स होवाच याज्ञवल्क्यः शतरुद्रियेणेति, एतानि ह वा अमृतस्य नामधेयधान्यर्हन् वा अमृतो भवति" इति ।

कैवल्योपनिषदि—

"यः शतरुद्रियमधीते सोऽग्नि[2]पूतो भवति, स सुरापानात्पूतो भवति, स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति, स ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति, स कृत्या[3]कृत्यायाः पूतो भवति, तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति, अत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत्—

---

(१) गुरोः सकाशादध्ययनेन वेदलक्षणं ब्रह्म हरन्ति ते ब्रह्महारिणः शिष्या इत्यर्थः ।

(२) अग्निसकाशात् कृत्याकृत्यात्पूत इत्यर्थः ।

(३) कृतस्य विहितस्याकृत्यादकरणाद्विहितकर्माकरणजन्यात्पापादित्यर्थः ।

"अनेन ज्ञानमाप्नोति संसारार्णव तारणात् ।
तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यफलमश्नुते"

"यः श्रद्धया युतो नित्यं शतरुद्रियमभ्यसेत्
अग्निदाहात्सुरापानाद् दुष्कृत्याचरणात्तथा । मुच्यते ब्रह्महत्याया इति कैवल्यशाखिनः" ।

"तदेतद्रुद्रार्चनं पापक्षयार्थी व्याधिविमोचनार्थी श्रीकामः शान्तिकामः पुष्टिकाम आयुष्काम आरोग्यकामो मोक्षकामश्च कुर्यात्" इति । बौ० गृ० सू० २-१८-१५ ।

मिताक्षरायाम्—

"एकादश गुणान् वापि रुद्रानावर्त्य धर्मवित् ।
महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥"

तथा च बृहत्पाराशरे—

"एकादश गुणान् रुद्रानावर्त्य याति रुद्रताम्"

शातातपस्मृतौ—

"मद्यं पीत्वा गुरुदारांश्च गत्वा स्तेयं कृत्वा ब्रह्महत्यां च कृत्वा ।
भस्मच्छन्नो भस्मशय्याशयानो रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः" ॥ इति ।

शङ्करोऽपि—

"सुवर्णस्तेनो रुद्राध्यायी मुच्यते रहसिकृतानां महापातकानामपि शतरुद्रियं प्रायश्चित्तम्" इति ।

"यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं ध्यायमानो भमाकृतिम् ।"
"स तेनैव च देहेन शिवः सञ्जायते ध्रुवम्"

वायुपुराणे—

"अनपत्यत्वदोषेषु शाकिन्यादि ग्रहेषु च ।
सर्वज्वर विनाशाय रुद्रो जाप्यो न संशयः ॥
रोगवान्पापवांश्चैव रुद्रं जप्त्वा जितेन्द्रियः ।
रोगात् पापात् प्रमुक्तोऽसावतुलं सुखमश्नुते" इति ॥

स्मृतिमहार्णवे—

"लिङ्गार्चनं रुद्रजाप्यं तथा चैकादशीव्रतम् ।
वाराणस्यां च मरणं मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥
रुद्रजापी शिवः साक्षाच्चतुराश्रमधर्मकः ।
तस्मात्सर्व परित्यज्य रुद्रजापी भवेत्सदा" इति ॥

आदौ गणपतिपूजन प्रयोगः—

तत्र अनुष्ठानात् [2]पूर्वदिने तद्दिने वा [3]कृतनित्यक्रियः [4]सपत्नीकः [5]कृतोपवासः कर्ता [6]कृतमाङ्गलिकस्नानः [7]स्वलंकृतः सौभाग्यकुङ्कुमेन कृततिलको [9]बद्धशिखः (कृतनिर्णेजनान्तबलिवैश्वदेवः[10]) गोमयोपलिप्ते [11]रङ्गवल्लिकया स्वस्तिकाद्यलङ्कृते शुचौ देशे शुभवस्त्राच्छादिते श्रीपर्ण्यादिप्रशस्तदारुमये पीठे कम्बलादौ [12]प्रागग्रे[13] [14]स्वासने [15]प्राङ्मुख उपविश्य[16] [17]रक्षादीपं प्रज्वलय्य पवित्र[18]पाणिः [19]स्मार्तविधिना द्विराचम्य [20]प्राणानायम्य पूजनसामग्रीमात्मानं च [21]सम्प्रोक्ष्य [22]स्वशान्ति पठेत् । तद्यथा—

अनुष्ठान के पूर्व या उसी दिन सपत्नीक (अपत्नीक) यजमान कृतोपवासादि माङ्गलिकस्नानादि कर शुद्ध जगह में प्राङ्मुख बैठ रक्षादीप लगाकर आचमन प्राणायाम और पवित्र धारणकर पूजन की सामग्री और अपना प्रोक्षणकर स्वशान्ति पाठ करे ।

---

१ “निर्विघ्नेन कृतं साङ्गं कर्म वै सफलं भवेत् ।
तस्मात्सकलकर्मादौ विघ्नेशं पूजयेद् बुधः” ॥
शिवपुराणान्तर्गत विश्व सं० अ० १८ श्लो० ९९ ।

(२) “महत्सु पूर्वेद्युरल्पेषु कर्मसु तदहः” इति (आश्व० गृ० प०) वचनात् ।

(३) "सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः ।
कामक्रोधविहीनश्च पाखण्डस्पर्शवर्जितः ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी सर्वकर्मसु शस्यते ॥" (दा० हे०)

(४) सपत्नीक इत्युक्तिः पत्नीसद्भावविषया, अतोऽपत्नीकस्य दानव्रतपुण्यसंस्कारशान्तिपौष्टिककर्मसु नाधिकार इति न शङ्कनीयम् ।

"संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतः सदा ।
संस्कारकर्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा ॥
व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थ्यां सहभोजने ।
व्रतदाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे ॥" इति । (प्रासङ्गिकं किञ्चित्)

(५) "जलस्यापि नरश्रेष्ठ प्राशनाद्भेषजाद्दते ।
नित्यक्रिया निवर्तेत काम्यनैमित्तिकैः सह ॥" (का० पु०)

यत्तु—"इक्षूनपः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम् ।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः ॥" इति, तदशक्तविषयम् ।

(६) "माङ्गल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्तमहोत्सवे ।
स्नेहमात्रसमायुक्तं मध्याह्नात् प्राक् तदिष्यते ॥" (वि० वि०)

"जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन् पितृदेवताः ।
स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्गं तत्प्रकीर्तितम् ॥"

अत्र केचित्—"शिरःस्नानस्तु कुर्वीत दैवं पित्र्यमथाऽपि वा ।
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा श्मश्रुकर्म च कारयेत्" (मार्क० पु०) इति वचनात् शुद्ध्यर्थं कर्मादौ पूर्वेद्युः क्षौरं कारयन्ति तन्निर्मूलमिति निर्णयसिन्धौ ।

(७) "कर्मादौ मन्त्रसंयुक्तं मङ्गलस्नानमाचरेत् ।
दिव्याभरणवासोभिरलङ्कृत्य ततः शुचिः ॥
विवाहादिदिने प्राप्ते तत्कर्त्ता भार्यया सह ।
कुलदेवादिसम्प्रीत्यै ब्राह्मणांश्च सुवासिनीम् ॥
स्नापयित्वा सकन्येन स्नातव्यं ससुतेन च ।
परिधायाहतं वासो द्विपटीं स्त्र्यपि च द्वयम्" ॥

"एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
न कुर्याद्देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा" ॥ गौ० ।

"खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धालम्बितस्तथा ।
उत्तरीयऽपेतश्च तत्कृतं निष्फलं भवेत्" ॥ (वृद्धम०)

"एकवस्त्रा तु या नारी मुक्तकेशा व्यवस्थिता।
न साऽधिकारिणी ज्ञेया श्रौते स्मार्ते च कर्मणि" ॥ (वि० पा)
"नीलरक्तं च यद् वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत्।
द्रव्यान्तरयुता नीली न दुष्यति कदाचन" ॥
कम्बले पट्टवस्त्रे च नीलीदोषो न विद्यते।
स्त्रिया वस्त्रं सदा त्याज्यमन्यवस्त्रं विवर्जयेत् ॥
अधौतं क्षारधौतं च पूर्वेद्युर्धौतमेव च।
त्रयमेतदसम्बद्धं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ (पा०)

(८) "श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्ः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम्।
उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु ॥
तिलकं कुङ्कुमेनैव सदा मङ्गलकर्मणि।
कारयित्वा सुमतिमान् न श्वेतचन्दनादिना" ॥

(९) "सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

शिखवच्छिखया भाव्यं वामावर्तनिबद्धया ।
प्रदक्षिणं द्विरावर्त्य पाशान्तः संप्रवेशयेत् ॥
प्रथमं द्विगुणीकृत्य ब्रह्मावर्तमितीरितम् ।
गायत्रीं प्रजपन् कुर्याच्छिखायाश्च निबन्धनम् ॥
विप्रादिकानां खलु मुष्टिमेयकेशाः शिखा स्यादधिका ततो न ।
द्विधा त्रिधा वाऽपि विभज्य बन्धो ह्यल्पा ततोऽल्पापि न लम्बिताऽपि ॥
खल्वाटत्वादि दोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् ।
कौशीं तदा धारयत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ॥
कार्येयं सप्तभिर्दर्भैर्धार्या श्रोते तु दक्षिणे ।
"अथ चेत् प्रमादान्न शिखा स्यात्तदा कौशीं शिखां
ब्रह्मग्रन्थियुतां दक्षिणकर्णे निदध्यात् ॥ (का० गृ०)

(१०) "श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः ।
एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते" इति ॥
(हेमाद्रिवचनात् साग्निकस्य सर्वत्र श्राद्धादौ वैश्वदेवः । निरग्निकस्य तु—
"पितृश्राद्धमकृत्वा तु वैश्वदेवं करोति यः ।
अकृतं तद् भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते" इति ॥

“वैश्वदेवमकृत्वैव श्राद्धं कुर्यादनग्निकः” ।
(इति वचनाच्च श्राद्धान्त एव वैश्वदेवः प्राप्नोति तथापि—
“वृद्धावादौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये ।
एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते” ॥
निर्णेजनान्तं निर्वर्त्य वैश्वदेवं ततो द्विजः” ।
इति रेणूक्तेश्च आभ्युदयिकात्प्रागेव वैश्वदेवः कार्यः ॥ (प्रासङ्गिकमिदम्)

(११) “रङ्गवल्लीयुते देशे कर्म कुर्याच्छुभं सदा” ।

(१२) “पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहा पर्वतमस्तकम् ।
तीर्थप्रदेशः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम् ॥
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः ।
तुलसीकाननं गोष्ठं वृषशून्यशिवालयः ॥
अश्वत्थामलकीमूलं गोशालां जलमध्यतः ।
देवतायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम् ॥

(१३) “आसनस्थानसंवेशनान्युदगग्रेषु प्रागग्रेषु वा” ।

(१४) “कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना ।
सर्वं कर्म प्रकर्तव्यमन्यथा विफलं भवेत्” ॥

"शमीकाश्मर्यशालश्च कदम्बो वारणस्तथा ।
पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा" ॥
"स्नात्वा चैव शुचौ देशे पीठे यज्ञियदारुजे ।
वस्त्राच्छन्न उपासीत अभावे कुशविस्तृते" ॥
वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिरेव च ।
धरण्यां तु भवेद् दुःखं दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे ॥
तृणे धनक्षयो हानिः पल्वले चित्तविभ्रमः ।
गोशकृन्मृन्मयं मिश्रं तथा पालाशपिप्पलम् ॥
लोहविद्धं सदैवार्कं वर्जयेदासनं सुधीः ।
मृगचर्म प्रयत्नेन वर्जयेत् पुत्रवान् गृही ॥

(१५) उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कर्म कुर्यादतन्द्रितः ।

(१६) "आसीन ऊर्ध्वः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः ।
तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता" ॥

"न प्रौढपादः कुर्वीत"

"आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाऽथ जङ्घयोः ।
कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते" ॥

(कृता आवसक्थिका वस्त्रादिना जानुजङ्घापृष्ठबन्धो येन स कृतावसक्थिकः)

(१७) "विना दीपेन सकला कार्यसिद्धिर्न जायते ।
अतः प्रकाशको दीपः पूर्वं स्थाप्यो यथाविधि" ।
"कर्मादौ स्थापयेद्दीपं पूर्वभागे यथाविधि ।
दीपं न स्थापयेत् भूमौ घृततैले न मिश्रयेत्" ॥
"देवस्य दक्षिणे पार्श्वे दीपं दद्याद् यथाविधि ।
साधारं स्थापयेद्दीपमन्यथा ह्यशुभं भवेत्" ॥

(१८) "मन्त्रेण धारयेद्विप्रः पवित्रं सर्वकर्मसु ।
मन्त्रं विना धृतं यत्तु पवित्रमफलं भवेत्" ॥
"उभाभ्यामेव पाणिभ्यां विप्रैर्दर्भपवित्रके ।
धारणीये प्रयत्नेन ब्रह्मग्रन्थिसमन्विते" ॥
"ग्रन्थिर्यस्य पवित्रस्य न तेनाचमनं चरेत् ।
"द्व्यङ्गुलं मूलतः कुर्याद् ग्रन्थिरेकाङ्गुलस्तथा ।
चतुरङ्गुलमग्रं स्यात्पवित्रस्य च लक्षणम्" ॥
"माषाणां षोडशादूर्ध्वं कुर्याद्धेमपवित्रकम् ।

तेभ्यः स्वल्पतरं न्यूनं न कुर्वीत कदाचन।
अशक्तौ तु—"यथेष्टेन सुवर्णेन कारयेदङ्गुलीयकम्" इत्याचारभूषणे।

"ताम्रतारसुवर्णानामर्कषोडशखेन्दुभिः।
कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यनाशिनी"

"पवित्रे पतिते ज्ञाते तथा जपमणावपि।
प्राणायामत्रयं कुर्यात् स्नात्वा विप्रोऽघमर्षणम्"॥

(१९) "देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्।
कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः"॥

"द्विराचमनः क्रियादिषु"—इति वचनात् कर्मादौ द्विराचमनम्।

अथ **स्मार्ताचमन** प्रयोग—

प्रथमं जलेन करौ प्रक्षाल्य ततोऽङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ संमृज्य तेनैव मुखमुन्मार्ज्य जलेन वामकरं सम्प्रोक्ष्य पादौ मूर्धानं च प्रोक्षयेत्। ततः संहतमध्यमाऽङ्गुलित्रयेण आस्यं संस्पृश्य द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे संस्पृशेत्। ततो द्वाभ्याङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य पुनस्ताभ्यामेव श्रोत्रे संस्पृश्य कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य पणितलेन हृदयं शिरः दक्षिणेन बाहूमूले च स्पृशेत्। इति॥ एवमाचमनासम्भवे **स्मृत्यर्थसारे**—"त्रिः पीत्वा हस्तम्प्रक्षाल्य श्रोत्रं संस्पृशेत् **इत्याचारार्कः**। इदं स्मार्ताचमनं द्विराचमनेऽखिलमावर्तनीयन् "**द्विराचमनः क्रियादिष्वि**"ति स्मरणात्।

नित्यकृत्यार्णवे

अथ पौराणमाचमनम्—तद्यथा—ॐ **गोविन्दाय नमः** ॐ **विष्णवे नमः**, इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां करौ प्रक्षाल्य ॐ **मधुसूदनाय नमः**, ॐ **त्रिविक्रमाय नमः**, इति द्वाभ्यां अङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ सम्मृज्य ॐ **वामनाय नमः**, ॐ **श्रीधराय नमः**, इति द्वाभ्याम्—अङ्गुष्ठमूलेनैव मुखमुन्मार्ज्य, ॐ **हृषीकेशाय नमः**, इति वामकरं प्रोक्ष्य ॐ **पद्मनाभाय नमः**, इति पादौ संप्रोक्ष्य ॐ **दामोदराय नमः**, इति मूर्धानं प्रोक्षयेत्। ततः संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेण ॐ **सङ्कर्षणाय नमः**, इत्यास्यं स्पृष्ट्वा ॐ **वासुदेवाय नमः**, ॐ **प्रद्युम्नाय नमः**, इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे संस्पृश्य ॐ **अनिरुद्धाय नमः**, ॐ **पुरुषोत्तमाय नमः**, इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ॐ **अधोक्षजाय नमः**, ॐ **नारसिंहाय नमः**, इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्याम् अङ्गुष्ठानामिकाभ्यामेव श्रोत्रे संस्पृश्य ॐ **अच्युताय नमः**, इति कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य ॐ **जनार्दनाय नमः**, इति पाणितलेन हृदयं। ॐ **उपेन्द्राय नमः**, इति शिरः ॐ **हरये नमः** ॐ **कृष्णाय नमः**, इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यां दक्षिणवामबाहुमूले च स्पृशेत् इति॥ इदमेव **पौराणमाचमनम्**।

दक्षस्मृतौ—

“प्रक्षाल्य पाणी पादौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम्।
सम्वृत्याऽङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम्॥
संहत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम्॥

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रे पुनः पुनः ।
नाभिं कनिष्ठाऽङ्गुष्ठेन हृदयन्तु तलेन वै ॥
सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत्" इति ॥

सर्वमेतत् स्पष्टयति कात्यायनः कर्मप्रदीपे—

"त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतदुपस्पृशेत् ।
आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षः शिरोंऽसकान् ।
संहताभिस्त्र्यङ्गुलीभिरास्यमेवमुपस्पृशेत् ।
अङ्गुष्ठाऽनामिकाभ्यां च चक्षुः श्रोत्रं पुनः पुनः ॥
कनिष्ठाऽङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयन्तु तलेन वै" इति ।

(२०) "प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः ।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति" ।

(२१) अत्रात्मनोऽमूर्तत्वात् तत्र प्रक्षालनक्रियादेरसम्भवात् तदङ्गभूतस्य शरीरस्य प्रक्षालनं कार्यमानर्थक्यतदङ्गन्यायेन । यत्र प्रधाने विहितं कार्यं तत्र कार्यमशक्यत्वादनर्थकं भवेत् तत्परिहाराय तदङ्गेषु स्थीयते स आनर्थक्यतदङ्गन्यायः ।

(२२) अत्र द्यौः शान्तिरित्यस्य शान्तिपदघटितत्वेन सर्वेषां मन्त्राणां छत्रिन्यायेन शान्तिमन्त्र इति संज्ञा । भद्रसूक्तमिति तु न कस्यापि सूक्तस्य संज्ञा । "सम्पूर्णमृषिवाक्यन्तु सूक्तमित्यभिधीयते" (बृहदे०) इत्युक्तत्वात् । भद्राय सूक्तमिति तु कथंचित् संभवतीति ।

हरिः॑ ॐ आ[1] नो॑ भ॒द्राः[2] क्रत॑वो यन्तु[3] वि॒श्वतो॒ऽद॑ब्धासो॒[4] अप॑रीतास॒ उ॒द्भिद॑ः। दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद्वृ॒धे॒ अस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वे दि॑वे ॥ १ ॥

मुझको सब जगह कल्याण करनेवाले बल प्राप्त हों, जिनको कोई भी क्षीण न कर सके, और बढ़नेवाले हों, जिसमें देवतागण सदा हमारी वृद्धि के लिए हों, और प्रमाद रहित होकर प्रतिदिन हमारे रक्षक बने रहें ॥ १ ॥

---

(१) भरद्वाजशिक्षायाम्—

"प्रश्नानुवाकाद्यारम्भे सविसर्गोच्चको हरिः। न सन्धिः प्रणवे नित्यं विरामे स्वरितो भवेत्॥"
सविसर्गं आद्युदात्तोऽन्त्यस्वरितो हरिशब्दः प्रयोगः। तस्य प्रणवेन सह सन्धिर्न कार्यः।

(२) आ नो भद्रा इति दशर्चस्य गोतमो राहूगण ऋ॰ विश्वेदेवा देवता, आद्याः पञ्च जगत्यः, षष्ठी विराट् स्थाना, सप्तमी जगती, अष्टम्याद्यास्त्रिष्टुभो, द्यौः शान्तिरित्यस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋ॰ यजुश्छं॰ द्यौरादयो दे॰ शान्तिकरणे विनियोगः।

(३) विनियोगशब्देन अङ्गाङ्गिभावलक्षणः सम्बन्धोऽभिधीयते। मन्त्राणां प्रयोगसमवेतार्थस्मारकतया कर्मार्थत्वेन परार्थत्वादङ्गत्वम्। कर्मणां च सर्वाङ्गाणामेव शेषित्वम्। योगियावल्क्योऽपि—"पुराकल्पे समुत्पन्ना

दे॒वानां भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तान्दे॒वाना॑ᳫं रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्त-

---

मन्त्राः कर्मार्थमेव च। अनेन चेदं कर्तव्यं विनियोग सः उच्यते" इति। अत्र पूर्वार्द्धे कर्मार्थतया मन्त्राणामुत्पत्तिमभिदधता मन्त्राणामङ्गताम्, कर्मणां चाङ्गिताम्, उत्तरार्द्धेऽङ्गाङ्गिनोः सम्बन्ध एव विनियोग इति प्रतिपादितम्। एकस्यैव मन्त्रस्य एकस्मिन् कर्मणि विनियुक्तस्य विधिसामर्थ्यात् कर्मान्तरेष्वपि सजातीयविजातीयेष्वपि अङ्गत्वमस्ति। ततश्च यदा यो मन्त्रो यस्मिन् कर्मणि विनियुज्यते तदा तस्य मन्त्रस्य विनियोगोऽवगन्तव्य इति।

(४) कर्माङ्गत्वेन पठ्यमानानां मन्त्राणामनध्यायो नास्ति **"स्वाध्यायेऽनध्यायो मन्त्राणां न कर्मण्यर्थान्तरत्वात्"** (आप० १।४) इति। स्वाध्यायस्य वेदग्रहणं तद्धारणं वा प्रयोजनम्, कर्ममन्त्राणां क्रत्वर्थनिवृत्तिः। अतः प्रयोजनभेदात् कर्मणि नानध्याय इति तदर्थः।

(५) अत्र ये मन्त्राः स्वशाखीयास्ते सस्वरा एव पठनीयाः। ये मन्त्राः सौत्रास्तेषां मध्ये ये शाखान्तरादागतास्तेषां तत्तच्छाखातः स्वरान् ज्ञात्वा तेऽपि सस्वरा एव पठनीयाः। येषां तु सर्वथा मूलं नोपलभ्यते स्वराश्च नावगम्यन्ते तेषां परमैकस्वर्येण पाठो न तु सर्वेषाम्। एवं यज्ञेऽपि याज्याः पुरोऽनुवाक्याः प्रैषः निवित् सामिधेन्यः सूक्तवाकः इत्येवमादीन् वर्जयित्वा अन्ये करणमन्त्रा अपि इषे त्वेत्यादयः सर्वेऽपि सस्वरं पठनीयाः। एवं यत्र जुहोतिचोदना तत्र सर्वत्रापि होमाङ्गभूतानां मन्त्राणां सस्वरमेव पाठः। एवं न्यासपूजा जपाभिषेकादावपि सस्वरमेव पाठः कर्तव्यः।

न चात्र न्यासादौ हस्तस्थ व्यापृतत्वात् कथं स्वरः पठितुं शक्यत इति केषां चिद भ्रमो युक्तः। स्वरो हि

ताम्। देवानाꣳ सख्यमुप सेदिमा वयन्देवा न ऽआयुः प्प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥

सरलता को चाहनेवाले देवताओं की कल्याण करनेवाली सुमति और देवताओं का दान हमारी ओर झुके, हम देवताओं की मित्रता प्राप्त करने का यत्न करें, और देवता हमारी आयु को बढ़ावें जिससे हम चिरकाल तक जीते रहें ॥ २ ॥

कण्ठेन प्रकाश्यः। कण्ठेनोच्यमानस्य स्वरस्य हस्तः सूचकः परम्, न तु हस्तेनैव स्वरः पठ्यते। अत एव हस्तस्य कार्यान्तरव्यापृतत्वेऽपि मुखेन अक्षरैः साकं पूर्वोक्तेषु कर्मसु स्वरा प्रयोज्या एव निषिद्धवर्जम्।

"एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ यज्ञकर्मणि" इति तु प्रतिषेधो याज्याप्रैषादिपरक एव। अत एव "अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा" इत्यग्निहोत्रहोमाङ्गभूतो मन्त्रः जातवेदस इति वपायागाङ्ग होमभूतो मन्त्रश्च करणभूतोऽपि सस्वर एव पठ्यते।

अतश्च ये नाम अन्धपरम्परामनुसरन्तो न्यासहोमादिषु व्यापृतेन हस्तेन स्वरस्य प्रदर्शितुमशक्यत्वात् स्वरोच्चारणमपि परित्यक्तव्यं मन्यन्ते, अत एव च कारणात् स्वरं विना एतादृशानां कार्यान्तराणां प्रचलितत्वात् अनधीतवेदा अपि अपरिज्ञातस्वरा अपि पुस्तकं हस्तेनादाय केवलं पुस्तकवाचनमात्रेणैव कर्माण्यनुष्ठापयन्ति तादृशानां कर्मणां यथाविध्यनुष्ठानाभावात् न केवलमभिलषितफलावाप्तिः, किन्तु निन्दितकरणात् विपरीतफलप्राप्तिरपि यजमानाचार्ययोर्भवेत्।

तान्पूर्व॑या नि॒विदा॑ हूमहे व॒यम्भग॑म्मि॒त्रमदि॑ति॒न्दक्ष॑म॒स्रिध॑म् । अ॒र्य॒मणं॒ वरु॑ण॒ꣳ सोम॑म॒श्विना॒ सर॑स्वती नः सु॒भगा॒ मय॑स्करत् ॥ ३ ॥

हम उनको प्राचीन स्तुतियों द्वारा बुलाते हैं भग को, मित्र को, अदिति को, और दक्ष को जिसे कोई दुःखी नहीं कर सकता। अर्यमा को, वरुण को, सोम को, और अश्विनी को सौभाग्यवती सरस्वती हमको सुखी करें ॥ ३ ॥

तन्नो॒ वातो॑ मयो॒भु वा॑तु भेष॒जन्तन्मा॒ता पृ॑थि॒वी तत्पि॒ता द्यौः । तद् ग्रावा॑णः सोम॒सुतो॑ मयो॒भुव॒स्तद॑श्विना शृणुतन्धिष्ण्या षु॒वम् ॥ ४ ॥

अतो ये नाम कर्मानुतिष्ठन्ति आचार्याभूयानुष्ठापयन्ति वा तैः पूर्वं तत्तदुपयुक्तान् मन्त्रान् सस्वरं गुरुमुखादधीत्य अनन्तरं कर्मानुष्ठाने आचार्यत्वेन प्रयतितव्यम्। मन्त्राश्च सस्वरं तेषु तेषु कर्मसु पठनीया इति।

वायु हमारे लिए उस सुख देनेवाली औषधि को लावें उसको माता पृथिवी पिता द्यौ और मङ्गलदायक सोम कूटने के पत्थर लावें। हे पूज्य अश्विनी! आप इस पुकार को सुनो ॥ ४ ॥

तमीशा॑न॒ञ्जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑न्धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्। पू॒षा नो॒ षथा॒ वेद॑सा॒ मस॑द् वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥ ५ ॥

हम उस ईशन करनेवाले जङ्गम और स्थावर के पति और स्तुति के प्रेरणा करने वाले को रक्षा के लिए बुलाते हैं, जिसके कि पूषा हमारे लिए धनों के बढ़ाने वाले और कल्याण के लिए न चूकने वाले रक्षक हों ॥ ५ ॥

स्व॒स्ति न॒ऽ इन्द्रो॑ ऽवृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः। स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ ऽअरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥ ६ ॥

बढ़े हुवे यशवाला इन्द्र हमारे लिए कल्याण देवें, सम्पूर्ण धन का स्वामी पूषा हमारे लिए मङ्गलकारी हो, जिसके पहिए की धारा कभी नहीं टूटती, ऐसा सूर्य हमारे लिए शुभदायक हो, बृहस्पति हमको सुख दे ॥ ६ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभँषावानो विदथेषु जग्मयः । अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा ऽअवसाऽऽगमन्निह ॥७॥

अच्छे वाहनवाले आकाश मातृक शुभ देनेवाले यज्ञ गृहों में जानेवाले अग्नि के सदृश ज्ञानी, सूर्य के सदृश विश्वेदेवा रक्षा के लिये यहाँ आवें ॥ ७ ॥

भद्रङ्कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिऽर्षजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितँ ऽषदायुः ॥ ८ ॥

हे पूजनीय देवताओं ? हम आपकी स्तुति कानों से सुनें, आखों से मङ्गल को देखें, दृढ़ शरीर और अङ्गों से युक्त होते हुवे देवताओं में नियत की हुई आयु को भोगें ॥ ८ ॥

शतमिन्नु शरदो ऽअन्ति देवा षत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम् । पुत्रासो षत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषताऽऽयुर्गन्तोः ॥ ९ ॥

---

(६) "गृह्यकर्मणि ये मन्त्रा ज्ञेयाः स्वाध्यायपाठतः ।
किन्त्व मध्यमवृत्त्या ते न द्रुता न विलम्बिताः ॥" इति रेणुः

हे देवताओ ! लगभग सौ वर्ष हैं जिनमें आप हमारे शरीरों को अक्षय करते हैं जिस काल में पुत्र पिता हो जाते हैं । आप हमारी अस्थायी आयु को बीच में मत काटो ॥ ९ ॥

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः । विश्वे॑ दे॒वाऽ अदि॑ति॒ः पञ्च॒ जना॒ऽ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम्ँ ॥ १० ॥

द्यौ, अन्तरिक्ष, माता, पिता, पुत्र, विश्वेदेवा, पञ्चजन, उत्पन्न, और सम्पन्न होनेवाले सब अदिति अदीन हों ॥ १० ॥

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॒रापः॒ शान्ति॒रोष॑धयः॒ शान्तिः॑ । वन॒स्पत॑यः॒ शान्ति॒र्विश्वे॑ (A) दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒ शान्तिः॒ सर्व॒ꣳ शान्तिः॒ शान्ति॑रे॒व शान्तिः॒ सा मा॒ शान्ति॑रेधि ॥ ११ ॥

द्यौ से, अन्तरिक्ष से, पृथिवी से, जलों से, औषधियों से, वनस्पतियों से, सब देवों से, सब सृष्टि से, स्वयं शान्ति से जो शान्ति है वह मुझे प्राप्त हो ॥ ११ ॥

---

(७) मा० सं० अ० २५ मं० १४–२३ ।
(A) मा० सं० ३६. १७ ।

यतोयतः समीहसे ततो नोऽअभयङ्कुरु। शन्नः कुरु प्रजाभ्यो (B) ऽभयन्नः पशुभ्यः ॥ १२ ॥

हर एक जगह से हमको अभय करो, हमारी प्रजा का कल्याण करो, हमारे पशुओं को अभय प्रदान करो ॥ १२ ॥

(C) गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनात्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आऽहमजानि गर्ब्भधमा त्वमजासि गर्ब्भधम् ॥ १३ ॥

गणों में गणपति, प्रियों में प्रियपति, निधियों में निधिपति, हे मेरे ईश्वर हम आपको बुलाते हैं। मैं आपको सुख देनेवाला जानता हूँ आप मेरे को सुख धारण करनेवाला जानो ॥ १३ ॥

---

(८) यतोयत इत्यस्य दध्यङ्ङाथर्वणऋ० यजुश्छन्दो लिङ्गोक्ता दे० शान्तिकरणे त्रि०।

(९) गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋ० यजुश्छं० अश्वो देवता शान्तिकरणे वि०।

(B) मां० स० ३६. २२। (C) मां० स० २३. १९।

अ॑[10]म्बे॒ ऽअम्बि॒के (D) ऽम्बा॑लि॒के॒ न मा॑ नय॒ति॒ कश्च॒न । स स॑स्त्य-
श्व॒कः सुभ॑द्रिकाङ्का॑पीलवा॒सिनी॑म्” ॥ १४ ॥ सुशा॑[11]न्तिर्भ॑वतु ।

इति[12] शान्तिपाठं पठित्वा—

हे अम्बे ? हे अम्बिके ? हे अम्बालिके ? मुझे कोई भी पति के पास नहीं पहुँचाता है वह काम्पील नगर की स्त्री में आसक्त है ॥ १४ ॥

---

(१०) अम्बेऽ अम्बिक इत्यस्य प्रजापतिर्ऋ० अनुष्टुप्छं० अम्बादयो देवता शान्तिकरणे वि० ।

(D) मा॑० स० २३. १८ ।

(११) अत्र ह्रस्तस्वरं प्रयुञ्जाना उपेक्ष्या एव ।

(१२) “मन्द्रेणोपक्रमेत्पूर्वं सर्वशाखास्वयं विधिः ।
सप्त मन्त्राननतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुच्चरेत् ॥
न तां समीरयेद्वाचं या प्राणानुपरोधयेत् ।
प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चैव जायते ॥
स्वरव्यञ्जनमाधुर्यं लुप्यते नात्र संशयः ॥”

ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां[१३] नमः । ॐ उमामहेश्वराभ्यां नमः ।
ॐ वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः । ॐ शचीपुरन्दराभ्यां नमः ।
ॐ मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः । ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः ।
ॐ कुलदेवताभ्यो नमः । ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः ।
ॐ स्थानदेवताभ्यो नमः । ॐ वास्तुदेवताभ्यो नमः ।
ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ॐ सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः ।
ॐ सिद्धिबुद्धिसहिताय श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ।

इति प्रणम्य—

शान्तिपाठ के बाद (श्रीमन्महागणाधिपतये नमः) इत्यादि मन्त्रों से देवताओं को प्रणाम करे और (ॐ सुमुखश्चैकदन्तश्च०) इत्यादि श्लोकों से श्रीगणेशजी का ध्यान करे ।

---

(१३) "सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं वरेण्यं वरदं विभुम् ।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्"॥ (वाम० पु०)

नारायणग्रहणं गणेशोमा महेश्वराद्युपलक्षणम् । कारयेदिति स्वार्थे णिच् ।

ॐ [१४]सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥ १ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥ २ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
सङ्ग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ३ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ ४ ॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरासुरैः ।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥ ५ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते ॥ ६ ॥

---

(१४) सुमुखश्चेत्यादि पाठो मङ्गलार्थः ।

सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् ।
येषां हृदिस्थो भगवान् मङ्गलायतनं[१५] हरिः ॥ ७ ॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव ताराबलं चन्द्रबलं तदेव ।
विद्याबलं दैवबलं तदेव लक्ष्मीपते तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥ ८ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ९ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्द्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ १० ॥
अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ ११ ॥
स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते ।
पुरुषं तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम् ॥१२॥

---

(१५) मङ्गलायतनो हरिरिति पाठस्तु ल्युप्रत्ययेन कथंचित् साधनीयः ।

सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः ।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥१३॥
विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिं च भैरवम् ।
वन्दे काशीं गुहां गङ्गां भवानीं मणिकर्णिकाम्" ॥१४॥

इति श्लोकान् पठेत् ।

ततः—कर्ता दक्षिणहस्तेऽर्घपात्रे[१६] कुशत्रयकुसुमयवफलद्रव्यजलादीन्यादाय—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः[१७] श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयप्रहरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे (भरतखण्डे) भारतवर्षे आर्यावर्तैकदेशे अविमुक्त वाराणसीक्षेत्रे महाश्मशाने आनन्दवने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे

---

(१६) पुरश्चर्यार्णवे—"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम् । दर्भत्रयं साग्रमूलं फलपुष्पसमन्वितम्" गुण शब्देन अत्र हिरण्यादिद्रव्यं विवक्षितम् । "संकल्पेन विना कर्म यत्किञ्चित् कुरुते नरः । फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्याद्धक्षयो भवेत् ॥" इति भविष्यपराणे ।

(१७) प्रारम्भे कर्मणां विप्र पुण्डरीकं स्मरेद्धरिम् । अत्र त्रिरुक्तिः आदरार्था । "अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते" इति यास्कोक्तेः । अत एव कर्मान्तेऽपि "विष्णवे नमः" इति त्रिवारमभिधीयते साम्प्रदायिकैः । इति ।

तीरे विक्रमशके बौद्धावतारे अमुकनाम्नि संवत्सरे[१८] अमुकायने अमुकऋतौ ॐ तत्सदद्य महामाङ्गल्य प्रदमासोत्तमे मासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे

---

(१८) संवत्सरनामानि–नारदः—

"प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः ।
अङ्गिराः श्रीमुको भावो युवा धातेश्वरस्तथा ॥ १ ॥
बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोऽथ वृषस्तथा ।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः ॥ २ ॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः खरः ।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथ दुर्मुखौ ॥ ३ ॥
हेमलम्बो विलम्बोऽथ विकारी शार्वरी प्लवः ।
शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसु पराभवौ ॥ ४ ॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् ।
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः ॥ ५ ॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्र दुर्मती ।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनः क्षयः ॥ ६ ॥

अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे (A)अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथास्थानस्थितेषु एवं ग्रहगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकप्रवरान्वितोऽमुकवेदान्तर्गतामुकशाखाध्यायी अमुकशर्मा (अमुकवर्माऽहं, अमुकगुप्तोऽहं) मम सकुटुम्बस्य परिवारसहितस्य सपशोः समस्तभयव्याधिजरापीडामृत्युपरिहारद्वारा आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थम्, जन्मकुण्डल्यां लग्न कुण्डल्यां गोचरे च स्थितानां सूर्यादिवर्षप्रवेशात् लग्नात् वर्षप्रवेशराशेर्वा जन्मलग्नात् जन्मराशेर्वा ये अरिष्टग्रहाः तैः सूचित सूचयिष्यमाण सर्वारिष्टविनाशनार्थं ग्रहगोचरमहादशान्तर्दशाप्रत्यन्तर्दशानिवृत्तिपूर्वकं शुभफलप्राप्तये इह जन्मनि जन्मान्तरे वा कायिकवाचिकमानसिकाद्यखिलपापक्षयपूर्वकमाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकतापत्रयोपशान्तिपूर्वकं धर्मार्थकाममोक्षादिफलप्राप्त्यर्थञ्च साम्बसदाशिवप्रीतिकामः अमुकलिङ्गोपरि पूजनपूर्वकं (दुग्धधारया, जलधारया वा) अमुकसंख्याकब्राह्मणद्वारा अमुकरुद्राभिषेकं

(A) अनेकदिनसाध्ये कर्मणि प्रयोगाधिकरणभूताः सर्वा मासपक्षतिथय उल्लेख्या न प्रारम्भ दिनमात्रस्य ।

कर्म (करिष्ये वा) कारयिष्ये । तदङ्गत्वेन स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्द्धारापूजनमायुष्यमन्त्रजपं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये । तत्र अधिकारार्थमादौ निर्विघ्नतासिद्ध्यर्थं (B) गणेशाम्बिकयोः (C) पूजनं (D) करिष्ये, इति संकल्प्य—

ततः श्रीपर्ण्यादिप्रशस्तपीठे रक्तवस्त्रं प्रसार्य तदुपरि रक्ताक्षतैरष्टदलं पद्मं विधाय

(B) इदं गणपतिपूजनं "नि षु सीद गणपते" इति मन्त्रे ऋग्वेदे (८. ११. ३६) उक्तम् । श्राद्धारम्भे प्रायश्चित्ते उपाकर्मणि च गणपतिपूजनस्याननुष्ठाने हेतुरन्वेषणीयः ।

(C) अम्बिकापूजनं सम्प्रदायानुरोधेन बहुत्र नैतत् प्रचलति । अम्बिकापूजनं च प्रादक्षिण्यानुरोधेन गणपतेरुत्तरतः कार्यम् । तन्त्रेण पूजनपक्षे गणेशाम्बिकयोः सहैव पूजनम्, अन्यथा पृथगिति ।

(D) "कर्तृगामिक्रियाफलाभावे तु करिष्यामि यक्ष्यामि होष्यामि" इत्यादि प्रयोगः । श्रौतयागे तु अध्वर्युकर्तृकेऽप्यग्न्यन्वाधानादौ "दर्शपौर्णमासाभ्यामहं यक्ष्ये" इत्यात्मनेपदमेव पठन्ति तद्विचारणीयम् ।

(१) परशुरामः—

"गणेशं पूजयेत्पूर्वं निर्विघ्नार्थं स्वकर्मणः ।
पट्टे वा मृन्मये पीठे रक्तवस्त्रे ऽरुणाक्षतैः ॥
कार्यमष्टदलं पद्मं, तस्योपरि गणेश्वरम् ।
गणानां त्वेति संस्थाप्य, पूजयेत्तदनन्तरम् ॥

तत्र सुवर्णादि प्रतिमायां[1] पूगफले वा ऽक्षतपुञ्जे वा पट्टादिलिखितप्रतिमायां वा रक्ताक्षतै गणेशाम्बिके[2] स्थापयेत् । तद्यथा—

उसके वाद पर्ण्यादिप्रशस्तपाठ में रक्त वस्त्रविछाकर उसके ऊपर लाल अक्षतों से अष्टदल पद्म बना कर उस में सुवर्णादियुत प्रतिमा में सुपारी या अक्षतपुञ्ज में या पट्टादिलिखित प्रतिमा में अक्षतों से गणेश और आम्बिका का स्थापन करे ।

ॐ ग॒णाना॑न्त्वा[3]A ग॒णप॑तिꣳ हवामहे प्रि॒याणा॑न्त्वा प्रि॒यप॑तिꣳ हवा-

---

(१) "प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु ।
अपि वा ऽक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथक् पृथक् ॥"

(२) गणेशशब्दस्याभ्यर्हितत्वात्पूर्वनिपातः ।

(३) आग्नेये—

"मन्त्रैर्वैष्णवरौद्रैस्तु सावित्रैः शान्तिकैस्तथा ।
विष्णुं प्रजापतिं वाऽपि शिवं वा भास्करं तथा ॥
तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्समाहितः"

कौर्मे—

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् ।

महे निधी॒नान्त्वा॑ निधि॒पतिꣳ हवामहे वसो मम । आऽहम॑जानि गर्ब्भ॒धमा त्वम॑जासि गर्ब्भ॒धम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः गणपतये नमः साङ्गं सायुधं सवाहनं सपरिवारं सशक्तिकं गणपतिमावाहयामि[1] स्थापयामि । इति गणपतिं स्थापयित्वा तदुत्तरतो[2] ऽम्बिकां स्थापयेत् ।

अन्यांश्चाभिमतान्देवान् तल्लिङ्गैरर्चयेन्नरः ॥

(A) गणानां त्वेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः अश्वो देवता गणपतिस्थापने विनियोगः ।

(१) पुरश्चर्यार्णवे—

हस्ताभ्यामञ्जलिं बध्वा ऽनामिकामूलपर्वणि ।
अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत्सेयं मुद्रा त्वावाहनी मता ॥
अधोमुखी त्वियं चैव स्थापनीति निगद्यते ।
आकर्मकाण्डपर्यन्तं सान्निध्यं हि विभावयेत् ॥
ततः संस्थापनं कुर्यादिह तिष्ठेह तिष्ठ चेति" इति ।

एतेनावाहनस्थापनयोर्भेदः स्पष्ट एवोक्तः ।

(२) प्राक्संस्थं कर्म देवानामुदग्दिगपवर्गकम् ।

ॐ [B]अम्बेऽ अम्बिकेऽम्बा॑लिके न मा॑नयति कश्चन । सस॑स्त्यश्वकः सुभ॑द्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अम्बिकायै नमः । साङ्गां सायुधां सवाहनां सपरिवारां सशक्तिकामम्बिकामावाहयामि स्थापयामि । इत्यम्बिकां स्थापयित्वा ततः—

ॐ मनो॑ [C]जूतिर्ज्जुषतामाज्ज्य॑स्य बृहस्पति॑र्यज्ञमि॒मन्त॑न्नोत्वरि॑ष्टं यज्ञꣳ

उदग्दिक्संस्थमथवा प्राचीदिगपवर्गमिति वचनात् ॥

सर्वेषु धर्मकार्येषु इति तु नोपतिष्ठते । तस्य पूजकविषयत्वादम्बिकायाः पत्नीत्वाभावाच्च ।

(B) अम्बे ऽअम्बिक इत्यस्य प्रजापतिऋ० अनुष्टुप्छ० अम्बादयो देवताः अम्बिकास्थापने विनियोगः ।

(C) मनोजूतिरित्यस्य वृहस्पतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः विश्वे देवा देवता गणपत्यादिप्रतिष्ठापने विनियोगः ।

हे सवितः तुम्हारा तीनों कालों को जाननेवाला मन इस यज्ञ के आज्य (घृत) का सेवन करे । वृहस्पति इस यज्ञ को बढ़ावे, और हिंसारहित (निर्विघ्नता) से पूर्ण करे । सम्पूर्ण देवता इस यज्ञ में तृप्ति को प्राप्त हों, सवितादेवता समिदाधान के समय यजमान की प्रार्थना को स्वीकार करता हुआ पूर्ण करे और "ॐ प्रतिष्ठ" ऐसी आज्ञा दे । (१५)

समि॒मन्द॑धातु । वि॒श्वे॑ दे॒वास॑ऽ इ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ॥ १५ ॥(क)

"आवाहयामि गणनाथमुमासुतं तं
सिन्दूरशोषवपुषं गजवक्रशोभम् ।
दुर्गाञ्च तस्य जननीं हरिपृष्ठसंस्थां
भक्त्याऽऽह्वयामि सुतहार्दगलत्कुचाढ्याम्" ॥

"गणेशः सुप्रतिष्ठितो भवतु" इति गणेशं प्रतिष्ठाप्य "ॐ मनोजूतिः" इति मन्त्रमुच्चार्य "अम्बिका सुप्रतिष्ठिता भवतु" इति अम्बिकां प्रतिष्ठापयेत् । अथवा प्रतिष्ठामन्त्रं सकृदुच्चार्य "गणेशाम्बिके सुप्रतिष्ठिते वरदे भवताम्" इत्युक्तैस्तन्त्रेण प्रतिष्ठापयेत् ।

"गणानान्त्वा" इस मन्त्र से साङ्गसायुधादि युत गणपति का स्थापन करे, और "अम्बेऽ अम्बिके" इस मन्त्र से साङ्गसायुधादि युत अम्बिका का स्थापन कर उसके बाद अलग-अलग या तन्त्र से "मनोजूति" इस मन्त्र से गणेश और अम्बिका की प्रतिष्ठा करे ।

(क) शुक्ल य० अध्या० २ मं० १३ ।

ततः काण्डानुसमयेन पदार्थानुसमयेन वा ऽऽवाहनादिभिः [३]षोडशभिरुपचारैः,

(१) एकं प्रधानमुद्दिश्य तत्तत्सम्बन्धिना यावत्पदार्थकाण्डेनानुसमयोऽनुष्ठानं **काण्डानुसमय**पदार्थः ।

ॐ गणपतये नमः आवाहनं समर्पयामि । एवमासनादिनीराजनान्तं गणपतिपूजनं समाप्य गौरीपूजनं कुर्यात् । एवमन्यासामपि । अयं **काण्डाऽनुसमयः** ।

(२) अथवा गणपतेरावाहनं कृत्वा गौर्यादीनामावाहनम् । गणपतेरासनं दत्वा गौर्यादीनामासनम् । अयं **पदार्थानुसमयः** ।

(यत्र बहूनि प्रधानानि एककाले ऽनुष्ठेयत्वेन विहितानि, तत्र सर्वेषां प्रधानानां स्वैः स्वैरङ्गैः सह सम्बन्धस्य प्राप्त्या एकैकं प्रधानं प्रति तेषामेवाङ्गानामनुष्ठाने प्राप्ते तत्र एकप्रधानसम्बन्धिसर्वाङ्गमनुष्ठाय ततः प्रधानान्तरसम्बन्धितदेवाङ्गजातमावर्तनीयमिति **पदार्थानुसमयः**)

इदं पक्षद्वयमपि प्रामाणिकम् । द्वितीयपक्षेऽपि धूपदीपादीनि पृथक् तन्त्रेण वा भवन्ति ।

विष्णुपुराणे—

(३) "आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम् ।
स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात् ॥
धूपो दीपश्च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा ।
पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश ॥
फलेन सफलावाप्तिः साङ्गता दक्षिणार्पणम्" इति ॥

[A]गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यात्मकैः पञ्चोपचारैर्वा पूजयेत् ।

उसके बाद पदार्थानुसमय से या काण्डानुसमय से आवाहनादि षोडशोपचारों से या गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्यात्मक पञ्चोपचार से पूजन करे ।

ततः—"ॐ गणानान्त्वा०" इति मन्त्रमुच्चार्य "साङ्गाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय गणपतये नमः आसनं समर्पयामि" इति गणपतये आसनं दत्वा—"ॐ अम्बेऽ अम्बिके" इति मन्त्रमुच्चार्य "साङ्गायै सायुधायै सपरिवारायै सशक्तिकायै अम्बिकायै नमः [B]आसनं समर्पयामि" अम्बिकायै आसनं दद्यात् ।

पुरश्चर्यार्णवे तु—दश द्वादश अष्टादश षट्त्रिंशत् चतुःषष्टि उपचारा उक्ताः, षोडशोपचारा अपि अनेकविधा उक्ताः । षोडशोपचारो हेमाद्रयुक्त एव ग्राह्यो न तन्त्रोक्त इति सिद्धान्तः ।

(A) "गन्ध पुष्पं तथा धूपो दीपो नैवेद्यमेव च । एते पञ्चोपचाराः" अत्र न दक्षिणा । "गन्धादिका नैवेद्यान्ता पञ्चोपचारके"तिवचनात् ।

(B) "देवस्य वामभागे तु दद्यान्मूलेन चासनम् ।
पौष्पं दारुमयं वास्त्रमाक्षतं कौशतैजसम् ॥

उसके वाद "गणानान्त्वा" इस मन्त्र से साङ्गादि गणपति को आसन दे और "अम्बेऽअम्बिके" इस मन्त्र से साङ्गसायुधादियुत गौरी को आसन देवे ।

"आवाहिताय च ददामि यथा स्वशक्ति
स्वर्णासनं मणिमयं कुसुमासनं वा ।
एकेन दन्तमुकुलेन विराजमानो
गृह्णातु भक्तिनिहितं सदयाऽम्बिका च ॥

षड्विधं चासनं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम् ।
द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाशुभाः" इति ॥
उपचारेषु सर्वेषु यत्किञ्चि द्दुर्लभं भवेत् ।
तत्सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत् ॥

आसनलक्षणं संग्रहे—

"कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च ।
दारुजं कुशजातं वा आसनं परिकल्पयेत्" इति ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि ।

ऊपर लिखे श्लोक पढ़ गणेश और गौरी को आसन देवे ।

"पादार्थमेतदुदकं सुरसिन्धुगोदा
रेवा शतद्रुसरयूयमुनादिकाभ्यः ।
भक्त्याऽऽहृतं सुरभिवस्तुमिराढ्यमम्ब !
प्रीत्या गृहाण सदयं सविनायका मे ॥

ॐ [D]एतावानस्य [ख]महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥१६॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवा-

---

(D) एतावानित्यस्य नारायण ऋषिः पुरुषो देवता अनुष्टुप्छन्दः पाद्यसमर्पणे विनियोगः ।

इस नारायण पुरुषकी महिमा इतनी है इस ब्रह्माण्ड से यह परमात्मा अतिप्रशंसित और बड़ा है । जिस कारण पृथिव्यादि जगत इस नारायण का अंश हैं । दिव्य (गोलोक) में इस त्रिपादका रूप नाश रहित है ॥१६॥

(ख) शु० सं० अ० ३१ मं० ३ ।

राभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः पादयोः [A]पाद्यं समर्पयामि ।

इससे पाद्य समर्पण करे ।

“अर्घ्यं गृहाण मम देव तथाऽम्ब मह्यं
प्रीतौ सदा प्रमुदितौ भवतां भवन्तौ ।

(A) दशोपचाराः—

पाद्यमर्घ्यं तथाऽऽचामो मधुपर्कार्चनं तथा ।
गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात् ॥”

पाद्यं “श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते ।”

पादप्रक्षालनार्थमुदकमित्यर्थः । “पाद्यं पादाय वारिणि” इत्यमरः । “पादार्घाभ्यां च” इति यत्प्रत्ययश्चेति ।

“पद्मं च विष्णुक्रान्तां च दूर्वां श्यामाकमेव च ।
चत्वारि पाद्यद्रव्याणि लब्धं वाऽपि निवेदयेत् ।”

“पाद्यादि द्रव्याभावे तु तत्स्मरन्नक्षतान् क्षिपेत्” इति ।

“आसने पञ्च पुष्पाणि स्वागते षट् चतुः फलम् ।

अष्टाङ्गमर्घ्यमुदितं मुनिभिः पुराणै
भक्त्या मया तु विहितं जलमात्रमेव” ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सवाहनाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । हस्तयोरर्घ्यं[A]सम० ।

हेम रूप्योदुम्बे[1]राब्जै[2]री[3]तिं दारु समुद्भवम् । (ताम्र[1] शङ्ख[2] पित्तल[3])
पलाशं पद्मपत्रं वास्तृतं पाद्यादिभाजनम् ।
अशक्तावर्घ्य पात्रेण पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
“हाटकं राजतं ताम्रमारकूटं मृदादि च ।
उपचारविधावेतद् द्रव्यमाहुर्मनीषिणः ॥

(A) नृसिंहपुराणे—
“आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि दूर्वाऽक्षतास्तथा ।
फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः । इति ॥

सिद्धार्थः—श्वेतसर्षपः, “सिद्धार्थस्त्वेष धवलः” इत्यमरः ।
अर्घश्च शिरसि प्रदातव्यः, “अर्घो मूर्ध्नि प्रदातव्यः” इति वचनात् ।

देवीपुराणे—
“रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधि दूर्वाकुशैस्तिलैः ।
सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्तितः” इति ॥

इससे गणेशाम्बिका को अर्घ देवे।

ॐ (E)त्रि॒पादू॒र्ध्व (ग) उदै॒त्पुरु॑ष॒ः पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुन॑ः। ततो॒ व्विष्व॒ङ् व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने ऽअ॒भि ॥ १७ ॥

पात्रलक्षणम्--

षडङ्गुलप्रविस्तारमुत्सेधो धनुरङ्गुलम्।
पृष्ठे पादसमायुक्तं चतुरङ्गुलमानतः॥

पाद्यपात्रमिति ख्यातम्। वीर० लक्ष० पृ० ६४५।

रक्तं—रक्तचन्दनम्।

एषामभावे तु—“**अभावे दधिदूर्वादेर्मानसं वा प्रकल्पयेत्।**” इति॥

(E) त्रिपादित्यस्य नारायण ऋषिः पुरुषोदेवता अनुष्टुप्छन्दः अर्घाङ्गमाचमने विनियोगः।

(ग) शु० य० अ० ३१ मं० ४।

तीन पादों (अंश) वाला परमेश्वरनारायण ब्रह्माण्ड से अलग उदय को प्राप्त हुए। फिर इस परमेश्वरका अंश इस लोक में व्याप्त हुआ। उसके वाद चेतन और अचेतन इन दोनों के प्रति नानारूप होता हुआ व्याप्त हुआ॥१७॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सवाहनाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । अर्घ्याङ्गमाचमनीयं समर्पयामि ।

---

(१) "अर्घे स्नाने तथा वस्त्रे उपवीतोपहारयोः ।
ततो ऽविराडित्यनया दद्यादाचमनीयकम्" इति ।

"अर्घ्यपात्रे क्षिपेद् दूर्वा तिलदर्भाग्रसर्षपान् ।
यवपुष्पाक्षतान् गन्धं मूर्धि तेनार्घ्यमाचरेत् ।।"

"कुशाक्षतयवव्रीहितिलमाषप्रियङ्गवः ।
सिद्धार्थकसमायुमर्घ्यद्रव्यं विशेषतः ।।"

"आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः ।
यवः सिद्धार्थकश्चैव अष्टाङ्गोऽर्घः प्रकीर्तितः ।।
आपः क्षीरं कुशाग्राणि अक्षतादधि तण्डुलाः ।
यवसिद्धार्थका दूर्वा कुङ्कुमं रोचना मधु ।।
अर्घोऽयं राजशार्दूल द्वादशाङ्गुलः प्रकीर्तितः ।

अर्घ्यपात्रलक्षणम्—

"हैमराजतताम्राणि काष्ठमृच्छैलजानि च ।
रत्नादीनि च पात्राणि शुभरेखाङ्कितानि च ।।

इससे अर्घाङ्ग आचमनीय समर्पण करे ।

"स्नाहीश दुग्धदधिसाज्यमधुप्रपूर्णैं
दर्भोदकैः ससितसौरभवस्तुयुक्तैः ।
अम्बाञ्च सावययतस्त्वमुदीक्षितोऽभूः,
स्नानार्थमेव शिवया जगतः शिवाय" ॥

अर्घ्यनैवेद्यपूजार्थं बलिदाने प्रकल्पयेत् ।
षट् त्रिंशदङ्गुलं पात्रमुत्तमं परिकीर्तितम् ॥
मध्यमं तु त्रिभागेन कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम् ।
चतुर्विंशाङ्गुलं मध्यं कनिष्ठं द्वादशाङ्गुलम् ॥
वस्वङ्गुलविहीनं तु न पात्रं कारयेत् क्वचित् ।
उत्तमं पलविंशत्या मध्यमं दशभिः पलैः ॥
हीनं पञ्चपलं कुर्यादेवमाचम्यपाद्ययोः ।
चतुष्पर्वाणि तानि स्युर्विस्तृतान्यष्टपर्वभिः ॥
पृष्ठे पङ्केरुहाङ्काणि वृत्ताराकाणि वा पुनः ।
चतुराद्याणि वा कुर्यात् । वी० लक्ष० पृ० ६६४ ।

ॐ (F) पञ्चनद्यः सरस्वती मपियन्ति (घ) सस्रोतसः। सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ १८ ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां सायुधाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । पञ्चामृतस्नानं (A)समर्पयामि ।

आचमनपात्रम्—

"द्वादशाङ्गुलविस्तारं कुक्षिमध्ये सुवृत्तकम् ।
षडङ्गुलविस्तारं पात्रमाचमनार्थकम् ॥" वीर० लक्ष० पृ० ६४५ ।

(F) पञ्चनद्य इत्यस्य याज्ञवल्क्यऋषिः अनुष्टुप्छन्दः पञ्चामृतस्नाने विनियोगः ।
समान प्रवाहवाली पाँच नदियाँ सरस्वती को ही प्राप्त होती हैं ।
वह सरस्वती ब्रह्मर्षि देश में पाच वेद रूपा प्रगट हुई ॥ १८ ॥

(घ) शु० य० अ० ३४ मं० ११ ।

(A) दुग्ध-दधि-मधु-सर्पिः शर्कराणां क्रमेण च ।
तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद् द्रव्यं प्रकल्पयेत् ॥

इस मन्त्र से पञ्चामृत समर्पण करे।

"गङ्गोदकञ्च यमुनोदकमेतदीश
गोदावरीजलमिदं सरयूवनं च।
रेवोदकं च मम भावनया प्रपूर्णं
शुद्धोदकं परिगृहाण सुनु प्रसन्नः" ॥

इति शिवपुराणे।

अथ सुरासमानि—

"गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्कराऽन्वितम्।
एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम् ॥
"क्षीरे तु लवणं दत्वा उच्छिष्टेऽपि च यद् घृतम्।
स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥
नारिकेलोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु।
गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥
पयोऽनुद्धृतसारं च ताम्रपात्रे न दुष्यति ॥"

“स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः इति ।
पलानां द्वे सहस्रन्तु महास्नानं प्रकीर्तितम् ॥
पञ्चविंशपलं लिङ्गे ह्यभ्यङ्गं कारयेदथ ।
शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन च ॥

तावता मधुना चैव दध्ना चैव ततः पुनः ।
तावतैव च क्षीरेण गव्येनैव भवेत्ततः ॥
भूयः सद्दिसरास्त्रेण पलानामैवेक्षणेण च ।
रसेन कारयेत् स्नानं भक्त्या चोष्णाम्बुना ततः ॥

पुनः शीताम्बुना तद्वत् वस्त्रपूतेन मन्त्रवित् ।
स्नापयेद्भक्तितो भूयो गन्धपात्रस्थितेन तु”
“क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव शतोत्तरम् ।
घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा ।
परिमाणन्तु पञ्चाशत् पलं स्नानमम्भसः ॥

धर्मप्रदीपे—

पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं नृप ।

ॐ (G) शु॒द्धबा॑लः स॒र्व॑शुद्धवालो (ङ) म॒णिवा॒लस्त॑ऽ आ॑श्वि॒नाः॑ श्वेताः॑ श्येता॒क्षो॑ऽरु॒णस्ते॑ रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्ण्णा॑या॒ माऽअ॑वलि॒प्ता रौ॒द्रा नभो॑रूपाः पा॒र्ज॒न्याः॑ ॥१८॥

ॐभूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं स० । स्नानान्ते (A) आचमनीयं स० ॥

इससे शुद्धोदक स्नान समर्पण करे और स्नानान्त आचमनीय समर्पण करे ।

(G) शुद्धवाल इत्यस्य प्रजापति ऋ० जगतीच्छन्दः अश्वादयो देवता शुद्धस्नाने विनि० ।

जिसके संपूर्ण शुद्धवाल मणि के समान स्वच्छ बालों वाला पशु अश्विनी कुमार देवता के हैं। सफेद रङ्गयुक्त जिसकी नेत्र और लालवर्ण पशु जीवों के मालिक रुद्रदेव के लिए हैं। और चन्द्रमा के समान स्वेत कर्ण वाले तीन पशु यम देवता के हैं, आकाश के समान नील वर्ण के तीन पशु पर्जन्य देवता वाले हैं ॥ १८॥

(ङ) शु० य० अ० २४ मं० ३ ।

“कौशेयमेतदरुणं वसनद्वयं यत्
"भक्त्याऽर्पितं, परिगृहाण समानवर्णम् ।
लम्बोदरस्य जननि त्वमदीमम्ब !
पीताऽरुणं वसनयुग्ममिदं गृहाण ।”

(A) “कर्पूरमगुरुं पुष्पं दद्याज्जातीफलं मुने ।
लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके ॥
मूलमन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम् ।
उदकं दीयते यत्तु प्रसन्नं फेनवर्जितम् ॥
आचमनाय देवेभ्यस्तदाचमनमुच्यते ।
जातीलवङ्गकङ्कोलैर्मतमाचमनीयकम् ॥
केवलं तोयमेवैतद्वासाऽन्यैरमिश्रितम् ।
एलालवङ्गगोक्षीरं कङ्कोलं च चतुर्थकम् ॥
आचम्यमिति विज्ञेयं यथा लाभं प्रगृह्य च ।

ॐ युंवासुवासाः परिवीत आगात्स
उश्रेयान् भवति जायमानः ।
तन्धीरासः कवय उन्नयन्ति
स्वाध्यो मनसा देवयन्तः (A) ।

पानीयपात्रम्—

पानीयपात्रं सौवर्णं राजतं ताम्रमेव वा ॥
वृत्तायतं सुकृतं वा भवेदायतमेव वा ।
प्रस्थमानप्रमाणाम्भः पूरयोग्यान्तरं शुभम्" इति ॥ वीर० पू० ६५५ ।

(१) जो मनुष्य सब जगह से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य सेवन से उत्तम विद्या और शिक्षा से युक्त सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ पूर्ण युवा होकर विद्या ग्रहणकर गृहस्थाश्रम में आता है वही दूसरे विद्या जन्म में प्रसिद्ध होकर अतिशय मङ्गलकारी होता है अच्छी प्रकार ध्यान युक्त मन से विचार करनेवाले विद्वान लोग उस पुरुष की उन्नति करते हैं ।

(A) ऋग्वेद ३।८।४ ।

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । वस्त्रं[१] स० । वस्त्रान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।

इससे वस्त्र सपर्पण करे ।

"कार्पासमेतदखिलं नवतन्तुसिद्धं
ग्रन्थित्रयैर्युतमहर्निशमं सधेयम् ।
अग्र्यं पवित्रमथ केश हरि प्रतिष्ठितं
यज्ञोपवीतमिदकं कृपया गृहाण ॥"

---

(१) देवताभेदेन वस्त्राणि—
"पीतकोशेयवसनं विष्णुप्रीत्यैप्रकीर्तितम् ।
रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां शिवस्य च सितं प्रियम् ॥
मलहीनं तथाऽच्छिद्रं क्षौमं कार्पासमेव च ।"
"त्रितस्तिमात्रादधिके वासोयुग्मं तु नूतनम् ॥

ॐ यज्ञोपवीतं प[2]रमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्चशुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

“स्वर्णाद्याभरणान्येव रक्तेन संयुतानि च ।

उत्तरीयलक्षणं वीरमित्रोदये—

सप्तषट्पञ्चहस्तैर्वा दैर्घ्यंस्यादौत्तरीयकम् ॥
एकहस्तप्रविस्तारं यद्वा सूर्याङ्गुलास्तृतम् ।
द्विपुच्छौबन्धयेत्तस्य धारयेद्यज्ञसूत्रवत् ॥
यद्वायवोदरास्तीर्णं दैर्घ्यं तद्यज्ञसूत्रवत् ।
उत्तरीयमितिख्यातम्”

---

(१) यज्ञोपवीतमिति प्रजापति ऋ० त्रिष्टुप्छन्दो लिङ्गोक्ता देवता यज्ञोपवीतपरिधाने वि० ।

(२) हे देव ! तुम यज्ञोपवीत को धारण करो। वह अत्यन्त पवित्र है प्रजापति से उत्पन्न और आयु

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि (B) ।

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय गणपतये नमः यज्ञोपवीतं स० । यज्ञोपवीतान्ते आचनीयं सम० ।

इससे यज्ञोपवीत देवे । उसके बाद आचमन समर्पण करे ।

"कर्पूरवासित जलेन सुघृष्टमेतं
श्रीभद्रदारुजमिमं सुविलेपनाय ।
गन्धं गृहाण शिवपुत्र शिवाय मेस्याः
हारिद्रगन्ध ग्रहणाय शिवे प्रसीद ॥"

को बढ़ानेवाला श्रेष्ठ और निर्मल है इसके धारण करने से बल और तेज हो । मैं विष्णु के यज्ञोपवीत से तुमको संयोग करता हूँ । पार० गृ० का० २ क० सू० । (B)

(१) यज्ञोपवीतं कुर्वीत सूत्राणि नव तन्तवः ।
एकेन ग्रन्थिना तन्तुर्द्विगुणस्त्रिगुणोऽथवा ॥
शुचौ देशे शुचौ सूत्रं संहताङ्गुलि मूलके ।
आवेष्ट्यषण्णवत्या तत्रिगुणीकृत्य यत्नतः ॥

ॐ त्वां[1] गन्धर्वाऽ अखनं[2]स्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः। त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्मादमुच्यत (C) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः कनिष्ठामूलगताङ्गुष्ठयोगेन गन्धमुद्रां प्रदर्श्य अनामिकया गन्धानुले[3]पनं

तन्तुदेवता--

नूतनस्य यज्ञोपवीतस्य धारणसमये नवस्तुतन्तुषु नव देवताः सम्पूज्य नवमुपवीतं धार्यतं ते नव देवा-तन्तुदेवता इत्युच्यन्ते। ते च "ॐकार सर्वदेवा इत्याहुतस्मतु देवताः"

(१) "त्वाङ्गन्धर्वा"—इत्यस्य बन्धु ऋ॰ ओषधयो देवता गन्धानुलेपनसमर्पणे विनियोगः।

(२) हे ओषधी! गन्धर्वों ने इन्द्र ने और बृहस्पति ने तुमको खोदा, और सोमराजा ने तुम्हारी सामर्थ्य समझकर आपका सेवन कर क्षयरोग से मुक्त हुए, और तुम्हारे गुणों को जानकर तुमसे अनेक रोग से छूटे।

(C) शु॰ य॰ अ॰ १२ म॰ ९८।

(३) गन्धदानेऽङ्गुलयः—

"अनामिकया देवस्य ऋषीणां च तथैव च।
गन्धानुलेपनं कार्यं प्रयत्नेन विशेषतः"

(क) सम० ।

इस मन्त्र से गन्धानुलेपन करे ।

“शाल्यादिधान्यतुष्टकण्डनजाः सुदिव्या
नापित्तता न दलिता परितोऽवत्तताः ।

पितृणामर्पयेद्गन्धं तर्जन्या च सदैव हि ।
तथैव मध्यमाङ्गुल्या धार्यो गन्धः स्वयं बुधैः ॥
मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरङ्गुल्यग्रेण पार्वति ।
दद्याच्च विमलं गन्धं मूलमन्त्रेण साधकः”
“द्रवीभूतं घृतं चैवं द्रवीभूतं च चन्दनम् ।
नार्पयेद्देवतुष्ट्यर्थं घनीभूतं तदर्पयेत्”
हस्ते धृतानि पुष्पाणि ताम्रपात्रे च चन्दनं ।
गङ्गोदकं चर्मपात्रे निषिद्धं सर्व कर्मसु” इति ।

(क) अत्र गन्धान् समर्पयामीति वहुवचनान्तः प्रयोगः ।
“गन्धो गन्धकमामोदे लेशे संवर्गवर्गयोः ।
स एव द्रव्य वचनः पुंसि भूम्नि च गद्यते ॥” इति विश्वकोशे ।

ये तण्डुला गणपते प्रणयान्मया ते
भालेऽर्पिता परिगृहाण सहाऽऽम्बया त्वम् ॥

"चन्दनागुरु कर्पूर चोरकुङ्कुमरोचनाः ।
जटामांसी मुरयुतं शक्तेगन्धाष्टकं विदुः" ॥
"चन्दनागुरुकर्पूर तमालजलकुङ्कुमम् ।
कुशीतकुष्ठसंयुक्तं शैवे गन्धाष्टकं विदुः" ॥
"चन्दनागुरुह्रीबेरकुङ्कुमं कुष्ठसेव्यकौ ।
जटामांसी मुरयुतं विष्णोर्गन्धाष्टकं स्मृतम्" ॥
सेव्यकं कुङ्कुमं कुष्टं ह्रीबेरागुरुचन्दनम् ।
जटामांसी मुरश्चेति सौरं गन्धाष्टकं मतम्" ॥

पञ्चगन्ध—

चन्दनं च प्रियङ्गुं च कर्पूरेण समन्वितम् ।
कुङ्कुमं मृगदर्पं च पञ्चगन्धं प्रकीर्तितम् ॥
(वीर० आह्नि० प्र० १५६ । वीर० पू० १५८)

सर्वगन्धः—

"चतुर्जातकर्पूर कल्लोलागुरुकुङ्कुमम् ।
लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धः प्रकीर्तितः ॥

मदनरत्ने—

"कुङ्कुमागुरुकस्तूरी कर्पूरं चन्दनं तथा ।
जातीफलमिति प्रोक्ताः सर्वगन्धाः सदा बुधैः"

हेमाद्रौ—

"कर्पूरं चन्दनं दर्पः कुङ्कुमं च समांशकम् ।
सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तं सुरवल्लभम् ॥

(मूर्तिस्नाने पूजायां चास्य विनियोगः)

वीरमित्रोदये—

"कुङ्कुमं चन्दनीशीरं मुस्तालाभंझकेसरम् ।
कर्पूरं त्रिसुगन्धं च सर्वगन्धाः प्रकीर्तिताः"

गरुड़पुराणे—

"कर्पूरं चन्दनं दपः कुङ्कुमं च चतुः समम् ।
सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तं सुरवल्लभम्"

ॐ अ[१]॑क्ष॒न्नमी॑मद[२]॑न्त॒ह्य व॑प्प्रि॒याऽ अ॑धूषत । अस्तौ॑षत॒ स्वभा॑नवो॒ व्वि प्प्रा॒नवि॑ष्ठया म॒तीषो ज्ञा॒न्वि[४]न्द्रते॒ हरी॑ (C) । ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सायुधाभ्यां सवाहनाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां[३] नमः, अक्षतान्स० ।

गन्धपात्रम्—वीरमित्रोदये—

"अर्घ्यवद् गन्धपात्रं स्यात्" अत्रार्घ्यवदित्यनेन सम्पूर्णार्घ्यपात्रलक्षणातिदेश" इति ॥

(१) अक्षन्नित्यस्य गोतम ऋ० विराट पङ्क्तिछन्दः इन्द्रो देवता अक्षतान्समर्पणे वि० ।

(२) देवता हमारे दिये हुए अक्षतों को ग्रहण कर खा चुके, क्योंकि हमारी भक्ति को स्मरण कर प्रसन्न हुए अपने शिर को कपाते हुए स्वयं दीप्ति से युक्त ब्राह्मणों ने स्तुति की, इसलिए हे इन्द्र तुम भी पितरों के साथ मिलने के उद्देश्य से हरितवर्ण के दोनों घोड़ों को रथ में जोड़ो। [अर्थात् पितरों की तृप्ति से सन्तुष्ट हो आपको आना चाहिये]।

(C) शु० य० अ ३ मं० ५१ ।

(३) "दूर्वाक्षतप्रमाणं तु विज्ञेयं तु शताधिकम्"

"अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता अभावे व्रीहयः स्मृताः ।

इस मन्त्र से अक्षत देवे।

"पुष्पाणि गन्धरसवर्णसुरूपभाञ्जि
कालोपजानि विनयेन मया ऽऽहृतानि।
लम्बोदराय जननीसहिताय तुभ्यं
भक्त्यार्पये परिगृहाण दयस्व मह्यम् ॥

ॐ [1]ओष॑धीः॒ प्रति॑मोदद्ध्[2]वं॒ पुष्प॑वतीः॒ प्र॒सूव॑रीः। अश्वा॑ऽइव स॒जित्व॑रीर्वी॒रुधः॑ पारयि॒ष्ण्वः॑ (D) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां

तदभावे च गोधूमा न तु खण्डिततण्डुलाः।
अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टा धाना भवन्ति ते।
भृष्टास्तु व्रीहयो ज्ञेया घृष्टाः खाण्डिक उच्यते" (गो० गृ० भा० ४ ८।१।) पार० २ ।

(१) ओषधीरित्यस्य भिषगृषि० ओषधयो देवता पुष्पमाला समर्पणे वि० ।

(२) हे ओषधीगण। फूलों से युक्त फल पैदा करनेवाली, अश्वों के समान त्वरा से चलनेवाली, अनेक तरह के रोग हटाने वाली, बहुत समय तक प्रसन्न रहो।

(D) शु० य० अ० १२ मं० ७७ ।

सायुधाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां–सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन पुष्पमालां समर्पयामि ।

इस मन्त्र से पुष्पमाला चढ़ावे ।

---

(१) "नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।
न दूर्वया यजेद्देवीं बिल्वपत्रैर्न भास्करम् ॥
उन्मत्तमर्कपुष्पं च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः ।
पुष्पाभावे प्रवालैर्वा तद्भावे च कोरकैः ॥
तद्भावे फलैः पत्रैस्तद्भावे तृणाङ्कुरैः ।

स्कान्दे—

केशवार्थे शिवार्थे वा यथोपन्नं तथाऽर्पयेत् ॥
अथोमुखार्पणं नेष्टं पुष्पाञ्जलिमितिं विना ।

संग्रहे—

"यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम् ॥
पुष्पंचाधो मुखं नेष्टं तुलसीबिल्वविवर्जितम् ।
तस्माच्चाधोमुखं देयं बिल्वपत्रं च शङ्करे ॥

"दूर्वा सदैव हरिता जगतः शरण्या
सौभाग्यसन्ततिकरी द्विविधामताया ।
तस्याः समस्तरसपूर्णसदङ्कुरास्ते
भक्त्याऽर्पये परिगृहाण गजाननत्वम् ॥

पुष्पमूर्ध्वमुखं योज्यं पत्रं योज्यं त्वधोमुखम् ।
फलं तु सम्मुखं योज्यं यथोत्पन्नं तथार्पयेत् । इति ।

शिवरहस्ये—

"पञ्चवक्त्रं भवेद्विल्वं पञ्चवक्त्रः स्वयं शिवः ।
पञ्चपत्रार्चितो देवो लक्षपत्रार्चितो भवेत् ॥
षट्पत्रेण तु त्रिल्वेन पूजितश्च स्वयं शिवः ।
ददाति शिवमायुज्यं सप्तपत्रार्चितस्तथा ॥
षट्पत्रैः सप्तपत्रैश्च बिल्वपत्रैः शिवोऽर्चितः ।
एकेन लक्षपत्राणां सौवर्णानां फलं लभेदिति ॥

ॐ [1]काण्डात्[2]काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि । एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च (E) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय० महागणपतये नमः दूर्वां स० ।

इस मन्त्र से महागणपति को दूर्वा समर्पण करे।

“नाना प्रसूनपरिधूननसङ्गृहीत–
मामोदपूरितदिशं नयनप्रमोदम् ।
सौगन्ध्यसात्म्यजनकं पटवासनाय
भक्त्याऽर्पितं परिगृहाण परागपुञ्जम् ॥

---

(१) काण्डात्काण्डादित्यस्य अग्नि ऋ० अनुष्टु० दूर्वेष्टिका दे० दूर्वा समर्पणे वि० ।

(२) हे दूर्वे ! प्रत्येक काण्ड (मूलैर्भूसम्बन्धं पर्व काण्डम्) से और प्रत्येक पर्व (भूम्यसम्बद्धं पर्व परुः) से तुम सब जगह से अङ्कुरवती होती हो, दूर्वा ही इस प्रकार अपने अङ्कुरवत् असङ्ख्य ऐश्वर्य पुत्र पौत्रादिकलत्रों से हमारी उन्नति करे।

(E) शु० अ० १३ मं० २० ।

ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुञ्ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमाꣳ सम्परिपातु विश्वतः ॥ (F)

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां० गणेशाम्बिकाभ्यां नमः । सौभाग्यद्रव्यं स० ।

इस मन्त्र से गणेश और अम्बिका को सौभाग्य द्रव्य देवे ।

---

(१) अहिरिवेत्यस्य पायुऋ० त्रिष्टुप्छ० हस्तघ्नो दे० सौभाग्यद्रव्यसमर्पणे वि० ।

(२) जैसे सर्प अपने देह से हस्त आदि को लपेटता है उसी प्रकार सब कर्मों को जानने वाला पुरुष पुरुषार्थी पुरुषों का सब तरह से संरक्षक बने ।

(F) शु० अ० २६ मं० ५१ । ऋ० ६।७५।१४ ।

(३) सौभाग्यद्रव्यम्—

"अथ भुक्तवते दद्याज्जलैः कर्पूरवासितैः ।
आचमनं तु ताम्बूलं चन्दनैः करमार्जनम् ॥

नैवेद्यं[A] पुरतः कृत्वा—

“लाक्षादि गुग्गुलुमयं गुडभागपूर्णं
सर्पिः समन्वितमिमं पुरतः प्रकीर्णम् ।
धूपं गृहाण कृपया मम वक्रतुण्ड
त्वं चापि देवि गिरिजे सुरभिं गृहाण ॥”

हरिद्रा कुङ्कुमं चैव सिन्दूराणि समन्वितम् ।
कज्जलं कण्ठसूत्राणि सौभाग्यद्रव्यमुच्यते ॥

उद्वर्तनम्—

“रजनी सहदेवी च शिरीषं लक्ष्मणाऽपि च ।
सहभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्तनमिहोच्यते ॥

“शालिपिष्टं च गन्धाश्म पलाशस्य तु भस्मकम् ।
शिलाचूर्णं तु संप्रोक्तमथोद्वर्तनमाहरेत्”

(A) पुरश्चर्यार्णवे—

“नैवेद्यं पुरतः कृत्वा धूपदीपौ प्रदर्शयेत्” इति केचित् । अन्ये तु पुरतो नियमो नास्ति दीप—नैवेद्ययोः क्वचित् ।

ॐ व्वसवस्त्वा धूपयन्तु गायत्रेण च्छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा धूपयन्तु त्रैष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा धूपयन्तु जागतेन च्छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वेत्वा देवा वैश्वानरा धूपयन्त्वानुष्टुभेन च्छन्दसाङ्गिरस्वदिन्द्रस्त्वा धूपयतु व्वरुणस्त्वा धूपयतु व्विष्णुस्त्वा धूपयतु (G) ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां सायु-

---

(१) (१) वसवस्त्वा (२) रुद्रात्वा (३) आदित्यास्त्वा (४) विश्वेत्वा (५) इन्द्रस्त्वा (६) वरुणस्त्वा, इत्यादीनां सिन्धुदीप ऋ० आर्ची गायत्री छ०, (७) याजुच्छ० प्राजायत्या गायत्री छ० धूप समर्पणे वि० ।

(२) हे उखे ! वसु गायत्री छन्द के तेज से अङ्गिरा के तुल्य तुम को धूपित करे, रुद्र त्रिष्टुप् छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा के तुल्य तुम को धूपित करे। रुद्र त्रिष्टुप् छन्द के प्रभावसे अङ्गिरा के समान तुमको धूपित करे। सबके हित करनेवाले विश्वेदेव देवता अनुष्टुप्छन्द के प्रभाव से अङ्गिरा के समान तुमको धूपित करे। इन्द्र तुमको, वरुण तुमको, विष्णु तुमको धूप देवे।

(G) शु० य० अ० ११ मं० ६०।

धाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, तर्जनीमूलयोरङ्गुष्ठयोगेन धूपमुद्रां प्रदर्श्य—धूपमाघ्रापयामि ।

धूपनिवेदनेऽङ्गुलयः—

(१) "कांस्यादिनिर्मिते पात्रे धूपी गुग्गुलु कर्षभाक्"

"मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वणि देशिकः ।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्"
"वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे ॥"
"न धूपं वितरेद् भूमौ नासनेन घटे तथा ।
यथा तथाऽऽधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत् ॥"
"नासाक्षिरन्ध्रसुखदः सुगन्धोऽति मनोहरः ।
दह्यमानस्य काष्ठस्य पात्रस्योत्तरस्य वा ॥
परागतस्याथवा धूपो निस्तापो यस्य जायते ।
स धूप इति विज्ञेयो देवानां प्रीतिदायकः ॥"

इस मन्त्रसे गणेशाम्बिका को धूप समर्पण करे ।

“कार्पासवर्तिगुणितं घृतपूरितं तं
ध्वान्तापहं सकलमङ्गलहेतुभूतम् ।
दीपं प्रभापटलवोधितवस्तुजातं
भक्त्याऽर्पितं प्रति गृहाण गजास्य दुर्गे ।”

“अगुरुं चन्दनं मुस्तासिल्हकं (शिला जतु) वृषणं (कस्तूरी) तथा ।
समभागे तु कर्तव्यं धूपोऽयममृताह्वय ।।”
“अगुरुशीरगुग्गुलुशर्करामधुचन्दनैः ।
धूपयेदाज्यसंमिश्रैर्नीचैर्देवस्य देशिकः ।।”
“अगुरु तगरु कुष्ठं शैलजं शर्करास्यादुभय—
घन पुरस्ताच्चन्दनै लाश्च साक्षात् ।
त्वच नरवर मुशीरं मांसिकपूरताली
सदलजलकचोरं जातियुग्धूपराज ।।”
“चन्दनोभयकुष्टं च नखसर्जः कचोरकः ।
एतद्गुडसमासेन धूपो भवति चोत्तम् ।।”

“शर्करा नखगन्धं च जटामांसी लघुः समम् ।
क्षौद्रेण सह संमिश्रं धूपं भवति चोत्तम् ॥”
“संहिकाख्यं कणं दारु सिल्हकं सागुरुं सितम् ।
शङ्खं जाति फलं श्रीशे धूपानि स्युः प्रियाणि वै ॥”
पलङ्कषा बिम्बपत्रं वचा कुष्टं हरीतकी ।
सर्षपाः सयवाः सर्पिरष्टाङ्गो धूप ईरितः ॥
“षड्भागकुष्ठं द्विभागोगुडश्च लाक्षात्रयं पञ्चनखस्य भागाः ।
हरीतकी सर्जरसः (राल) समांशी (जटामांसी) भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम् ॥
घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनिन्द्रैः ।”
“गुग्गुलुः सरलं दारुपत्रं मलवयसंभवम् ।
ह्रीबंरमगुरुं कुष्ठं गुडं सर्ज्जरसं घनम् ।
हरीतकीं नखीं लाक्षं जटामांसी च शैलजम् ॥
षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि”

धूपपात्रलक्षणं—वीरमित्रोदये—

“धूपपात्रं सरोजाभं सुवर्णादिविनिर्मितम् ।
पादयोरपि तस्य स्यादुत्तसेधश्च तुरङ्गुलः ॥

ॐ अ॒ग्निर्ज्ज्योति॒र्ज्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्य्यो॒ ज्ज्योति॒र्ज्ज्योति॒ः सूर्य्य॒ः स्वाहा॑। अ॒ग्निर्व्वर्च्चो॒ ज्ज्योति॒र्व्वर्च्च॒ः स्वाहा॒ सूर्य्यो॒ व्वर्च्चो॒ ज्ज्योति॒-

---

अनेकसुषिरं तस्य पिधानं संहृतं भवेत्।
अथवा किं विकसत्यग्न सुषिराकारशोभनम्॥
धूपपात्रविधिं वक्ष्ये पत्रद्रव्यादि पूर्ववत्''

अर्घ्यपात्रवत्,

चतुष्पञ्चरसाश्वैर्वा पात्रविस्तारमङ्गुलैः।
पात्रोत्सेधस्तदर्घः स्यादोष्ठमर्घाङ्गुमतम्'' इत्यादि।

(१) 'सूर्योज्योति' 'अग्निर्ज्योति' इति मन्त्रद्वयस्य तक्षा ऋषिः 'अग्निर्वर्च्चः सूर्योवर्च्च' इति मन्त्रस्य च प्रजापति ऋ॰ ज्योतिः सूर्यस्य जीवलऋ॰ दीप निवेदने विनि॰।

(२) (१) जो अग्निदेव हैं वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति वही अग्नि है, ऐसे अग्नि को मैं हवि देता हूँ।

(२) जो सूर्य है वही ब्रह्मज्योति है, जो ब्रह्मज्योति है वही सूर्य है, ऐसे ज्योति को मैं हवि देता हूँ।

(३) जो अग्नि है वही ब्रह्मतेज है, जो ब्रह्मज्योति है वही तेज हैं।

व॒र्च्च॒ꣳ स्वाहा॑ । ज्योति॒ꣳ सूर्य्य॒ꣳ सूर्य्यो॒ ज्योति॒ꣳ स्वाहा॑ (I) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां सवाहनाभ्यां सायुधाभ्यां सशक्तिकाभ्यां गणेशाम्बिकाभ्यां नमः मध्यमाङ्गुष्ठयोगेन दीपमुद्रां प्रदर्श्य-दीपमादर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ।

---

(४) जो सूर्य है वही ब्रह्मतेज है, जो ज्योति है वही तेज है ।

(५) जो ज्योति है वही सूर्य है, जो सूर्य है वही ब्रह्मज्योति है ।

(I) शु० य० अ० ३ मं० १० ।

दीपमादर्शयामि —पुरश्चयार्णवे—

“दीर्घाज्ञानमहाध्वान्तहङ्कार परिवर्जनात् ।
परतत्व प्रकाशाच्च दीप इत्यभि धीयते ॥
तैजसं राजतं लौहं मार्तिक्यं नारिकेलजम् ।
तृणराजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते ॥

इस मन्त्र से दीप देवे, और हस्तका प्रक्षालन करे ।

"अन्नं चतुर्विधमिदं कृतमोदकं च
पक्वघृतंविविधमिष्टफलैः समेतम् ।
एकं गृहाण गणनायक मोदकं त्वं
शेषान् द्विजातय इमान् प्रददे प्रसीद ।"

वर्तिः श्वेताऽथवा रक्ता न पीता नाऽसिताऽपि च ।
परो वा नूतनः शुक्लो वर्तिकायां प्रशस्यते ॥
वर्त्या कर्पूर गर्भिण्या सर्पिषाज्ञात्मजान वा ।
आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः ॥
दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न पृष्ठतः ।
दीप हर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ।
दीप निर्वापणात्पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियः ।
अचिरेणैव कालेन पिण्डनाशो भवेत् ध्रुवम् ॥
नैव निर्वापयेद्दीपं लक्ष्मीनाश करो यतः ।"

“सप्तवर्त्यादि संयुक्तो दीपः स्याच्चतुरङ्गुलः ।
कर्पूरादियुता वर्त्ति र्नवकार्पासनिर्मिता ॥
शालिपिष्टा वदानाया सप्तधा वर्तयेन्नरः ।
कार्या ताम्रादिपात्रे तत्प्रीतये हरिमेधसः ॥

दीपपात्रलक्षणं वीरमित्रोदये—

दीपपात्रं तथा नालमध्ये कुमुदकुण्डलम् ।
वर्त्याधारशतेनापि युक्तमष्टाभिरेव च ॥
विंशत्या चाष्टभिश्चैव द्वाभ्यां वा दशभिश्च वा ।
अष्टभिर्वा यथाशक्ति कल्पयच्छिल्प वित्तमः ॥
दीपपात्रविधिं वक्ष्ये पलद्रव्यादिरर्घ्यवत् ।
एकपत्रं चतुष्पत्रं षड्दलं चाष्टयत्रकम् ॥
तत्रैकपत्रं मध्ये तु निम्नाश्वत्थदलाकृति ।
चतुष्पत्रं चतुर्दिक्षु मध्यस्थानिम्न कर्णिका ॥
षड्दलेऽष्टदलं तद्वदुपपत्रसमन्वितम् ।

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्य नमीवस्य शुष्मीणः । प्र प्र दातारन्तारिष ऽउर्ज्जन्नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे (J) ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां० गणेशाम्बिकाभ्यां नमः नैवेद्यं[14] निवेदयामि । अनामा-

---

(१) अन्नपते इत्यस्य नावानेदिष्ट ऋ० उपरिष्ठाद्दती छन्दः अग्नि दे० नैवेद्यसमर्पणे वि० ।

(२) अन्नके स्वामी परमात्मा । रोग रहित बल कारक अन्न को हमलोगों के लिए दीजिये, हमारे भृत्यों (पुत्रादिकों को) और गौ आदि पशुओं के लिए भी बल वाला अन्न दीजिये ।

(J) शु० य० अ० ११ मं० ८३ ।

(१४) "निवेदनीयं यद् द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा ।
तद्भक्ष्यार्हं पञ्चविधं नैवेद्यमिति कथ्यते ॥
भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चकम् ।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्योभ्यो निवेदयेत् ॥"
"तैजेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा ।
पात्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रे ऽथवा पुनः ॥

मूलयोरङ्गुष्ठयोगेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य–ग्रासमुद्राः प्रदर्शयेत्–तद्यथा–अङ्गुष्ठप्रदेशिनीमध्यमाभिः–ॐ प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥ अङ्गुष्ठमध्यमानामिकाभिः–ॐ अपानाय स्वाहा ॥ २ ॥ अङ्गुष्ठानामिकाकनिष्ठाभिः–ॐ व्यानाय स्वाहा ॥ ३ ॥ कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैः–ॐ समानाय स्वाहा ॥ ४ ॥ साङ्गुष्ठाभिः सर्वाभिः–ॐ उदानाय स्वाहा ॥ ५॥ इति-

---

यज्ञदारूमये वापि नैवेद्यं स्थापयेद्बुधः ।
सर्वाभावे च मोहमये (मृन्मये) स्वहस्तघटिते यदि ॥"
"नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः ।
दक्षिणं तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत् ॥
अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयं च सुरोपमम् ।
हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ॥
नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा ।

प्रदर्श्य मध्येपानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्प०। करोद्वर्तनार्थे चन्दनं सम०।

नैवेद्यवस्त्रलाभे तु फलानि च निवेदयेत्।
फलानामप्यभावे तु तोयान्यपि निवेदयेत्॥" इति॥

नैवेद्यमुद्राः—

"निवेदयामि भवते जुषाणेदं हविर्हरे।
षोडशार्णमिति प्रोच्य ग्रासमुद्रां प्रदर्शयेत्॥१॥
वामहस्तेन पद्मानां प्राणाद्या दक्षिणेन तु।
ता पूर्वान् जपन्मुद्राः प्राणादीनां प्रदर्शयेत्।" इति।
"अङ्गुल्यः कुटिलीभूता विरलाग्राः परस्परम्।
ग्राममुद्रा समाख्याता सव्यपाणौ नियोजिता॥
"नैवेद्य मुद्रामङ्गुष्ठकोनिष्ठाभ्यां प्रदर्शयेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्मुद्रा प्राणश्च कीर्तिता॥
तर्जनी मध्यमाङ्गुष्ठैरपानस्य तु मुद्रिका।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरुदानस्य तु सा स्मृता॥

इस मन्त्र से गणेशाम्बिका को नैवेद्य समर्पण करे।

"यद् यत्फलं सुविमलं मधुरं सुपक्वं
तच्छ्रीफलादि तव तुष्टय अर्पितं च।
तेन प्रसीद गणनायक जन्मलाभं
दुर्गेऽत्र देवि वरदे कुरु तं फलाढ्यम्।"

तर्जन्य नामा मध्याभिः साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्थिका।
सर्वाभिः सा समानस्य प्राणादन्येषु योजिता॥
सारपूर्वां जपेन्मुद्रां प्राणादीनां प्रदर्शयन्, इति॥

नैवेद्यपात्रम्—वीरमित्रोदये—

"नवेद्यपात्रं वक्ष्यामि केशवाय महात्मने।
हैरण्यं राजतं ताम्म्रं कांस्यं मृन्मयमेव वा॥
पालाशं पद्मपत्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम्।
हविर्द्रव्यप्रमाणानि वृत्तानि परिकल्पयेत्॥
पात्रं पलशतं श्रेष्ठं तदर्धं मध्यमं स्मृतम्।
तदर्धमधमं ज्ञेयं पात्रं सङ्ख्येति कीर्तिता॥

ॐ याः फ॒लिनी॒र्याऽ अ॑फ॒लाऽ अ॑पु॒ष्पा या॑श्च पु॒ष्पिणीः । बृह॒स्पति॑प्प्रसू॒तास्तानो॑ मु॒ञ्चन्त्वꣳ ह॑सः (K) ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवाराभ्यां० गणेशाम्बिकाभ्यां नमः ^A^फलानि समर्पयामि ।

इस मन्त्र से गणेशाम्बिका को फलादि समर्पण करे ।

“ताम्बूलमर्पितमिदं सुधया समेतं
जाती फलेन सदमनेन लवङ्गकेन ।

---

(१) याः फलिनीत्यस्य भिषग् ऋ० विराडनु० ओषधिदे० फलसम० वि० ।

(२) जो दवा (औषधी) फलवाली है जो औषधी फल रहित है जो फूल (पुष्प) रहित है जो ओषधी फूल देनेवाली है वे सब औषधी प्रजा का पालन करनेवाला परमात्मा से हमको पाप से दूर करे ।

(K) शु० य० अ० १२ म० ६।

(A) “श्वेतपत्रं च चूर्णं च क्रमुकाणां फलानि च ।
नारिकेलफलोपेतं मातुलुङ्ग समायुतम् ॥
एलालवङ्गकङ्कोलैर्मुखवासं प्रचक्षते ।

कर्पूरपूगपरिपूरितमेव देव
तुण्डेन चर्व गिरिजे च गृहाण मोदात् ।।”

“उरसा मनसा दृष्ट्या शिरसाऽपि श्रियाऽपि च ।
पद्भ्यां कराभ्यां वाचा च प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः”
“पादौ शिरस्तथा हस्तौ निकुञ्च्य मुकुला कृतौ ।
मनोबुद्ध्यभिमानैश्च प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः”
“पद्भ्यां कराभ्यां शिरसा पञ्चाङ्गा प्रणतः स्मृता ।
दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा ।।
मनसा वचसा भक्त्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।
“प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्र शिराः पुनः ।
दर्शयन् दक्षिणं पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः ।।
सप्त त्रिर्वा वेष्टयेद्यत्तत्प्रदक्षिणमुच्यते”
एका चण्ड्याः रवेः सप्त तिस्रोदद्याद्विनायके ।।
चतस्रो विष्णवेदेयाः शिवस्यार्द्धं प्रदक्षिणम्”
“पदं पदान्तरे यस्य करौ चलनवर्जितौ ।।

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरि० गणेशाम्बिकाभ्यां नमः ताम्बूलं सम०। (क)

इस मन्त्र से गणेशाम्बिका को ताम्बूल समर्पण करे।

"द्रव्यं हिरण्यरजतादि यथा स्वशक्ति
गन्धादि पूजितमिदं बहुकार्यमूल्यम्।
भक्त्याऽर्पयामि तव पाद सरोज युग्मे
शान्तिं प्रयच्छतु भवान् भुवनेश्वरी च॥"

स्तुतिर्वाचि हृदि ध्यानं चतुरङ्ग प्रदक्षिणम्"
अकाले दर्शनं चैव हन्ति पुण्यं पुरा कृतम्॥

(क) ताम्बूलपात्रलक्षणं वीरमित्रोदये—

"कल्पयेन्नाग लतिकादलपात्रं च रैमयम्।
अरत्निमानविस्तीर्णं कारयेद्वा यथा बलम्॥

रैमयम्—सौवर्णमित्यर्थः वीर० पू० पृ० ६५५।

ॐ (A) हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेक (B) ऽआसीत् । सदाधार पृथिवीन्द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्विधेम। (क्ष)

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाभ्यां सपरिवा० गणेशाम्बिकाभ्यां नमः कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे द्रव्य दक्षिणां (C) स० ।

इस मन्त्र से गणेशाम्बिका को दक्षिणा द्रव्य देवे ।

(A) हिरण्यगर्भ इत्यस्य हिरण्यगर्भऋ० आर्षीत्रिष्टु० प्रजापति दे० दक्षिणा सम० वि० ।

(B) जिसके गर्भ में हिरण्यरूपी तेजस्वी पदार्थ हैं वह परमेश्वर सृष्टि के पूर्व था । वह संसार का एक पति (स्वामी) था उसने भूमि और लोक को धारण किया । उस प्रजापति के निमित्त हवि के द्वारा हम सब उपासना करते हैं ।

(क्ष) ऋ० १०।१२।१। य० अ० १३। मं० ४।

(C) दक्षिणा—

ब्र० वै०—

"कृत्वा कर्म च तस्यैव तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम् ।
तत्कर्म फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने ॥
मुहूर्ते समतीते तु भवेच्छतगुणा च सा ।"

निःशेषदीप्तिनिलयंघृतवर्तियुक्तं (D)
दीपं सुरेशि ! परितस्तव रोचयामि ।

(D) नीराजनम्—

“पञ्च नीराजनानि कुर्यात्, प्रथमं दीपमालया ।
द्वितीयं सोदकब्जेन तृतीयं धौतवाससा ॥
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम् ।
पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि ॥
आदौ चतुष्पादतले च विष्णोर्द्वौ नाभिदेशे मुखमण्डलैकम् ।
सर्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारानारार्तिकं भक्तजनास्तु कुर्यात् ॥”

नीराजनपात्रम्—

नीराजनक्रियापात्र्यो हेमादिद्रव्यनिर्मिताः ।
त्रितालायतविस्तीर्णा वृत्तमध्यसरोरूहाः ॥
नव वा सप्त वा पञ्च तिस्त्रावेकावृतिर्भवेत् ।

निशेष राजनकरं मम मानसस्य
भूयाच्छिवेः करुणया तव सात्मजायाः ॥

इस मन्त्र से गणेशाम्बिका को नीराजन समर्पण करे।

"लम्बोदरोसि सुमुखः कपिलो गजास्यः
धूम्रध्वजो गणपतिर्विकटैकदन्तः ।
मातङ्गकर्णक विनायक विघ्ननाश !
हे भालचन्द्र । मम पुष्पचयं गृहाण ॥

ॐ (E) (ख) य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्म्मा॑णि (F) प्रथ॒मान्या॑-

---

(E) पुष्पाञ्जलि—वैदिकं मन्त्रमुच्चार्य दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।

(ख) यज्ञेनत्यस्य नारायण ऋ० बाह्यष्णिक्छ० यज्ञो देवता पुष्पाञ्जलि स० वि० ।

(F) देवता मानस यहाँ से उस यज्ञपुरुष प्रजापति की पूजा की। जिस पुरातन साध्यदेवता उस दुःख रहित लोक को ही उस नारायण पुरुष के भक्त महात्माओं ने प्राप्त किया।

सन् । तेहनाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (त्र)

इससे गणेशाम्बिका को पुष्पाञ्जलि समर्पण करे ।

जन्मान्तरीय सुकृतानि फलन्तु मेऽद्य
सर्वे च दुष्कृत गणाविलयं व्रजन्तु ।
देव त्वदीय परिचङ्क्रमेणेन सर्वं—
कार्याणि सन्तु सफलानि नवोपि दुर्गे ॥

इससे गणेशाम्बिका की प्रदक्षिणा करे ।

लम्बोदरोसि सुमुखः कपिलो गजास्यः
धूम्रध्वजो गणपतिर्विकटैकदन्तः ।
मातङ्गकर्णक विनायक विघ्ननाश !
हे भालचन्द्र ! मम पुष्पचयं गृहाण ॥

इससे गणेशाम्बिका को पुष्पाञ्जलि देवे ।

(त्र) शु० य० अ० ३१ मं० १६ ।

विशेषार्घः—एकस्मिन् जलपात्रे चन्दनाक्षतपुष्पदूर्वाफलादि कृत्वा (नारिकेलाद्यतम फलस्य च)

"ॐ रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष रक्ष त्रैलोक्य रक्षक ।
भक्तानामभयं कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥१॥
द्वैमातुर कृपासिन्धो षाण्मातुराग्रज प्रभो ।
वरद त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थक ।
अनेन सफलार्घेण फलदोऽस्तु सदा मम" ॥ इति ।

सिद्धिबुद्धि सहिताय साङ्गाय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय सपरिवाराय ॐ महागणपतये नमः विशेषार्घं (सफलार्घ्यं) समर्पयामि ।

इत्यर्घं दत्वा पूर्ववदर्घपात्रे गन्धादि कृत्वा—

"रूपं देहि जयं देहि सौभाग्यं देहि देवि मे ।
पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे"

"अम्बिकायै नमः विशेषार्घं समर्पयामि"

इत्यर्घं दत्वा प्रार्थयेत्—

ॐ "विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय
लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय ।
नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय
गौरीसुताय गणनाथ नमो नमस्ते ॥१॥
भक्तार्तिनाशनपराय गणेश्वराय
सर्वेश्वराय शुभदाय सुरेश्वराय ।
विद्याधराय विकटाय च वामनाय
भक्त प्रसन्नवरदाय नमो नमस्ते ॥२॥
नमस्ते ब्रह्मरूपाय विष्णुरूपाय ते नमः ।
नमस्ते रुद्ररूपाय करिरूपाय ते नमः ॥३॥
विश्वरूपस्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मचारिणे ।
भक्तप्रियाय देवाय नमस्तुभ्यं विनायक ॥४॥

लम्बोदर नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥५॥
त्वां विघ्न शत्रुदलनेति च सुन्दरेति
भक्तप्रियेति सुखदेति फलप्रदेति ।
विद्या प्रदेत्यघहरेति च ये स्तुवन्ति ।
तेभ्यो गणेश वरदो भव नित्यमेव ॥६॥

अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेताम् ।

अथवा गणेशपूजनं कृत्वाऽम्बिका पूजनं विधेयम् । विसर्जनं तु सर्व कर्मसमाप्त्यन्ते भवतीति ।

इति गणेशार्चनम् ॥

---

(१) रुद्रकल्पद्रुमे—वक्रतुण्ड इति वा ।

समाचारात् कृताञ्जलिना देशकालौ सङ्कीर्त्यऽऽमया चरिते गणपति पूजनौ यन्यूनं तत्परिपूर्णमस्तु । अस्तु परिपूर्णमिति प्रतिवचनम् एवमनेन गणपतिपूजनेनाचमुककर्मणो निर्विघ्नफलसिद्धिस्तु—इत्युक्ते इति प्रतिवचनं निर्विघ्न फलसिद्धि इति रुद्रकल्पद्रुमकारः ।

अथ वरणम् - अस्मिन् कर्मणि त्वमाचार्यो भव । भवामि इति प्रत्युक्ते—कृताञ्जलिः— “स्वागतं भो द्विजश्रेष्ठाः मदनुग्रहकारकाः । इदमर्घ्यमिदं पाद्यं भवद्भिः प्रति गृह्यताम्” इत्युक्त्वा “अस्मिन् कर्मणि एतत्तेऽर्घ्यम्” अस्मिन् कर्मणि एतत्ते पाद्यम्” इति पादप्रक्षालनं कृत्वा तज्जलमभिवन्द्य द्विराचामेत् । विप्राश्च पादप्रक्षालनोत्तरं द्विर्द्विराचामेयुः । ततो विप्रस्य दक्षिणं जान्वालभ्य “ऋत्विग्वरणनिमित्तमर्चयिष्ये” इत्युक्त्वा चन्दनाक्षतपुष्पमालाभिरभ्यर्च्य साक्षतहस्तः कराभ्यां वरणसामग्री (वरणनिष्क्रय) मादाय—अमुकगोत्रोऽमुकप्रवरोऽमुकशाखाध्यायी अमुकशर्मा (ट) (वर्मा, गुप्तोऽहं) यजमानोऽहममुकगोत्रममुक-

---

(२) अपरे तु हेमाद्रौ महार्णवे निर्णयसिन्धौ शान्तिरत्ने नारायणभट्टपद्धतौ च वेदपारायणस्य महारुद्राङ्गत्वेननादर्शनात् निर्मूलत्वाच्च नैतदाचरन्ति । यत्तु गणेशगायत्रीजपार्थं अघोरमन्त्रजपार्थं च त्वामहं वृणे, वास्तुमन्त्रजपार्थं क्षेत्रपालादिमन्त्रजपार्थं च इत्येवमाचरन्ति तन्निर्मूलम् । इति रुद्रकल्पद्रुमकारः ।

(ट) अभिषेकपात्रम्—वीरमित्रोदये—

अरत्निमात्रविस्तारं मध्येऽष्टदलसंयुतम् ।
प्रतिपद्म दलं मध्ये सुषिराणि शतं भवेत् ॥
अष्टोत्तरशते भूयः पर्यन्तदलमध्यमा ।
खचितं च महारत्नैरेवं धारासहस्रकम् ॥

प्रवरं यजुर्वेदाध्यायिनेमुकशर्माणमस्मिन् अभिषेकात्मक, (ठ) महारुद्र, अतिरुद्र, लघुरुद्र कर्मणि आचार्यं त्वामहं वृणे" ।

अयमर्थः अरत्निमात्रविस्तीर्णं पात्रं कुर्यान्तन्मध्येमेऽष्टदलं कार्यम् । तदेकैकदले शतं सुषिराणि। एवमष्टदले सुषिराणामष्टशती संजायते भूयः अष्टोत्तरशते सम्पादितसुषिराष्टशत्युत्तरशते उपरितनं शतद्वयंछिद्राणामष्टसुपर्यन्तदलेषु पञ्चविंशति सङ्ख्यया कार्यम्। एवं सहस्रसुषिरे रत्नखचितैधीरासहस्राष्टकं भवति। धाराष्टकेन वा युकमभिषेकाय कल्पयेत्।

(ठ) महारुद्रादौ रुद्र–सङ्ख्या–रुद्रकल्पद्रुमे—

रुद्रकल्पद्रुमे—रूपं रुद्रो रुद्री महारुद्रो अतिरुद्रश्चेति—

"शृणुष्व भो महाप्राज्ञ ! रुद्र भेदान्वदामि ते ।
रुद्राः पञ्चविधाः प्रोक्तादैशिकैरुत्तरोत्तम् ॥ १ ॥
साङ्गस्त्वाद्यो रूपकाख्यः सशीर्षो रुद्र उच्यते ।
एकादश गुणैस्तद्वद्रुद्रीसंज्ञो द्वितीयकः ॥ २ ॥
एकादशभिरेताभिस्तृतीयो लघुरुद्रकः ।
लध्वेकादशभिः प्रोक्तो महारुद्रश्चतुर्थकः ॥ ३ ॥
पञ्चमः स्यान्महारुद्रैरेकादशभिरन्तिमः ।
अतिरुद्रः समाख्यातः सर्वेभ्यो ह्युत्तमोत्तमः" इति ॥ ४ ॥

महार्णवे शातातपोऽपि—

"षडङ्गैकादशी रुद्रो रुद्रैकादशरुद्रतः ।
एकादशभिरेताभिर्महारुद्रस्तु कथ्यते ॥
एकादशमहारुद्रैरतिरुद्रः इतीरितः" इति ।

अत्र के अधिकारिणः—

त्रैवर्णिका एव । स्त्रीशूद्रानुपनीताद्यास्तेषां वैदिक मन्त्रेषु अध्ययनम्, अध्यापनामेन अनधिकारः । पुराणोक्तशिवपूजने अधिकारः रागतः प्राप्त एव ।

"अकोपः श्रद्धानश्च निन्दादम्भ विवर्जितः ।
शूद्रान्नेन संस्पृष्टस्तस्य ते फलदोऽनघ ॥
यश्च ब्रूते सदा सत्यं न वाचेति यथेष्टतः ।
ताने वा शृण्वतः शूद्राँस्तस्य ते फलदः सदा ॥
परस्वं परदारांश्च कामयेत् हरेत्तु यः ।

ब्राह्मणपरीक्षा।

"आहूय ब्राह्मणान् सर्वान् पूर्वमेव परीक्षितान् ।
रुद्रसंख्यास्तु कर्त्तव्याः स्वशक्त्याऽपेक्षयाऽथवा ।
एको वास्याद्विधानज्ञा कुर्याद्वा सर्ववित्स्वयम् ।

महार्णवे तु—

युग्मश्च ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ ते वेदपारगाः ॥
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिवोऽथवा ।

अतो यत्र कर्म अति वेगेन निर्वाघृतो भवति तत्र यावद्भि ऋत्विग्भिः कर्मवेगेन सिद्धयति तावतो वृणीते इत्युक्तम् । नारायणभट्टास्तु—रूपके एक एव । रुद्री लघुरुद्र महारुद्रष्वेकः । एकादशो वा । अतिरुद्रे एकादश एकविंशत्युत्तरं शतं वा । प्रतिनिधिपक्षे त्वनियत्र इति सांप्रदायिकाः । स्वस्याशक्तौ तु स्वप्रतिनिधित्वेन जपहोमाभिषेकार्थान् ब्राह्मणान् वृणुयादित्युकं भट्टैः । सति सामर्थ्यें तु त्रयम् त्विङ्निरपेक्षः कुर्यात् ।

सूतकेविचारः—

“विवाहव्रतयज्ञेषु श्राद्धे होमेर्चने जपे ।
आरब्धे सूतकं न स्यात् अनारब्धे तु सूतकम् ॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पोव्रतसत्रयोः ।
नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धपाकपरिक्रिया ॥
वरणं मधुपर्कान्तं ज्ञेयमित्यर्थः ।

वीरमि०—

आढकापरिणाम्भः पूरयोग्यं महाबिलम् ।

आचार्योऽपि "वृतोऽस्मि" इत्युक्त्वा ।

[३]व्र॒तेन॑दी॒क्षामा॑प्नोति[४] दी॒क्षया॑प्नोति॒ दक्षि॑णाम् । दक्षि॑णा श्र॒द्धामा॑प्नोति श्र॒द्धया॑ स॒त्यमा॑प्यते ॥

इति मन्त्रं पठेत् । ततो—

यदा॑[५] बध्नन्दाक्षाय॒णाहिर॑ण्यꣳ[६] श॒ताना॑ कायसुमन॒स्यमा॑नाः । तन्म॒ऽ आब॑ध्नामिश॒त शा॑रदा॒या यु॑ष्मा॒ञ्जर द॑ष्टि॒ र्यथास॑म् ॥ (ञ)

इति मन्त्रेण समाचारात् रक्षासूत्रबन्धनं (कङ्कण बन्धनं) दक्षिणहस्ते कुर्यात् ।

---

(३) शु० य० अ० १६ मं० ३० ।

(४) व्रत से दीक्षा को प्राप्त होता हैं, दीक्षा से दक्षिणा को प्राप्त होता है दक्षिणा से श्रद्धा को प्राप्त होता है, और श्रद्धासे ज्ञान प्राप्त होता है ।

(५) शु० य० अ० ३४ मं० ५२ ।

(६) दक्षवंशोत्पन्न ब्राह्मणों ने जो सुवर्ण को बहुत सैन्यवाले राजा के लिये बाँधा । और अच्छी प्रकार मन को करते भए उस सुवर्ण को दीर्घायु के लिए मेरे में बाँधता हूँ ।

(ञ) "ॐ गणाधिपं नमस्कृत्य नमस्कृत्य पितामहम् ।

विष्णुं रुद्रं शिवं देवीं वन्दे भक्त्या सरस्वतीम ॥ १ ॥
क्षेत्राधिपं नमस्कृत्य दिननाथं निशाकरम् ।
धरणीगर्भसम्भूतं शशिपुत्रं बृहस्पतिम् ॥ २ ॥
देवाचार्यं नमस्कृत्य सूर्यपुत्रं महाग्रहम् ।
राहुं केतुं नमस्कृत्य यज्ञारम्भे विशेषतः ॥ ३ ॥
शक्राद्या देवताः सर्वा नमस्कृत्य मुनींस्तथा ।
गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदं मुनिसत्तमम् ॥ ४ ॥
वसिष्ठं मुनि शार्दूलं विश्वामित्रं महामुनिम् ।
व्यासं कविं नमस्कृत्य सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५ ॥
विद्याधिका ये मुनयः आचार्याश्च तपोधनाः ।
सर्वे ते मम यज्ञस्य रक्षां कुर्वन्तु विघ्नतः ॥ ६ ॥
प्राचीं रक्षतु गोविन्द आग्नेयीं गरुड़ध्वजः ।
यामीं रक्षतु वाराहो नारसिंहस्तु नैर्ऋतीम् ॥ ७ ॥
केशवो वारुणीं रक्षेद्वायवीं मधुसूदनः ।
उदीचीं श्रीधरो रक्षेदैशानीं तु गदाधरः ॥ ८ ॥

ऊर्ध्वंगोवर्धनधरो ह्यधस्ताद्धरणीधरः ।
एवं दशदिशो रक्षेद्वासुदेवो जनार्दनः ॥ ९ ॥

तथाऽग्रे रक्षताशङ्खः पृष्ठे पद्मं तथोत्तमम् ।
वामपार्श्वे गदा रक्षेद्दक्षिणे तु शुदर्शनः ॥ १० ॥

उपेन्द्रः पातु ब्रह्माणमाचार्यं पातु वामनः ।
अच्युतः पातु ऋग्वेदं यजुर्वेदमधोक्षजः ॥ ११ ॥

कृष्णो रक्षतु सामानि ह्यथर्वं माधवस्तथा ।
उपविष्टाश्च ये विप्रास्तेऽनिरुद्धेन रक्षिताः ॥ १२ ॥

यजमानं सपत्नीकं पुण्डरीक विलोकनः ।
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं तत्सर्वं रक्षताद्धरिः ॥ १३ ॥

यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा ।
स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु" ॥ १४ ॥

इति पठित्वा देवताभ्यो रक्षासूत्रं समर्प्य ब्राह्मणहस्तेषु आबध्य तिलकं कुर्यात् । ब्राह्मणाश्च यजमान हस्ते तत्कुटुम्बेषु च रक्षां बध्नीयुस्तिलकं च कुर्युः ।

ततः आचार्यं प्रार्थयेत्—

ॐ (A) बृहस्पते ऽ अतियदर्य्यो ऽअर्हाद्द्युमद्विभातिक्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छ वंस ऽऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।

(२) "आचार्यस्तु यथा स्वर्गे शक्रादीनां बृहस्पतिः ।
तथा त्वं मम यज्ञेऽस्मिन्नाचार्यो भव सुव्रत ॥ १ ॥

(A) शु० य० अ० २६ मं० ३ ।

(१) हे बृहस्पते । (बहुत देवताओंके पालक) बहुत प्रकार का धन हम लोगों को दो । जो धन लोकों में बहुत प्रकार से शोभित हो । उस धन से यज्ञ करे, और धन को अपने बल से देवताओं का या धन से धन पैदा कराओ । उपयामपात्र से गृहीत हो बृहस्पति के अर्थ के लिए तुमको ग्रहण करता हूँ । यह तुम्हारी योनि स्थान है । बृहस्पति के लिए तुमको सादन करता हूँ ।

(२) अभिषेकादौ वर्ज्यब्राह्मणाः—

काणः कुष्ठिर्जडः क्रोधी पुनर्भूः श्यावदन्तकः ।
निन्दितः पतितः क्लीवः कुदेशी वेदवर्जितः ।

हीनाङ्गोप्यधिकाङ्गो वा छिन्नाङ्गः कर्कशः शठः ।
मागधो वामनः कृष्णो द्विजो वर्ज्यो जपादिषु" इति ।

अक्षतायां क्षतायां वोत्पन्नः पुनर्भूः । छिन्नाङ्गो विद्धप्रजननः अङ्गान्तरछिन्नोऽपि । कृष्णोऽत्यन्तं कृष्णवर्णः ।

कालिकापुराणे—

"त्रैवर्णिकोऽधिकारीस्यात् नैव सर्वाधिकारिकम् ।
नाधिकारो हि शूद्राणां यतः कर्मणि वैदिके ॥
नैवास्ति वेदवाक्यस्य श्रवणेऽप्यधिकारिता ।
तस्य स्यादधिकारित्वं कथं कर्मणि वैदिके ॥
अतो रुद्राद्यनुष्ठाने सर्वस्मिन्नपि वैदिके ।
त्रैवर्णिकोधिकारी स्यान्नशूद्रादिरिति स्थितिः" ॥

जपधर्मानाह—योगीयाज्ञवल्क्यः—

"विना शब्दं जपो यस्तु चलजिह्व द्विजच्छदः ।
उपांशुं तं जपं प्राहुर्मनसा मानसं बुधाः ॥
ध्यायेत मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत् ।
न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्" ॥

"मानसः शान्तिकनप उपांशुः पौष्टिकः स्मृतः ।
स शब्दश्चाभिचारश्च जपस्तु त्रिविधः स्मृतः" ॥
न च क्रमन्नच हसन् न पार्श्वमवलोकयन् ।
नापाश्रितो न जल्पँश्च न प्रावृतशिरास्तथा ॥
जपकाले न भाषेत व्रतहोमादिकेषु च ।
एतेष्वेवावसक्तस्य यद्यागच्छेद् द्विजोत्तमः ॥
अभिवाद्य ततो विप्रं योगक्षेमं च कीर्तयेत् ।
स्त्रीशूद्रपतितांश्चैव पाखण्डिनो रजस्वलाम् ॥"
यदि वाग्यमलोपः स्यात् जपादिषु कथंचन ।
व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वाविष्णुमव्ययम् ॥
तूष्णीमासीनश्च जप श्चाण्डालपतिकादिकान् ।
दृष्ट्वा तीर्थमुपस्पृश्य तत्र स्नात्वा पुनर्जपेत् ॥
आचम्य प्रयतो भूत्वा जपेदशुचिदर्शने ।

आचार्यस्त्रिविधः—

ब्रह्मविद्योपनिषद् ४२ मन्त्र ५१, ५२ पृ० ५. ७ ।

"चोदको बोधकश्चैव मोक्षदश्च परः स्मृतः ।

इत्येषां त्रिविधो ज्ञेयः आचार्यस्तु महीतले ॥
"उपनियददद्वेदमाचार्यः स उदाहृतः"

याज्ञ० स्मृ० आचा० श्लो० ३४ पृ० ६ ।

"आचार्यो नाम वेदान्तविचारेणाप्त वेदनः ॥

स्कन्द० पु० सूतसंहि० मुक्तिखं० अ० ५ ।
शिवविष्णुसं० पृ० २८४ ।

केनोपनिषद ५६ पृ० ६७३ ।

"आचार्यो वेदसम्पन्नो विष्णुभक्तो विमत्सरः ।
योगज्ञो योगनिष्ठश्च सदा योगात्मकः शुचिः ॥
गुरुभक्ति समायुक्तः पुरुषज्ञो विशेषतः ।
एवं लक्षणसम्पन्नो गुरुरित्यभिधीयते ॥
गुशब्दस्त्वन्धकारः स्याद् सशब्दस्सन् निरोधकः ।
अन्धकार निरोधत्वात् गुरुरित्यभिधीयते ॥

ब्रह्मव० ७ श्लो० ७ पृ० २८६ ।

"मन्त्र व्याख्या कृदाचार्यः" ।

"अग्निहोत्री तपस्वी च वेदमध्यापयेच्च यः ।

सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥"

व्याससमृ० अध्या० ४ श्लो० ४३ ।

"उपनियतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं स रहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥"

काशी० पू० अ० ३६ । श्लो० ५३ पृ० १७६ ।

अत्र देयवस्तूनि—परशुरामे—

"भाजनं भाजनाधारश्छत्रोपानत्कमण्डलुः ।
आसनं वसनं मुद्रा कर्णभूषोपवीतकम् ।
एतद्दशविधं देयं पदं वरणसिद्धये ।
पद्माभावेऽथ ताम्बूलं दत्वा किञ्चित्प्रकल्पयेत् ॥
वरणाङ्गोपहाराणां पात्राङ्गुलियवाससाम् ।
सर्वेषां निष्क्रयद्रव्यं यथोपपन्नमृत्विज ॥"

लिङ्गपुराणेऽपि—

"वस्त्रं युग्मं तथाऽप्यूरं केयूरं कर्णभूषणम् ।
अङ्गुलीभूषणं चैव मणिबन्धस्य भूषणम् ॥
कण्ठाभरणयुक्तानि प्रारम्भे धर्मकर्मणः ।

पुरोहिताय दत्वा ऽथ ऋत्विग्भ्यश्चापि दापयेत् ॥

"इमानि वस्त्राभरणादीनि सदक्षिणान्याचार्याय तुभ्यमहं संप्रददे" इत्याचार्याय दत्वा ऋत्विग्भ्यो दद्यात् ।

अदेयानि स्कान्दे—

"आपत्स्वपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा ।
अन्वये सति सर्वस्वं दाराश्च शरणागताः ॥
न्यासाधीकुलवृत्तिं च निक्षेपः स्त्रीधनं सुतः" इति ॥

मालायांसूत्रनिर्णयः—

"कार्पाससंभवं सूत्रं धर्मकामार्थमोक्षदम् ।
तच्चविप्रेन्द्र कन्यार्थिनिर्मितं च सुशोभितम् ॥
शुक्लं रक्तं तथा कृष्णं पट्टसूत्रमथापि वा ।
शुक्लं रक्तं तथा पीतं कृष्णं वर्णेषु च क्रमात् ॥
सर्वेषामेव वर्णानां रक्तं सर्वेप्सितप्रदम् ।
त्रिगुणं त्रिगुणोकृत्य ग्रन्थमेच्छिल्पशास्त्रतः ॥
अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुष्पञ्चाशिका तथा ।
सप्तविंशतिका कार्या ततो नैवाधिकाहि सा ॥

अष्टोत्तरशतामाला उत्तमासाप्रकीर्तिता ।
चतुष्पञ्चाशिकामाला मध्यमा सा प्रकीर्तिता ॥
मध्यमा प्रोच्यते नित्यं सप्तविंशति संख्यया ।

गोमुखम्—

गोमुखी-गोर्मुखमिवमुखं यस्य तत् । जपमाला रक्षणाय यद् वस्त्रादि निर्मितं तत् ।

"चतुर्विंशाङ्गुलमितं पट्टवस्त्रादि संभवम् ।
निर्मायाष्टाङ्गुलमुखं ग्रीवायां षड् दशाङ्गुलम् ॥
ज्ञेयं गोमुखयन्त्रञ्च सर्वतन्त्रेषु गोपिनम् ।
तन्मुखे स्थापयेन्मालां ग्रीवामध्यगतेकरे ॥
प्रजयेद्विधिना गुह्यं वर्णमालाधिकं प्रिये ।
निधाय गोमुखे मालां गोपयेन्मातृ जारवत् ॥"

"वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं तु सदा जपेत् ।
तस्य स्यात्सुफलं जाप्यं तद्हीनमफलं स्मृतम् ॥"

एतद्वचन्मूलैव वस्त्रादिनिर्मिता गोमुखीति कथ्यते ॥

रुद्रजपादिकमसति सामर्थ्ये ऋत्विग्द्वारा कुर्यात् परशुरामे—

"स्वयं कर्तुमशक्तश्चेदृत्विग्भिः कर्म कारयेत् ।

इति ऋत्विजस्त्वनूचाना बाह्यान्तः शुद्धाः समदर्शिनो यजुः शाखाध्यायिनो रुद्रजपनिरता

मितवाचो मिताहारा इत्यादि लक्षणलक्षिता ज्ञेयाः ।

शाट्यायने—

“बह्वृचः सामगाश्चैव तथा चाथर्वणा द्विजाः ।
महारुद्र जपे नैव शस्तास्ते श्रुति धर्मतः॥”

उशना ऽपि—

“ऋग्वेदी ब्रह्मवेदी वा पितृवेदी तु यो द्विजः ।
घोराशान्ततरे रौद्रे जपेतान् परिवर्जयेत् ॥”

पितृवेदी—छन्दोगः । ब्रह्मवेदी—आथर्वणः । घोराश्चान्ताश्च घोराशान्ताः, अतिशयेन घोराशान्तास्ते घोराशान्ततराः । रौद्रे—रुद्रदेवताकशतरुद्रियविषयके जपे इत्यर्थः ।

स्वशाखा विहिते श्रीरुद्रजपादावनुष्ठेयेऽन्यशाखीयानामार्त्विऽज्य प्रसक्तेरभावात् । एतेनानेकयजुः शाखीयर्त्विजां वरणमाचरतो मूर्खा एवेत्युपेक्षणीयाः यजुर्वेदशाखातो भिन्नबह्वृचादिशाखीयश्चेद्यजमानस्तदा यजमानपरंपरागतगृहीतयजुः शाखीया एवात्विर्जो नत्वनियमेन यत्किञ्चित् यजुः शाखीयाः । इति रुद्रकल्पद्रुमकारः ।

कर्तृं नियमानाह बृहत्पाराशरः—

“अथातः सिद्धिकामः सन् कन्दमूलफलाशनः ।
गोमूत्रयावकक्षीरदधिशाकाज्यभोजनः ॥
हविष्यभोजनावासो विप्रो मुन्यन्नभोजनः ।
जपहोमादि कुर्वाणो यथोक्तफलभाग्भवेत्” इति ।

याज्ञवल्क्योऽपि—

"शाकयावकभक्ष्याणि पयोमूलफलानि च ।
विशश्रृङ्गाटकं चैव हविष्यान्नानि यानि च ।
दधि सर्पिस्तथा ह्यापः प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तरम् ।"

वृहत्पाराशरे—

"धीरो दृढव्रतो मौनी जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
धौतवासास्त्वधः शायी रुद्रलोके महीयते ।
अत्राधः शब्दः खट्वा व्युदासार्थो नास्तरण व्युदासार्थः" इति ।

(२) मात्स्ये—

"अथातः संप्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम् ।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः ।
सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः ।
पुराणवेत्ता तत्वज्ञो लोभमोहविवर्जितः ॥
कृष्णसारचरे देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः ।
शौचाचाररतो नित्यं पाखण्डकुलनिस्पृहः ।

मन्त्रमूर्तिर्भवान्नाथ संसाराघौघनाशन ।
प्रतिष्ठादिविधावस्मिन् कुरु कर्म यथोदितम् ॥ २ ॥
त्वत्प्रसादाच्च पूर्तस्य समग्रं फलमाप्नुयाम् ।
संसारभयभीतेन अयं यज्ञः सुभक्तितः ॥ ३ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्र हरिप्रियः ।
ऊहापोहार्थतत्वज्ञो वास्तुशास्त्रपरायणः ॥
आचार्यश्च भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः ।
मूर्तिपाश्च द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा ॥" इति ।

परशुरामे—

"विप्राः कार्या सदाचाराः श्रोत्रियाः सत्यवादिनः ।
षट्कर्मरताः श्रेष्ठाः साधवश्च बहुश्रुताः ।
जपनिष्ठास्तयोनिष्ठा धर्मिष्ठा वेदपारगाः ।
अनूचानाः कुलीनाश्च वेदशास्त्रविशारदाः ॥
पुण्यपापविचारज्ञा वेदवेदाङ्गपारगाः ।

प्रारब्धत्वप्रसादेन निर्विघ्नं मे भवत्विति ।
यथा शक्रस्य वागीश आचार्यः सर्वकर्मसु ॥ ४ ॥
त्वया मया त्वमाचार्यो वृतेऽस्मिन् यज्ञकर्मणि" इति ॥

एवमन्येषां पृथक् पृथक् वा वरणं कुर्यात्। अथवा सर्वेषां गोत्रादीन् पृथक् पृथगुच्चार्य ऋत्विजो युस्मान् अहं वृणे" इति युगपत्सर्वान् वृणुयात् ।

---

(१) महाभारते ब्राह्मणलक्षणम्—

"क्षान्तं दान्तं जितक्रोधं जितेन्द्रियमकल्मषम् ।
तमग्र्यं ब्राह्मणं मन्ये शेषा शूद्रा इति स्मृताः ॥
कामक्रोधानृतद्रोहद्वेषलोभमदादयः ।
न सन्ति यत्र राजेन्द्र तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
येनकेनचिदाच्छन्नो येन केन चिदाशितः ।
यत्र क्वचिन्नशायी स्यात्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

(२) "श्रोत्रियं छन्दोधीते" इति पाणिनीयसूत्रात् श्रोत्रियः ॥ वेदाध्यायी ।

(३) “सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ।
वैश्वदेवातिथेयं च षट् कर्माणि दिने दिने ॥

(४) “स एष वहुश्रुतो भवति लोकवेदवेदाङ्गवित्वाक्येतिहासपुराणकुशलस्तदपेक्षस्मद्वृत्तिश्चत्वारिंशता-संस्कारैः संस्कृतास्त्रिषु कर्मस्वभिरतः षट्सु वा समचारिकेष्वभिनीतः । गो० अ० ८।२ ।

(५) “मीमांसते यो च वेदान् षड्भिरङ्गैः सविस्तरैः ।
इतिहासपुराणानि समवेद् वेदपारगः ॥
व्यासस्मृ० १४।४५ ।

(६) “अनूचानः कल्पसूत्राध्यायीति बौधायनः। अनूक्तवाननूचानः शिष्येभ्यो विद्या संप्रदानं यः कृतवान् सोऽनूचानः । न्यूनाधिकज्ञः । (छा० उ०)

दशविधा विप्राः जातिनिर्णये—

“देवो[१] मुनि[२] द्विजो[३] राजा[४] वैश्यः[५] शूद्रो[६] विडा[७]लकः ।
[८]पशुम्लेच्छ[९]श्च चाण्डालो[१०] दशविप्राः प्रकीर्तिताः ॥”

देवविप्रः—

“उञ्छवृत्तिर्मिताहारः सन्तुष्टः संयतेन्द्रियः ।
वेदशास्त्रार्थतत्वज्ञो देवोविप्रः स उच्यते” ॥ १ ॥

मुनिविप्रः—

"फलमूलाशनो दान्तस्तपस्वी वेदशास्त्रवित् ।
कृत्याकृत्यविवेकज्ञः स विप्रो मुनिरुच्यते" ॥ २ ॥

द्विजविप्रः—

"षट्कर्म निरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः ।
स्वाध्याय निरतः साधुः स विप्रो द्विज उच्यते" ॥ ३ ॥

क्षत्रियविप्रः—

"धनुर्वेद विशेषज्ञो राजसेवा परश्च यः ।
त्रिकर्म कृन्महोत्साहो विप्रः क्षत्रिय उच्यते" ॥ ४ ॥

वैश्यविप्रः—

"हेमरत्नविशेषज्ञो योनिपोषणतत्परः ।
क्रयविक्रयतत्वज्ञः सवैश्यो द्विज उच्यते" ॥ ५ ॥

क्षुद्रविप्रः—

"कृषि सेवा समाचारो धान्यसंग्रहणे रतः ।
कृत्याकृत्य विहीनश्च स विप्रः शूद्र उच्यते" ॥ ६ ॥

विडालविप्रः—

"यत्र कुत्र प्रतिग्राही नित्यं भ्रमणतत्परः ।
कार्यमुद्दिश्य लुब्धश्च स विडाल इति स्मृतः" ॥ ७ ॥

पशुविप्रः—

"गम्यागम्यं न जानाति स्त्रीषु योहि निरर्गलः ।
कृत्याकृत्यं न जानाति स विप्रः पशुरुच्यते ॥८॥"

म्लेच्छविप्रः—

"वापीकूपतडागादि देवायतनभेदकः ॥९॥"

चाण्डालविप्रः—

"परहिंसापरः क्रूरः परदारपरायणः ।
पर द्रव्याभिलाषी च चाण्डालो हि निर्दयः" ॥१०॥ इति ॥

मार्जारब्राह्मणः—

परकार्य विहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः ।
छली द्वेषी मृदुः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते ॥११॥

चाणक्यनीतौ अ० ११ श्लो० ६।५।

ततो ब्रह्मवरणे—

ॐ ब्रह्म(B) यज्ञानं प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचौऽवेनऽआवः ।
स बुध्न्याऽउपमा अस्य विष्ठाःऽसतश्चयोनि मसंतश्च विवः ॥

यथा चतुर्मुखो ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ।
तथा त्वं यज्ञेऽस्मिन् ब्रह्मा भव द्विजोतम ! ॥

ऋत्विग्वरणे—

ॐ C ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावां पृथिवीऽ अं

(B) शु० य० अ० १३, म० ३,

(३) ब्रह्मरूप सूर्य ने भूगोल मध्यभाग को आरम्भ कर सुशोभित किया। पहले पूर्व दिशा में दृश्यमान् मेधावी आदित्य अन्तरिक्ष में होने वाले दिशाओं को प्रकाशित किया। और घटपटादि स्थान वाय्वादि को प्रकाशित किया।

(C) शु० य० अ० २९ मं० ४७,

(५) ब्राह्मण सोमरस के योग्य पिता और सत्यता की वृद्धि को चाहने वाले देवता हम लोगों की

ने॒हसा॑ । पू॒षा न॑÷ पातु दुरि॒तादृ॑तावृ॒धो रक्षा॒माकि॑र्न्नोऽ अ॒घ श॑ᳪ स ऽईशत ।

भगवन् सर्व कर्मज्ञ ! सर्व धर्म भृताम्बर ।
वितते मम यज्ञेऽस्मिन् ऋत्विक् त्वं मखे भव ॥

इत्येक एव मन्त्रः आवर्तनीयः ।

मण्डपपक्षे तु—

"ऋग्वेदः पद्मपत्राक्षो गायत्र्यः सोमदेवतः ।
अत्रिगोत्रस्तु विपेन्द्र ! ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥१॥
"कातराक्षो यजुर्वेदस्त्रैष्टुभो विष्णु देवतः ।
काश्यपेयस्तु विपेन्द्र ! ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥२॥

रक्षा करे । अपराध निवर्तक भूमि-स्वर्ग सूर्य–हम लोगों की कल्याण करनेवाले हम लोगों की रक्षा करे । और हम लोगों को पाप से रक्षा करें, और कोई दुष्ट ऐश्वर्य को भी न प्राप्त कर सके ।

सामवेदस्तु पिङ्गाक्षो जाग्रतः शक्रदेवतः ।
भारद्वाजस्तु विप्रेन्द्र ! ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥३॥
बृहन्नेत्रोऽथर्वेदोऽनुष्टुभो रुद्रदेवतः ।
वैशम्पायन विप्रेन्द्र ! ऋत्विक् त्वं मे मखे भव ॥

इति क्रमेण वेदपारायणे द्वारपालवरणे वा प्रार्थनं ।

अथ (A) शिवार्चनविधिः

"आयाहि हे चन्द्र कलाशिरोमणे-
गङ्गाधर त्र्यम्बकभूतिभूषण ।

रुद्रयामले—

(A) "सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा सन्ध्यां कृत्वा यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ॥ १ ॥
नैत्यिकं सकलं कर्म विधायानन्तरं पुमान् ।
पूजयेत्परमा भक्त्या पार्थिवलिङ्गमुत्तमम्" ॥ २ ॥

“नदीतीरे तड़ागे वा पर्वते काननेऽपि वा ।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ॥ १ ॥

“शुद्धप्रदेशसंभूतां मृदं महत्प्रयत्नतः ।
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका ॥ १ ॥
वैश्ये कृष्णा समाख्याता ह्यथवा यत्र सा भवेत् ।
सा ग्राह्या मृत्तिका लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः ॥ २ ॥

“महोत्पाते च दुर्भिक्षे देशविध्वंसने तथा ।
परचक्रागमे चैव महामृत्युसमागमे ॥ १ ॥
महाव्याधिभये चैव राजचौरभयादिषु ।
महाशत्रुभये चैव दुःखप्रभूतदर्शने ॥ २ ॥
वाञ्छितं राज्यकामस्तु कन्याकामस्तथैव च ।
विद्या लक्ष्मीस्तथा पुष्टिं पशुकामस्तथैव च ॥ ३ ॥
देशप्राप्तिस्तथा ग्रामपुत्रकामस्तथैव च ।
अमात्यपदकामस्तु कृषिकामस्तथैव च ॥ ४ ॥
नरनार्यो वशीकार्यं गोजाविकधनानि च ।
उष्ट्रे च रथैर्यामैः सदनानि च महान्यपि ॥ ५ ॥

महाबन्धे विमोक्षे च यस्मिन् वा शत्रुसंकटे ।
परचक्रागमे चैव जयकामस्तथैव च ॥ ६ ॥
ऋणत्रपविनिर्मुक्ते महापापक्षयेऽपि च ।
डाकिनी शाकिनी चैव भूतप्रेतपिशाचयोः ॥ ७ ॥
ज्वरबाधाक्षये चैव मुक्तिं विन्दन्ति ये नरः ।
कर्तव्या पार्थिवी पूजा लभते वाञ्छितं फलम् ॥ ८ ॥

मासफलम्—

"पूजारम्भस्तु चैत्रेषु बहुशोकः प्रजायते ।
वैशाखे वाञ्छितासिद्धिर्ज्येष्ठे मरणमेव च ॥ १ ॥
आषाढे क्लेशमाप्नोति श्रावणे बुद्धिवर्द्धनम् ।
प्रजानाशो भाद्रपदे महासिद्धिस्ततः परे ॥ २ ॥
कार्तिके ज्ञानसिद्धिः स्यात्मार्गशीर्षे शुभप्रदम् ।
पौषे हानिश्च विज्ञेया माघे सौख्यमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥
फाल्गुने सर्वसिद्धिः स्याज्जपपूजादिकर्मसु ।
मासफलमिदं प्रोक्तं शम्भुना कथितं पुरा" ॥ ४ ॥ इति ।

वारफलम्—

"पूजारम्भे रवौ शुक्रे बुधे जीवे विशेषतः ।
शनौ मृत्युः क्षयं भौमे सोमे सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥

तिथिफलम्—

पूजने प्रतिपच्छ्रेष्ठा द्वितीया कार्यसाधिनी ।
तृतीया क्षेममाणेयं चतुर्थी सिद्धिदा भवेत् ॥ २ ॥
पञ्चमी शुभदा चैव षष्ठी व्याधिर्विनिर्दिशेत् ।
सप्तमी शुभदा चैव अष्टमी सौख्यवर्द्धिनी ॥ ३ ॥
नवमी रोगदात्री च दशमी सर्वकामदा ।
एकादश्युत्तमा ज्ञेया जपहोमार्चने तथा ॥ ४ ॥
द्वादशी पुण्यदा प्रोक्ता त्रयोदश्यां धनं भवेत् ।
महती तिथि विज्ञेया पूजने हवने तथा ॥ ५ ॥
चतुर्दशीति विख्याता शिवस्याराधनेऽपि च ।
शक्तेश्चाराधने चैव महासिद्धिप्रदा भवेत् ॥ ६ ॥
पितृपूजा सदा कुर्यादृदर्शे चैव विशेषतः ।
यज्ञयागादिकं कार्यं पूर्णमास्यां सदैव हि" ॥ ७ ॥

नक्षत्रफलम्—

"अश्विन्यां क्षेममारोग्यं भरण्यां प्राणसंशयः ।
कृत्तिकां क्लेशमाप्नोति प्राजापत्ये सुखं भवेत् ॥ १ ॥
धनधान्यागमश्चैव नक्षत्रे सोमदेवते ।
आर्द्रायां सुखमाप्नोति कर्तव्यं शिवपूजनम् ॥ २ ॥
पुनर्वसौ तथा पुष्ये दीर्घं विन्दन्ति जीवनम् ।
सार्प्ये दुःखं विजानीयान्मघायां च भयं भवेत् ॥ ३ ॥
पूर्वा च सुखदं प्रोक्तं उत्तरात्रयमेव च ।
हस्ते सिद्धिश्च विज्ञेया चित्रास्वातिफलं तथा ॥ ४ ॥
राज्यप्राप्तिस्तथा सिद्धिर्नक्षत्रे च द्विदैवते ।
अनुराधा तथा राज्यं ज्येष्ठायां च महासुखम् ॥ ५ ॥
नैर्ऋते च महद्दुखं वैष्णवे कीर्तिवर्द्धनम् ।
वासवे मृत्युसंप्राप्तिर्वारुणे राज्यमेव च ॥ ६ ॥
रेवत्यां च महासिद्धिर्महादेवस्य पूजने ।
देवीपूजा विधानेन देवस्य फलमश्नुते" ॥ ७ ॥

[इति नक्षत्रपटले]

योगफलम्—

"विष्कुम्भे विजयं चैव प्रीतावायुर्विवर्द्धनम् ।
आयुष्मान् भोगमाप्नोति सौभाग्ये सुखमेव च ॥

शोभने जयमाप्नोति अतिगण्डे धनक्षयम् ।
कार्यसिद्धिः सुकर्मायां धृतौ शूलेऽर्थसंक्षयम् ॥
गडे व्याधिश्च विज्ञेयो वृद्धौ सिद्धिश्च तत्क्षणात् ।
ध्रुवे च लभते राज्यं व्याघातेऽरिष्टमेव च ॥
वज्रे कष्टं विजानीयात् हर्षणे मुदमेव च ।
सिद्धिः सिद्धिकरा प्रोक्ता व्यतिपातेऽर्थसंक्षयम् ॥
ऐश्वर्यं वर्द्धते चैवं वैधृते सकलं त्यजेत् ।
योगफलमिदं प्रोक्तं शिवेन कथितं पुरा" ॥

करणफलम्—

"ववे वर्द्धते सौख्यं धनं वृद्धिस्ततः परे ।
कौलवे कलहः प्रोक्तस्तैतिले सुखमेव च ॥
गरे विघ्नं विजानीयाद्वणिजे वर्द्धते सुखम् ।
सकला वर्जयेद्विष्टिर्यदि कल्याणमिच्छति ॥
शकुने दह्यते पापं चतुरन्ध्रे जयं भवेत् ।
न गोदुःखं विजानीयात् किंस्तुघ्ने प्राणसंशयः ॥"

लग्नफलम्—

"मेषश्च शुभदः प्रोक्तो वृषे हानिस्तथैव च ।

मिथुने सिद्धिमाप्नोति कर्के च क्षयमेव हि ॥
सिंहे शत्रुक्षयं चैव कन्यायां वर्द्धते सुखम् ।
तुलायां च महालाभो वृश्चिके वर्द्धते प्रजा ॥
धने धनमवाप्नोति मकरे मृत्युमेव च ।
यशःप्राप्तिस्तथा कुम्भे कीर्तिरेव ततः परे ॥
लग्नफलमिदं प्रोक्तं शम्भुना कथितं पुरा"।

वर्जनीया मृत्तिका—

"श्मशाने मृत्तिका भूमौ भीलीशीरसमुद्भवेत् ।
ऊषरे ग्रामपार्श्वे च दुष्कर्मसंस्थलेऽपि च ॥
मद्यागारे वृक्षमूले छायायाश्च बिभीतके ।
मृत्तिका वर्जयेत्प्राज्ञो ह्यशुद्धां यज्ञभूमिषु ॥

मृत्तिकालक्षणम्—

"श्वेता लक्ष्मीप्रदा चैव गौरी राज्यप्रदा भवेत् ।
रक्ता स्त्रीषु प्रदातव्या कृष्णा वैरी विनाशिनी ॥
पुत्रकामस्तथामिश्रा वालुका मोक्षदा भवेत्"।

गोमयादिफलम्—

गोमयं नवनीतं च मृदा गुडसितास्तथा ।
दधि क्षौद्रं पयश्चैव भस्मपिष्टं तथा घृतम् ।

कर्पूरं पायसं चैव वालुकं कुङ्कुमं जलम् ।
एतेषां च फलं सम्यक् कथयस्व महामुने ॥
गोमये प्राप्यते लक्ष्मीः पशुकामस्तथैव च ।
गुडे पुत्रप्रियावाप्तिर्नवनीतेन वराङ्गना ॥
सितायां च महाराज्यं प्राप्यते च न संशयः ।
शत्रोः पराजयश्चैव शर्कराया विशेषतः ॥
देशप्राप्तिस्तथा क्षौद्रे पयः स्याश्रुगतस्तथा ।
घृते आयुस्तथा कन्या धनमैश्वर्यमेव च ॥
अमात्यपदवीं चार्थे कुर्याद्दधिमयं शिवम् ।
गृहसम्भारसिध्यर्थे पूजयेत्पिष्टमयं शिवम् ॥
महामन्त्रप्रपत्राक्षौं पूजयेत्पिष्टमयं शिवम् ।
भस्मोद्धर्ता भस्मशापी नियं भस्मनिशेवने ॥
"कर्पूरे च महाराज्यं इहलोके भवेद्ध्रुवम् ।
तथा पुत्रमवाप्नोति पायसे च न संशयः ॥
सवत्सां दोषरहितां अव्यङ्गाङ्ग सुलक्षणाम् ।
एतासां च पयः श्रेष्ठं होमपूजादिकर्मसु ॥

यतिवनौकसाम्राज्यो पूजयेज्जलमयं शिवम् ।
सर्वार्थसिद्धये नूनं पूजयेच्च मृदामयम् ॥

कामनाभेदेन लिङ्गसंख्या—

"एकपापहरं प्रोक्तं तुलसीपत्रपूजनम् ।
द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिः स्यात् बिल्वपत्रैर्प्रपूजयेत् ॥ १ ॥
त्रिलिङ्गं सर्वकामानां यथा पुष्पप्रशस्तयोः ।
चत्वारि धनसंप्राप्तिः कौसुम्भे न प्रपूजनम् ॥ २ ॥
पञ्चलिङ्गानि संपूज्य चम्पकैः पुष्पसंयुतम् ।
सम्बन्धास्तत्र दृश्यन्ते नात्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥
यल्लिङ्गं वकुलं पुष्पं कलहोमुक्तकं भवेत् ।
सप्तलिङ्गानि यं कृत्वा शतपत्राणि कं जयेत् ॥ ४ ॥
प्रवासतीर्थयात्रायां सर्वसिद्धि र्भं वेच्च ताम ।
विद्याकामश्चाष्टलिङ्गं बिल्वपत्रैः प्रपूजनम् ॥ ५ ॥
नव लिङ्गानि संपूज्य पुष्पं धत्तूरकं जयेत् ।
व्यापारे सर्वसिद्धिः स्याद्द्रव्यं कर्षयति ध्रुवम् ॥ ६ ॥

ईशलिङ्गकृता पूजा केयूरपुष्पसंयुतम् ।
दूरदेशगतो यस्य कुशली पुनरागमः ॥ ७ ॥
एकादश महारुद्रा महाकार्यं महाफलम् ।
राजाप्रजावशकरं वन्धूकपुष्पसंयुतम् ॥ ८ ॥
"अखण्डं पार्थिवं लिङ्गं द्विखण्डं स्थावरं स्मृतम् ।
विद्यार्थी लिङ्गसाहस्रं घनार्थी च तदर्धकम् ॥
पुत्रार्थी सार्द्धसाहस्रं कन्यार्थी शतपञ्चकम् ।
मोक्षार्थी कोटिगुणितं भूकामश्च सहस्रकम् ॥
रूपार्थी त्रिसहस्रं च तीर्थार्थं द्विसहस्रकम् ।
सुहृतकामस्त्रिसाहस्रं वस्त्रार्थी शतमष्टकम् ॥
मारणार्थी सप्तशतं मोहनार्थी शताष्टकम् ।
उच्चाटनपरश्चैव सहस्रं च यथोक्ततः ॥
स्तभनं तु सहस्रेण मारणे तु तदर्धकम् ।
निगडान्मुक्तिकामस्य सहस्रार्द्धञ्च तथेरितम् ॥
महाराजभये पञ्च शतं चौरादिसङ्कटे ।
शतद्वयं तु डाकिन्या भये पञ्चशतं परम् ॥

दरिद्रः पञ्चसाहस्रमयुतं सर्वकामदम् ।
लिङ्गानामयुतं कृत्वा महाराजभयं हरेत् ॥

ग्रन्थान्तरे—

सहस्राणि तथा पञ्च निगडान्मुच्यते ध्रुवम् ।
कारागृहादिमुक्त्यार्थमयुतं कारयेद्बुधः ।
डाकिन्यादिभये सप्त सहस्रं कारयेत्तथा ।
सहस्राणां हि पञ्चाशत् पुत्रो हि प्रकारयेत् ॥
लिङ्गानामयुते नैव कन्यकासन्ततिर्भवेत् ।
एकलिङ्गार्चनेनैव ह्यतुलां श्रियमाप्नुयात् ॥
लक्षमेकं तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि ।
शिव एव भवेत्सोऽपि नात्र कार्या विचारणा” इति ।
अर्चा पार्थिवलिङ्गानां कोटियज्ञफलप्रदा ॥”
विना लिङ्गार्चनं यस्य कालो गच्छति नित्यशः ।
महाहानिर्भवेत्तस्य दुर्वृत्तस्य दुरात्मनः ॥
एकतः सर्वदानानि व्रतानि विविधानि च ।
तीर्थानि नियमा यज्ञा लिङ्गार्चा चैकतः स्थिता ॥

कलौ लिङ्गार्चनं श्रेष्ठं यथा लोके प्रदृश्यते ।
तथा नास्तीति नास्तीति शास्त्राणामेव निश्चयः ॥
भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गं विविधा कष्टवारणम् ।
पूजयित्वा नरो नित्यं शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥
न लिङ्गाराधनादन्यत्पुण्यं वेदचतुर्ष्वपि ।
विद्यते सर्वशास्त्राणामेष एव विनिश्चयः ॥
सर्वमन्यत्परित्यज्य कर्मजालमशेषतः ।
भक्त्या परमया विद्वान् लिङ्गमेकं प्रपूजयेत् ॥

अथ प्रकारान्तरेण पार्थिवसंख्या—

संख्या पार्थिवलिङ्गानां यथा कामं निगद्यते ।
विद्यार्थी लिङ्गसाहस्रं धनार्थी च तदर्धकम् ॥
पुत्रार्थी चैव साहस्रं कन्यार्थी शतपञ्चकम् ।
मोक्षार्थी द्विगुणितं भूकामश्च सहस्रकम् ॥
रूपार्थी च त्रिसाहस्रं तीर्थार्थी शतपञ्चकम् ।
सुहृत्कामी त्रिसाहस्रं वस्त्रार्थी शतमष्टकम् ॥

निगडान्मुक्तिकामस्तु सहस्रं सार्द्धमीरितम् ॥
एकं पापहरं प्रोक्तं द्विलिङ्गं चार्थसिद्धिदम् ॥
त्रिलिङ्गं सर्वकामानां कारणं परमीरितम् ।
उत्तरोत्तरमेवं स्यात्सर्वोक्तगणना विधिः ॥ इति ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्यनुलोमजः ।
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम् ॥
शिवलिङ्गं समुत्सृज्य यजते चान्यदेवताः ।
स नृपः सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
विष्णुना रावणं हत्वा ससैन्यं ब्रह्मणः सुतम् ।
स्थापितं विधिवद्भक्त्या लिङ्गं तीरे नदीपतेः ॥
कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा विप्रशतं तथा ।
भावात्समाश्रितो लिङ्गं मुच्यते नात्र संशयः ॥
ब्रह्मा हरश्च भगवान् विश्वेदेवा उमा हरिः ।
लक्ष्मीर्धृतिः स्मृतिः प्रज्ञा मेधा दुर्गा शची तथा ॥
रुद्राश्च वसवः स्कन्दो विशाखः शाख एव च ।
नैगमेशश्च भगवान् लोकपाला ग्रहास्तथा ॥

सर्वे नन्दिपुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः ।
पितरो मुनयः सर्वे कुबेराद्याश्च सुप्रभाः ॥
आदित्या वसवः साध्या अश्विनौ च भिषग्वरौ ।
विश्वेदेवाः समरुतः पशवः पक्षिणो मृगाः ॥
ब्रह्मादिस्थावरान्तं च सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम् ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य स्थापयेल्लिङ्गमैश्वरम् ॥

यत्नेन स्थापितं पिण्डं पूजितं पूजयेद्यदि ।
ये वाञ्छन्ति महाभोगान् राज्यं वा त्रिदशालयम् ।
तेऽर्चयन्तु सदा कालं लिङ्गरूपं महेश्वरम्" ॥

तत्र लिङ्गं द्विविधं, अकृत्रिमम् कृतिमञ्च ॥

अकृत्रिमं स्वयम्भूबाणलिङ्गादि, कृत्रिमं निर्मितधातुलिङ्गादि—

द्व्यङ्गुलादि विवृद्धानि रत्नलिङ्गानि कारयेत् ।
सर्वलक्षणयुक्तानि त्रिभिर्भागैर्युतानि च ॥

हेमाद्र्युदाहृतलक्षणसमुच्चयेऽपि—

आयुष्यं हीरजं ज्ञेयं रोगहृन्मौक्तिकोद्भवम् ।

सुखकृत् पुष्परागोत्थं वैडूर्यं शत्रुदर्पहृत् ।
पद्मरागं च लक्ष्मीदमैन्द्रनीलं यशःप्रदम् ॥
लिङ्गं मारकतं पुष्ट्यै स्फाटिकं सर्वकामदम् ।
महारत्नोत्थलिङ्गानि क्षुद्ररत्नोद्भवान्यतः ॥
लवणेन च सौभाग्यं पार्थिवं सार्वकामिकम् ।
कामदं तिलपिष्टोत्थं तुषोत्थं मारणे स्मृतम् ॥
भस्मोत्थमन्नदं प्रोक्तं गुडोत्थं प्रीतिवर्द्धनम् ।
गन्धोत्थं गुणदं भूरि शर्करोत्थं सुखप्रदम् ॥
वंशाङ्कुरोत्थं वंशार्थे गोमयं सर्वरोगहम् ।
केशास्थिसम्भवं लिङ्गं सर्वशत्रुविनाशनम् ॥
स्तम्भने रजनीपिष्टसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् ।
तण्डुलोद्भवपिष्टस्य लिङ्गं सारस्वतप्रदम् ॥
दधिदुग्धोद्भवं लिङ्गं कीर्तिलक्ष्मीसुखप्रदम् ।
धान्यजं धान्यदं लिङ्गं फलोत्थं फलकृद्भवेत् ॥
पुष्पोत्थं दिव्यभोगाय मुक्त्यै (पुष्ट्यै) धातृफलोद्भवम् ।
नवनीतोद्भवं लिङ्गं कीर्तिसौभाग्यवर्धनम् ॥

दूर्वा गुडूचीसम्भूतमपमृत्युनिवारणम् ।
लक्षवृक्षोद्भवं लिङ्गं स्मृतमुच्चाटने परम् ॥
ज्वरशान्त्यै चन्दनजमर्चयेद्विधिवत्सदा ।
कर्पूरसम्भवं लिङ्गं शान्तिकामोऽर्चयेत्सदा ॥
कस्तूरीसम्भवं लिङ्गं धनिको हि प्रपूजयेत् ।
लिङ्गं गोरोचनोत्थं तु रूपकामस्तु पूजयेत् ॥
कान्तिकामस्तु सततं लिङ्गं कुङ्कुमकेसरम् ।
श्वेतागरुसमुद्भूतं महाबुद्धिविवर्द्धनम् ॥
धारणाशक्तिदं लिङ्गं कृष्णागरुसमुद्भवम् ।
यक्षकर्दमसम्भूतं लिङ्गं प्रीतिविवर्द्धनम् ॥
गोधूमपिष्टजं लिङ्गं गोकामो नित्यमर्चयेत् ।
मुद्गपिष्टमयं लिङ्गं पूजयन्मुदमाप्नुयात् ॥
माषपिष्टमयं लिङ्गं नित्यमिष्टान्नसिद्धिदम् ।
चणकोद्भवपिष्टस्य लिङ्गं शुद्धिविवर्द्धनम् ॥
आढकीपिष्टजं लिङ्गं रतिसौख्यविवर्द्धनम् ।
लिङ्गं व्रीहिमयं पूज्यं वर्चस्कामेन नित्यशः ॥

ग्रन्थान्तरे—

लिङ्गानामयुतं कृत्वा महाराजभयं हरेत् ।
सहस्राणि तथा पञ्च निगडान्मुच्यते ध्रुवम् ॥
कारागृहादि मुक्तार्थमयुतं कारयेद्बुधः ।
डाकिन्यादि भये सत्यं सहस्रं कारयेद्बुधः ॥
साहस्राणां च पन्चाशद् पुत्रो हि प्रकारयेत् ।
लिङ्गानामयुते नैव कन्यका सन्ततिर्लभेत् ॥
एकलिङ्गार्चने नैव ह्यतुलां श्रियमाप्नुयात् ।
लक्षमेकन्तु लिङ्गानां यः करोति नरो भुवि ॥
शिव एव भवेत्सोऽपि न कार्या तत्र विचारणा ।
यवधान्यमयं लिङ्गं यमलोकनिवारणम् ।
प्रियङ्गुपिष्टजं लिङ्गं प्रियदं सर्वदेहिनाम् ॥
नीवारपिष्टजं लिङ्गं सर्वारिष्टनिवारणम् ।
यः करोति तिलैः श्वेतैः श्वेतद्वीपे महीयते ॥
यः कृष्णैश्च तिलैः सम्यक् लिङ्गं कृत्वाऽर्चयेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो याति माहेश्वरं पदम् ॥

मधुपुष्पोद्भवं लिङ्गं वसन्ते पूजयेन्नरः ।
यः कामेप्सुः प्रियो नित्यं भवेत्स्त्रीणां च मानवः ॥
ग्रीष्मे च मल्लिकापुष्पसम्भवं लिङ्गमुत्तमम् ।
पूजयित्वा नरो भक्त्या प्राप्नोति महतीं कृषिम् ॥
वर्षासु पूजयेद्भक्त्या लिङ्गं कनकपुष्पजम् ।

कमकपुष्पजम् = चम्पककिंशुकधत्तुरकाञ्चनारपुष्पनिर्मितम् ।

इह चामुष्मिके लोके सुखी भवति मानवः ।
नीलोत्पलमयं लिङ्गं ज्ञात्वा शरदि मानवः ॥
पूजयन् परमां सिद्धिं भक्त्या प्राप्नोति मानवः ।
हेमन्ते जातिकुसुमैर्लिङ्गं कृत्वा मनोहरम् ॥
भक्त्या समर्च्य मतिमान् शिवेन सह मोदते ।
शिशिरे सर्वपुष्पोत्थं लिङ्गमभ्यर्च्य मानवः ॥
सर्वपापं विहायाशु मोदते ब्रह्मणा सह ।
येन केन प्रकारेण यस्य कस्यापि वस्तुनः ॥
कृत्वा लिङ्गं समभ्यर्च्य गाणपत्यमवाप्नुयात् ।

पूर्वोक्तसर्वलिङ्गपूजने तारतम्यमपि श्रूयते—

पाषाणात् स्फाटिकं श्रेष्ठं स्फाटिकात्पद्मरागजम् ।
पद्मरागात्तु काश्मीरं काश्मीरात्पुष्परागजम् ॥
इन्द्रनीलं पुष्परागादिन्द्रनीलाच्च गोमदम् ।
गोमदाद्विद्रुमं श्रेष्ठं विद्रुमान्मौक्तिकं वरम् ॥
मौक्तिकाद्राजतं श्रेष्ठं सौवर्णं रजताद्वरम् ।
सौवर्णाद् हीरकं श्रेष्ठं हीरकात्पारदं परम् ॥
पारदाद्बाणजं श्रेष्ठं तस्मात् श्रेष्ठं न विद्यते ।
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च साङ्गवेदव्रतानि च ॥
सुरसुङ्घायोगिनश्च बाणलिङ्गे व्यवस्थिताः ।
तमर्च्य विधिवद्भक्त्या शिवलोके महीयते ॥
बाणे च राजते रत्ने स्फाटिके हेमसम्भवे ।
काश्मीरे चन्द्रकान्ते च लिङ्गे स्वायम्भुवे तथा ॥
सदा सन्निहितो देवः शर्वः सत्यादिलक्षणः ।
विद्यतेऽहर्निशं यस्मात्तस्मात्पूज्यानि नित्यशः ॥

उक्तलिङ्गेषु कलौ क्षिप्रफलदं नानाविधकामनया पार्थिवलिङ्गमेव पूज्यम्—तदप्युक्तम्—

उक्तेष्वेतेषु लिङ्गेषु लिङ्गमेकं समाश्रयेत् ।
तत्रापि पार्थिवं लिङ्गं क्षिप्रं सिद्धिप्रदं भवेत् ॥
पार्थिवेन तु लिङ्गेन बहवः सिद्धिमागताः ।
देवासुरमनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥
कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम् ।
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे ॥
अष्टमूर्तिषु सर्वासु मूर्तिर्वै पार्थिवी परा ।
एवं पार्थिवलिङ्गं तु लिङ्गेष्वन्येषु विद्यते ॥
यथा सर्वेषु देवेषु श्रेष्ठः किल महेश्वरः ।
एवं सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥
यथा नदीषु सर्वासु ज्येष्ठा गङ्गा सरिद्वरा ।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥

अत्रैव कामना भेदेन पूजने पार्थिवलिङ्गसङ्ख्याऽपि स्मर्यते—

मुने सर्वप्रयत्नेन पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ।
कर्तव्यं हि नृभिर्नित्यं कार्यमुद्दिश्य यत्नतः ।

सान्निध्यमात्रास्तु जगन्निवासते
पूजां गृहीतुं विधिवत्मयार्पिताम् ॥(B)

ॐ (क) नम॑ः शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नम॑ः शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नम॑ः शि॒वाय॑ च शि॒व॑तराय च ॥ (C) ॐ भूर्भुवः स्वः

सङ्ख्या पार्थिवलिङ्गानां यथाकामं निगद्यते ।
मृल्लिङ्गं पार्थिवं लक्षं भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥
देशं कालं कुलं ज्ञात्वा कुर्याल्लिङ्गं फलप्रदम् ।
न करोति यदा ज्ञात्वा न कार्यं तस्य सिध्यति ॥

(B) "चञ्चच्चलच्चित्तनिबद्धवृत्तिश्चित्रापताल्लक्षितदेहवृत्तिः ।
सोऽहन्वनुद्भिन्नकुशेशयश्री बद्धाञ्जलिस्त्वां मनसाह्वयामि ॥

(क) शु० य० अ० १६, ४१ ।

(C) नमः शम्भवायेति मन्त्रस्य परमेष्ठीऋषिः रुद्रो देवता जगती छन्दः साम्बसदाशिव आवाहने विनियोगः ।

साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, साम्बसदाशिवमावाहयामि स्थापयामि ॥

ॐ मनो॑ जू॒तिर्ज्जु॑षता॒माज्ज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु । विश्श्वे॑दे॒वास॑ऽइ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ।

(D) शुचिप्रदेशशुचिकौत्तमासनं
मृगत्वमाचाच्छन्नमथापिवस्त्रितम् ।
मन्त्रेणदत्तं विधिवद् गृहीत्वा
योगासनारूढसुखं समास्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सवाहनाय सायुधाय

(D) "शुभ्रप्रभान्यक्कृतचन्द्रबिम्बे,
यशः प्रकाशप्रतिकाशभाजि ।
कुशासने भक्तिमये नवेऽस्मिन्,
राराजतां राजतकान्तिकान्त ! ॥"

सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः आसनार्थे अक्षतान् (ख) समर्पयामि ।

(E) यत् पादयुग्मं विरजः पवित्रं
ध्यानं सदा यत् परतत्त्वदर्शिभिः ।
तत्क्षालनायामरवन्त्रमद्यतो
दत्तं मया पाद्यमिदं गृहाण ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः (ग) पादयोः पाद्यं समर्पयामि ।

(ख) "अर्चयिष्यति योनित्यमखण्डैः शालितण्डुलैः ।
तमूर्ध्वं नेतुमिच्छामि प्रतिज्ञेयं मम प्रिये ॥
यस्तु नित्यं तिलैः कृष्णश्वेतैर्वा पूजयिष्यति ।
प्रियङ्गु तण्डुलैर्नित्यं यो मामभ्यर्चयिष्यति ॥

(ग) निषिद्धजलम्—

(E) अथार्घं धवलचन्दनपुष्पकुशैर्युतं
कदलीपुष्पदले निहितं शुभम् ।
तव पुरः शिवमन्त्रसमर्पितं
तदिदमर्घ्यं पयः प्रति गृह्यताम् ॥

"कलुषं क्रिमिसंमिश्रमौषरं पल्वलोदकम् ।
अशुद्धभूतलस्थं च शिलागतजलं च यत् ॥
सदा छायायुतं त्याज्यमत्यजानि निषेवितम् ।
शूद्रानीतं स्त्रियानीतं वामहस्ताहृतं तथा ॥
अन्यपूजावशिष्टं च जलं त्याज्यं शिवार्चने ।
वर्जयेच्छिवपूजायां शङ्खतोयं विशेषतः ॥

ग्राह्यजलम् स्कान्दे—

"नद्याः समुद्रगामिन्याः नदाद्वा स्वयमाहृतम् ।
वस्त्रपूतं च शीतं च विशिष्टं शिवपूजने ।

(E) "त्वद्दर्शनानन्दममन्दमेन-
मन्तर्निरोद्धुं गिरिश ! क्षमः कः ?

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, हस्तयोरर्घ्यं (F) समर्पयामि।

रात्रौ दिवाचापि कृतान्यथा
निस्त्रवन्ति च रोमकूपतः।

हर्षाति गालोचननिर्झराणां
तवास्तुवारैरनवद्यपाद्यम्"

(F) " नैर्मल्यनैष्पाप्यमनः प्रसाद–
हर्षाशयानां प्रथमं निदानम्।
चिरव्यवस्थापितभक्तिभावा-
दर्घ्यं ह्यनर्घ्यं भवतेऽर्पयामि"

"अनेकतीर्थोपहृताद् विशुद्धाद्
सद्योहृतावद्य दुराधिहृद्यात्।
पुण्याभिषेकं कुरुदेव देव !
स्नानीयतोयान्मनसाऽर्पितान्मे ॥

तत् स्नानमेतन्मृदुमन्त्रतोर्पितं
तुभ्यं मया पञ्चविधं प्रगृह्यताम् ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः स्नानीयं समर्पयामि ।

“तवाट्टहासात्कलितार्जुनत्वं
घृतद्रवत्वं करुणाप्रवाहात् ।
भक्त्या समानीतमिवेह तुभ्यं
स्नानीय दुग्धं परिकल्पयामि ॥

ॐ (B) पय॑ः पृथि॒व्याम्पय॒ऽओष॑धीषु॒ (ख) पयो॑ दि॒व्य॒न्तरि॑क्षे

(B) पयः पृथिव्यामिति शोधनाकऋषिः रुद्रो देवता विराडनुष्टुपछन्दः पयः स्नाने विनियोगः—

(१) हे अग्निदेव ! तुम पृथ्वी में (पय) अर्थात् रस का स्थापन करो, दवाओं में रस का स्थापन करो। स्वर्ग में रस का देवें, आकाश में रस का स्थापना करो, और मेरे अर्थ के लिए दिशा और विदिशा में रस युक्त करो—(अर्थातू आहुति के फल से पृथिव्यादि मेरे मनोरथ को दो)

(ख) शु० य० अ० १८, ३६,

पयो॑ धाः । पय॑स्वतीः प्र॒दिश॑ः सन्तु॒ मह्य॑म् ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः पयस्नानं समर्पयामि ।

“भव्यप्रभाभावितचन्द्रिकामं
त्वद्दर्शनापाण्डवपाण्डरन्ते ।
तन्माहिषं निर्मलधैनवं वा,
स्नानाय भक्त्या दधि संतनोमि ॥

ॐ द॒धि॒क्राव्णो॑[२] (C) अका॑रिषं जि॒ष्णो रश्व॑स्य वा॒जिन॑ः । सु॒र॒भि नो॒

---

(२) नर को धारण कर चलनेवाला जयशील वेगवाले अश्व का अश्लीषे भाषण से संस्कार करने से हम लोगों का अश्लील भाषण दुर्गंधित मुख को यश से सुगन्धित करो। और हम लोगों के (बाल्य-युवा-वृद्धा) तीनों काल की अवस्था को बढ़ाओ।

(C) दधिक्क्राब्णो इति मन्त्रस्य वामदेवात्मज दधिक्क्रावा ऋषिः अश्वदेवता अनुष्टुप् छन्दः दधिस्नपने विनियोगः ।

मुखा कर॒त्प्र ण॒ऽआयूंᳪषि तारिषत्॥ (ग) ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः दधिस्नानं समर्पयामि ।

(ग) शु० य० अ० २३, ३२,

भविष्यपुराणे—

"दध्ना तु स्नापयेल्लिङ्गं सकृद्भक्त्या तु यो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥
मधुना स्नानपयित्वा तु सकृद्भक्त्या तु यो नरः ।
पापकञ्चकमुत्सृज्य वह्निलोके महीयते ॥
स्नानमिक्षुरसेनापि यो लिङ्गे सकृदाचरेत् ।
लभेद्वैद्याधरं लोकं सर्वकामसमन्वितः ॥
यः पुमांस्तिलतैलेन करयन्त्रोद्भवेन च ।
शिवाभिषेकं कुरुते स शैवं पदमाप्नुयात् ॥
कर्पूरागुरुतोयेन यो लिङ्गं स्नापयेत् सकृत् ।

"आयुर्बलं कान्तिरथापि तेजो
यद्योगमात्रेण विवृद्धिमेति ।
धाम्नां शिवानां परमैकधाम
स्नानाय ते स्वीकुरु प्राज्यमाज्यम् ॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥
श्रियं प्राप्नोति यः स्नाप्य शिवं कुङ्कुमवारिणा ।
फलतोयैः शिवं स्नाप्य स वै ब्रह्मयुतो भवेत् ॥

व्यासः—

"सहस्रकलशैरद्भिरभिषेकं करोति यः ।
शिवाय विधिवन्मन्त्रैश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥
वस्त्रपूतेन तोयेन यो लिङ्गं स्नापयेत्सकृत् ।
सर्वकामसुतृप्तात्मा वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥
कुशोदकेन यो लिङ्गं सकृत् स्नापयते नरः ।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥

ॐ (D) घृतम्मिमिक्षे[३] घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतं व्वस्य धाम । अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ व्वक्षि हव्यम् ॥ (घ)

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः घृतस्नानं समर्पयामि ।

ॐ (E) मधु व्वाता ऋ[५]तायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्न्नः

(D) "घृतं मिमिक्षे" इत्यस्य गृत्समदऋ० त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता घृतस्नाने विनियोगः ।

(३) वनस्पति (अश्वत्थादि) हम लगों को यज्ञ साधन भूत हों, सूर्य सन्ताप राहित्य लक्षणादि सम्पन्न माधुर्यरस युक्त हो, और यज्ञ साधन गौवे हमलोगोंको रसयुक्त हों अर्थात् हमलोगोंको वायु प्रभृति रसवाली भोग्य हों ।

(घ) शु० य० अ० १७, मं० ८८ ।

(E) (१) मधुव्वाता ऋतायते "मधुनक्तमुतोषसो" मधुमान्नो व्वनस्पति" इत्यादिमन्त्राणां गोतमऋषिः गायत्री छन्दः विश्वेदेवा देवता मधुस्नाने विनियोगः ।

(५) (१) यजमानके लिये वायु रसयुक्त वहन करे । स्यन्दमान नदियाँ या समुद्र रस की तरह जलको स्मरण करती हैं । और औषधियाँ हम लोगोंको मधुर रसों से युक्त प्राप्त हों ।

सन्त्वोषधीः ॥ मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः । मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ मधुमान्नो व्वनस्पतिर्म्मधुमां ऽअस्तु सूर्यः । माध्वीर्गावो भवन्तु नः । (ङ)

ॐ भूर्भुवस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय साम्बसदाशिवाय नमः मधुस्नानं समर्पयामि ।

"या शर्कराकर्कशदारुणैव
तां शर्करान्त्वच्चरणेर्पयामि ।
स्नानाय शम्भो मृदुनिप्रकामं
धार्ष्ट्यं दयालो तदिदं क्षमेथाः"

---

(२) रात्रि हम लोगोंको मधुर रसोपेत आनन्द कर हो, और दिवस भी मधुमन्न हों, पृथ्वीलोक मधुर रससे युक्त हो, पितृभूत द्यूलोक मधुर रससे युक्त हों। (अर्थात् हमको सब जगह से कल्याण हो)।

(ङ) शु० य० अ० १३ मं० २७–२९।

ॐ (F) अ॒पाꣳर॒सं[च]मु॒द्व॑यस॒ꣳसूर्ये॒ सन्त॑ꣳस॒माहि॑तम् । अ॒पाꣳरस॑स्य॒ षो र॒सस्तं वो॑ गृह्णाम्युत्त॒मम॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒सीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ षोनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम् । ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय वाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः शर्करास्नानं समर्पयामि ॥

"यद्यद् विलिप्तं मम भक्तिभावा-
च्छुद्धाननान्निर्मलविग्रहेते ।
तत्तत्पुनर्नाम सुभोक्षणाय
शुद्धोदकस्नानमदस्तनोमि"

(F) "अपा० रस०" इत्यस्य बृहस्पति ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः शर्करास्नाने विनियोगः ।

(च) शु० य० अ० ६ मं० ३ ।

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्तऽ आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्ण्णा यामाऽ अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्न्याऽ ॥ ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । स्नानान्ते आचमनीयं समर्पयामि ।

ॐ (G) सुजातो ज्ज्योतिषा सह शर्म्म वरूथमाऽसदत्स्वः । (त्र)

(G) "सुजातोज्योति" इत्यस्य सिन्धुद्वीप ऋषिरनुष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता वस्त्रसमर्पणे विनियोगः।
(७) हे अग्ने ! बहुत प्रकारवाला विचित्र वस्त्र कृष्णाजिनवाला अच्छी प्रकार से धारण करो।
(त्र) शिवे वस्त्रादिदानविधिः, वृहन्नारदीये—

"वासांसि सुविचित्राणि सारवन्ति मृदूनि च ।
धूपितानि शिवे दद्याद्विकेशानि नवानि च ॥
त्रिवृत् शुक्लं सुपीतं वा -पट्टसूत्रादि निर्मितम् ।
दत्वोपवीतं रुद्राय भवेद्वेदान्तपारगः ॥"

व्वासो॑ऽ अग्ने व्वि॒श्श्वरू॑प॒ꣳ संव्व्य॑यस्व विभावसो । (छ) ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः, वस्त्रमुपवस्त्रञ्च समर्पयामि । वस्त्रोपवस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

(A) "कर्मैव सूत्रं त्रिगुणात्मकं त-
देकैकशस्तत् त्रिगुणीकृतं पुनः ।

(छ) शु० य० अ० ११ मं० ४० ।

"श्रद्धा तुरी यत्र मनः कुलालो
भक्तिश्च वेमा मतितानयुग्मम् ।
निरन्तरश्लेषघनं पटीयः-
पटन्नु नीत्वा समुपस्थितोऽस्मि" ॥

(A) "यस्योद्भवोऽसौ जगदङ्कितो यः
जातो गुणेभ्यस्त्विव वेधसस्तैः ॥

ब्रह्मैव तद्ग्रन्थिरिति स्वरूपं
यज्ञोपवीतं हर तेऽर्पयामि ।।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं
प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं
यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ।
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।

नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ।।

नीचोऽपि येनाञ्चति मूर्तिमग्र्यां
यज्ञोपवीतं भवतेऽर्पयामि" ।।

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

"त्वमेव नाथ प्रणयिप्रियोऽसि
नान्यस्त्वतिक्रामति तेऽन्यसंख्याम् ।
अस्यापि तावत्क्रमशोऽवतारे
सङ्गृह्यतामाचमनीयवारि" ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय सवाहनाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ब्रह्माण्डमेतदखिलं विकृतं चिरेण
ज्ञानाग्निना बलवता प्रकृतं विधाय ।

क्रीडापरागविपिने हर तच्चिताया
भस्माङ्गरागमलं परितोऽर्पयामि ॥

ॐ (क्ष) त्वाङ्ग॑न्ध॒र्वा ऽअ॑खनँ॒स्त्वामिन्द्र॒स्त्वां बृह॒स्पति॑ः । त्वामो॑षधे॒
सोमो॒ राजा॑ वि॒द्वान्यक्ष्मा॑दमुच्यत ॥

(क्ष) अनुलेपनम्—भविष्ये—

लिङ्गस्य लेपनं कुर्यात् दिव्यगन्धैः सुगन्धिभिः ।
वर्षकोटिशतं दिव्यं रुद्रलोके महीयते ॥
गन्धानुलेपनात् पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु ।
चन्दनाच्चागुरोर्ज्ञेयं पुण्यमष्टगुणं नृप ॥
कृष्णागुरोर्विशेषेण द्विगुणं फलमादिशेत् ।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं कुङ्कुमस्य विधीयते ॥
चन्दनागुरुकर्पूरैः श्लक्ष्णपिष्टैः सकुङ्कुमैः ।
शिवलिङ्गं समालिप्य कल्पकोटिं वसेद्दिवि ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः गन्धं समर्पयामि ।

“यदङ्गसंसर्गकृतावरेणुं
मौलौ निजे सङ्गमयन्ति देवाः ।
देहे सदैवाहितविश्वभारे
सारे जगत्या वितनोति भस्म ॥

ॐ (H) प्र॒स॒द्य भस्म॑ना॒ षोनि॑म॒पश्च॑ पृथि॒वीम॑ग्ने । स॒ꣳ॒सृज्य॑मा॒तृभि॒ष्ट्वञ्ज्योति॑ष्मा॒न्पुन॒रास॑दꣳ ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः भस्म समर्पयामि ।

(H) “प्रसद्य भस्मना” इत्यस्य अविरूप ऋषिरनुष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता भस्मसमर्पणे विनियोगः ।

“आविष्कृतानन्दतरङ्गभङ्ग-
ममन्दगन्धं तनुषे त्वमेव ।

"यैरेव सम्प्राप्नोति सर्वलोको
दीव्यन्ति देवा यदनुग्रहेण ।
दिव्याक्षतान्ग्राहयितुं सुरेन्द्र !
तवैव दासः समुपस्थितोऽयम् ॥

ॐ अक्ष॒न्नमीमदन्त॒ ह्यवं प्रि॒या ऽअंधूषत । अस्तोषत॒ स्वभांनवो॒विप्रा॒ नविंष्ठया म॒ती योजा॒ न्न्विन्द्र ते॒ हरीं ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः अक्षतान् समर्पयामि ।

"वृत्तस्य मूले परमो रसो यः
स एव शाखाग्रगतः क्रमेण ।

मन्दाकिनीभङ्गविशोभिभाले
तवापि गन्धं परितः किरामि ॥

बभूव पुष्पं मनसः स्वरूपं
नानाविधं त्र्यम्बक तेऽर्पयामि ॥

ॐ (ज्ञ) ओष॑धी॒ः प्प्रति॑ मोदध्व॒म्पुष्प॑वतीः प्र॒सूव॑रीः । अश्वा॑ऽइव स॒जित्व॑रीर्वी॒रुध॑÷ पारयि॒ष्ण्व॑÷ ॥

(ज्ञ) शिवे विहितपुष्पाणि—भविष्ये—

पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः ।
अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ॥
आत्मारामोद्भवैर्वापि पुष्पैः सम्पूजयेच्छिवम् ।
अर्कपुष्पे तथैकस्मिन् शिवाय विनिवेदिते ॥
दश दत्वा सुवर्णस्य यत्फलं तदवाप्नुयात् ।
अर्कपुष्पसहस्रेभ्यः करवीरं विशिष्यते ॥
करवीरसहस्रेभ्यो बिल्वपत्रं विशिष्यते ।
बिल्वपत्रसहस्रेभ्यो द्रोणपुष्पं विशिष्यते ॥
द्रोणपुष्पसहस्रेभ्यो ह्यपामार्गो विशिष्यते ।

अपामार्गसहस्रेभ्यः कुशपुष्पं विधीयते ॥
कुशपुष्पसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते ।
शमीपत्रसहस्रेभ्यः श्रीमन्नीलोत्पलं वरम् ॥
पद्मपत्रसहस्रेभ्य एकं धत्तूरकं स्मृतम् ।
धत्तूरकसहस्रेभ्यः शमीपुष्पं विशिष्यते ॥
सर्वासां पुष्पजातीनां प्रवरं नीलमुत्तमम् ।

व्यासः—

चम्पकैर्बृहतीपुष्पैः पुन्नागैः कलहारकैः ।
कुशपुष्पैः कुशैश्चैव कदम्बैः पूजयेच्छिवम् ॥

अथ मासविसेषेण पुष्पविशेषाः

आषाढे बिल्व-कल्हारैरीप्सितं लभते फलम् ।
नवमल्लिकया पूजा नभोमासि महाफला ॥
कदम्बैश्चम्पकैरेवं नभस्ये सर्वकामदा ।
आश्विने पङ्कजैः शम्भोर्मालत्या पूजनं शुभम् ॥
ईप्सितं लभते सर्वं सर्वकामफलप्रदम् ।

माघफाल्गुनयोः पुण्यैः पूजनं कुन्द-मुद्गरैः ॥
चैत्रे दमनकैश्चादिपूजनं शतपत्रकैः ।
चन्दनैः कुसुमैर्वापि पूजनाच्च जगद्गुरोः ॥
पूर्णे संवत्सरे मर्त्यस्त्रिदशैः समतां व्रजेत् ।

भविष्यत्पुराणे—

पूजा चम्पकमालत्या इषेऽभ्युदयदायिनी ।
शतपत्रिकया पूजा कार्त्तिके सार्वकामिकी ।
मार्गे नीलोत्पलैः पूजा पुष्पैः स्यात् कुब्जकैः शुभा ॥
माघेऽथ कुन्दकुसुमैर्मरुवल्केन फाल्गुने ।
शतपत्रैस्तथा चैत्रे यः कुर्यात् सुरसत्तमः ॥
लभते सर्वयज्ञानां सर्वदानफलं तथा ।

इति मासविशेषेण पुष्पविशेषाः ।

अथ रात्र्यादिभेदेन, पुष्पभेदाः-

कनकानि कदम्बानि रात्रौ देयानि शङ्करे ।
दिवा शेषाणि देयानि दिवा रात्रौ च मल्लिकाः ॥

प्रहरन्तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् ।
प्रहरमहर्निशं वा पूजायां स्थापनानन्तरमुत्तारणीयमित्यर्थः ॥
नन्द्यावर्तं श्रियावर्तं श्वेतार्कं श्वेतपुष्पकम् ।
पुन्नागं पट्टिकं षोढं मालतीमुदये ददेत् ॥
पङ्कजं बृहतीं व्याघ्रीं ज्याघातं करवीरकम् ।
उत्पलं पाटलीं द्रोणं मध्याह्ने तु प्रदापयेत् ॥
चम्पकं वेदकं भद्रां धत्तूरं वरकर्णिकाम् ।
मालतीं मल्लिकाञ्चैव दापयेत्तु प्रदोषके ॥
जातीं नीलोत्पलञ्चैव पुष्पं कुन्दं कदम्बकम् ।
द्विवर्णञ्चैव भद्रञ्च अर्द्धयामे प्रदापयेत् ॥
नीलोत्पलसमं पुष्पं न भूतं न भविष्यति ।
कदम्बं जनकं जाती देयं स्याच्चार्धरात्रके ॥
अन्यपुष्पाणि सर्वाणि अन्यसन्ध्यासु दापयेत् ।

इति रात्र्यादिभेदेन पुष्पभेदाः

अथ सार्वकालपुष्पाणि–

विल्वपुष्पं शमीपुष्पं करवीरञ्च मालती ।
उन्मत्तकं चम्पकञ्च सद्यः प्रीतिकरं मम ॥
चम्पकाशोकपुन्नागाः सकल्हारास्तथा मम ।
हर्षदा द्विजशार्दूल ये चान्ये बहुगन्धिनः ।
एतैर्हि पूजितो नित्यं प्रीतिं शीघ्रं व्रजाम्यहम् ।
यैः कैर्वापीह कुसुमैर्जल-स्थल रुहैः शिवम् ॥
संपूज्य प्रोषितो भक्त्या शिवलोके महीयते ।

इति कालविशेषेण पुष्पविशेषैः शिवपूजनम् ।

अथ पुष्पादीनामभावे पत्रादिभिः पूजा कार्येति निरूप्यते

स्कन्दपुराणे—

अभावे पुष्पपत्राणामन्नाद्येनापि पूजयेत् ।
शालितण्डुलगोधूमैर्यवैर्वापि समर्चयेत् ॥
गाणपत्यमवाप्नोति रुद्रलोके वसेच्चिरम् ॥

भविष्यपुराणे—

अभावेन हि पुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ।
पत्राणामप्यभावे तु फलान्यपि निवेदयेत् ॥
फलानामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधीस्तदा ।
औषधीनामभावे तु भक्त्या भवति पूजितः ॥

इति पुष्पाद्यभावे पत्रादीनां पूजासाधनत्वं निरूपितम् ।

निषिद्धपुष्पाणि—

केशकीटादिविद्धानि शीर्णपर्युषितानि च ।
स्वयं पतितपुष्पाणि त्यजेदुपहृतानि च ॥ १ ॥
बकुलैर्नार्चयेद्देवमपक्वं न निवेदयेत् ।
फलं क्वथितविद्धं च यत्नात् पक्वमपि त्यजेत् ॥
अत्यन्तप्रतिषिद्धानि कुसुमानि शिवार्चने ।
कदम्बं फल्गुपुष्पं च केतकं च शिरीषकम् ॥
तिन्तिणीं बकुलं कोष्ठं कपित्थं गृञ्जनं तथा ।
बिभीतकं च कार्पासं श्रीपर्णीपत्रकष्टकम् ॥
शाल्मली दाडिमीवर्ज्जं धातकी शङ्करार्चने ।

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।

ॐ (I) नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्म्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒ नम॑÷ श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या꣤य चाहन॒न्न्या꣤य च ॥ (झ)

निर्गन्धान्युग्रगन्धीनि कुसुमानि विवर्जयेत् ॥

केतकी चातिमुक्तं च कुन्दो यूथी मदन्तिका ।

(I) "नमो ब्विल्मिने" इत्यस्य कुत्सऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता विल्वपत्रसमर्पणे विनियोगः ।

(१) "ब्राह्माण्डमेतच्छकलं तवैव
चर्कर्षि बर्भर्षि हरस्यहो वा ।
किमस्ति देयं भवतो दयालो
पुष्पाणि पाणौ सुमनः स्रगेषा ॥

(ज) शु० य० अ० १२, म० ३८,

ॐ भूर्भुवःस्वः (क) साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः बिल्वपत्राणि समर्पयामि ।

ॐ काण्डा॑त्काण्डात्प्॒ररोह॑न्ती॒ पर॑षः॒ परु॑ष॒स्परि॑ । ए॒वा नो॑ दूर्वे॒ प्रत॑नु स॒हस्रे॑ण श॒तेन॑ च ।

---

(८) हे ! अग्ने तुम भस्म द्वारा कारणभूत पृथ्वीको और योनिभूत जलों को प्राप्त कर मातृरूप जलों से मिलकर यशस्वी होकर फिर अपनी जगह जाइए ।

(६) शिरस्त्राण है जिसको उसको नमस्कार है, देह रक्षक कवच धारी को नमस्कार है, और लोहमय वर्मधारीको नमस्कार है, प्रसिद्धसेनावाले को भी नमस्कार है, दुन्दुभि में स्थित वाले को नमस्कार है, वाद्य साधन दण्डादि में विद्यमानको नमस्कार है ।

(M) शु० य० अ० १६, म० २५,

सौरपुराणे—

(क) एकं बिल्वदलं रम्यं यत् मद्भक्तेनार्पितं मयि ।
सर्वोन्मादहरं नूनं सत्यमेवोच्यते मया ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः दूर्वाङ्कुरान्समर्पयामि ।

"तैस्तैर्जगत्प्रथितभावमयैर्विधानैः
ध्यानेन मान्यविधिना विधिनाश्रितैर्वा ।
पुञ्जीकृतं स्वमनसा सहसा विकीर्णं
शम्भो इदं परिमलं विमलं गृहाण ॥

निषिद्धदिने बिम्वपत्राच्छेदनम्—

"अमारिक्तासु संक्रान्तावष्टम्यामिन्दुवासरे ।
बिल्वपत्रं न च छिन्द्यात् छिन्द्याच्चेन्नरकं व्रजेत् ॥

ॐ अहि॑रिव भो॒गैँ॑ऽ पर्ये॑ति बा॒हुञ्ज्याया॑ं हे॒तिं प॑रि॒बाध॑मानः ।
ह॒स्त॒घ्नो व्विश्श्वा॑ व्व॒युना॑नि व्वि॒द्वान्पु॒मान्पुमा॑ᳪं स॒म्परि॑पातु व्वि॒श्श्वतः॑ ॥

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः नानापरिमलद्रव्याणि समर्पयामि ।

“ओंपादमस्तकदशाङ्गविजृभितास्त्रियाहं
कृतिर्भवत एव दशाङ्गधूपः ।
तत्संयतो निहतदोषगणात्सुगन्धि—
र्धूपो मया सुरभितस्तमिमं गृहाण ॥

नैवेद्यं पुरतो निधाय—

ॐ भूर्भुवःस्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्ति-

---

(१) “दीव्यन्ति ते सुरभितास्त्वमितः सुरेन्द्रा
चेतः स्थितैरवितथैर्विहितां सुभावैः ।
धूमोयदम्भरतलं विमलं प्रतेने
तां धूपसन्ततिनतिं विततां गृहाण ॥”

काय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः धूपमाघ्रापयामि ।

(२) ज्ञाने यथौवोर्ध्वगतिः प्रतिष्ठिता
दीपे तथोर्ध्वस्मनं प्रतिष्ठितम् ।
प्रज्वलितः सोममयं प्रदीपो
मयार्पितस्मे शिवत गृहीण ॥

ॐ अ॒ग्निज्ज्योति॒ज्ज्योति॑र॒ग्निः स्वाहा॒ सूर्य्यो॒ ज्योति॒र्ज्योति॒ꣳ सूर्य्य॒ꣳ स्वाहा॑ । अ॒ग्निर्व्वर्च्चो॒ ज्ज्योति॒र्व्वर्च्च॒ꣳ स्वाहा॒ꣳ सूर्य्यो॒ व्वर्च्चो॒ ज्योति॒र्व्वर्च्च॒ꣳ स्वाहा॑ । ज्ज्योति॒ꣳ सूर्य्य॒ꣳ सूर्य्यो॒ ज्ज्योति॒ꣳ स्वाहा॑ ।

---

(२) "अज्ञानगाढतिमिराञ्जनसङ्कुतोऽहं
लेभे प्रकाशपदवीं यदनुग्रहेण ।
तज्जृम्भितां मनस उत्कलिकाविधानै-
स्तां दीव्यदीपकलिकां लतिकां गृहाण ॥"

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ।

(३) भूनीरपावकमरुद्भिररं चतुर्भि
सम्पूर्यमानमपि येन न पूर्यतेऽभ्रम् ।
हेव्योमं केशरसानामयचतुर्विधं
तं नैवेद्यमेतदमलं भवतेर्पयामि ॥

ॐ (A) अन्न॑प॒ते ऽन्न॑स्य नो देह्य नमी॒वस्य॑ शु॒ष्मीण॑ः । प्र प्र॑ दा॒तार॑न्तारिष॒ ऽऊर्ज॑न्नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥

---

(३) "तस्मादुमेश ! चिरकालकृतप्रतिक्षः
लब्ध्वाक्षमां तव विनम्रगदप्रसारः ।
नैवेद्यमञ्जलिपुटं भवते निवेद्य
उज्जृम्भितः सपदि मे तनुरोमहर्षः ॥"

(A) नैवेद्यदानसमयः—
"अर्वाक् विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते ।

विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ।।
पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते सुखम् ।" (गरुडपुराणे)

नैवेद्यस्थापनक्रमः—

पुरश्चर्यार्णवे—

"नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः ।
पक्वञ्च देवता वामे आमान्नञ्चैव दक्षिणे ।।"

तन्त्रसारे—

दक्षिणं तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत् ।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयञ्च सुरोपमम् ।।

नैवेद्यदानफलम्—

"नैवेद्येन भवेत्स्वर्गो नैवेद्येनामृतं भवेत् ।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येसु प्रतिष्ठिता ।।
सर्वयज्ञफलं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम् ।
ज्ञानदं मानदं पुण्यं सर्वभोग्यमयं सदा ।।" (कालिका पु० १६९ अ० ७०)

नैवेद्यम्—

"न निवेदं निवेदनमर्हेति ष्यञ् नि ।। विदणि च कर्मणि यत् स्वार्थे अण् वा ।।"

“निवेदनीयं द्रव्यन्तु नैवेद्यमिति कल्प्यते।”
इति स्मृत्युक्ते देवतोद्देशेन त्यक्त द्रव्ये तस्य व्युत्पत्तिः।

शिवनिर्माल्यधारणे विशेषः—स्कान्दे—

“निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति।
अशुचिर्भिन्न मर्य्यादो नरः पापसमन्वितः॥
नरके पच्यते घोरे तिर्यग् योनौ च जायते।
ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्॥
तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते।
अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्॥
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम्।
उदके निर्माल्यत्यागश्च गङ्गे नापरः।

यथोक्तं ब्रह्मपुराणे—

“गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य चतुर्दश विवर्जयेत्।
शौचमाचमनं केशं निर्माल्यं मलघर्षणम्॥”

वाराहपुराणे भगवत्वाक्यम्—

“माहिषं चाविकं मांससमयाज्ञिकमुदाहृदम्।
माहिषं वर्जयेन्मासं क्षीरदधिघृतं तथा॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवारय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः नैवेद्यं समर्पयामि । अनामिकामूलयोरङ्गुष्ठयोगेन नैवेद्यमुद्रां प्रदर्श्य–ग्रासमुद्राः प्रदर्शयेत्–तद्यथा–अङ्गुष्ठप्रदेशिनीमध्यमाभिः–"ॐ प्राणाय स्वाहा" ॥ १ ॥ अङ्गुष्ठमध्यमानामिकाभिः–"ॐ अपानाय स्वाहा" ॥ २ ॥ अङ्गुष्ठानामिकाकनिष्ठाभिः–ॐ व्यानाय स्वाहा ॥ ३ ॥ कनिष्ठातजन्यङ्गुष्ठैः ॐ

चाण्डालेन शुनावापि दृष्टं हविरयज्ञियम् ।
विडालादिभिरुच्छिष्टं दुष्टमन्नं विवर्जयेत् ॥

वाराहपुराणे—

अपर्युषितपक्वानि दातव्यानि प्रयत्नतः ।
खण्डाज्यादिकृतं पक्वं नैव पर्युषितं भवेत् ॥

विष्णुः—

"नाभक्ष्यं नैवेद्यार्थे भक्षष्वजामहिषीक्षीरं वर्जयेत् ।

समानाय स्वाहा ॥ ४ ॥ समाङ्गुष्ठाभिः सर्वाभिः ॐ उदानाय स्वाहा ॥ ५ ॥ इति प्रदर्श्य मध्ये पानीयं समर्पयामि । उत्तरापोशनं समर्पयामि । करोद्वर्तनार्थे चन्दनानुलेपनं समर्पयामि ।

> "कृतावसाने विविधोपचारे
> बन्धे सुबन्धौनुकटारविन्दे ।
> ताम्बूलवल्लीक्रमुकामलश्री
> ताम्बूलपूगे परिकल्पयामि ॥"

ॐ याः फ॒लिनी॒र्या ऽअ॑फ॒ला ऽअ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणीः॑ । बृह॒स्पति॑प्प्रसूता॒स्ता नो॑ मु॒ञ्च॒न्त्वꣳह॑सः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः ताम्बूलपत्रं पूगफलं च समर्पयामि ।

"भूयोऽप्यदाक्षिण्यमदो मदीयं
यद् दक्षिणां ते ऽपि समर्पयामि ।
तथापि सर्वं चरितं ममेदं
श्रद्धासुभक्त्योत्कलिकाभिरेव ॥"

ॐ हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत् । स दा॑धार पृथि॒वीन्द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः कृतायाः पूजायाः साद्गुण्यार्थे दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि ।

"कर्पूरपूराञ्जलिमध्यभागो
बद्धाञ्जलिस्त्वां भगवन्ब्रवीमि ।

नीहारसारोघनसारराशिः
प्रीत्यै भवेत्ते करुणावतारः ॥"

ॐ आरा॑त्रि॒ पार्थि॑वꣳ॒ रजः॑ पि॒तु र॑प्रायि॒ धाम॑भिः । दि॒वः सदा॑ꣳसि बृह॒ति वित॑ष्ठस॒ ऽआ॑ त्वे॒षं व॑र्त्तते॒ तमः॑ ।

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि ।

"ऋक्सामंमन्त्रकुसुमाञ्जलिलीनचेता
आदाय तां भगवतो भवतोऽर्चनाय ।
अभ्यागतः सुशरणं चरणं त्वदीयं
तस्मात्वमर्हसि विभो करुणा प्रसारे ॥"

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

“यो बभर्ति करोति संहरति वै ब्रह्माण्डमण्डं महत्
यो ऽखण्डं ह्यवलम्बते ऽम्बरतले ऽनालम्बमण्डं पुनः ।
श्रद्धाभक्तिवितानशुद्धमनामेकाश्रयस्तेजसां
विष्णुर्वात्रिपुरान्तकः शतधृतिः कस्मै चिदस्मै नमः ॥”

ॐ भूर्भुवः स्वः साङ्गाय सपरिवाराय सायुधाय सवाहनाय सशक्तिकाय श्रीभगवते साम्बसदाशिवाय नमः (B) नमस्करोमि ।

B एकं गणाधिपे दद्याद्द्वे सूर्ये त्रीणि शङ्करे ।
चत्वारि केशवे दद्यात्सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः ॥
पदान्तरे पदं न्यस्य करौ चलनवर्जितौ ।
स्तुतिर्वाची हृदि ध्यानं चतुरङ्गं प्रदक्षिणम् ॥
शम्भोः प्रदक्षिणं कुर्वन् सोमसूत्रं न लङ्घयेत् ।
लङ्घिते त्वेकमेव स्यादनुल्लङ्गऽयुतयत्रम् ॥
अपसव्यं यतिः कुर्यात् सव्यं तु ब्रह्मचारिणः ।
सव्यासव्यं गृहिणो नित्यं शम्भोः प्रदक्षिणम् ॥

ततो ध्यानं न्यासं च कुर्यात्—

"ध्याये नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चन्द्रावतंसम्,
रत्नाकल्पोज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम् ॥
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतमरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानम्,
विश्वाद्यं विश्वबन्धं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रकम् ।
गङ्गाधरं दशभुजं सर्वाभरणभूषितम् ॥
नीलग्रीवं शशाङ्काङ्कं नागयज्ञोतवीतिनम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च शरण्यमभयप्रदम् ॥

प्रदक्षिणत्रयं कृत्वा नमस्कारैश्च पञ्चभिः ।
पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा शिवलोके महीयते ॥
जानुभ्यां चैव पाणिभ्यां शिरसा च विचक्षणः ।
कृत्वा प्रणामं देवेशे सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥
तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च
महादेवप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

कमण्डल्वक्षसूत्राभ्यामन्वितं शूलपाणिनम् ।
दिव्यसिंहासनासीनं दिव्यभोगसमन्वितम् ॥
दिग्देवता समायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।
नित्यं च शाश्वतं बुद्धिं ध्रुवमक्षयमव्ययम् ॥
सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम् ।
एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ॥

इति शिवपूजनविधिः समाप्ता ।

—— ० ——

अथ लघुषडङ्गन्यासविधिः—

ॐ ४मनो॒ ज्जूति॑र्ज्जुषता॒माज्ज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु । विश्श्वे॑दे॒वास॑ ऽइ॒हमा॑दयन्ता॒मोम्प्रति॑ष्ठ "ॐ हृदयाय नमः ।

---

(४) मनोजूतिरित्यस्य बृहस्पतिर्ऋषिः बृहती छन्दः बृहस्पतिर्देवता हृदयन्यासे विनियोगः ।

ॐ अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑ना॒म्प्रति॑धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् । य॒ह्वा ऽइ॑व॒ प्प्रव॒यामु॒ज्जिहा॑ना॒ः प्रभा॒नवः॑ सिस्त्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥ “ॐ शिरसे स्वाहा” ।

ॐ मू॒र्द्धान॑न्दि॒वो ऽअ॑र॒तिम्पृ॑थि॒व्व्या वै॑श्श्वान॒रमृ॒तऽ आजा॒तम॒ग्निम् । क॒विꣳ स॒म्म्राज॒मति॑थि॒ञ्जना॑नामा॒सन्ना पात्र॑ञ्जनयन्त दे॒वाः । “ॐ शिखायै वौषट्”

ॐ मर्म्मा॑णि ते॒ व्वर्म्म॑णा च्छादयामि॒ सोम॑स्त्वा॒ राजा॒ मृते॒नानु॑व-

---

(५) अबोध्यग्निरित्यस्य बुधगविष्ठिरा ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता शिरोन्यासे विनियोगः । शु० अ० १५ म० २४ ।

(६) मूर्द्धानमित्यस्य भरद्वाज ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता शिखान्यासे विनियोगः । शु० अ० ७ म० २४ ।

(७) मर्म्माणित इत्यस्य अप्रतिरथ ऋषिः विराट् छन्दः मर्माणिदेवता कवचन्यासे विनियोगः । शु० अ० १७ । ४६ ।

स्ताम् । उ॒रोर्व्वरी॑यो॒ वरु॑णस्ते कृणो॑तु॒ जय॑न्त॒न्त्वानु॑ दे॒वा म॑दन्तु ॥
ॐ कवचाय हुम् ।

ॐ वि॒श्व॑तश्चक्षुरु॒त वि॒श्वतो॑मुखो वि॒श्वतो॑बाहुरु॒त वि॒श्वत॑स्पात् । सम्बा॒हुभ्या॒न्धम॑ति॒ सम्पत॑त्रै॒र्द्यावा॒भूमी॑ ज॒नय॑न्दे॒व ऽएक॑ः ॥
ॐ नेत्रत्रयाय वौषट् ।

ॐ मा॑ न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ ऽआयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒मा नो॒ ऽअश्वे॑-

---

(८) विश्वतश्चक्षुरित्यस्य विश्वकर्मा भौवन ऋसिः त्रिष्टुप्छन्दः विश्वकर्मा देवता नेत्रन्यासे विनियोगः ।
ऋ० १० । ८१ । शु० अ० १७ मं० १६ ।

जिस देव के आँख सर्वत्र हैं, और जिस देव के मुख सर्वत्र है, जिस देव के बाहु सर्वत्र काम कर रहे हैं। और सब जगह जिसके पैर हैं, वह बाहु के द्वारा प्रायणीय फलों से द्युलोक और पृथिवी लोक को उत्पन्न करता है।

(९) मानस्तोक इत्यस्य परमेष्ठी ऋषि-जगतीच्छन्दः एको रुद्रो देवता अस्त्रन्यासे विनियोगः ।

षु रीरिषः । मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥
ॐ अस्त्राय फट् ।

---

(१०) ॐ ऊर्ध्व केशि विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने ।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डे चापराजिते ॥

इति शिखाग्रंथिबन्धनम्—

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरू पृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः ।

इत्यासनशुद्धिः ॥ आचम्य प्राणानायम्य । सद्योजातमित्यस्य सद्योजात ऋषिः जगती छन्दः विष्णुत्रिष्टुप् छन्दः ब्रह्मा देवता । वामदेवेत्यस्य वामदेव ऋषिः जगती छन्दः विष्णुर्देवता । अघोरेभ्य इत्यस्य अघोरऋषिः अनुष्टुप् छन्दः रुद्रो देवता, तत्पुरुषायेत्यस्य तत्पुरुष ऋषिः गायत्री छन्दः रुद्रो देवता, ईशानेत्यस्य ईशान ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः रुद्रो देवता सर्वेषां भस्मपरिग्रहणे विनियोगः ।

ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमः ।
भवे भवे नाति भवे भव स्वां मां भवोद् भवाय नमः ॥

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमो कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमो सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ २ ॥

ॐ अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ३ ॥

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमही । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ४ ॥

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिः ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोऽम् ।

इति पञ्चभिर्मन्त्रैः भस्मनः सव्यहस्ते परिग्रहणं दक्षिणेनाच्छादनम् ।

अग्निरित्यादि भस्माऽभि मन्त्रणमन्त्राणां पिप्पलादि—ऋषिः गायत्री छन्दः कालाऽग्नि रुद्रो देवता भस्माऽभिमन्त्रणे विनियोगः ।

ॐ अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म, जलमितिभस्म, स्थलमिति भस्म, व्योमेति भस्म, सर्वꣳहवा इदं भस्म, मन इत्येतानि चक्षूंषि भस्मनि । तस्माद्व्रतमेतत् पाशुपतं यद् भस्मनाऽङ्गानि संस्पृशेत्तस्माद्व्रतमेतत् पाशुपतं पशुपाश विमोक्षाय ।

इति त्रिः पठित्वा भस्ममभिमन्त्रणम् । आपो ज्योतिरित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः यजुश्छन्दः ब्रह्माअग्निवायुसूर्या देवता भस्मन्यपामासेचने विनियोगः ।

ॐ आपो ज्योतिरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरो३म् ।

इति मन्त्रं पठित्वा जलेन सिञ्चेत् । ॐ नमः शिवाय, इति सम्मर्दनम् । ततः सर्वाङ्गे भस्मोद्धूलनम् ।

तद्यथा—ईशानेत्यस्य ईशान ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः रुद्रो देवता शिरसि भस्मोद्धूलने विनियोगः ।

ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माऽधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्माशिवो मे अस्तु सदा शिवो३म् ॥ इति शिरसि ।

तत्पुरुषायेत्यस्य तत्पुरुष ऋषिः गायत्रीच्छन्दः रुद्रो देवता मुखे भस्मोद्धूलने विनियोगः ।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्” इति मुखे ।

अघोरेभ्य इत्यस्य अघोरऋषिः अनुष्टुप् छन्दः रुद्रो देवता हृदये भस्मोद्धूलने विनियोगः ।

ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः । सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः, इति हृदये ।

वामदेवेत्यस्य वामदेव ऋषिः जगतीच्छन्दः विष्णुर्देवता गुह्ये भस्मो० वि० ।

ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमो श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः, इति गुह्ये ।

सद्योजातमित्यस्य सद्योजात ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः ब्रह्मा देवता पादयोर्भस्मोद्धू० वि० । **ॐ सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः । भवे भवेनाति भवे भवस्व माम्भवोद्भवाय नमः”** इति पादयोः ।

“ॐ प्रणवेन” मस्तकादि-पादान्तम् !

मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः जगतीछन्दः एको रुद्रो देवता भस्मोद्धू० वि० ।

ॐ मानस्तोके तनये०,

त्र्यम्बकमित्यस्य वसिष्ठ ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको रुद्रो देवता त्र्यायुषमित्यस्य नारायण ऋषिः उष्णिक् छन्दः आशीः देवता भस्मना त्रिपुण्ड्रधारणे वि०” इति स्मृत्वा—

याऽस्य प्रथमा रेखा सा सागार्हपत्यश्चाऽऽकारो रजो भूर्लोकश्चात्मा क्रिया शक्तिः ऋग्वेदः प्रातः सवनम् महादेवो देवता, याऽस्य द्वितीया रेखा सा च दक्षिणाग्निरुकारः सत्वमन्तरिक्षमन्तरात्मा च इच्छाशक्तिर्यजुर्वेदोमाध्यन्दिनसवनं महेश्वरो देवता, याऽस्य तृतीया रेखा सा आहवनीयो मकारस्तमो द्यौः परमात्मा देवता ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनम् शिवोदेवता ॥ "ॐ त्र्यम्बकं यजामहे०" "ॐ त्र्यायुषञ्जमदग्नेः"। इति शिरसि, नेत्रयो वक्षसि स्कन्धायोश्च त्रिपुण्डधारणम्। ॐ नमः शिवायेति रुद्राक्षधारणम्।

"ॐ तिर्यग्बिलाय चमसायोर्ध्व-बुध्न्याय छन्दः पुरुषाय नमः" इति शिरसि। "गौतमभरद्वाजाभ्यां नमः" इति नेत्रयोः। "ॐ विश्वामित्रजमदग्निभ्यां नमः" इति मन्त्रावृत्त्या श्रोत्रयोः। "वशिष्ठकश्यपाभ्यां नमः" "इति नासापुटयोः।" "अत्रये नमः" इति वाचि। "ॐ गायत्र्यै छन्दसे नमः" "ॐ अग्नये नमः" इति शिरसि। "ॐ उष्णिहे छन्दसे नमः" "ॐ सावित्रे नमः" इति ग्रीवायाम्। "ॐ बृहत्यै छन्दसे नमः"। "ॐ बृहस्पतये नमः" इत्यनूके। [अनूकः पृष्ठवंशः] "ॐ बृहद्रथन्तराभ्यां नमः" "ॐ द्यावापृथिवीभ्यां नमः" इति दक्षिणबाहौ। एवमेव पुनर्वामबाहौ। ॐ त्रिष्टुभे छन्दसे नमः ॐ इन्द्राय नमः इति मध्यमुदरम्। ॐ जगत्यै छान्दसे नमः, ॐ आदित्त्याय नमः, इति मन्त्रावृत्त्या श्रोण्योः। ॐ अतिच्छन्दसे नमः, इति गुदे। ॐ प्रजापतये नमः, इति लिङ्गे, ॐ यज्ञियाय छन्दसे नमः, ॐ वैश्वानराय नमः, इति गुदे। ॐ अनुष्टुभे छन्दसे नमः, ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इति मन्त्रावृत्त्या ऊर्वोः ॐ पङ्क्त्यै

छन्दसे नमः, ॐ मरुद्भ्यो नमः इत्यष्ठीवतोः । मन्त्रावृत्त्याऽष्ठीवतोर्जान्वोः । ॐ द्विपदायै छन्दसे नमः, ॐ विष्णवे नमः, इति मन्त्रावृत्त्या पादयोः । ॐ विच्छन्दसे नमः । ॐ वायवे नमः प्राणेषु । (प्राणवायोः संचारस्थानं नासिका प्राणशब्देनोच्यते)। ॐ न्यूनाक्षराय छन्दसे नमः, ॐ अद्भ्यो नमः, इति हस्तद्वय—विपर्यासेन मस्तकादिपादान्तं सर्वाङ्गेषु, इति सर्वानुक्रमविहितश्छदः पुरुषन्यासः ।

अथ पञ्चाङ्गरुद्राणां न्यासः—

मनो जूतिरित्यस्याङ्गिरस बृहस्पति ऋषिर्यजुर्विश्वेदेवो देवता हृदयन्यासे विनियोगः । ॐ मनो जूतिः" हृदयाय नमः । अबोध्यग्निरित्यस्य बुधगविष्ठिरावृषी त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता शिरोन्यासे विनियोगः ! "ॐ अबोध्यग्निः" सशिरसे स्वाहा । ॐ मूर्धमित्यस्य भरद्वाज ऋषिः वैश्वानरोऽग्निर्देवता शिखान्यासे विनियोगः । ॐ मूर्धानं" शिखायै वषट् । मर्माणित इत्यस्य विवस्वान् ऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः लिङ्गोक्ता देवता कवचन्यासे विनियोगः । मर्माणिते० कवचाय हुम् ।

विवस्वतश्चक्षुरित्यस्य विश्वकर्मा भौवनऋषिः त्रिष्टुप्छन्दः विश्वकर्मा देवता नेत्रन्यासे विनियोगः । ॐ विश्वस्वतश्चक्षु०:, नेत्राय वौषट् । मानस्तोक इत्यस्य कुत्स ऋषिः जगतीच्छन्दः एको रुद्रो देवता अस्त्रन्यासे विनियोगः । ॐ मानस्तोके० अस्त्राय फट् , इति षडङ्गन्यासः प्रथमः ।

याते रुद्र इति परमेष्ठी अनुष्टुप्छन्दः एको रुद्रो देवता शिखान्यासे विनियोगः । ॐ याते रुद्र शिवातनूरघोरा० शिखायाम् । अस्मिन् महतीत्यस्य परमेष्ठी अनुष्टुप्छन्दः बहु रुद्रो देवता शिरोन्यासे विनियोगः । ॐ अस्मिन् महत्यर्णवे० शिरसि । असङ्ख्येति परमेष्ठी अनुप्टुप्छन्दः बहवो रुद्र देवता ललाटन्यासे विनियोगः । अस-

ङ्ख्याता० ललाटे। त्र्यम्बकमित्यनयोः क्रमेण वशिष्ठप्रजापती अनुष्टुप् छन्दः त्र्यम्बको देवता नेत्रन्यासे वि०। ॐ **त्र्यम्बकं० नेत्रयोः**। मानस्तोक इति कुत्स जगती छन्दः एको रुद्रो देवता नासिकान्यासे विनियोगः। ॐ **मानस्तोके० नासिकायाम्**। अवतत्येत्यस्य परमेष्ठी ऋषिरनुष्टुप् छन्दः एको रुद्रो देवता प्रकोष्ठन्यासे विनियोगः। ॐ **नमस्तऽआयु० प्रकोष्ठयोः**। (मणिबन्धादूर्ध्वं कूर्परादधो भागः प्रकोष्ठः) ये तीर्थानीति परमेष्ठी ऋषिरनुष्टुप् छन्दः बहवो रुद्राः देवता हस्तन्यासे विनियोगः। ॐ **ये तीर्थानि० हस्तयोः**। नमोवऽक्रिरिकेभ्यः इति परमेष्ठी ऋषिः सामोष्णिक् यजुरुष्णिक् अतिछन्दांसि बहवो रुद्रा देवता हृदयन्यासे विनियोगः। ॐ **नमो वः कि०" हृदये**। नमो हिरण्य बाहव इति ऋषिरत्रैकादशाक्षणां यजुस्त्रिष्टुप् छन्दः अष्टाक्षराणां यजुरनुष्टुप् छन्दः दशाक्षरस्य यजुः पंक्तिश्छन्दः हिरण्यबाहवादयो मन्त्रवर्णावगता उभयतो नमस्काराः बहवो रुद्रा देवता नाभिन्यासे विनियोगः। ॐ **नमो हिरण्य बाहव०** पुष्टानाम्पतये नमः नाभौ। इमा रुद्रायतवसे० कुत्स ऋषिः जगतीछन्दः एको रुद्रो देवता गुह्यन्यासे विनियोगः। ॐ **इमारुद्राय०** गुह्ये। मा नो महान्तमिति कुत्स ऋषिः जगतीच्छन्दः एकरुद्रो देवता उरुन्यासे विनियोगः। ॐ **मानो महान्त०** ऊर्वोः। एषत इत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः सामपंक्ति यजुर्जगतीच्छन्दः रुद्रो देवता जानुन्यासे विनियोगः। ॐ **एषते रुद्र०** जान्वोः। अवरुद्रमित्यस्य प्रजापतिऋषिः पंक्तिश्छन्दः रुद्रो देवता जङ्घान्यासे विनियोगः। अवरुद्रम० जङ्घयो०। (जानुगुल्फयोरन्तरालं जङ्घा)। अध्यवोचदित्यस्य परमेष्ठी ऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः एक रुद्रो देवता कवचन्यासे विनियोगः। ॐ **अध्यवोच०**। कवचमुद्रया कवचम्। नमो बिल्मिन-इत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः षडक्षराणां यजुर्गायत्री पञ्चाक्षरयोर्दैवी पङ्क्तिः छन्दः सप्ताक्षरस्य यजुरुष्णिक् छन्दः बिल्मिनादयो मन्त्रवर्णावगता अन्यतरतौ नमस्कारा बहवो रुद्रादेवता उपकवचन्यासे विनियोगः। ॐ **नमो बिल्मिने०**

न्याय च। (कवचाद्विपरीतमुपकवचम्)। (कवचोपरि तथैवेत्युपकवचमित्यन्ये)। नमोस्तु नीलग्रीवायेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः एकोरुद्रो देवता तृतीयनेत्रन्यासे विनियोगः। ॐ नमोस्तुनील०। मुष्टितो विमुक्तया मध्यमया तृतीय नेत्रे। प्रमुञ्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिः अनुष्टुप्छन्दः एक रुद्रेदेवता अस्त्रन्यासे विनियोगः। ॐ प्रमुञ्चध० अस्त्रम्, य एतावन्तश्चेत्यस्य परमेष्ठी ऋषिरनुष्टुप् छन्दः बहवो रुद्रा देवता दिग्बन्धने विनियोगः। ॐ यऽएता०। (दिक्षु विदिक्षु च परस्परं तर्ज्यङ्गुष्ठाग्रस्फोटनेन दिग्बन्धः)। इति शिखाद्यस्त्रान्तो दिग्बन्ध सहित एकोनविंशतिविधो द्वितीयः। दशाक्षरमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिः विराड् रुद्रो देवता न्यासे विनियोगः। ॐ नमो मूर्धनि, ॐ नं नमो शिखायाम्। ॐ मों नमो ललाटे, ॐ भं नमो मुखे ॐ गं नमः कण्ठे, ॐ वं नमः हृदये, ॐ तें नमः दक्षिणहस्ते, ॐ रुं नमः बामहस्ते, ॐ द्रां नमः नाभौ, ॐ यं नमः पादयोः इति रुद्रगायत्रीन्यासतृतीयः।

सम्पुटाख्यः स च मुद्रिताञ्जलिना प्राच्यादिदिक्षु वक्ष्यमाणमन्त्रैः कार्यः। तद्यथा—त्रातारमित्यस्य गर्गऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः इन्द्रो देवता सम्पुटीकरणे विनियोगः। ॐ त्रातारमिन्द्र॥ प्राच्याम्।

त्वन्नो अग्न इत्यस्यस्य हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः अग्निर्देवता सम्पुटीकरणे विनियोगः। ॐ त्वन्नोऽअग्ने० आग्नेय्याम्।

सुगन्नु पन्थामित्यस्य प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः यमो देवता सम्पुटी०। ॐ सुगन्नु पन्थां० दक्षिणस्याम्।

असुन्वन्तमित्यस्य प्रजापति ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः निर्ऋतिदेवता सम्पुटी०। ॐ असुन्वन्त० नैर्ऋत्याम्।

ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव इत्यादिभिः षोडशर्ग्भिः स्वाहाकारान्ताभिः षोडशाहुतयः। १६ ॐ नमो हिरण्य बाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमः स्वाहा। ॐ नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमः स्वाहा। इत्येवमादिभिः उभयतो नमस्कारैः पञ्च चत्वारिंशद्भिः यजुभिः, पंच चत्वारिंशदाऽऽहुतयः। ४५ ॐ नमोभवाय च स्वाहा। ॐ नमः शंभवाय च पशुपतये च स्वाहा। इत्येवमादिभिः अन्यतरतो नमस्कारैः पंच सप्तत्याहुतयः। ७५ ॐ नमः इषु कृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा इत्युभयतो नमस्कारेण यजुषा चैकाहुतिः १ ॐ नमो वः किरिकेभ्योः देवानां ꣳ हृदयेभ्यः स्वाहा। ॐ नमो विक्षिणत्केभ्यः देवानांꣳ हृदयेभ्यः स्वाहा। ॐ नमऽआनिर्हतेभ्योः देवानांꣳ हृदयेभ्यः स्वाहा इत्यन्यतरतो नमस्कारैः चतुर्भिः यजुभिर्चतस्त्र आहुतयः। ४ द्रापे अन्धसस्पत इत्यादिभिर्विंशति कण्डिकाभिः स्वाहाकारान्ताभिः विंशत्याहुतयः। २० पूर्वाभिः सहैकषष्ठ्युत्तरमन्त्रा भवन्ति १६१ एवमेकषष्ठ्युतरशतधा मन्त्रविभागेन दशकृत्वोरौद्राध्यायेन हुत्वा पुनर्यज्जाग्रत इत्यादिभिः विभ्राडित्यनुवाकान्तैः पूर्ववत् पञ्चाहुतयः जुहुयात्। ततः एकावृत्यारौद्राध्यायेन पूर्ववत् हुत्वा वयꣳ सोमेनेत्यष्ट कण्डिकात्मकेन महाच्छिरसा एकामाहुतिं जुहुयात्।

वयꣳ सोमेनेत्यस्य बन्धुऋृषिर्गायत्रीच्छन्दः सोमोदेवता एषत इत्यनयोः प्रजापति ऋृषिः साम पंक्तिर्यजुर्जगतीच्छन्दांसि रुद्रोदेवता अवरुद्रमित्यस्य प्रजापतिर्ऋृषिः सामपंक्तिश्छन्दो रुद्रो देवता भेषजमित्यस्य ककुप्छन्दो रुद्रो देवता त्र्यम्बकमित्यनयोः क्रमेण वसिष्ठप्रजापतीऋृषी अनुष्टुप्छन्दः त्र्यम्बको रुद्रो देवता एतत्त इत्यस्य प्रजापतिर्ऋृषिः आस्तरपंक्तिश्छन्दः रुद्रो देवता त्र्यायुषमित्यस्य नारायणऋृषिः उष्णिक् छन्दः आशी-

देवता शिवो नामेत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः प्राजापत्या बृहतीच्छन्दः क्षुरो देवता निवर्तयामीत्यस्य प्रजापतिर्ऋषिः प्राजापत्या त्रिष्टुप् लिङ्गोक्ता देवता महारुद्रप्रीतये होमे वि० ।

ॐ वयꣳ सोम० सुवीर्य्याय स्वाहा । ऋचम्वाचमिति चतुर्विंशतिमन्त्राणाम् प्रजापतिऋषिर्गायत्रीच्छन्दः विष्णुर्देवता शान्त्यर्थंहोमे वि० ।

ॐ ऋचम्वाचमित्यादिभिः शान्त्याध्यायमन्त्रैः प्रतिमन्त्रञ्चतुर्विंशतिराहुतिं जुहोति । २४ चमकाहुतिपक्षे तु यज्जाग्रत इत्यादिभिः पञ्चाङ्गमन्त्रैः पञ्चाहुतिर्हुत्वा ततो रौद्राध्यायेन पूर्वोक्तप्रकारेण हुत्वा होमान्ते च एकैकेन चमकविभागेन हुत्वा शान्त्याध्यायमन्त्रैश्चतुर्विंशतिराहुतिर्जुहुयात् । चमकविभागस्तु वाजश्चेति चतस्रः ४ सत्यञ्चेति चतस्रः ४ । ४ ऊर्क् चेति चतस्रः । ४ अस्माचेतितिस्रः । ३ अग्निश्चमऽइन्द्रश्चमेतितिस्रः ३ । अꣳशुश्चेतितिस्रः ३ । अग्निश्च मे धर्मश्च म इति द्वे २ एका चेत्येका २ चतस्रश्चेत्येका १ त्र्यविश्चेति द्वे २ वाजाय स्वाहेति द्वे २ इति चमकविभाग एषरुद्र होमः । एवं क्रमेण लघुरुद्रहोमं महारुद्रहोमं कुर्युः । इत्येकषष्ट्युतरशतधामन्त्रविभाग सङ्ख्यया होम उक्तः । एकधा त्रेधा इत्यादि मन्त्रविभाग सङ्ख्या तु अनन्तदेवकृतरुद्रकल्पद्रुमे द्रष्टव्या । प्रधानहोमे क्रियमाणे जापकाः जपेयुः । शम् ।

अथ षष्ठो न्यासः सचाभिषेके एव भवति । प्रजने ब्रह्मा तिष्ठतु १ पादयोर्विष्णुस्तिष्ठतु २ हस्तयोर्हरस्तिष्ठतु ३ । वाह्वोरिन्द्रस्तिष्ठतु ४ । जठरेऽग्निस्तिष्ठतु ५ । हृदये शिवस्तिष्ठतु ६ । कण्ठे वसवस्तिष्ठन्तु ७ । वक्त्रे सरस्वती तिष्ठतु ८ । नासिकयोः वायुस्तिष्ठतु ९ । नयनयोः सूर्याचन्द्रमसौ तिष्ठेताम् १० । कर्णयोरश्विनौ तिष्ठेताम् ११ । ललाटे रुद्रास्तिष्ठन्तु १२ । मूर्ध्नि आदित्यास्तिष्ठन्तु १३ । शिरसि महापुरुषस्तिष्ठतु १४ । शिखायां चामुण्डा

तिष्ठतु १५। पृष्ठे पिनाकी तिष्ठतु १६। पुरतः शुली तिष्ठतु १७। पार्श्वयोः शिवशङ्करौ तिष्ठेताम् १८। सर्वतो वायुस्तिष्ठतु १९। ततो बहिः सर्वतोऽग्निः ज्वालामाला परिवृतः तिष्ठतु २०। सर्वेष्वङ्गेषु सर्वादेवतास्तिष्ठन्तु माम रक्षन्त्विति सर्वाङ्गे। इति षष्ठो न्यासः। अथाग्निर्मे वाचिश्रितः। इत्यादिभिर्मन्त्रैः यथा लिङ्गमङ्गानि संस्पृशेत्। तद्यथा—

ॐ अग्निर्मे वाचि श्रितः। वाक् हृदये। हृदयं मयि। अऽममृते अमृतं ब्रह्मणीति वाचं स्पृशेत् १। ॐ वायुर्मे प्राणे श्रितः। प्राणौ हृदये हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति हृदयम्। ॐ सूर्योमे चक्षुषि श्रितः चक्षुर्हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति चक्षुषोः ३। चन्द्रमा मे मनसि श्रितः। मनो हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति वक्षसि। मनस स्थानत्वात् ४। ॐ दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः श्रोत्रं हृदय हृदयं मयि अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति श्रोत्रे ५। ॐ आपो मे रेतसि श्रिताः। रेतो हृदये। हृदयं माये। अहममृते अमृतं ब्रह्मणीति लिङ्गे ६। ॐ पृथिवी मे शरीरे श्रिताः। शरीरं हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति शरीरे ७। ॐ ओषधि वनस्पतयो मे लोमसुश्रिताः। लोमानि हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति सर्वाङ्गे ८। ॐ इन्द्रो मे बलेश्रितः बलं हृदये। हृदयं मयि अहमुमृते। अमृतं ब्रह्मणीति सर्वाङ्गे ९। ॐ पर्जन्यो मे मूर्धिश्रितः। मूर्धा हृदये। हृदयं मयि। अहममृते। अमृतं ब्रह्मणीति मस्तके १०। ॐ ईशानो मे मन्यौश्रितः। मन्युर्हृदये। हृदयं मयि। अहममृते अमृतं ब्रह्मणीति वक्षसि। चित्त स्थानत्वात्। ॐ पुनर्म आत्मा पुनरायुरागात्। पुनः प्रागः पुनराकूतमागात्। वैश्वानरो रश्मिभिरावृधानः। अन्तस्तिष्ठत्वमृतस्य गोपा इति सर्वशरीरं संस्पृशेत्। ॐ एषते रुद्रभाग इति योनिमुद्रा प्रदर्शनम्। तदुक्तं हेमाद्रौ बौधायनी—

अथ प्र[२]थमोध्यायः

गणानांन्त्वा गणपंतिᳬं हवामहे प्प्रियाणांन्त्वा प्प्रियपंतिᳬं हवामहे निधीनान्त्वां निधिपतिंᳬ हवामहे व्वसोमम। आऽहमंजानि गब्भंधमा त्वमंजासि गर्ब्भंधम् ॥ १ ॥

कल्पे एवं न्यासविधिं कृत्वा ततो मुद्रां प्रदर्शयेत्। शिवपुष्टिः शिवस्योक्ता सैव शान्तिप्रदायिनी एषतेरुद्र इति मुद्राप्रदर्शयेत्। श्रीकामः शीर्षिणि कुर्वीत कामस्तु नेत्रयोः। मुखेत्वन्नाद्यकामस्तु ग्रीवायां रोगनाशने। हृदये सर्वकामस्तु नाभौ ज्ञानी प्रदर्शयेत्। प्रजाकामस्तु गुह्ये वै पशु कामस्तु जङ्घयोः। जानुभ्यां ग्रामकामस्तु राष्ट्रकामस्तु पादयोः। बशीकरणकामस्तु वामहस्ते प्रदर्शयेत्। पापक्षयेऽभिचारे च व्याधेरपगमे तथा। बहिः शरीरान् कुर्वीत शिवस्याशोविस्मरन्। एवं प्रदर्शयित्वा तु ततो ध्यानं समाचरेत्।

(२) सूतकादौ शिवपूजनं परद्वारा कारणीयम्। 'न त्याज्यं शिवपूजनम्' इति प्रशंसावचनम्। नायं पक्षः सांप्रतं प्रचलति स्मार्तेषु। वीरशैवैस्तु स्वीक्रियतेऽयं पक्षः।

पार्थिवलिंङ्गपूजनं तथा विधेयम् यथा मृत्तिकक्षारणं न भवेत् विशेषतोऽभिषेकादिस्तत्र न कार्यः। आवश्यके लिङ्गं निर्माय तच्च घृताक्तं कृत्वाऽभिषेकः कार्यः। घृताक्ते शिवलिङ्गेऽभिषेककरणे मृत्तिका न क्षरतीत्यनूभूतम्।

अथ पदपाठः

ग॒णाना॑म् । त्वा॒ । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ । प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पाति॑म् । व॒सो॒ऽइति॑वसो । म॒म॒ ॥ आ । अ॒हम् । अ॒जा॒नि॒ । ग॒र्भ॒धमिति॑ गर्भ॒ धम् । आ । त्वम् । अ॒जा॒सि॒ । ग॒र्भ॒धमिति॑ गर्भ॒ धम् ॥ १ ॥

अथ क्रमपाठः

ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒णऽप॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒ना-

मि॒ति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्वसो । नि॒धि॒प॒ति॒मिति॑ नि॒धि॒ पति॑म् । व्व॒सो म॒म॒ । व्व॒सो इति॑ वसो । म॒मेति॑ मम ॥ आहम् । अ॒हम॑ जानि । अ॒जा॒नि॒ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमात्वम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् ॥ १ ॥

(३) अथास्य जटोच्यते

ग॒णानां॑न्त्वात्वाग॒णानां॑ङ्ग॒णानां॑न्त्वा । त्वा॒ग॒णप॑तिङ्ग॒णप॑तिन्त्वा त्वा ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे हवामहे ग॒णप॑तिङ्ग॒णप॑तिꣳ हवामहे ।

---

(३) जटा—

पदद्वयमनुलोमेन विलोमेन पुनरनुलोमेन ससन्धिक्रमविरम्य यदा पठ्यते तदा तादृशी जटा इत्युच्यते। दो पदों को अनुलोमकर पुनः विलोमकर पुनः अनुलोम सन्धि के सहित अविरामकर जब पढ़ा जाय तादृशरूप को जटा कहते हैं।

ग॒णप॑ति॒मिति॑ ग॒ण प॑तिम् । हु॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म्प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे हवामहे प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑म्प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नान्नि॑धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑म्प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑न्निधि॒पति॑न्निधी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पतिं॑ व्वसो व्वसोनिधि॒पति॑ न्निधि॒पतिं॑ व्वसो । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पति॑म् । व्व॒सो॒ म॒म॒ म॒म॒ व्व॒सो॒ व्व॒सो॒ म॒म॒ । व्व॒सो॒ऽइति॑ वसो । म॒मेति॑ मम । आह॒म॒हमाहम् । अ॒हमं॑जान्य॒जान्य॒हम॒हमं॑जानि । अ॒जा॒नि॒गर्ब्भ॒धङ्ग॑र्ब्भ॒धमं॑जान्यजानिगर्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमा॒त्त्वन्त्वमाग॑र्ब्भ॒धङ्ग॑र्ब्भ॒धमा॒त्त्वम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् । आत्त्वम् । त्त्वमं॑जास्यजासि॒त्त्वन्त्वमं॑जासि । अ॒जा॒सि॒गर्ब्भ॒धङ्ग॑र्ब्भ॒धमं॑जास्यजासिगर्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ऽधम् ॥ १ ॥

(४) अथ पुष्पमाला

ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑ न्त्वा । त्वा॒ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिन्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ह॒वा॒म॒हे॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्प्रि॒यऽप॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । नि॒धि॒पति॑न्निधी॒नाम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्वसो ।

---

(४) पुष्पमाला—

पदद्वयमनुलोमेन विलोमेन पुनरनुलोमेन यदा विरम्य विरम्य पठ्यते तदा सविकृतिरूपो वेदपाठो पुष्पमाला इत्युच्यते ।

व॒सो॒ नि॒धि॒पति॑म् । नि॒धि॒पति॑ꣳ वसो । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ऽपति॑म् । व॒सो॒ म॒म॒ । मम॒ व॒सो॒ । व॒सो॒ म॒म॒ । व॒सो॒ इति॑ वसो । म॒मेति॑ मम । आहम् । अ॒हमा । आह॒म् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒न्य॒हम् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ग॒र्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ग॒र्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धमात्वम् । त्वमा॑गर्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धमात्वम् । ग॒र्भ॒धमिति॑गर्भ॒ऽधम् । आत्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒त्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ग॒र्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ग॒र्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धमिति॑गर्भ॒ऽधम् ॥ १ ॥

(५) अथ क्रममाला

ग॒णाना॑न्त्वा । म॒मेति॒मम॑ । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । म॒म॒ व॒सो॒ । ग॒णप॑तिꣳ

---

(५) क्रममाला—

अर्द्धर्चसमाप्तिपर्यन्तमादितः क्रमम्, अन्ततश्च विलोमेन क्रमपाठो यत्र युगपत् व्यत्यासेन भवति तादृशो वेदपाठः क्रममाला इति कथ्यते।

हवामहे । व॒सो॒नि॒धि॒पति॑म् । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । व॒सो॒ इति॑ वसो । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । नि॒धि॒पति॑न्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पति॑म् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑ प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒ना॑मिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑म् । नि॒धी॒ना॑मिति॑नि धी॒नाम् । प्रि॒य प॑ति॒मिति॑प्रि॒य पतिम् । नि॒धि॒पति॑ वसो । प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे । नि॒धि॒पति॒मिति॑ निधि॒ पति॑म् । ह॒वा॒म॒हे॒ ग॒णप॑तिम् । व॒सो॒ म॒म । ग॒णप॑तिन्त्वा । व॒सो॒ इति॑ वसो । ग॒णप॑ति॒मिति॑ ग॒णप॑तिम् । त्वा॒ ग॒णाना॑म् ।

अत्र—त्रिꣳशत् । धाम । व्वि । राजति । व्वाक् । पतङ्गाय । धीयत इति धीयते । इति पदानि । अत्र आदितः एकवारं पदद्वयस्य अनुलोम पाठः, ततः अन्ततः पदद्वयस्य पाठः, विलोमेन पाठः, पुनरादिमं हित्वाऽनुलोमेन पदद्वयस्थ पाठः, ततोऽन्ततोऽन्तिमं पदं परित्यज्य पदद्वयस्य विलोमेन पाठः एवं क्रमेण वेदपाठः क्रममाला इति गीयते । (इति जटात्रिकृतिलक्षणे)

ममेति मम । गणानाम् ॥ आहम् । गर्ब्भधमिति गर्ब्भधम् । अहमंजानि । गर्ब्भधमंजासि । अजानि गर्ब्भधम् । गर्ब्भधमितिगर्ब्भ धम् । गर्ब्भधमा त्वम् । अजासि त्वम् । गर्ब्भधमिति गर्ब्भ धम् । त्वमागर्ब्भधम् । आत्वम् । आ गर्ब्भधम् । त्वमंजासि । गर्ब्भधमंजानि । अजासि गर्ब्भधम् । अआन्यहम् । गर्ब्भधमिति गर्ब्भ धम् । अहमा ॥ १ ॥

(६) अथ शिखोच्यते

गणानान्त्वा त्वा गणानाङ्गणानान्त्वा गणपतिम् । त्वा गणपतिङ्गणपतिन्त्वा त्वा गणपतिꣳ हवामहे । गणपतिꣳ हवामहे हवामहे गण-

---

(६) शिखा—

पदद्वयमनुलोमेन विलोमेन पुनरनुलोमेन ससन्धिक्रमविरामं पठित्वा तदन्ते एकमग्रिमं तृतीयं पदमपि पठेत् तादृशो वेदपाठो विकृतिरूपः शिखा इत्युच्यते !

पतिङ्गणपतिꣳ हवामहे प्प्रियाणाम् । गणपतिमितिगण पतिम् । हवामहे प्प्रियाणाम्प्रियाणाꣳ हवामहे हवामहे प्प्रियाणाम्प्रियपतिम् । प्रियाणाम्प्रियपतिम्प्रियपतिम्प्रियाणाम्प्रियाणाम्प्रियपतिन्निधीनाम् । प्रियपतिन्निधीनान्निधीनाम्प्रियपतिम्प्रियपतिम्प्रियपतिन्निधीनान्निधिपतिम् । प्रियपतिमितिप्प्रिय पतिम् । निधीनान्निधिपतिन्निधीनान्निधीनान्निधिपतिँ व्वसो । निधीनामितिनि धीनाम् । निधिपतिँ व्वसो व्वसो निधिपतिन्निधिपतिँ व्वसो मम । निधिपतिमितिनिधि पतिम् । व्वसो मम मम व्वसो व्वसो मम । व्वसो ऽइति वसो । ममेति मम ॥

आहमहमाहमंजानि । अहमंजान्यजान्यहमहमंजानिगर्ब्भधम् । अजानिगर्ब्भधङ्गर्ब्भधमंजान्यजानि गर्ब्भधमा त्वम् । गर्ब्भधमात्वन्त्वमा-

गर्ब्भ॒धङ्गर्ब्भ॒धमा त्वमं॑जासि । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑ गर्ब्भ धम् । आत्वम् । त्वमं॑जास्यजासि॒त्वन्त्वमं॑जासिगर्ब्भ॒धम् । अ॒जा॒सि॒ग॒र्ब्भ॒धङ्गर्ब्भ॒धमं॑जास्यजासि गर्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒मिति॑गर्ब्भ॒ धम् ॥ १ ॥

अथ रेखा

ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । हु॒वा॒म॒हे॒ ग॒णप॑तिन्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । हु॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑ꣳहवामहे । हु॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒प॑तिँ व॒सो मम । म॒म॒ व॒सो॒ नि॒धि॒प॑तिन्नि॒धी॒नाम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒-

पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ꣳ व्वसो । नि॒धि॒पति॒मिति॑ निधि॒ पति॑म् । व्व॒सो॒ म॒म॒ । व्व॒सो॒ इति॑ वसो । म॒मेति॑ मम । आहम॑जा॒निग॒र्ब्भ॒धमात्वम् । त्वमा॑गर्ब्भ॒धम॑जान्य॒हमा । आहम् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमात्वम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑ गर्ब्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वम॑जासि ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धम॑जासि॒त्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् ॥ १ ॥

अथ ध्वजः

ग॒णाना॑न्त्वा । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । अ॒जा॒सि॒ग॒र्ब्भ॒धम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । त्वम॑जासि । ग॒णप॑ति॒मिति॑ ग॒ण प॑तिम् । ग॒र्ब्भ॒धमात्वम् । हवा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् ।

प्रि॒याणां॑म्प्रि॒यप॑तिम् । आत्वम् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । अ॒जा॒नि॒ ग॒र्ब्भ॒धम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । अ॒हम॑जाति । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । आहम् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । ममेति॒ मम॑ । नि॒धि॒पति॑ व्वसो । व्व॒सो॒ म॒म॒ । नि॒धि॒पति॒मिति॑नि॒धि॒ पाति॑म् । व्व॒सो॒ इति॑ वसो । व्व॒सो॒ म॒म॒ । नि॒धि॒पति॑ व्व॒सो॒ । व्व॒सो॒ इति॑ वसो । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पाति॑म् । म॒मेति॑मम । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । आहम् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । अ॒हम॑जानि । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । अ॒जा॒नि॒ ग॒र्ब्भ॒धम् प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । ग॒र्ब्भ॒धमात्वम् । प्रि॒याणां॑म्प्रि॒यप॑तिम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑गर्ब्भ॒ धम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणाम् । आत्वम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । त्वम॑जासि । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒णप॑तिम् । अ॒जा॒सि॒ ग॒र्ब्भ॒धम् । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒र्ब्भ॒धमिति॑ गर्ब्भ॒ धम् । ग॒णानां॑न्त्वा ॥ १ ॥

अथ दण्डक्रमः

ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिन्त्वाग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ह॒वा॒म॒हे॒ ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑ꣳहवामहे ग॒णप॑तिन्त्वाग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑ति॒म्प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे । ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ ग॒णप॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑ति॒म्प्रि॒याणा॑ꣳ

हवामहे ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धीनाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धि॒पाति॑न्नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑ँ हवामहे ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑ प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्व॒सो । व्व॒सो॒नि॒धि॒पाति॑न्नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑ँ हवामहे ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑ति-

न्निधी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्वसो । नि॒धि॒प॒ति॒मिति॑नि॒धि॒ पाति॑म् । व्व॒सो॒ म॒म॒ । म॒म॒ व्व॒सो॒ नि॒धि॒पाति॑न्नि॒धी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम्प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्वसो । नि॒धि॒पा॒ति॒मिति॑ निधि॒ पाति॑म् । व्व॒सो॒ म॒म॒ । व्व॒सो॒ऽइति वसो । म॒मेति॑ मम । आहम् । अ॒हमा । आहम् । अ॒हमंजानि । अ॒जा॒न्य॒हमा । आहम् । अ॒हमंजानि । अ॒जा॒नि॒ग॒र्भ॒धम् । ग॒र्भ॒धमंजान्य॒हमा । आहम् । अ॒हमं-

जानि । अ॒जा॒नि॒ ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धमात्वम् । ग॒ꣳर्भ॒धमिति॑गꣳर्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वमाग॑ꣳर्भ॒धम॑जान्य॒हमा । आहम् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धमात्वम् । ग॒ꣳर्भ॒धमिति॑गꣳर्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒त्वमागꣳर्भ॒धम॑जान्य॒हमा । आहम् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धमात्वम् । ग॒ꣳर्भ॒धमिति॑गꣳर्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धम॑जासि॒त्वमाग॑ꣳर्भ॒धम॑जान्य॒हमा । आहम् । अ॒हम॑जानि । अ॒जा॒नि॒ ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धमात्वम् । ग॒ꣳर्भ॒धमितिगꣳर्भ॒ धम् । आत्वम् । त्वम॑जासि । अ॒जा॒सि॒ ग॒ꣳर्भ॒धम् । ग॒ꣳर्भ॒धमिति॑ गꣳर्भ॒ धम् ॥ १ ॥

अथ द्विपदोरथः

ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा ग॒णाना॑म् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । नि॒धी॒नाम्प्रि॒य-

प॑तिम् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धि॒पाति॑न्निधी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ह॒वा॒म॒हे॒ ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पतिं॑ व॒सो । व॒सो॒ नि॒धि॒पाति॑न्निधी॒नाम्प्रि॒यप॑तिम् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑ꣳ हवामहे ग॒णप॑तिन्त्वा ग॒णाना॑म् । प्रि॒यप॑तिन्निधी॒नाम् । प्रि॒यप॑ति॒मिति॑ प्रि॒य प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पाति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पतिं॑ व॒सो । नि॒धि॒प॒ति॒मिति॑नि॒धि प॒ति॑म् । व॒सो॒ म॒म॒ । म॒म॒ व॒सो॒ नि॒धि॒पाति॑न्निधी॒नाम्प्रि॒यपा॑तिम् । ग॒णाना॑-

न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्रि॒याणा॑म् । प्रि॒याणा॑म्प्रि॒यप॑तिम् । प्रि॒यप॑तिन्नि॒धीना॑म् । प्रि॒यप॒ति॒मिति॑प्रि॒य पति॑म् । नि॒धीना॑न्नि॒धि॒पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पति॑ व्वसो । नि॒धि॒प॒ति॒मिति॑नि॒धि पति॑म् । व्व॒सो॒ म॒म॒ । व्व॒सो॒ऽइति॑ व्वसो । म॒मेति॑ मम ॥

अग्रिमार्द्धर्चस्याष्टपदस्य समपदत्वेऽपि आगर्भितत्रिकमसत्वात्समक्रमापेक्षी रथो न भवति, केवलदण्डेनैव पूर्त्तिरिति ज्ञेयम् ॥ १ ॥

(A) अथ घनः

म॒मेति॑ मम । व्व॒सो॒ म॒म॒ । व्व॒सो॒ऽइति॑ वसो । नि॒धि॒पति॑ व्वसो ।

(A) घनः—

शिखा पूर्वमुक्ता । तां पठित्वा, विपर्यासेन तां पुनः पठित्वा, पुनश्चानुलोमेन तां पठेत् तदा तादृशो वेदपाठो घन इत्युच्यते ।

नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पति॑म् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑ नि॒धी॒नाम् । प्रियप॑तिन्निधी॒नाम् । प्रियप॑ति॒मिति॑प्रिय प॑तिम् । प्रियाणा॑म्प्रियप॑तिम् । ह॒वाम॒हे॒ प्रियाणा॑म् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मि॒तिग॒ण प॑तिम् । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णाना॑न्त्वा । त्वा॒ ग॒णप॑तिम् । ग॒णप॑तिꣳ हवामहे । ग॒णप॑ति॒मिति॑ग॒ण प॑तिम् । ह॒वा॒म॒हे॒ प्रियाणा॑म् । प्रियाणा॑म्प्रियप॑तिम् । प्रियप॑तिन्निधी॒नाम् । प्रियप॑ति॒मिति॑प्रिय प॑तिम् । नि॒धी॒नान्नि॑धि॒पति॑म् । नि॒धी॒नामिति॑नि धी॒नाम् । नि॒धि॒पतिं॑ वसो । नि॒धि॒पति॒मिति॑निधि॒ पति॑म् । व॒सो॒ म॒म॒ । व॒सो॒ऽइति॑ वसो । म॒मेति॑ मम ।

यथा—गणानां त्वा, त्वा गणानां, गणानां त्वा, गणपतिं, गणपतिं त्वा गणानां, गणानां त्वा गणपतिम् । त्वा गणपतिं गणपतिं त्वा त्वा गणपतिꣳ हवामहे हवामहे गणपतिं त्वा त्वा गणपतिꣳ हवामहे, इत्यादि ।

लोकप्रसिद्धः अथो घनः

"जटा माला शिखा रेखा रथो दण्डो रथो घनः ।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः ॥

[अन्वयः] हे अश्व ! गणानां (मध्ये) गणपतिं त्वा [वयं] हवामहे । प्रियाणां (मध्ये) प्रियपतिं त्वा हवामहे निधीनां (मध्ये) निधिपतिं त्वा हवामहे । हे वसो ! त्वा अहम् गर्भधम् अजानि त्वं (माम्) गर्भधम् आ अजासि ॥ १ ॥

[समासः] गणानां पतिर्गणपतिः तं गणपतिम् । प्रियस्य पतिः प्रियपतिः तं प्रियपतिम् । निधेः पतिः निधिपतिः तं निधिपतिम् । निवासयति जगदिति वसुः । तत् सम्वद्धौ हे वसो । गर्भं दधाति गर्भधः तम् ॥ १ ॥

[व्याख्या] हे अश्व, गणानाम् = स्कन्दादिगणानाम्, [मध्ये] गणपतिम् = गणरूपेण पालकम्, त्वा = त्वाम्, [वयं] हवामहे = आह्वयामः, प्रियाणाम् = वल्लभानां मध्ये, प्रियपतिम् = प्रियपालकम्, त्वा = त्वाम्, हवामहे = आह्वयामः, निधीनाम् = सुखनिधीनां मध्ये, निधिपतिम् = सुखनिधेः पालकम्, त्वा = त्वाम्, हवामहे = आह्वयामः, हे वसो = हे वसुरूप अश्व त्वं, मम पतिः भूया इति शेषः । हे अश्व, गर्भधम् = गर्भधारकं रेतः, अहम्, आ = आकृष्य, अजानि = क्षिपामि, "अज गतिक्षेपणयोः" लोट् । तच्च गर्भधं = गर्भधं रेतः, आ = आकृष्य, अजासि = क्षिपसि ॥ १ ॥

[कोषः] "निधिर्ना शेवधिः"
निधि शेवधिः" निरुक्ते ६९ ।
यदा हि 'स्त्री गुणानान्गृह्णाति, गुणाश्चास्या गृह्यन्तेऽथ गर्भो भवति । ४४८ ।
हवो हूतौ ।

[हिन्दी] गणों में गणपति, प्रियों में प्रियपति, निधियों में निधिपति, हे मेरे ईश्वर हम आपको सुख देनेवाला जानता हूँ आप मेरे को सुखधारण करनेवाला जानों ॥ १ ॥ [२३, १९]

गा॒य॒त्री त्रि॒ष्टुब्जग॑त्यनु॒ष्टुप्प॒ङ्क्त्या स॒ह । बृ॒ह॒त्यु॑ष्णिहा॑ क॒कुप्सू॒चीभिः॑ शम्म्यन्तु त्वा ॥ २ ॥
४

गा॒य॒त्री । त्रि॒ष्टुप् । त्रि॒स्तुविति॑त्रि॒ स्तुप् । जग॑ती । अ॒नु॒ष्टुप् । अ॒नु॒स्तुवित्य॑नु॒स्तुप् । प॒ङ्क्त्या स॒ह ॥ बृ॒ह॒ती । उ॒ष्णिहा । क॒कुप् । सू॒चीभिः॑ । श॒म्य॒न्तु॒ । त्वा॒ ॥ २ ॥

[अन्वयः] गायत्री त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् पङ्क्त्या सह बृहती उष्णिहा [सह] ककुप् सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ २ ॥

[विग्रहः] गायन्तं त्रायते या सा गायत्री ॥ २ ॥

[व्याख्या] गायत्री = तदाख्यं छन्दः, त्रिष्टुप् = त्रिष्टुपाख्यं छन्दः, जगती = जगत्याख्यं छन्दः, अनुष्टुप् = अनुष्टुपाख्यं छन्दः, पङ्क्त्या = पङ्क्त्या छन्दः, सह, बृहती, उष्णिहा, ककुप्, एतानि छन्दांसि, सूचीभिः = ताम्ररूप्यसुवर्णमयोभिरेताभिः । त्वा = त्वाम्, शम्यन्तु = संस्कुर्वन्तु ॥२॥

[कोषः] "गायत्री प्रमुखं छन्दः" त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति जगतिच्छन्दः, पंक्तिश्छन्दोऽपि दशमम् ।

[अर्थः] गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक् और ककुप् ये छन्द सूचना द्वारा तुमको उपदेश करें ॥ २ ॥ [२३, ३३]

द्विप॑दा॒ याश्च॒तु॑ष्पदा॒स्त्रिप॑दा॒ याश्च॒ षट्प॑दाः । विच्छ॑न्दा॒ याश्च॒ सच्छ॑न्दाः सू॒चीभि॑ः शम्यन्तु त्वा ॥ ३ ॥

द्विप॑दा॒ऽइति॒ द्विप॑दाः । याः । चतु॑ष्पदाः । चतु॑ः पदा॒ऽइति॒ चतु॑ःपदाः । त्रिप॑दा ऽइति॒त्रि प॑दाः । याः । च॒ । षट्प॑दा॒ ऽइति॒ षट्प॑दाः ॥ विच्छ॑न्दा॒ ऽइति॒वि च्छन्दाः । याः । च॒ । सच्छ॑न्दा॒ ऽइति॒ सच्छ॑न्दाः ॥ ३ ॥

[अन्वयः] द्विपदाः याः चतुष्पदाः याः त्रिपदाः याः षट् पदाः याः विच्छन्दाः याः स्वच्छन्दाः सूचीभिः त्वा शम्यन्तु ।

[समासः] द्वे पदे यासां ताः द्विपदाः । चत्वारि पदानि यासां ताः चतुष्पदाः । त्रीणि पदानि

यासां ताः त्रिपदाः। षट् पदानि यासां ताः षट्पदाः। विगतं छन्दो याभ्यः ताः विच्छन्दाः। छन्दोभिः सहिता सच्छन्दाः॥ ३॥

[व्याख्या] द्विपदाः=द्विपदछन्दविशिष्टाः, याः, चतुष्पदाः—चतुश्छन्दयुक्ताः, याः, त्रिपदाः=त्रिपदछन्दयुक्ताः, याः, षट्पदाः=षट्पदयुक्ताः, याः, विछन्दाः=छन्दोलक्षणहीनाः, याः, च, सछन्दाः=छन्दोलक्षणयुताः, (ताः सर्वाः छन्दोजातयः) सूचीभिः, त्वा=त्वां, शम्यन्तु=संस्कुर्वन्तु। (२३, ३४)

[अर्थः] द्विपद त्रिपद चतुष्पद षट्पद छन्दोरहित और समानछन्दवाली छ जातियां तुमको सूची द्वारा उपदेश करें॥ ३॥

स॒हस्तो॑माः स॒ह॑[१]छन्दस ऽआ॒वृतः॑ स॒हप्र॑मा॒ ऽऋष॑यः स॒प्त दैव्याः॑।
पूर्वे॑षा॒म्पन्थां॑मनु॒दृश्य॒ धीरा॑ ऽअ॒न्वाले॑भिरे र॒थ्यो॑ न र॒श्मीन्॥ ४॥

स॒हस्तो॑मा॒ ऽइति॑ स॒ह स्तोमाः॑। स॒ह छन्द॑स॒ ऽइति॑ स॒ह छन्द॑सः।
आ॒वृत॒ ऽइत्या॒ऽवृतः॑। स॒ह प्र॑मा॒ ऽइति॑ स॒ह प्र॑माः। ऋष॑यः। स॒प्त।

---

(१) प्रायः बहुषुपुस्तकेषु "सहछन्द" इत्यत्र 'सहच्छन्दस' इति पाठो दृश्यते स, तु प्रामादिक एव। "यस्यातिर्ह्रायसहेति न" (प्रातिशाख्य पृ॰) इति निषेधात्।

दैव्या॑ः ॥ पू॒र्वेषा॑म् । पन्था॑म् । अ॒नु॒दृश्येत्य॑नु॒ दृश्य॑ । धीरा॑ः । अ॒न्वा ले॑भिर॒ इत्य॑नु॒ आले॑भिरे । र॒थ्य॑ः । न । र॒श्मीन् ॥ ४ ॥

[अन्वयः] दैव्याः सप्त ऋषयः अन्वालेभिरे पूर्वेषां पन्थाम् अनुदृश्य [कथमिव] रथ्यः न रश्मीन् । [किं भूताः ऋषयः] सहस्तोमाः सहछन्दसः आवृतः सहप्रमाः धीराः ॥ ४ ॥

[विग्रहः] देवस्य = प्रजापतेः, इमे दैव्याः । रथे साधुः रथ्यः । स्तोमैः सहिताः सहस्तोमाः । छन्दोभिः सहिताः सह छन्दसः । आवृद्भिः सहिताः सहावृतः । प्रमाणं प्रमा तत् सहिताः सहप्रमा ॥ ४ ॥

[व्याख्या] दैव्याः = प्रजापतिप्राणाभिमानिनः, सप्तऋषयः = भरद्वाज-कश्यप-गौतम-अत्रि-वशिष्ठ-विश्वामित्र-जमदग्नयः, अन्वालेभिरे = सृष्टवन्तः, (सृष्टियज्ञं इति शेषः) (किं कृत्वा) पूर्वेषाम् = अधस्तनकल्पोत्पन्नानामवसिताधिकाराणाम् (ब्रह्ममानसपुत्राणामित्यर्थः) पन्थाम् = मार्गम्, अनुदृश्य = विलोक्य, रथ्यः = सारथिः, न = नकार उपमार्थः, रश्मीन् = प्रग्रहान्, [किंभूता ऋषयः] सहस्तोमाः = स्तोमसहिताः, सहछन्दसः = गायत्र्यादिछन्दोभिः सहिताः, आवृतः = कर्मसहिताः, श्रद्धासत्यप्रधानानां कर्मणामनुष्ठातारः । सहप्रमाः = शब्दप्रमाणपरीक्षणतत् पराः, धीराः = बुद्धिमन्तः ॥ ४ ॥ [३४, ४९]

[कोषः] अयनं वर्त्म मार्गाध्व-पन्थानः पदवी सृतिः ।
सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च ॥

किरणप्रग्रहौ रश्मी ।
विद्वान् विपश्चिदोषज्ञः सन्सुधीः कोविदो बुधः ।
धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः सङ्ख्यावान्पण्डितः कविः ।
धीमान्सूरिः कृती कृष्टिर्लब्धवर्णो विचक्षणः ।
दूरदर्शी दीर्घदर्शी ।
बुद्धिर्मनीषा धिषणा धीः प्रज्ञाशेमुषी मतिः ।
प्रेक्षोपलब्धिश्चित्संवित् प्रतिपज्ज्ञप्ति चेतनाः ॥४॥

[अर्थः] स्तोम, छन्द, कर्म और प्रमाण के सहित तथा धीर दिव्य सप्तऋषि प्राचीन ऋषियों के क्रमानुसार रथ चलानेवाला लगाम की तरह सृष्टि का निर्माण करते हैं ॥ ४ ॥

यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैव॒न्तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ । दू॒र॒ङ्ग॒मञ्ज्योति॑षा॒ञ्ज्योति॑रेक॒न्तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥

यत् । जाग्र॑तः । दू॒रम् । उ॒दैतीत्यु॒त् एति । दैव॑म् । तत् । ऊँ॒ इत्यू॑ँ । सु॒प्तस्य॑ । तथा॑ । ए॒व । एति॑ ॥ दू॒र॒ङ्ग॒ममिति॑ दूरम् ग॒म॒म् ।

ज्योतिषाम् । ज्योतिः । एकम् । तत् । मे । मनः । शिवसङ्कल्पमिति शिव सङ्कल्पम् । अस्तु ॥५॥

[अन्वयः] यत् जाग्रतः दूरम् उत् एति (यच्च) दैवं तत् उ मनः सुप्तस्य तथा एव दूरङ्गमं ज्योतिषाम् एकं ज्योतिः मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु ॥ ५ ॥

[विग्रहः] दूरात् गच्छतीति दूरङ्गमम् । दीव्यति = प्रकाशते, देवः = विज्ञानात्मा, तत्रभवं दैवम् । शिवं सङ्कल्पं यस्य तत् शिवसङ्कल्पम् । जाग्रतीति जाग्रत् तस्य जाग्रतः ।

[व्याख्याः] यत् = मनः, जाग्रतः = जाग्रतः पुरुषस्य, दूरम् = दूरम्, उत् एति = उद् गच्छति, (चक्षुराद्यपेक्षया मनो दूरगामीत्यर्थः) [यच्च] दैवम् = आत्मग्राहकम्, (मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयं ध्रुवम् इति श्रुतेः) । तत् = यदः स्थानेतच्छब्दः, उकारश्चार्थः, (यच्च) मनः, सुप्तस्य = सुप्तस्य पुंसः, तथा, एव एति यथा गतं तथैव पुनरागच्छति स्वापकाले सुषुप्तावस्थायां पुनरागच्छतीत्यर्थः । दूरङ्गमम् = अतीतानानागतवर्तमानविप्रकृष्टव्यवहितपदार्थानां ग्राहकमित्यर्थः । ज्योतिषाम् = प्रकाशकानाम्, श्रोत्रादीन्द्रियाणाम् । (श्रोत्रादीनां विज्ञाननेतृणां मध्ये) एकम् = एव, ज्योतिः = प्रकाशकम् । प्रवर्तकमित्यर्थः । (प्रवर्तितान्येव श्रोत्रादीन्द्रियाणि स्वविषये प्रवर्तन्ते । आत्मा मनसा संयुज्यते मनः इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थेनेति न्यायोक्तेर्मनः सम्बन्धमन्तरा तेषाम् प्रवृत्तेः) मे = मम, मनः, शिवसङ्कल्पम् शान्तसङ्कल्पम्, अस्तु = भवतु ॥ ५ ॥

[कोषः] श्वः श्रेयसं शिवं भद्रं कल्याणं मङ्गलं शुभम् । भावुकं भविकं भव्यं कुशलं क्षेममस्त्रियाम् ॥ ५ ॥

[अर्थ] जो जाग्रत अवस्था में चक्षुरादि की अपेक्षा से दूर चला जाता है । वह दिव्यशक्ति से मन सुप्तावस्था में फिर आ जाता है । वह ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति मन कल्याणकारक हो ।।५।।

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑ ।
यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जाना॒न्तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

येन॑ । कर्मा॑णि । अ॒पसः॑ । म॒नी॒षिणः॑ । य॒ज्ञे । कृ॒ण्वन्ति॑ । वि॒दथे॑षु । धीराः॑ ॥ यत् । अ॒पू॒र्वम् । य॒क्षम् । अ॒न्तरित्य॒न्तः । प्र॒जा॒नामिति॑ प्र॒जाना॑म् ॥ ६ ॥

[अन्वयः] मनीषिणः यज्ञे येन कर्माणि कृण्वन्ति विदथेषु अपसः धीराः मनः अपूर्वं यच्च यक्षं प्रजानाम् अन्तः तत् मे मनः शिवसङ्कल्पम् अस्तु ॥ ६ ॥

[विग्रहः] विदथेषु विद्यन्ते ज्ञायन्ते तानि विदथानि तेषु । अपो विद्यते येषां ते अपसः ।

धीर्विद्यते येषां ते धीराः। न विद्यते पूर्वं=इन्द्रियम्, यस्मात् तत् अपूर्वम्। प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः तासाम्। मनषः ईषीणः मनीषिणः। यष्टुं शक्तं यक्षम् ॥ ६ ॥

[व्याख्या] मनीषिणः=मेधाविनः, यज्ञे=अध्वरे, येन=मनसा सता, कर्माणि=अग्निहोत्रादीनि, कृण्वन्ति=कुर्वन्ति, विदथेषु=यज्ञविधिविधानेषु, [कीदृशा मनीषिणः] अपसः=कर्मवन्तः, सदा कर्मनिष्ठा इत्यर्थः। धीराः=धीमन्तः मनः, अपूर्वम्=अनपरम्, (इन्द्रियेभ्यः पूर्वं मनसः । यद्वा—अपूर्वमनपरमबाह्यमित्युक्तेरपूर्वमात्मरूपमित्यर्थः) प्रजानाम्=प्राणिमात्राणाम्, अन्तः=शरीरमध्ये, आस्ते इतरेन्द्रियाणि बहिःष्ठानि मनस्त्वन्तरिन्द्रियमित्यर्थः। तत्, मे=मम, मनः, शिवसंकल्पम्, शान्तसंकल्पम्, अस्तु=भवतु ॥ ६ ॥

"अप इति कर्मनाम" निघ २।१।१।

[कोषः] प्रजास्यात्सन्ततौ जने । बुद्धिर्मनीषाधिषणा धीः प्रज्ञासे० ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] कुर्वन्ति="कृकरणे" स्वादिः। अपस्विनः="अस्मायामेधास्त्रजो विनिः" इति विन्प्रत्ययः। "विन्मतोर्लुक्" इतीष्ठाभावेऽपि छान्दसो विनो लुक्। यक्षम्=यजतेरौणादिकः सन्प्रत्ययः "ञित्यादिर्नित्यम्" इत्याद्युदात्तम्।

विदथेषु—वेत्तेरौणादिकोऽथ प्रत्ययः प्रत्ययोदात्तत्वेन मध्योदात्तं पदम्। "प्रत्ययः परश्च आद्युदात्तश्च" ॥ ६ ॥

[अर्थः] बुद्धिमान लोग यज्ञ में अग्निहोत्रादिकर्म को करते हैं। यज्ञविधि विवाहों में बुद्धिमान का मन अपूर्व जो यज्ञका प्राणिमात्रों के शरीर के मध्य में वह मेरा मन कल्याणकारक हो ॥६॥

यत्प्र॒ज्ञान॑मु॒त चेतो॒ धृति॑श्च॒ यज्ज्योति॑र॒न्तर॒मृत॑म्प्र॒जासु॑ । यस्मा॒न्न ऽऋ॒ते किञ्च॒ न कर्म्म॑ क्रि॒यते॒ तन्मे॒ मन॑ः शि॒वसं॑ङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥

यत् । प्र॒ज्ञान॒मिति॑ प्र॒ ज्ञान॑म् । उ॒त । चेत॑ः । धृति॑ः । च॒ । यत् । ज्योति॑ः । अ॒न्तः । अ॒मृत॑म् । प्र॒जास्विति॑ प्र॒जासु॑ ॥ यस्मा॑त् । न । ऋ॒ते । किम् । च॒न । कर्म्म॑ । क्रि॒यते॑ ॥ ७ ॥

[अन्वयः] यत् प्रज्ञानम् उत च धृतिः चेतः यत् अमृतं प्रजासु अन्तः ज्योतिः ऋते किञ्चन कर्म न क्रियते तत् मे मनः शिवसंकल्पं अस्तु ॥ ७ ॥

[विग्रहः] प्रकर्षेण ज्ञायते येन तत् प्रज्ञानम् । चेतः ज्ञाययति इति चेतः ॥ ७ ॥

[व्याख्या] यत्=मनः, प्रज्ञानं=विशेषेणज्ञानजनकम्, उत=अपि, च, धृति=धैर्य, चेतः, यत्, अमृतम्=अमृतरूपम्, प्रजासु=जनेषु, अन्तः=अन्तर्वर्तमानम् सत्, ज्योतिः=सर्वेन्द्रियाणाम् प्रकाशम्, (उक्तमपिपुनरुच्यते आदरार्थम्)। ऋते=विना, किञ्चन=किमपि, कर्म, न, क्रियते, तत् मे, मनः, शिवसंकल्पमस्तु ॥ ७ ॥

[कोषः] धृतिर्धारणधैर्ययोः ।

प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तुर्जन्यु शरीरिणः ॥ ७ ॥

[व्याकरणम्] प्रज्ञानम्—"करणाधिकरणयोश्च" इति करणे ल्युट् प्रत्ययः । "चिती संज्ञाने" अस्मात् ण्यन्तादसुन्प्रत्ययः ।

"अन्यारादितरर्ते०" इत्यादिना ऋते योगे पञ्चमी ॥ ७ ॥

[अर्थः] जो मन ज्ञान प्राणी के धैर्य से युक्त है, जो अमृतरूप प्रजाओं में ज्योति है, बिना उसके कोई कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन कल्याणकारक हो ॥ ७ ॥

येनेदम्भूतम्भुवनम्भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्व्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥

येन । इदम् । भूतम् । भुवनम् । भविष्यत् । परिगृहीतमिति परिगृहीतम् अमृतेन । सर्व्वम् ॥ येन । यज्ञः । तायते । सप्त होतेति सप्त होता ॥ ८ ॥

[अन्वयः] येन अमृतेन इदम् सर्वम् भूतम् भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम् येन सप्तहोता यज्ञः तायते तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु ॥ ८ ॥

[विग्रहः]—परितः गृहीतम् परिगृहीतम्। सप्त होतारो यस्मिन् स सप्तहोता। भुवनं भवतीति भुवनम् ॥ ८ ॥

[व्याख्या]—येन = मनसा, अमृतेन सास्वतेन, (मुक्तिपर्यन्तं श्रोत्रादीनि नश्यन्ति मनस्त्वनश्वरम्) इदम्, सर्वम् = सकलम्, भूतम् = भूतकालिकसम्वन्धिवस्तु, भुवनम् = वर्तमानकालसंम्वन्धि, भविष्यत्, परिगृहीतम् = सकलज्ञातम्, येन = मनसा, सप्तहोता = होतृमैत्रावरुणादयः, (अग्निष्टोमे–सप्त होतारो भवन्ति) यज्ञः, सोमयागादिः, तायते = विस्तार्यते, तत्, मे, मनः, शिवसंकल्पम् अस्तु ॥ ८ ॥

[कोषः] अथ समं सर्वं। विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निः शेषम्। समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके ॥

लब्धं प्राप्तं विघ्नं भावितमासादि तं च भूतं च।

अध्वर्यूद्गात्—होतारो यजुः सामर्ग्विद्-क्रमात्। आग्नीध्राद्या धनैर्वार्या ऋत्विजा याजकाश्चते।

यज्ञः सर्वोऽध्वरो यागः सप्त तन्तुर्भावः क्रतुः। पाठो होमश्चातिथीनां पयर्या तर्पणं बलिः। एते पञ्चमहायज्ञा ब्रह्मयज्ञादिनामकाः। अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञन्तु तर्पणम्। होमो दैवौ बलिर्भौतो न यज्ञोऽतिथिपूजनम्" मनु० ३ ७।

[व्याकरणम्]—भवते क्यु प्रययः। "लृटः सद्वा" इति शतृ प्रत्ययः "तौसत्"
तायतेत्यत्र "तनोतेर्यकि" इत्याकारः।

[अर्थः] जिस अमृतसे यह सब भूत–वर्तमान–भविष्य ग्रहण किये जिससे सात ऋत्विक् द्वारा यज्ञका विस्तार किया, वह मेरा मन कल्याणकारक हो ॥ ८ ॥

यस्मि॒न्नृच॒ः साम॒ यजू॑ꣳषि॒ यस्मि॒न्प्रति॑ष्ठिता रथना॒भावि॑वा॒राः ।
यस्मि॑ꣳश्चि॒त्तꣳ सर्व॒मोत॑म्प्र॒जाना॒तन्मे॒ मन॑ः शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ ९ ॥

यस्मि॑न् । ऋच॑ः । साम॑ । यजू॑ꣳषि । यस्मि॑न् । प्रति॑ष्ठिता । प्रति॑स्थि॒तेति॒ प्रति॑ स्थिता । र॒थ॒ना॒भावि॒वेति॑रथ ना॒भौ इ॑व । अ॒राः ॥ यस्मि॑न् । चि॒त्तम् । सर्व॑म् । ओत॒मित्या उ॑त्तम् । प्र॒जाना॒मिति॑ प्र॒ जाना॑म् ॥ ९ ॥

[अन्वयः] यस्मिन् ऋचः प्रतिष्ठिताः यस्मिन् साम यस्मिन् यजूंषि रथनाभौ आरा इव प्रज्ञानां सर्वं चित्तम् ओतं तत् मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ९ ॥

[विग्रहः] रथस्यनाभिः रथनाभिः तस्मिन् रथनाभौ ॥ ९ ॥

[कोषः] "स्त्रियामृक्सामयजुषी" ।

"आरा चर्मप्रभेदिका" दृष्टान्तः—रथनाभौ आराः इव । यथा आराः रथचक्रनाभौ मध्ये प्रतिष्ठितास्तद्वच्छन्दजालं मनसि ।

[व्याख्या] यस्मिन्=मनसि, ऋचः=मन्त्राः, प्रतिष्ठिताः=सम्यक् स्थिताः, यस्मिन्, साम=सामानि प्रतिष्ठितानि, यस्मिन्, यजूंषि=इषेत्वेत्यादीनि, रथनाभौ=रथचक्रनाभौ, आरा इव । प्रजानाम्, सर्वं, चित्तम्=ज्ञानम्, सर्वपदार्थविषयिज्ञानं यस्मिन मनसि । ओतं=प्रोतं, निक्षिप्तमित्यर्थः । तत्, मे, मनः, शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ९ ॥

[अर्थः] जिसमें ऋचाएं प्रतिष्ठित हैं, जिसमें साम और यजु है, रथनाभि में आरा के सदृश, सब प्रजाओं का सम्पूर्ण ज्ञान निक्षिप्त वह मेरा मन कल्याणकारक हो ॥ ९ ॥

सु॒षा॒र॒थिरश्वा॑निव॒ यन्म॑नु॒ष्या॒न्नेनी॒यते॒ऽभीशु॑भिर्वा॒जिन॑ऽइव ।
हृत्प्रति॑ष्ठं॒ यद॑जि॒रञ्जवि॑ष्ठ॒न्तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ १० ॥

सु॒षा॒र॒थिः । सु॒षा॒र॒थिरिति॑ सुषा॒र॒थिः । अश्वा॑नि॒वेत्यश्वा॑न् इव । यत् । म॒नु॒ष्या॑न् । ने॒नी॒यत॑ । अ॒भी शु॑भि॒रित्य॒भीशु॑भिः । वा॒जिन॑ऽइवेति॑ वा॒जिनः॑ इव ॥ हृ॒त्प्रति॑ष्ठम् । हृ॒त्प्रति॑स्थ॒मिति॑ हृ॒त्प्रति॑स्थम् ।

यत् । अ॒जि॒रम् । जवि॑ष्ठम् ॥ १० ॥

[अन्वयः] सुखारथि अश्वान् इव अशुभिः वाजिन इव यत् मनुष्यान् नेनीयते यत् हृत् प्रतिष्ठित् यत् अजिरं यत् जविष्ठं तत् मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ १० ॥

[विग्रहः] अत्यर्थं नयति इति नेनीयते । शोभनः चासौ सारथिः सुषारथिः । हृदि प्रतिष्ठा यस्य तत् हृत् प्रतिष्ठितम् । अतिशयेन जवः यस्मिन् तत् जविष्ठम् । न विद्यते जरा यस्मिन् तत् अजिरम् ॥ १० ॥

[व्याख्या] यत्=मनः, सुषारथिः=शोभनः यन्ता, अश्वान्=वाजिन इव यथा अशुभिः= प्रग्रहैः, वाजिनः=अश्वान् इव । मनुष्यान्=नरान्, नेनीयते=अत्यर्थं इतस्ततो नयति (मनः प्रेरिता एव प्राणिन प्रवर्तन्ते इत्यर्थः) यत्=मनः, हृत् प्रतिष्ठित्=हृदये स्थितं, यत्=मनः, अजिरं=जरारोहितम्, तत्, मनः, जविष्ठम्=अतिवेगवत् ॥ १० ॥

[कोषः] घोटके वीतितुरगतुरङ्गाश्वैतुरङ्गमाः ।
वाजिवाहावर्गन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ।
"अजानेयाः कुलीनास्युः"
"विनीताः साधुवाहिनः"
"वनायुजाः पारसीकाः काम्वोजा वाह्लिकाहयाः"

"ययुरश्वोऽश्वमेधीयः"
"मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः"
"जवनस्तु जवाधिकः"
"पृष्ठ्यः स्थौरी"

[अर्थः] अच्छा सारथी लगामों द्वारा अश्वों को ले जाता है, उसकी तरह मनुष्यों को चलाता है, जो अजर और वेगशाली हृदय में प्रतिष्ठित रहता है, वह मेरा मन कल्याणकारक हो ॥१०॥

इति प्रथमोध्यायः समाप्तः ।

अथ द्वितीयोध्यायः

स॒हस्र॑शीर्षा॒ पुरु॑षः स॒हस्रा॒क्षः स॒हस्र॑पात् ।
स भूमि॑ꣳ स॒र्व्व॑त॑स्पृ॒त्वात्य॑तिष्ठद्दशाङ्गु॒लम् ॥ १ ॥

---

(१) (शि० पू० अंश १४)—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
पुरुष ऽएवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्ये नाति रोहति ॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोस्यविश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
त्रिपादूर्ध्व ऽउदैत्पुरुषः परमोरुद्रो देव देवोत्तमः ।
पुरुषो वै रुद्र एव श्रुतिरेषा यतो मता ॥
यो रुद्रोग्ना वप्सु रुद्रो यो रुदस्त्वोषधीष्वपि ।
यो विश्वाभुवनान्येको विवेश सपरात्परः ॥

स॒हस्र॑ शी॒र्षेति॑ स॒हस्र॑ शीर्षा॒॑ । पुरु॑षः । स॒ह॒स्रा॒स ऽइति॑ सहस्र अ॒क्षः । स॒हस्र॑ पा॒दिति॑ स॒हस्र॑ पात ॥ सः । भूमि॑म् । स॒र्वत॑ः । स्पृ॒त्वा । अति॑ । अ॒ति॒ष्ठ॒त॒ । द॒शा॒ङ्गु॒लमिति॑ दश अ॒ङ्गु॒लम् ॥ १ ॥

[अन्वयः] सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् सः पुरुषः भूमिम् सर्वतः स्पृत्त्वा दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत् ।

[समासः] सहस्रं सङ्ख्यानि शीर्षाणि शिरांसि यस्य सः सहस्रशीर्षा ।
सहस्रं अक्षीणि यस्य सः सहस्राक्षः ।
सहस्रं पादाः यस्य सः सहस्तपात् ॥ १ ॥

विश्वं भूतं च भुवनं चित्रं वहुधा च यत् ।
तज्जातं जायमानं च रुद्रा रुद्रात्मकं विदुः ॥
ऋचा यजूंषि सामानि रुद्रा देवहि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे रुद्रान् जज्ञिरे विविधाः प्रजाः ॥
सोमो मतीनां जनिता सोमो हि जनिता दिवः ।

[व्याख्या] सहस्रशीर्षा (सहस्रशद्बो वहुत्ववाची) सहस्राक्षः, (अक्षिग्रहणं सर्वज्ञानेन्द्रियोपलक्षकम्) सहस्रपात्, (पादग्रहणं कर्मेन्द्रियोपलक्षणम्) सः = पुरुषः, भूमिं = ब्राह्मणलोकरूपां, सर्वतः = तिर्यक् ऊर्ध्वमधश्च, स्पृत्वा = व्याप्य, दशाङ्गुलम् = दशाङ्गुलपरिमितं देशम्, अति, अतिष्ठत्।

[कोषः] "स्युः पुमांसः पञ्चजनाः पुरुषाः पूरूषा नरः"
भूर्भूमिरचलाऽनन्ता रसा विश्वम्भरा स्थिरा।
धरा धरत्री धरणिः क्षौणीर्ज्या कश्यपी क्षितिः।
सर्वसहा वसुमती बसुधोर्वी वसुन्धरा।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही।
"विपुला गह्वरी धात्री गौरिला कुम्भिनी क्षमा।
भूतधात्री रत्नगर्भा जगती सागराम्बरा" इति विश्वकोषे।

[व्याकरणम्] "शीर्ष च्छन्दसि" इति शिरः शब्दस्य शीर्षन्नादेशः।
"संख्यासु पूर्वस्य" इति पदस्यान्त्यलोपः।

[अर्थः] वह जिसके असङ्ख्यशिरादि अङ्गावयव है तथा अशङ्ख्यनेत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ है और असङ्ख्यपादादिकर्मेन्द्रियाँ है वह ब्राह्मण लोक रूप को चारो तरफ से अर्थात् ऊपर नीचे दशाङ्गुल परिमित देशको व्याप्त है॥ १॥

पुरु॑ष ए॒वेदꣳ सर्व्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॑ भा॒व्य॑म् ।
उ॒ताम॑ृत॒त्वस्येशा॑नो॒ यद॒न्नेना॑ति॒रोह॑ति ॥ २ ॥

पुरु॑षः । ए॒व । इ॒दम् । सर्व्व॑म् । यत् । भू॒तम् । यत् । च॒ । भा॒व्य॑म् ॥ उ॒त । अ॒मृ॒त॒त्वस्येत्य॑मृत॒त्वस्य॑ । ईशा॑नः । यत् । अन्ने॑न । अ॒ति॒रोह॒तीत्य॑ति॒ रोह॑ति ॥ २ ॥

[अन्वयः] यत् तत् सर्वं पुरुष एव यत् भूतं तच्च भाव्यम् । उत अपि च अमृतत्त्वस्य ईशानः यत् अन्नेन अतिरोहति ॥ २ ॥

[व्याख्या] यत् = इदं वर्तमानं जगत्, तत्सर्वं, पुरुष एव, यत्, भूतम् = अतीतम्, यच्च = भाव्यम् = भविष्यं जगत् तदपि पुरुष एव, उत अपि, च अमृततत्वस्य = देवस्य, ईशानः = स्वामी, यत् = यस्मात्, अन्नेन = प्रणिणां भोग्यान्नेन, अति रोहति ॥ २ ॥

[अर्थः] जो वर्तमानजगत है वह सम्पूर्ण पुरुष ही है। जो भूतजगत है, जो भविष्यजगत है वह भी पुरुष ही है। देवका स्वामी, जिस भोग्यान्न से अति रोहण करता है ॥ २ ॥

ए॒तावा॑नस्यमहि॒मातो॒ ज्याँ॑श्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑स्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृत॑ं दि॒वि ॥ ३ ॥

ए॒तावा॑न् । अ॒स्य॒ । म॒हि॒मा । अत॑ः । ज्या॑यान् । च॒ । पूरु॑षः ।
पुरु॑ष॒ ऽइति॒ पुरू॑षः ॥ पाद॑ः । अ॒स्य॒ । विश्वा॑ भू॒तानि॑ । त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ पात् ।
अ॒स्य॒ । अ॒मृत॑म् । दि॒वि ॥ ३ ॥

[अन्वयः] एतावान् अस्य महिमा अतः ज्यायान् च पूरुषः अस्य विश्वा भूतानि पादः त्रिपाद अमृतम् दिवि ॥ ३ ॥

[व्याख्या] एतावान् = अतीतानागतवर्त्तमानकालसम्बद्धं जगद्यावदस्मि, अस्य = पुरुषस्य, महिमा = स्वकीयसामर्थ्यविशेषोविभूतिः, अतः = अस्मात्, ज्यायांश्च = अतिशयेनाधिकः, पुरूषः, अस्य = पुरुषस्य, विश्वासर्वाणि, भूतानि = कालत्रयवर्तीनिप्राणिजातानि, पादः = चतुर्थांशः, त्रिपाद = त्रिपादस्वरूपम् , अमृतम् = विनाशरहितम् , तत्, दिवि = द्योतनात्मके ॥ ३ ॥

[अर्थः] भूत भविष्यत् वर्तमान कालसे सम्बन्धवाला जगत यावतकालतक है तबतक इस पुरुष का सामर्थ्य है। इसलिए जगत जाल से इस पुरुष की कालत्रयवर्तीसम्पूर्णब्रह्माणु इसका चतुर्थांश है। और अवशिष्टत्रिपादत्रयस्वरूपविनाशरहितद्योतनामक है ॥ ३ ॥

त्रि॒पादू॒र्ध्व ऽउदै॒त्पुरु॑षः॒ पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।
त॒तो विष्व॒ङ्व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥ ४ ॥

त्रि॒पादिति॑ त्रि॒ऽपात् । ऊ॒र्ध्वः॑ । उत् । ऐ॒त् । पुरु॑षः । पादः॑ । अ॒स्य॒ । इ॒ह । अ॒भ॒व॒त् । पुन॒रिति॒ पुनः॑ ॥ ततः॑ । विष्व॑ङ् । वि । अ॒क्रा॒म॒त् । सा॒श॒ना॒न॒श॒ने ऽइति॑ साशनानश॒ने । अ॒भि ॥ ४ ॥

[अन्वयः] त्रिपाद् पुरुषः ऊर्ध्वः उत् ऐत् अस्य पादः इह पुनः अभवत् । ततः विष्वङ् व्यक्रामत् [किं कृत्वा] साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

[विग्रहः] विसु सर्वत्र अञ्चतीति विष्वङ् । अशनेन सह वर्तमानं शासनं तस्मिन् शासनानशने ॥ ४ ॥

[व्याख्या] त्रिपाद, पुरुषः = संसारस्पर्शरहितब्रह्मरूपः, ऊर्ध्वः, उत् ऐत् = अस्मात् अज्ञानकार्यात् संसाराद्बहिर्भूतोऽत्यैर्गुणदोषैरस्पृष्टः उत्कर्षेण स्थितवान्, अस्य, पादः = लेशः जगत्रूपः, इह = मायायाम्, पुनः = पुनरपि, अभवत् = सृष्टिसंहाराभ्यां पुनः = पुनरागच्छति, ततः = मायायामागत्यानन्तरम्, विष्वङ् = देवतिर्यगादिरूपेण विविधः सन्, व्यक्रामन् = व्याप्तवान्, [किं कृत्वा]

साशनानशने = अशनादिव्यवहारोपेतं चेतनप्राणिजातं अनशनं तद्रहितमचेतनं गिरिनद्यादिकम्, अभि = अभिलक्ष्य ॥ ४ ॥

[अर्थः] त्रिपाद संसार स्पर्शरहित ब्रह्मरूपपुरुष अज्ञानकार्य से संसार से वहिर्भूत गुण-दोषों से अस्पष्ट उत्कर्ष से स्थित है। इसके लेश से माया में फिर भी होता था। सृष्टि और संहार से पुनः आता है। माया में आने के बाद अशनादिव्यवहारोपेतगिरिनद्यादिक को अभिलक्ष कर देवतिर्यगादिरूप से विविध होता हुआ व्याप्त हुआ ॥ ४ ॥

ततो॑व्वि॒राड॑जायत व्वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ।
स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒ मथो॑पु॒रः ॥ ५ ॥

तत॑ः । व्वि॒राडिति॑ वि॒राट् । अ॒जा॒य॒त॒ । व्वि॒राज॒ऽइति॑ वि॒राज॑ः । अधि॑ । पूरु॑षः । पुरु॑ष॒ऽइति॒ पुरु॑षः ॥ सः । जा॒तः । अति॑ । अ॒रि॒च्य॒त॒ । प॒श्चात् । भूमि॑म् । अथो॒ऽइत्यथो॑ । पु॒रः ॥ ५ ॥

[अन्वयः] ततः विराट् अजायत विराजः अधि पूरुषः । सः जातः अति अरिच्यत पश्चात् भूमिम् अथः पुरः ॥ ५ ॥

[विग्रहः] विविधं राजन्ते वस्तूनि असौ विराट् ॥ ५ ॥

[व्याख्याः] ततः = तस्मात् आदिपुरुषात्, विराट् = ब्रह्माण्डदेहः, अजायत = जातः, विराजः, अधि = देहस्योपरितमेव देहमधिकरणं कृत्वा, पूरुषः तद्देहाभिमानी एक एव पुमान् अजायत, सः = विराट् पुरुषः, जातः = उत्पन्नः । अत्यरिच्यत = अरिरिक्तो तिर्यङ्मनुष्यादिरूपोऽभूत् पश्चा = देवादिजीवभावादूर्ध्वं (भूमिं) ससर्जेतिशेषः । अथ = भूमिसृष्टेरनन्तरं तेषां जीवानां, पुरः ससर्ज ॥५॥

[अर्थः] उस आदिपुरुष से विराट देह उत्पन्न हुआ । उस देह के ऊपर उसही देह को अधिकरण कर पूरुष उस अभिमानी एक ही पुरुष उत्पन्न हुआ । वह विराट पुरुष उत्पन्न हुआ । वह तिर्यङ्मनुष्यादि के अतिरिक्त रूप हुआ । पश्चात् देवादिजीव के अभाव से ऊर्ध्व भूमि की सृष्टि की । भूमि की सृष्टि के बाद जीवों को सृष्टि की ॥ ५ ॥

तस्मा॑द्य॒ज्ञात्स॑र्व्व॒हु॒त॒ꣳ सम्भृ॑तं पृषदा॒ज्यम् ।
प॒शूँस्ताँश्च॑क्रे व्वाय॒व्यानार॒ण्या ग्रा॒म्याश्च॒ ये ॥ ६ ॥

तस्मा॑त् । य॒ज्ञात् । स॒र्व्व॒हु॒त॒ ऽइति॑ सर्व्व॒हु॒तः॑ । सम्भृ॑त॒मिति॒ सम्ऽभृ॑तम् । पृ॒ष॒दा॒ज्यमिति॑ पृषत् आ॒ज्यम् ॥ प॒शून् । तान् । च॒क्रे॒ । व्वाय॒व्या॒न् । आ॒र॒ण्याः । ग्रा॒म्याः । च॒ । ये ॥ ६ ॥

[अन्वयः] सर्वतः हुतः तस्मात् यज्ञात् पृषत् आज्यम् सम्भृतम् । वायव्यान् ये च आरण्याः ग्राम्याः चक्रे ॥ ६ ॥

[व्याख्या] सर्वहुतः, तस्मात्=पुरुषमेधाख्यात्, यज्ञात्, पृषदाज्यम्=दधिमिश्रमाज्यम्, सम्भृतम्=सम्पादितम्, दधिमिश्रमाज्यं सम्पादितं दध्याज्यादिभोग्यजातं सम्पादितमित्यर्थः । वायव्यान्=वायुदेवतान्, ये, च, आरण्याः=हरिणादयः, ग्राम्याः=गवाश्वादयः, चक्रे ॥ ६ ॥

[विग्रहः] सर्वं हूयते यस्मिन् स सर्वहुत् तस्य सर्वहुतः । अरण्ये भवाः आरण्याः । ग्रामे भवाः ग्राम्याः ॥ ६ ॥

[कोषः] पृषदाज्यं सदध्याज्ये । यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः ॥ ६ ॥

[अर्थः] उस सर्वहुतपुरुष मेधाख्ययज्ञ से दधिमिश्रितआज्य सम्पादित हुआ । और उस पुरुष ने वायुदैवत्य और वनमें होनेवाले हरिणादि ग्राम में होने वाली गौ आदि उत्पन्न किये ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतᳫ ऋचᳫ सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

ऋचं÷ । सामानि षज्ञिरे ॥ छन्दांꣳसि । षज्ञिरे । तस्मात् ।
षजुं÷ । तस्मात् । अजायत ॥ ७ ॥

[अन्वयः] सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि यज्ञिरे छन्दांसि यज्ञिरे तस्मात् यजुः अजायत ॥ ७ ॥

[व्याख्या] सर्वहुतः = तस्मात्, यज्ञात्, ऋचः, सामानि, यज्ञिरे = उत्पन्नानि, छन्दांसि = गायत्र्यादीनि, यज्ञिरे, तस्मात्, यजुः, अजायत । [ऋग्यजुः सामभिश्छन्दोभिश्च विना- यज्ञा न सिध्यन्ति] ॥ ७ ॥

[कोषः] यज्ञः सवोऽध्वरो यागः सप्ततन्तुर्मखः क्रतुः । स्त्रियामृक् सामयजुषी इति वेदा स्त्रयस्त्रयी ॥ ७ ॥

[अर्थः] उस यज्ञ से ऋक् यजु साम और छन्द, गायत्री प्रभृति उत्पन्न हुए ॥ ७ ॥

तस्मा॒दश्वा॑ अजायन्त॒ षे के चो॑भ॒याद॑तः ।
गावो॑ ह जज्ञि॒रे॒ तस्मा॒त्तस्मा॑ज्जा॒ता अ॑जा॒वय॑ः ॥ ८ ॥

तस्मा॑त् । अश्वा॑ः । अ॒जा॒य॒न्त॒ । षे । के । च॒ । उ॒भ॒याद॑तः । उ॒भ॒यद॑त॒ ऽइत्यु॑भ॒य द॑तः ॥ गाव॑ः । ह॒ । ष॒ज्ञि॒रे॒ । तस्मा॑त् । तस्मा॑त् । जा॒ताः । अ॒जा॒वय॑ः ॥ ८ ॥

[अन्वयः] तस्मात् अश्वाः अजायन्त ये के च उभयादतः । गावः ह यज्ञिरे तस्मात् अजावयः जाताः ॥ ८ ॥

[विग्रहः] उभयोर्भागयोर्दन्ताः येषाम् ते उभयादतः । (छान्दसं दीर्घत्वम्) ॥ ८ ॥

[व्याख्याः] तस्मात्=यज्ञात्, अश्वाः, अजायन्त=उत्पन्नाः, ये, के, च, उभयादतः=ऊर्ध्वाधोभागयोर्दन्तयुक्ताः । गावः, च, जज्ञिरे, तस्मात्=यज्ञात्, अजावयः=अजाः अवयवश्च, जाता, नहि पशुभिर्विना यज्ञः सिध्येत् ॥ ८ ॥

[अर्थः] यज्ञ से अश्व उत्पन्न हुवे । उस यज्ञ से दन्तसहित बकरीआदि उत्पन्न हुई । (अर्थात् पशुओं के विना यज्ञ की सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न्पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः ।
तेन॑ दे॒वा अ॑यजन्त सा॒द्ध्या ऽऋष॑यश्च॒ ये ॥ ९ ॥

तम् । य॒ज्ञम् । ब॒र्हिषि॑ । प्र । औ॒क्ष॒न् । पुरु॑षम् । जा॒तम् । अ॒ग्र॒तः ॥
तेन॑ । दे॒वाः । अ॒य॒ज॒न्त॒ । सा॒ध्याः । ऋष॑यः । च॒ । ये ॥ ९ ॥

[अन्वयः] यज्ञं तं पुरुषं बर्हिषिप्रौक्षन् अग्रतः । तेन देवाः अयजन्त ये च साध्या ऋषयः ।९।

[व्याख्याः] यज्ञम्=यज्ञसाधनभूतम्, तम् पुरुषम्=पशुत्वमाभाव्य यूपे बद्धम्, बर्हिषि=

मानसे यज्ञे, प्रौक्षन्=प्रोक्षितवन्तः, प्रोक्षणादिभिः संस्कारैः संस्कृतवन्तः, अग्रतः=सृष्टेः पूर्वं जातम् पुरुषत्वेनोत्पन्नम्, तेन=पुरुषेण पशुना, देवा, अयजन्त=मानसयागं निस्पादितवन्तः, ये, च, साध्याः=सृष्टिसाधनयोग्याः प्रजापतिप्रभृतयः । ये च=तदनुकूला, ऋषयः=मन्त्रद्रष्टारः ॥ ९ ॥

[अर्थः] यज्ञसाधनभूत उस पुरुष को मानसयज्ञ में प्रोक्षणादियों से संस्कार किया। सृष्टि के पूर्व मानसयज्ञ को प्रजापति प्रभृतियों ने और उनके अनुकूल ऋषियों ने उस मानसयज्ञ को निष्पन्न किया ॥ ९ ॥

यत् पुरु॑षं॒ व्यद॑धुः कति॒धा व्य॑कल्पयन् ।
मुखं॒ किम॑स्यासी॒त्किं बा॒हू किमु॒रू पादा॑ उच्येते ॥१०॥

यत् । पुरु॑षम् । वि । अद॑धुः । क॒ति॒धा । वि । अ॒क॒ल्प॒यन् ॥
मुख॑म् । किम् । अ॒स्य॒ । आ॒सी॒त् । बा॒हू ऽइति॑ बा॒हू । उ॒रू ऽइत्यू॒रू ।
पादौ॑ । उ॒च्ये॒ते॒ ऽइत्यु॑च्येते ॥ १० ॥

[अन्वयः] यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । अस्य मुखं किम् आसीत् किं बाहू ऊरू किं पादौ उच्येते ॥ १० ॥

[व्याख्या] यत् = यदा, पुरुषम् = विराटरूपम्, व्यदधुः = कालेनोत्पादयन्, कतिधा = कतिभिः प्रकारैः, व्यकल्पयन् = विविधं कल्पितवन्तः, अस्य = पुरुषस्य, मुखम्, किम्, आसीत्, किं, बाहु, ऊरु, किं पादौ, उच्येते ॥ १० ॥

[अर्थः] जब विराट रूप को बहुत प्रकार से कल्पितवान किया। उस पुरुष का मुख क्या बाहू और ऊरु पाद क्या थे ॥ १० ॥

ब्रा॒ह्म॒णो॑ऽस्य॒ मुख॑मासीद्बा॒हू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः।
ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्याᳬं शू॒द्रो अ॑जायत ॥ ११ ॥

ब्रा॒ह्म॒णः। अ॒स्य॒। मुख॑म्। आ॒सी॒त्। बा॒हू ऽइति॑ बा॒हू। रा॒ज॒न्यः॑। कृ॒तः॥ उ॒रू ऽइत्यू॒रू। तत्। अ॒स्य॒। यत्। वैश्यः॑। प॒द्भ्यामिति॑ प॒त्ऽभ्याम्। शू॒द्रः॥ अ॒जा॒य॒त॒ ॥ ११ ॥

[अन्वयः] ब्राह्मणः अस्य मुखम् आसीत् राजन्यः बाहू कृतः। तत् अस्य यत् ऊरू वैश्यः पद्भ्यां शूद्रः अजायत ॥ ११ ॥

[व्याख्याः] ब्राह्मणः = ब्रह्मत्वजातिविशिष्टः पुरुषः, अस्य = प्रजापतेः, मुखम्, आसीत्,

मुखादुत्पन्न इत्यर्थः । राजन्यः=क्षत्रियत्वविशिष्टः पुरुषः, बाहू=बाहूत्वेन, कृतः=निष्पादितः, तत्=तदानीम्, अस्य=प्रजापतेः, यत्, ऊरु, वैश्यः=वैश्यत्वविशिष्टः पुरुषः, ऊरुभ्यामुत्पादित इत्यर्थः । पद्भ्याम्=शूद्रत्वजातिमान् पुरुषः अजायत=उत्पन्नः ॥ ११ ॥

[अर्थः] ब्राह्मणजाती विशिष्ट पुरुष उस प्रजापति के मुख से हुए। क्षत्रियजाति विशिष्ट-पुरुष बाहु से उत्पन्न हुए। और उस प्रजापति के ऊरु से वैश्य उत्पन्न हुए। और पैरों से शूद्र-जातिविशिष्ट पुरुष उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥

च॒न्द्रमा॒मन॑सो जा॒तश्चक्षो॒ꣳ सूर्यो॑ अजायत ।
श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णाश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत ॥ १२ ॥

च॒न्द्रमा॑ꣳ । मन॑सꣳ । जा॒तꣳ । चक्षो॑ꣳ । सू॑र्य॑÷ । अ॒जा॒य॒त॒ ॥ श्रो॑त्रा॑त् । वा॒युꣳ । च॒ । प्रा॒णꣳ । च॒ । मुखा॑त् । अ॒ग्निꣳ । अ॒जा॒य॒त॒ ॥ १२ ॥

[अन्वयः] मनसः चन्द्रमाः जातः चक्षोः सूर्यः अजायत । वायुः प्राणः च श्रोत्रात् अजायत मुखात् अग्निः अजायत ॥ १२ ॥

[व्याख्या] मनसः=सकाशात्, चन्द्रमा, जातः=उत्पन्नः । चक्षोः=चक्षुषः सकाशात्,

सूर्यः, अजायत = उत्पन्न, वायुः = पवनः सकाशात्, प्राणः, श्रोत्रात् = कर्णात्, अजायत, मुखात्, आस्यात्, अग्निः = वन्हिः, अजायत ॥ १२ ॥

[अर्थः] मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, वायु से कर्ण और प्राण, मुख से अग्नि उत्पन्न हुई ॥१२॥

ना॒भ्या॑ऽआसीद॒न्तरि॑क्षꣳ शी॒र्ष्णो द्यौः सम॑वर्त्तत ।
प॒द्भ्यां भूमि॒र्दिश॒ꣳ श्रोत्रा॒न्तथा॑ लो॒काँ२॥ अ॑कल्पयन् ॥ १३ ॥

नाभ्याꣳ । आ॒सी॒त् । अ॒न्तरि॑क्षम् । शी॒र्ष्ण॑ꣳ । द्यौꣳ । सम् । अ॒व॒र्त्त॒त ॥ पद्भ्यामिति॑ प॒त् ऽभ्याम् । भूमि॑÷ । दिश॑÷ । श्रोत्रा॑त् । तथा॑ । लो॒कान् । अ॒क॒ल्प॒य॒न् ॥ १३ ॥

[अन्वयः] नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत् शीर्ष्णः द्यौः सम् अवर्तत । पद्भ्याम् भूमिः श्रोत्रात् दिशः तथा लोकान् अकल्पयन् ॥ १३ ॥

[व्याख्याः] नाभ्याः = नाभेः प्रजापतेः सकाशात्, अन्तरिक्षम्, आसीत्, शीर्ष्णः = शिरसः, द्यौः = स्वर्गः, समवर्त्तत, पद्भ्याम् = पादाभ्याम्, भूमिः उत्पन्ना, श्रोत्रात्, दिशः = (उत्पन्ना) तथा = तेनोक्तेन विधिना, लोकान् = भूरादीन् प्रजापतेः सकाशात्, अकल्पयन् = कल्पितवन्तः ॥ १३ ॥

[अर्थः] प्रजापति के नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुआ। शिर से स्वर्ग उत्पन्न हुआ। पैरों से पृथ्वी उत्पन्न हुई, कानों से दिशाएँ उत्पन्न हुई। उसी प्रकार भूरादिलोक प्रजापति से उत्पन्न हुए ॥१३॥

य॒त्पुरु॑षेण ह॒विषा॑ दे॒वा य॒ज्ञमत॑न्वत ।
व॒स॒न्तो॑ऽस्यासी॒दाज्यं॑ ग्री॒ष्म ऽइ॒ध्मः श॒रद्ध॒विः ॥ १४ ॥

य॒त् । पुरु॑षेण । ह॒विषा॑ । दे॒वाः । य॒ज्ञम् । अत॑न्वत ॥ व॒स॒न्तः ।
अ॒स्य॒ । आ॒सी॒त् । आज्य॑म् । ग्री॒ष्मः । इ॒ध्मः । श॒रत् । ह॒विः ॥१४॥

[अन्वयः] यत् देवा पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत । वसन्त अस्य आसीत् आज्यं ग्रीष्मः इध्मः शरत् हविः ॥ १४ ॥

[व्याख्या] यत् = यदा पूर्वोक्तक्रमेण देवशरीरेषु सत्सु, देवाः = उत्तरसृष्टिसिद्ध्यर्थं बाह्यद्रव्यस्यानुत्पन्नत्वेन पुरुषस्वरूपमेव मनसा हविष्ट्वेन सङ्कल्प्य, पुरुषेण = पुरुषाख्येन, हविषा = हविर्भूतेन, यज्ञम् = मानसं यज्ञमतन्वताततत्वेन सङ्कल्पित इत्यर्थः । अतन्वत । वसन्त = ऋतुः, अस्य, यज्ञस्य आसीत् = अभूत्, आज्यम् = ग्रीष्मः, इध्मः, आसीत् । तथा शरत् हविः आसीत् । शरदमेव पुरोडाशादिहविष्टवे न सङ्कल्पितवन्तेः [अत्र कण्डिकाव्युत्क्रमोऽस्ति अस्यानन्तरं "तं यज्ञम्" ततः "तस्माद्यज्ञादिति" ततः "सप्तास्यासन्निति क्रमोऽपेक्षितः ॥ १४ ॥

[अर्थः] जब पूर्वोक्त क्रम से देवशरीरों में देवताओं ने मानसिकसङ्कल्प कर पुरुषरूप हवि से यज्ञ का विस्तार किया तब वसन्त ऋतु को आज्यत्वेन सङ्कल्पित किया। ग्रीष्म ऋतु इध्म तथा शरद् ऋतु हवि अर्थात् पुरोडाशादि से याग कर सङ्कल्पित किया ॥ १४ ॥

स॒प्तास्या॑सन्परि॒धय॒स्त्रिऽ स॒प्त स॒मिध॑ः कृ॒ताऽ ।
दे॒वा य॒द्य॒ज्ञं त॑न्वा॒ना अब॑ध्न॒न्पुरु॑षं प॒शुम् ॥ १५ ॥

स॒प्त । अ॒स्य॒ । आ॒स॒न् । प॒रि॒धय॒ ऽइति॑ प॒रिधय॑ः । त्रिऽ । स॒प्त । स॒मिध॒ ऽइति॑ स॒म् इध॑ः । कृ॒ताऽ ॥ दे॒वाऽ । यत् । य॒ज्ञम् । त॒न्वा॒नाऽ । अब॑ध्नन् । पुरु॑षम् । प॒शुम् ॥ १५ ॥

[अन्वयः] यत् देवाः यज्ञं तन्वानाः पुरुषं पशुम् अबध्नन्। अस्य सप्त परिधयः त्रिः सप्त समिधः कृताः ॥ १५ ॥

[व्याख्याः] यत्=यदा, देवाः=प्रज्ञापतिप्राणेन्द्रियरूपाः यज्ञं=मानसं यज्ञम्, तन्वानाः-=कुर्वाणाः, पुरुषम्=विराटपुरुषम्, अबध्नन्=भावितवन्तः, अस्य=सङ्कल्पितयज्ञस्य, सप्त=गाय-

त्र्यादीनि छन्दांसि, परिधयः=ऐष्टिकस्याहवनीयस्य त्रयः परिधयः औत्तरवेदिकाः त्रयः आदित्यः सप्तमः परिधिः प्रतिनिधिः रूपः, त्रिगुणाः, सप्त=एकविंशतिसङ्ख्याकाः, समिधः, कृता । द्वादशमासाः पञ्चर्तवस्त्रयः इमे लोका असावादित्यः' । एते एकविंशतिरेकविंशतिदारुयुक्तेध्मवेन भाविताः । यद्वाध्म सप्त-समुद्राः क्षीरोदादयोऽस्य यज्ञस्य परिधयः आसन् । भारतखण्डे यागा भवन्तीति समुद्राणां परिधित्वम् ॥ १५ ॥

[अर्थः] जो देवता मनसयज्ञ को विस्तार करते हुए विराट् रूप पुरुषको बाँधा । इस सङ्कल्पित यज्ञ का गायत्र्यादिछन्दोंसे या सातसूर्य्यों से या चैत्रादिबारहमास या पाँच ऋतु या तीनलोक आहवहनोय तीन परिधियों के प्रतिनिधि रूप से इध्म स्थानीय थे ॥ १५ ॥

य॒ज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्रथ॒मान्या॑सन् ।
तेह॒नाकँ॑ म॒हि॒मान॑÷सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥१६॥

य॒ज्ञेन॑ । य॒ज्ञम् । अ॒य॒ज॒न्त॒ । दे॒वाः । तानि॑ । धर्म्मा॑णि । प्र॒थ॒मानि॑ । आ॒स॒न् ॥ ते । ह॒ । नाक॑म् । म॒हि॒मान॑÷ । स॒च॒न्त॒ । यत्र॑ । पूर्वे॑ । सा॒ध्याः । सन्ति॑ । दे॒वाः ॥ १६ ॥

[अन्वयः] देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। यत्र पूर्वे साध्याः ह सचन्त ॥ १६ ॥

[व्याख्याः] देवाः=प्रजापतिप्राणरूपाः, यज्ञेन=यथोक्तेन मानसेन सङ्कल्पेन यज्ञम्=महारूपम् प्रजापतिम्, अयजन्त=पूजितवन्तः, तानि=प्रसिद्धानि, धर्माणि=जगद्रूपविकाराणां धारकाणि, प्रथमाति=मुख्यानि, भूतानि, आसन्। अत्र=यस्मिन् विराट् प्राप्तिरूपे नाके, पूर्वे, साध्या=पुरातनाः विराट् प्राप्तिरूपं स्वर्गम्, ह,=एव, ते, महिमानः=तदुपासका महात्मानः, सचन्त=सचन्ते समवयन्ति प्राप्नुवन्ति, (अडभाव आर्षः) [सृष्टे प्रवाहनित्यतां दर्शयति] ॥ १६ ॥

[अर्थः] देवता यथोक्तमानससङ्कल्प से यज्ञरूपप्रजापति का पूजन किया। उस जगत-रूप विकारों का धारक प्रथम थे। जिस विराटरूप स्वर्ग में पुरातन विराट प्राप्तिरूप स्वर्ग को ही उसके उपसक महातमा प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्यत्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥१७॥
अद्भ्यऽइत्यत्ऽभ्यः । सम्भृत ऽइति समभृतः । पृथिव्यै ।
रसात् । च । विश्व कर्म्मण ऽइति विश्वकर्म्मणः । सम् । अवर्त्तत ।

अग्रे ॥ तस्य । त्वष्टा । विदधदिति वि दधत् । रूपम् । एति । तत ।
मर्त्यस्य । देवत्वमितिदेवत्वम् । आजान मित्या जानम् । अग्रे ॥ १७ ॥

[अन्वयः] अद्भ्यः पृथिव्यै विश्वकर्मणः रसाच्च सम्भृतः अग्रे समवर्तत । तस्य रूपं विदधम् त्वष्टा एति तत् मर्त्यस्य अग्रे अजानम् देवत्वम् ॥ १७ ॥

[विग्रहः] विश्वं कर्म यस्य सः विश्वकर्मा तस्य विश्वकर्मणः ॥ १७ ॥

[व्याख्याः] अद्भ्यः = जलात्, पृथिव्यै = पृथिव्याः सकाशात्, [पृथिव्यपां ग्रहणं पञ्चभूतोपलक्षणम्] च, विश्वकर्मणः = कालस्य, रसाच्च, संभृतः = पुष्टः, अग्रे = प्रथमम्, समवर्तत = समभवत्, तस्य = रसस्य, रूपम् = तद्रूपम्, विदधत् = धारयन्, त्वष्टा = आदित्यः, एति = प्रत्यहमुदयं करोति, तत्, मर्त्यस्य = मनुष्यस्य, अग्रे, अजानम् = मुख्यम्, देवत्वम् । 'द्विविधा हि देवा कर्मदेवा आजा[२]नदेवाश्च'

[अर्थः] जल से भूमि से और काल से रस पूर्व उत्पन्न हुआ । उस रसरूप के तद्रूप को धारण करते हुए आदित्य प्रतिदिन उदय होते हैं । वह मनुष्य के पूर्व अजानदेवत्व है ॥ १७ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥१८॥

---

(१) कर्मणोत्कृष्टेन देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः (२) सृष्ट्यादौ उत्पन्ना आजानदेवाः ।

वेद॑ । अ॒हम् । ए॒तम् । पुरु॑षम् । म॒हान्त॑म् । आ॒दि॒त्यव॑र्ण॒मित्या॑दि॒त्य व॑र्णम् । तम॑सꣳ । प॒रस्ता॑त् ॥ तम् । ए॒व । वि॒दि॒त्वा । अति॑ । मृ॒त्युम् । ए॒ति॒ । न । अ॒न्न्यः । पन्था॑ꣳ । वि॒द्य॒ते॒ । अय॑नाय ॥ १८ ॥

[अन्वयः] एतं महान्तं पुरुषं अहं वेद । [कीदृशम्] आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तम् एव विदित्वा मृत्युम् अति एति अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते ॥ १८ ॥

[विग्रह] आदित्यस्य इव वर्णो यस्य सः आदित्यवर्णः तम् आदित्यवर्णम् ॥ १८ ॥

[व्याख्याः] एतम्, महान्तम् = सर्वोत्कृष्टम्, पुरुषम् = सूर्यमण्डलस्थम्, अहम्, वेद = जानामि, (कीदृशम्) आदित्यवर्णम् = सूर्यसदृशम्, तमसः = अन्धकारस्य; परस्तात् = दूरतरम्, (तमोरहितमित्यर्थः) तमः = आदित्यम्, एव, विदित्वा = ज्ञात्वा, मृत्युम् = मरणम्, अति एति = क्रामति, (परं ब्रह्मगच्छति) अयनाय = आश्रयाय, (गमनाय वा) अन्यः = परः, पन्था = मार्गः, न विद्यते ॥ १८ ॥

[अर्थः] सर्वोत्कृष्टसूर्यमण्डलस्थ पुरुष को मैं जानता हूँ । आदित्य को ही जानकर मृत्यु को अतिक्रमण कर परब्रह्म में जाता है । और कोई दूसरा मार्ग मुक्ति का नहीं है ॥ १८ ॥

प्र॒जाप॑तिश्चर॒ति गर्भे॑ अ॒न्तरजा॑यमानो ब॒हु॒धा व्विजा॑यते ।
तस्य॒ योनि॒ं परि॑पश्यन्ति॒ धीरा॒स्तस्मि॑न्ह तस्थु॒र्भुव॑नानि॒ व्विश्वा॑ ॥१९॥

प्र॒जाप॑ति॒रिति॑ प्र॒जाप॑तिꣳ । च॒र॒ति॒ । गर्भे॑ । अ॒न्तः । अजा॑य मानꣳ । ब॒हु॒धा । व्वि॒जा॒य॒ते॒ ॥ तस्य॑ । योनि॑म् । परि॑ । प॒श्य॒न्ति॒ । धीरा॑ꣳ । तस्मि॑न् । ह॒ । त॒स्थु॒ꣳ । भुव॑नानि । व्विश्वा॑ ॥ १९ ॥

[अन्वयः] प्रजापतिः अन्तः गर्भे चरति अजायमानः बहुधा विजायते धीराः तस्य योनिं परि पश्यन्ति विश्वा भुवनानि तस्मिन् ह तस्थुः ॥ १९ ॥

[विग्रहः] प्रजानां पतिः प्रजापतिः ॥ १९ ॥

[व्याख्या:] प्रजापतिः = अन्तः = अन्तर्हृदि स्थितः सन्, गर्भे = मध्ये, चरति = प्रविशति, अजायमानः = अनुत्पाद्यो नित्यः सन्, बहुधा = कार्यकारणरूपेण, विजयते = माययाप्रपञ्चरूपेणोत्पद्यते, धीराः = ब्रह्मविदः, तस्य = प्रजापतेः, योनिम् = स्थानम्, परि पश्यन्ति = अहं "ब्रह्माऽस्मि" इति जानन्ति, विश्वा = विश्वानि सर्वाणि, भुवनानि = तस्मिन्, ह = तस्मिन्नेव कारणात्मनि ब्रह्मणि, तस्थुः = स्थितानि, सर्वं तदात्मकमेवेत्यर्थः ॥ १९ ॥

[अर्थः] प्रजापतिहृदय में स्थित होता हुआ गर्भ में प्रवेश करता है। जो बिना उत्पन्न हुए कार्यकारणरूप से ब्रह्मविद उस प्रजापति के स्थान (स्वरूप) को 'अहं ब्रह्मा०' यह जानते हैं। उसी ब्रह्म में सम्पूर्ण भुवनादिसंसारस्थित है। अर्थात् सम्पूर्णसंसारतदात्मक है ॥ १९ ॥

षो दे॒वेभ्य॑ऽआ॒तप॑ति॒ षो दे॒वानां॑ पु॒रोहि॑तः ।
पूर्व्वो॑ षो दे॒वेभ्यो॑ जा॒तो नमो॑ रु॒चाय॒ ब्राह्म॑ये ॥ २० ॥

षः । दे॒वेभ्य॑ः । आ॒त॒प॒तीत्या॒ तप॑ति । षः । दे॒वाना॑म् । पु॒रोहि॑त॒ऽइति॑ पु॒रः हि॑तः ॥ पूर्व॑ः । षः । दे॒वेभ्य॑ः । जा॒तः । नम॑ः । रु॒चाय॑ । ब्राह्म॑ये ॥ २० ॥

[अन्वयः] यः देवेभ्यः आतपति यः देवानां पुरोहितः। यः देवेभ्यः पूर्वः जातः तस्मै रुचाय ब्राह्मये नमः ॥ २० ॥

[विग्रहः] रोचते असौ रुचः तस्मै रुचाय। ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मि तस्मै ब्राह्मये ॥ २० ॥

[व्याख्या] यः=प्रजापतिरादित्यरूपः, देवेभ्यः=देवानां प्रयोजनाय, आतपति=द्योतते, यः, देवानाम्=अमराणाम्, पुरोहितः=सर्वकार्येष्वग्रेनीतः। यः, देवेभ्यः=देवेभ्यः सकाशात्, पूर्वः

प्रथमंम् = जातः उत्पन्नः, तस्मै = आदित्याय, रुचाय = दीप्यमानाय, ब्राह्मये = ब्रह्मावयवभूताय नमः ।२०।

[व्याकरणम्] "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति क प्रत्ययः ॥ २० ॥

[अर्थः] जो आदित्यरूपप्रजापति देवताओं के प्रयोजन के लिए प्रकाशित होता है। जो देवताओं के सम्पूर्ण कार्योंमें प्रथम है, और जो देवताओं से पूर्व उत्पन्न हुए उस आदित्य दीप्यमानब्रह्मावयवभूत को नमस्कार है ॥ २० ॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽअग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्रांह्मणो विद्यात्तस्यं देवा अंसन्वशें ॥ २१ ॥

रुचम् । ब्राह्मम् । जनयन्तः । देवाः । अग्रे । तत् । अब्रुवन् ॥ यः । त्वा । एवम् । ब्राह्मणः विद्यात् । तस्यं । देवाः । असन् । वशें ॥ २१ ॥

[अन्वयः] देवाः रुचम् ब्राह्मं जनयन्तः अग्रे अब्रुवन्। यः ब्राह्मणः त्वा एवम् विद्यात् तस्य देवाः वशे ॥ २१ ॥

[विग्रह] ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणम् ॥ २१ ॥

[व्याख्याः] देवाः = दीप्यमानाः, रूपम् = शोभनम्, ब्राह्मम् जनयन्तः = उत्पादयन्तः, अग्रे = प्रथमम्, तत् = वचः, अब्रुवन् = ऊचुः, य ब्राह्मणः = यः आदित्यः, त्वा = त्वाम्, एवम् = उक्त = विधिना उत्पन्नम्, विद्यात् = जानीयात्, तस्य = ब्राह्मणस्य, देवा, वशे असन् = वश्या भवन्ति। आदित्योपासिता जगत्पूज्यो भवतीत्यर्थः ॥ २१ ॥

[अर्थः] दीप्यमान देवताओं ने शोभनआदित्य को उत्पन्न करते भए पहले यह कहा जो ब्राह्मण तुमको उक्त विधिसे उत्पन्न हुआ उस ब्राह्मण के वश में देवता होते हैं (अर्थात् आदित्योपाशक जगत का पूज्य होता है) ॥ २१ ॥

श्रीश्च॑ ते ल॒क्ष्मीश्च॒ पत्न्या॑वहोरा॒त्रे पा॒र्श्वे नक्ष॑त्राणि रू॒पम॒श्विनौ॒ व्यात्त॑म् ।
इ॒ष्णन्नि॑षाणा॒मुं म॑ इषाण सर्व॒लो॒कं म॑ ऽइषाण ॥ २२ ॥

श्रीः । च॒ । ते॒ । ल॒क्ष्मीः । च॒ । पत्न्यौ॑ । अ॒हो॒रा॒त्रे ऽइत्य॑हो रा॒त्रे । पा॒र्श्वे ऽइति॑ पा॒र्श्वे । नक्ष॑त्राणि ॥ रू॒पम् । अ॒श्विनौ॑ । व्या॒त्तमिति॑ वि॒ आत्त॑म् ॥ इष्णन् । इ॒षा॒ण । अ॒मुम् । मे॒ । इ॒षा॒ण । स॒र्व॒लो॒क॒मिति॑ सर्व॒लो॒कम् । मे॒ । इ॒षा॒ण ॥ २२ ॥

[अन्वयः] श्रीः च लक्ष्मीः च ते पत्न्यौ अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम् अश्विनौ व्यात्तम् इष्णन् इषाण अमुम् मे इषाण ॥ २२ ॥

[विग्रहः] श्रीयते अनया सा श्रीः । लक्ष्म्या लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः ॥ २२ ॥

[व्याख्या] श्रीः = सम्पत्तिः, च, लक्ष्मी = सौन्दर्यम्, च, ते = तव, पत्न्यौ = जायास्थानीये, अहोरात्रे, पार्श्वे = पार्श्वस्थानीये, नक्षत्राणि = गगनगास्तारा:, रूपम्, अश्विनौ = द्यावापृथिव्यौ, व्यात्तम्, इष्णन् = कर्मफलमिच्छन्सन्, इषाण = इच्छ, अमुम् = परलोकम्, मे = मम, इषाण ॥ २२ ॥

[व्याकरणम्] "इषुच्छायाम् विकरणप्रत्ययः । यद्वा ईषआभीज्ये" क्र्यादि अत्रेच्छार्थः ।२२।

[अर्थः] सम्पत्ति और सौन्दर्य तुम्हारी स्त्री के स्थान पर हैं । अहोरात्र पार्श्वस्थानीय हैं । और नक्षत्र आकाशस्थ ताराएँ तुम्हारे रूप हैं । द्यावापृथ्वी तुम्हारे मुख स्थानीय हैं । कर्मफल की इच्छा करते हुए अपने लोक को मुझ उपासक को प्राप्त कराओ मुझे ज्ञान और ऐश्वर्य दीजिये । २२ ॥

इति द्वितीयोध्यायः समाप्तः ।

अथ तृतीयोध्याय

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतꣳ सेना ऽअजयत्साकमिन्द्रः ॥ १ ॥

आशुः । शिशानः । वृषभः । न । भीमः । घनाघनः । क्षोभणः । चर्षणीनाम् ॥ सङ्क्रन्दन ऽइति सम् क्रन्दनः । अनिमिष ऽइत्यनिमिषः । एकवीर इत्येकवीरः । शतम् । सेनाः । अजयत् । साकम् । इन्द्रः ॥ १ ॥

[अन्वयः] इन्द्रः शतं सेना अजयत् आशुः शिशानः वृषभो न भीमः घनाघनः चर्षणीनां क्षोभणः संक्रन्दनः अनिमिषः एकवीरः ॥ १ ॥

[विग्रहः] अश्नुते व्याप्नोति आशुः । श्यति वज्रं तीक्ष्णीकरोति शिशानः । क्षोभयति इति क्षोभणः । सम्यक् क्रन्दनं परभयहेतुर्ध्वनिर्यस्य । नास्ति निमेषो यस्य स । एक श्चासौ वीरः एकवीरः ॥ १ ॥

[व्याख्याः] इन्द्रः, शतं सेना = शतसङ्ख्याकाः शत्रुसेनाः, अजयत् = जितवान्, आशुः = शीघ्रगामी, शिशानः = शातनकर्ता, “शोतनूकरणे”। वृषभो न भीमः = वृषभ इव भयङ्करः, घनाघनः = शत्रूणामतिशयेन घातकः हन हनेति वक्ता वा वृष्टिकर्तृमेव रूपो वा, चर्षणीनाम् = मनुष्याणाम्, क्षोभणः = क्षोभहेतुः चालकः, संक्रन्दनः = सङ्ग्रामकारिणां समाहर्ता, अनिमिषः = अप्रमादी, देवो वा। [कदाचिदपि निमेषं न करोति]। एकवोरः = एक एव सहायः [निरपेक्षं शत्रून् एक एव जेतुं समर्थः] ॥१॥

[कोषः] “सुरमत्स्यावनिमिषौ”।

[व्याकरणम्] शिशानः ‘शोतुनूकरणे’ “बहुलं छन्दसि” इति जुहोत्यादित्वाच्छानचि द्वित्वम् ॥ १ ॥

[अर्थः] शीघ्रचलनेवाले, वज्रको तेज करने वाले, वृषभ के समान पराक्रमी, शत्रुओं के नाशक, मनुष्यों के सञ्चालक, गर्जने वाले, तथा सावधान, एकमात्र वीर, इन्द्रने शत्रुओं की सैकड़ों सेनाओं को एक साथ ही हराया ॥ १ ॥

सं॒क्रन्द॑नेनानिमि॒षेण॑ जि॒ष्णुना॑ युत्का॒रेण॑ दुश्च्यव॒नेन॑ धृ॒ष्णुना॑ ।
तदिन्द्रे॑ण जयत॒ तत्स॑हध्व॒ं युधो॑ नर॒ ऽइषु॑ हस्तेन॒ ऽवृष्णा॑ ॥ २ ॥

स॒ङ्क्रन्द॑ने॒नेति॑ स॒म् क्रन्द॑नेन । अ॒नि॒मि॒षेणेत्य॑नि ऽमि॒षेण॑ ।

जिष्णुना । युत्कारेणेति युत् कारेण । दुश्च्यवनेनेति दुः च्यवनेन । धृष्णुना ॥ तत् । इन्द्रेण । जयत । तत् । सहध्वम् । युधः । नरः । इषुहस्तेनेतीषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

[अन्वयः] हे युधः ! नरः इन्द्रेण तत् जयत तत् सहध्वं सङ् क्रन्दनेन अनिमिषेण जिष्णुना युत् कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना इषुहस्तेन वृष्णा ॥ २ ॥

[विग्रह] युध्यन्ते युधः । युधं करोतीति युत्कारः तेन युत्कारेण। दुःश्येन च्यावयितुं शक्यः दुश्चवनः तेन दुश्च्यवनेन । इषवो हस्ते यस्य तेन इषुहस्तेन । वर्षतीति वृषा तेन ॥ २ ॥

[व्याख्याः] हे युधः = योद्धारः, नरः, इन्द्रेण, तत् = परबलं, जयत = वशी कुरुत, तत् सहध्वम् , सङ्क्रन्दनेन = शब्दकारिणा, अनिमिषेण = एकचितेन अप्रमाद्यता वा, जिष्णुना = जयशीलेन, युत्कारेण = युद्धकारिणा, संप्रहारकारिणा वा । युधसंप्रहारे । दुश्चवत्नेन = अजय्येन, धृष्णुना = प्रगल्भेन भीतिरहिते वा, इषुहस्तेन = शरपाणिना, वर्षुकेण सेक्त्रा वा ॥ २ ॥

[अर्थः] युद्ध करने वाले मनुष्यों ? तुम लोग, शब्द करने वाले, सावधान, विजयी, अजेय, निर्भय योधा, बाण हाथ में लिये हुये, वर्षा करनेवाले, इन्द्र के साथ, होकर अपने शत्रुओंकी सेना को वश में करो और उनको हटाओ ॥ २ ॥

स ऽइषु॑हस्तै॒ः स नि॑ष॒ङ्गिभि॑र्व॒शी सꣳस्र॑ष्टा॒ स यु॒ध इन्द्रो॑ ग॒णेन॑ ।
स॒ꣳसृ॒ष्ट॒जित्सो॑म॒पा बा॑हुश॒र्ध्यु॑ग्रध॑न्वा॒ प्रति॑हिताभि॒रस्ता॑ ॥ ३ ॥

सः । इषु॑हस्तै॒रितीषु॑ऽहस्तैः । सः । नि॒ष॒ङ्गिभि॒रिति॑ नि॒षा॒ङ्गिऽभिः॑ । व॒शी । सꣳस्र॒ष्टेति॒ सम्ऽस्र॑ष्टा । सः॑ । यु॒धः॑ । इन्द्रः॑ । ग॒णेन॑ ॥ स॒ꣳसृ॒ष्ट॒जिदिति॑ सꣳसृ॒ष्ट॒ऽजित् । सो॒म॒पा ऽइति॑ सो॒म॒ऽपाः । बा॒हु॒श॒र्द्धीति॑ वाहु॒ऽश॒र्द्धी । उ॒ग्र॒ध॒न्वेत्यु॒ग्रऽध॑न्वा । प्रति॑हिताभि॒रिति॒ प्रति॑ऽहिताभिः । अस्ता॑ ॥ ३ ॥

[अन्वयः] सः वशो इषु हस्तैः निषङ्गिभिः संस्रष्टा, स, गणेन युधः संसृष्टजित् सोमपाः वाहुशर्धी उग्रधन्वा प्रतिहिताभिः अस्ता ॥ ३ ॥

[विग्रह] वशयति रिपून् इति वशी । युध्यते असौ युधः । संसृष्टान् युद्धाय सङ्गतान् रिपून् जयति । सोमं पिवतीति यजमानानां यागेषु सोमपाः । बाह्वोः श्पर्धो बलमस्यास्तीति बाहुशर्धी । उग्रम् = उत्कृष्टं, धनुर्यस्य सः उग्रधन्वा ॥ ३ ॥

[**व्याख्या**] सः, इषुहस्तैः = निषङ्गिभिः = खङ्गिभिः, वशी = कान्तः सर्वजनप्रियो वा स्वतन्त्रो वा, गणेन = रिपुगणेन, युधः = युद्धकर्ता, संसृष्टजित् सोमपाः = सोमपानकर्ता, बाहुशर्धी = बाहुबलोपेतः, संयोगिनिरपेक्षइत्यर्थः। शर्ध इति बलनाम। उग्रधन्वा = उद्यतधनुः, प्रतिहिताभिः = शत्रुशरीरे प्रतिहताभिरिषुभिः, अस्ता = क्षेप्ता, "असुक्षेपणे" रिपुनाशयितोयर्थः। स शब्दावृत्ति पादपूरणार्था ॥ ३ ॥

[**व्याकरणम्**] संसृष्टा—"ण्वुलतृचौ" इति तृच् प्रत्ययः।
युधः—"इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इति क प्रत्ययः।
उग्रधन्वा—"धनुषश्च" इत्यनङादेशः।
क्षेप्ता—"असु क्षेपणे" तृन्।

[**अर्थः**] वह इन्द्र बाणहाथ में लिये हुए और खड्ग वाले शत्रुओं से युद्ध करने वाला, जनों को प्रिय, शत्रुओं के समूह से भी लड़ने वाला, शत्रु विजयी, सोमपान करने वाला बलवान् बाहुओं से युक्त तीव्र धन्वा वाला, और अपने धनुष से बाण फेंकने वाला वीर है ॥ ३ ॥

बृह॑स्पते॒ परि॑दीया॒ रथे॑न रक्षो॒हामित्राँ॑ऽअप॒बाध॑मानः।
प्र॒भ॒ञ्जन्त्सेनाः॑ प्रमृ॒णो यु॒धाजय॑न्न॒स्माक॑मेध्यवि॒तार॑थानाम् ॥ ४ ॥

बृह॑स्पते । परि॑ । दी॒य॒ । रथे॑न । र॒क्षो॒हेति॑ रक्ष॒ः हा । अ॒मित्रा॑न् । अ॒प॒बाध॑मा॒न॒ ऽइत्य॑प॒ बाध॑मानः ॥ प्र॒भ॒ञ्जन्निति॑ प्र॒भ॒ञ्जन् । सेनाः॑ । प्र॒मृ॒ण ऽइति॑ प्र॒मृ॒णः॑ । यु॒धा । जय॑न् । अ॒स्माक॑म् । ए॒धि॒ । अ॒वि॒ता । रथा॑नाम् ॥ ४ ॥

[अन्वयः] हे वृहस्पते ! (त्वं) रथेन परिदीयाः अस्माकं रथानाम् अविता एधि रक्षोहा अमित्रान् अपबाधमानः सेनाः प्रभञ्जन् युधा प्रमणोजयन् ॥ ४ ॥

[विग्रह] रक्षांसि हन्तीति रक्षोहा ॥ ४ ॥

[व्याख्या] हे वृहस्पते ! वृहतां पतेदेव, रथेन, परिदीयाः = सर्वतोगच्छ दीयतिर्गत्यर्थः । अस्माकम् = रथानाम् = अस्मदोयस्यन्दमानानाम्, अविता = रक्षकः, एधि = भव, रक्षोहा = रक्षसां-हन्ता, अमित्रान् = शत्रून्, अपबाधमानः = परिपीडयन्, सेनाः परकीयाः शत्रुसेनाः, प्रभञ्जन् = प्रमर्दयन्, प्रकर्षेण भग्नाः कुर्वन् इत्यर्थः । युधा = युद्धेन, प्रमृणोजयन् = हिंसकान् जयन् पराभवन् ॥४॥

[अर्थः] हे ! राक्षसों के नाशक वृहस्पते ? शत्रुओं को पीड़ा करते हुये सेनाओं को भग्न करते हुये युद्ध के द्वारा हिंसकों को हराते हुये तुम रथ पर चढ़कर चारो तरफ घूमो और हमारे रथों की रक्षा करो ॥ ४ ॥

ब॒ल॒वि॒ज्ञा॒य स्थवि॑र॒ऽ प्रवी॑र॒ꣳ सह॑स्वान्वा॒जीसह॑मानउ॒ग्रऽ ।
अ॒भिवी॑रो ऽअ॒भिस॑त्वा सहो॒जा जैत्र॑मिन्द्र॒ रथ॒माति॑ष्ठ गो॒वित् ॥ ५ ॥

ब॒ल॒ वि॒ज्ञा॒यऽ ऽइति॑ बल वि॒ज्ञा॒यः । स्थवि॑रः । प्र॒वी॑र॒ ऽइति॒ प्र वीर॒ः । सह॑स्वान् । वा॒जी । सह॑मानः । उ॒ग्रः ॥ अ॒भि वी॑र॒ ऽइत्य॒भि वीरः । अ॒भिस॒त्त्वेत्य॒भि स॑त्त्वा । स॒हो॒जा॒ ऽइति॑ सहः जाः । जैत्र॑म् । इन्द्र॒ । रथ॑म् । आ । ति॒ष्ठ । गो॒विदिति॑ गो॒वित् ॥ ५ ॥

[अन्वयः] हे इन्द्र ! जैत्रं रथम् आतिष्ठ बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमानः उग्रः अभिवीरः अभि सत्वा सहोजाः गोवित् ॥ ५ ॥

[विग्रहः] बलं परकीयं विशेषेण जानाति बलविज्ञायः । सहो बलमस्या अस्तिति सहस्वान् । वाजोऽस्यास्तीति वाजी । अभितो वीराः शूराः यस्य सः । अमितः सत्वानः परिचारकाः प्राणिनो यस्य स । सहसो बलात् जातः सहोजा । गां स्तुतिगिरं वेत्ति गोवित् ॥ ५ ॥

[व्याख्याः] हे इन्द्र ! जैत्रम्=जयशीलम्, रथम्, आतिष्ठ=आरोह, बंलविज्ञायः बलेन कृत्वा विज्ञायता इत्यर्थः, स्थविरः पुरातनः सर्वानुशासनः, प्रवीरः=प्रकृष्टोवीरः शूरः, सहस्वान्=

बलवान्, वाजी=अन्नवान्, सहमानः=शत्रूनभिभवन्, उग्रः = क्रूरः, अभिवीरः, अभिसत्वा=सत्वानामभितिष्ठति, सहोजाः=सह इति बलनाम । गोवित् ॥ ५ ॥

[व्याकरणम्] विज्ञाय=कर्मण्यन् "आतोयुक् चिण्कृतोः" युक् ॥ ५ ॥

[अर्थः] शत्रु के बलको जानने वाले, प्राचीन, अच्छेवीर, बलवान्, अन्नयुक्त, शत्रुओं को हराने वाले, युद्ध में क्रूर, वीरों से युक्त, सेवकों से युक्त, बल से उत्पन्न, स्तुतिको जाननेवाले, हे इन्द्र ? तुम विजयी रथ पर चढ़ो ॥ ५ ॥

गो॒त्र॒भिदं॑ गो॒विदं॒ वज्र॑बाहुं॒ जय॑न्त॒मज्म॑ प्रमृ॒णन्त॒मोज॑सा ।
इ॒मꣳ सं॑जाता॒ऽअनु॑ वीरयध्व॒मिन्द्र॑ꣳसखायो॒ऽअनु॒ सꣳ र॑भध्वम् ॥६॥

गो॒त्र॒भिद॒मिति॑ गोत्र॒ भिद॑म् । गो॒विद॒मिति॑ गो॒ ब्विद॑म् । ब्वज्र॑बाहु॒मिति॒ वज्र॑ बा॒हुम् । जय॑न्तम् । अज्म॑ । प्र॒मृ॒णन्त॒ मिति॑प्र मृ॒णन्त॑म् । ओज॑सा ॥ इ॒मम् । स॒जा॒ता॒ऽइति॑ स जाताः । अनु॑ । ब्वी॒र॒य॒ध्व॒म् । इन्द्र॑म् । स॒खा॒य॒ः । अनु॑ । सम् । र॒भ॒ध्व॒म् ॥ ६ ॥

[अन्वयः] हे सजाताः सखायः इमम् अनु वीरयध्वम् गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुम् अज्म ओजसा प्रमृणन्तम् ॥ ६ ॥

[विग्रहः] भिनन्तीतिं गोत्रभित् तम् गोत्रभिदम् । वज्रं बाहौ यस्य स वज्रबाहुः तम् वज्रबाहुम् । गां वाचं वेत्तीति गोवित् तम् । समानं जातं जन्म येषां ते ॥ ६ ॥

[व्याख्या:] हे सजाताः=समानजन्मानः, सखायः=देवाः, इमम्=इन्द्रम्, अनुवीरयध्वम्=वीरकर्मकुर्वाणमनुगम्य वीरकर्मणा प्रोत्साहयत । अनुसंरभध्वम्, संरम्भं वेगङ्कुर्वाणमनुसंरम्भम् कुरुत । गोत्रमिददम्=असुरकुलं भेत्तारम्, यद्वा गाः अपः त्रायते गोत्रो मेघः तस्य भेत्तारम् । गोविदं=पण्डितम्, वज्रबाहुं=वज्रपाणिम्, अज्म=संग्रामम्, ओजसा बलेन, प्रमृणन्तम्=हिंसन्तम् ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] 'शूरवीरविक्रान्तौ' अदन्तश्चुरादिः लोट् । मृणतिर्हिंसाकर्मा ॥ ६ ॥

[अर्थः] साथ ही जन्म लेनेवाले मित्रो ? तुम सब, असुर कुल को करनेवाले, पण्डित, बज्र हाथ में लिये हुये, युद्ध में विजय करने वाले, बल से शत्रुओं के नाश करने वाले, इस इन्द्र के पीछे-पीछे चलकर इन्हें प्रोत्साहित करो और जब यह शीघ्रता से लड़े तब तुम भी उसीतरह लड़ो ॥६॥

अ॒भि गो॒त्राणि॒ सह॑सा॒ गाह॑मानोद॒यो वी॒रः श॒तम॑न्यु॒रिन्द्रः॑ ।
दु॒श्च्य॒व॒नः पृ॑त॒नाषाड॑यु॒ध्यो॒ऽस्माक॒ꣳ सेना॑ अवतु॒ प्र यु॒त्सु ॥ ७ ॥

अ॒भि गो॒त्राणि॑ । सह॑सा । गाह॑मानः । अ॒द॒यः । वी॒रः । श॒तम॑न्यु॒रिति॑ श॒त॒ऽम॑न्युः । इन्द्रः॑ ॥ दु॒श्च्य॒व॒न ऽइति॑ दुः॒श्च्य॒व॒नः । पृ॒त॒ना॒षाट् । अ॒यु॒ध्यः॑ । अ॒स्माक॑म् । सेनाः॑ । अ॒व॒तु । प्र । यु॒त्स्विति॑ युत्ऽसु ॥ ७ ॥

[अन्वयः] इन्द्रः प्रयुत्सु अस्माकं सेना अवतु "कीदृश इन्द्रः" गोत्राणि सहसा अभिगाहमानः अदयः वीरः शतमन्युः दुश्च्यवनः पृतनाषाट् अयुध्यः ॥ ७ ॥

[विग्रहः] शतमन्युः शतसंख्याकः, क्रोधो यस्य सः शतमन्युः । शतयज्ञोवेति समासो भवति । पृतनाम्—सङ्ग्रामं सहते अभिभवति इति पृतनाषाट् ॥ योद्धुम् अशक्यः अयुध्यः नास्ति युध्यः प्रतियोधास्ये ति वा ॥ ७ ॥

[व्याख्याः] इन्द्रः, प्रयुत्सु = प्रकृष्टयुद्धेषु, अस्माकम्, सेनाः, अवतु = रक्षतु, पालयतु वा (कीदृशइन्द्रः) गोत्राणि = असुरकुलानि, मेघवृन्दानि वा । सहसा = बलेन, अभिगाहमानः सर्वतो विलोडयन्, अदयः, दयारहितः, वीरः = विक्रान्तः, शतमन्युः = बहुक्रोधः, शतयज्ञो वा । दुश्च्यवनः = अप्रच्याव्यः । पृतनाषाट् । अयुध्यः ॥ ७ ॥

[कोषः] "मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि:" ॥ ७ ॥

[व्याकरणम्] 'छन्दसि परेऽपि' इत्युपसर्गस्य क्रियापदात् परप्रयोगः ।

[अर्थः] दानवसमूह को चारो तरफ से मन्थन करने वाले, दया रहित वीर, सौगुना क्रोध से युक्त, हराने के अयोग्य, इन्द्र, युद्ध में हम लोगों की सेनाओं की भली प्रकार रक्षा करें ॥ ७ ॥

इन्द्र॑ ऽआसान्ने॒ता बृह॒स्पति॒र्दक्षि॑णा य॒ज्ञः पु॒र ऽए॒तु॒सोम॑ः ।
दे॒व॒से॒नाना॑मभिमञ्ज॒तीनाञ्जय॑न्तीनां म॒रुता य॒न्त्वग्र॑म् ॥ ८ ॥

इन्द्र॑ः । आ॒सा॒म् । ने॒ता । बृह॒स्पति॑ः । दक्षि॑णा । य॒ज्ञः । पु॒रः । ए॒तु॒ । सोम॑ः ॥ दे॒व॒से॒ना॒नामिति॑ देव से॒नाना॑म् । अ॒भि॒ भ॒ञ्ज॒तीना॒मित्य॑भि भ॒ञ्ज॒तीना॑म् । जय॑न्तीनाम् । म॒रुत॑ः । य॒न्तु॒ । अग्र॑म् ॥ ८ ॥

[अन्वयः] इन्द्रः बृहस्पतिः च आसां देवसेनानां नेता यज्ञः दक्षिणा एतु सोमः पुरः मरूतः अग्रं यन्तु अभिमञ्जतीनां जयन्तीनाम् ॥ ८ ॥

[व्याख्या] इन्द्रः = बृहस्पतिः, च आसाम् = सहायार्थमागतानां, देव सेनानां = व्यूहरचनानां, नेता = प्रणेता, भवतु इति शेषः । यज्ञः = यज्ञपुरुषः विष्णुः, दक्षिणा = दक्षिणतः, दक्षिस्यां दिशि इत्यर्थः । एतु = गच्छतु, सोमः, पुरः = अग्रे, मरुतः = गणदेवाः, अग्रं = सेनाग्रभागं, यन्तु = गच्छतु, (कीदृशीनां) अभिभञ्जतीनाम् = शत्रून् मर्दयन्तीनां, जयन्तीनां = विजयमानानाम् ॥ ८ ॥

[व्याकरणम्] "भञ्जो आमर्दने" ॥ ८ ॥

[अर्थः] शत्रुओं को मर्दन करती हुई और विजय करती हुई इन देवसेनाओं के इन्द्र और बृहस्पति नेता बनें, तथा विष्णु दक्षिण की ओर चलें, सोम आगे चलें, और गणदेवता लोग सेना के अग्रभाग में जावें ॥ ८ ॥

इन्द्र॑स्य॒ ठवृष्णो॒ ठव॑रु॑णस्य॒ राज्ञ॑ ऽआ॑दि॒त्याना॑ं म॒रुता॒ꣳ शर्द्ध॑ ऽउ॒ग्रम् ।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वाना॒ं घोषो॑ दे॒वाना॒ं जय॑ता॒मुद॑स्थात् ॥ ९ ॥

इन्द्र॑स्य । ठवृ॑ष्णः । ठव॑रु॑णस्य । राज्ञ॑ः । आ॒दि॒त्याना॑म् । म॒रुता॑म् । शर्द्ध॑ः । उ॒ग्रम् ॥ म॒हाम॑न॒सामिति॑ म॒हा मन॑साम् । भु॒व॒न॒च्य॒वा॒नामिति॑ भुवन च्य॒वाना॑म् । घोष॑ः । दे॒वाना॑म् । जय॑ताम् । उत् । अ॒स्था॒त् ॥९॥

[अन्वयः] वृष्णः इन्द्रस्य राज्ञः वरुणस्य आदित्यानां मरुतां उग्रं शर्धः घोषः उदस्थात् महामनसां देवानां भुवनच्यवानां जयताम् ॥ ९ ॥

[विग्रहः] महत् मनो येषां ते महामनसः तेषां महामनसाम्। भुवनं—लोकं, च्यावयन्ति ते भुवनच्यवाः तेषां भुवनच्यवानाम् ॥ ९ ॥

[व्याख्या] वृष्णः=कामवर्षितुः, इन्द्रस्य, राज्ञः, वरुणस्य, आदित्यानाम्=द्वादशानाम्, मरुताम्=देवानाम्, उग्रम्=उत्कृष्टम्, शर्धः=बलम्, (भजतुरगरथपत्यात्मकसैन्यघोषो जितं जितामति शब्दश्च) घोषः=शब्दः, उदस्थात्=उत्थितः, महामनसाम्=अस्थिरचित्तानां, देवानां, भुवनच्यवानां=भुवनच्यावनसमर्थानां, जयताम्=विजयमानानाम् ॥ ९ ॥

[अर्थः] युद्ध में स्थिर मनवाले, लोकों को गिरा देने की सामर्थ्यवाले, विजय करते हुये, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, राजा इन्द्र की, वरुण की, आदित्य की, तथा मरुत् देवताओं की ओर से 'बड़ी सेनाओं को जीत लिया, जीत लिया' ऐसा शब्द उठा ॥ ९ ॥

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नां माम॒काना॒ं मना॑ᳫंसि ।
उद्वृ॑त्र॒हन्वा॒जिना॒ं वाजि॑ना॒न्युद्रथा॑ना॒ं जय॑तां ष॒न्तु घोषा॑ᳫ ॥१०॥

उत् । ह॒र्ष॒य॒ । म॒घ॒व॒न्निति॑ मघ वन् । आयु॑धानि । उत् । सत्वा॑नाम् ।
मा॒म॒काना॑म् । मना॑ᳫंसि ॥ उत् । ऽवृ॒त्र॒हन्निति॑ वृ त्रहन् । वाजि॑नाम् ।
वाजि॑नानि । उत् । रथा॑नाम् । जय॑ताम् । ष॒न्तु । घोषा॑ᳫ ॥ १० ॥

[अन्वयः] हेमघवन् आयुधानि उद्धर्षय मामकानां सत्त्वनाम् मनांसि उत् हेवृत्रहन् वाजिनां वाजिनानि उत् जयतां रथानां घोषाः उद्‌यन्तु ॥ १० ॥

[व्याख्याः] हेमघवन्=हेधनवन्निन्द्र, आयुधानि=शस्त्राणि, उद्धषय=उद्‌भूतहर्षाणि, (कुरु) मामकानाम्=मदीयानाम्, सत्वनाम्=प्राणिनाम्, मानांसि, उत, हेवृत्रहन्=हे वैरघातिन् इन्द्र, वाजिनाम्=अश्वानाम्, वाजिनानि=शीघ्रगमनानि, उत, हर्षय=हृष्टानि (कुरु) जयतां=विजयमानानां, रथानां, घोषाः=शब्दाः, उद्यन्तु=उद्गच्छन्तु, सशब्दाः प्रसरन्तु, ॥ १० ॥

[अर्थः] हे धनवाले इन्द्र ! शस्त्रों को हर्ष से युक्त करो, हमारे प्राणियों के मनों को भी प्रसन्न करो। और हे वैरिनाशक घोड़ों की शीघ्र गति को भी तीव्र करो, तथा विजयी रथ, शब्दों के साथ आगे बढ़ें ॥ १० ॥

अ॒स्माक॒मिन्द्रः॒ समृ॑तेषु ध्व॒जेष्व॒स्माकं॒ या ऽइष॑व॒स्ताज॑यन्तु ।
अ॒स्माकं॑ व्वी॒रा ऽउत्त॑रे भवन्त्व॒स्माँ२॥ उ॑ देवा ऽअवता॒ हवे॑षु ॥११॥

अ॒स्माक॑म् । इन्द्रः॑ । समृ॑ते॒ष्विति॒ सम् ऋ॑तेषु । ध्व॒जेषु॑ । अ॒स्माक॑म् । याः॑ । इष॑वः । ताः॑ । ज॒य॒न्तु ॥ अ॒स्माक॑म् । व्वी॒राः॑ ।

उत्तर ऽइत्युत्तरे । भवन्तु । अस्मान् । ॐ इत्यूँ । देवाः । अवत । हवेषु ॥ ११ ॥

[अन्वयः] ध्वजेषु संभृतेषु इन्द्रः अस्माकं या इषवः ताः जयन्तु अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु उ देवाः हवेषु अस्मान् अवत ॥ ११ ॥

[व्याख्या:] ध्वजेषु = शत्रुबलध्वजलोलीभूतेषु, संमृतेषु = (सृ गतौ) सङ्गतेषु, शत्रुध्वजैः संयुक्तेषु, (रक्षिता भवतु इति शेषः) इन्द्रः, अस्माकं, या = ये, इषवः = शराः, ताः, जयन्तु = परसैन्यानि घ्नन्तु, अस्माकं, वीराः = शूराः, उत्तरे = परकीयभटेभ्यः उत्कृष्टा भवन्तु, उ = अपि च, हे देवाः, हवेषु आह्वानेषु, सङ्ग्रामेष्वित्यर्थः । अस्मान्, अवत = रक्षत ॥११॥

[व्याकरणम्] "अन्येषामपि दृश्यते" इति दीर्घः ।

[अर्थः] शत्रुओं की पताकाओं से सम्मिलित हो जाने पर इन्द्र हम लोगों के रक्षक हों। तथा हमारे बाण शत्रुसेनाओं का विजय करें, हमारे वीर अच्छे हों, और हे देवगण ? युद्ध में हम लोगों की आप रक्षा करें ॥ ११ ॥

अमीषां चित्तम्प्रति लोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥

अमीषाम् । चित्तम् । प्रतिलोभयन्तीति प्रति लोभयन्ती । गृहाण ।
अङ्गानि । अप्वे । परा । इहि ॥ अभि प्र । इहि । निऽ । दह । हृत्स्विति
हृत्ऽसु । शोकैꣳ । अन्धेन । अमित्राꣳ । तमसा । सचन्ताम् ॥ १२ ॥

[अन्वयः] हे अप्वे अमीषां चित्तं प्रति लोभयन्ता अङ्गानि गृहाण परेहि अभिप्रेहि हृत्सु शोकैः निर्दह अमित्राः अन्धेन तमसा सचन्ताम् ॥ १२ ॥

[विग्रहः] अपवति अपगमयति सुखं प्राणाश्चेत्यत्वा ॥ १२ ॥

[व्याख्या] हेअप्वे = हेदेवते, अमीषां = शत्रूणां, चित्तं = चित्तानि, प्रतिलोभयन्ति = मोहयन्ती, अङ्गानि = शत्रुगात्राणि, गृहाण = स्वीकुरु; परेहि = परागच्छ, अभिप्रेहि = पुनरन्यान् रिपून् परेहि = गच्छ, हृत्सु हृदयेषु, शोकैः = शोकैर्धनपुत्रनाशादिनिमित्तैः, निर्दह = भस्मो कुरु, अमित्राः = शत्रवः, अन्धेन तमसा = गाढान्धकारेण, सचन्ताम् = सङ्गच्छन्ताम् ॥ १२ ॥

[व्याकरणम्] अप पूर्वा द्वातेरन्तर्भूतण्यर्थात् "अन्येन्योऽपि दृश्यते" इति ड प्रत्ययः । अपशब्दान्त्याकारलोपश्छान्दसः ततः टाप् । सङ्गच्छन्ताम् = "षच सम्बन्धे लोट् ॥ १२ ॥

[अर्थः] हे प्राणनाशिके ? इन शत्रुओंके चितको मोहित करती हुई इनके अङ्गोंके लेकर

लौट आवो और फिर भी उनके पास मारनेके लिये जाओ। उनके हृदय को शोकसे जलादो और हमारे घोर अन्धकारको प्राप्त हों ॥ १२ ॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते ।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां काञ्चनोच्छिषः ॥ १३ ॥

अवसृष्टेत्यव सृष्टा । परा । पत । शरव्ये । ब्रह्म सꣳशित ऽइति ब्रह्म सꣳ शिते ॥ गच्छ । अमित्रान् । प्र । पद्यस्व । मा । अमीषाम् । कम् । चन । उत् । शिषः ॥ १३ ॥

[अन्वयः] हे ब्रह्मशंशिते हे शरव्ये ! अवसृष्टा परापत अमित्रान् गच्छ प्रपद्यस्व अमीषां कंचन मा अच्छिषः ॥ १३ ॥

[व्याख्या] हे ब्रह्मशंसिते = ब्रह्मणाभिमन्त्रिते अभिमन्त्र्य अतितरां तीक्ष्णीकृते, हे शरव्ये। अवसृष्टा = अस्माभिर्मुक्ता, परापत = सहसापरसैन्ये प्रतिता, अमित्रान् = शत्रून्, गच्छ = प्राप्नुहि, प्रपद्यस्व = शत्रुशरीरेषु प्रविश, अमीषां = शत्रूणां, (मध्ये) कंचन = पुरुषं, मा उच्छिषः = अवशिष्टं मा कुरु सर्वान् अपि जहीत्यर्थः ॥ १३ ॥

[व्याकरणम्] "शिष्लृविशेषणे" पुषादिद्युताल्लृदितः परस्मैपदेषु" इत्यनेन च्लेरङ् ॥ १३ ॥

[अर्थः] हे तीक्ष्णशस्त्र ? तुम छूट कर शत्रुओं पर सहसा आक्रमण करो, और शत्रुओं को पाकर उनमें प्रविष्ट हो जावो, तथा इन शत्रुओं में से एक को भी मत छोड़ो ॥ १३ ॥

प्रेता॒ जय॑ता नर॒ ऽइन्द्रो॑ व॒ः शर्म॑ यच्छतु ।
उ॒ग्राव॑÷ सन्तु बा॒हवो॑नाधृ॒ष्या यथास॑थ ॥ १४ ॥

प्र । इ॒त॒ । जय॑त । न॒र॒ः । इन्द्र॑÷ । व॒ः । शर्म्म॑ । य॒च्छ॒तु॒ ॥
उ॒ग्रा॒ः । व॒ः । स॒न्तु॒ । बा॒हव॑÷ । अ॒ना॒ धृ॒ष्याः॑ । यथा॑ । अस॑थ ॥ १४ ॥

[अन्वयः] हे नरः ! प्रेत जयत इन्द्रः वः शर्म यच्छतु यथा अनाधृष्या असथ (तथा) वः बाहवः उग्राः सन्तु ॥ १४ ॥

[व्याख्याः] हे नरः = अस्मदीयायोद्धारः, प्रेत = परसैन्यं प्रति प्रकर्षेण गच्छत, जयत = विजयं प्राप्नुत, इन्द्रः, वः = युष्मभ्यं, शर्म = जयोत्थं सुखं, यच्छतु = ददातु, अनाधृष्या = केनाप्यतिरस्कार्या, असथ = भवथ, वः = युष्माकं, बाहवः = भुजदण्डा, उग्रा = उद्गूर्णायुधाः, सन्तु ॥ १४ ॥

[व्याकरणम्] "द्व्यचोऽतस्तिङः" इति प्रेतेत्यत्र दीर्घः। "अन्येषामपि दृश्यते" इति

जयतेत्यत्र दीर्घः । "दाण् दाने" "पाघ्राः" इत्यादिना यच्छादेशः । असथेत्यत्र "लेटोऽडाटौ" इत्यडागमः ॥ १४ ॥

[अर्थः] हे योद्धागण ! तुम लोग शत्रु सेना में जाओ, और विजय करो, इन्द्र तुम लोगों को सुख देवें, और तुम लोग जिस प्रकार तिरस्कार के अयोग्य हो सको, उसी प्रकार तुम्हारा बाहुबल बढ़े ॥ १४ ॥

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽओजसा स्पर्द्धमाना ।
तां गूहत तमसा पव्रतेन यथामी ऽअन्यो ऽअन्यन्न जानन् ॥१५॥

असौ । या । सेना । मरुतꣳ । परेषाम् । अभि । आ । एति । नꣳ । ओजसा । स्पर्द्धमाना ॥ ताम् । गूहत । तमसा । अपव्रतेनेत्यप व्रतेन । यथा । अमी ऽइत्यमी । अन्यः । अन्यम् । न । जानन् ॥ १५ ॥

[अन्वयः] हे मरुतः ! या असौ परेषां सेना नः अभि आ एति (कीदृशी) ओजसा स्पर्धमानाः तां तमसा गूहत यथा (कीदृशेन तमसा) अमी न अपव्रतेन येन अन्योन्यं न जानन् ॥१५॥

[विग्रहः] अपगतं व्रतं कर्म, यस्मात् तेन ॥ १५ ॥

[व्याख्याः] हेमरुतः, ! या = प्रसिद्धा असौ, परेषां = = शत्रूणां, सेना, नः = अस्मान्, अभि आ एति = अभ्यागच्छति, ओजसा = बलेन, स्पर्धमाना = स्पर्धां कुर्वाणा, तां = सेनां, तमसा = अन्धकारेण, गूहत = सम्वृतां करुत, यथा । अमी = सैनिकाः, अपव्रतेन = अपगतकर्मणा, [व्रतमिति कर्मनाम] येन = अमी, अन्योन्यं = परस्परं, न जानन् = न जानीयुः ॥ १५ ॥

[अर्थः] हे मरुद्गण ? जो यह शत्रुओं की सेना बल से स्पर्धा करती हुई हमारे सम्मुख आती है, उसे कर्म हीन कर देनेवाले अन्धकारसे तुम लोग ढँक दो। और ये सैनिक जिस प्रकार, एक दूसरे को न देख सके उसी तरह इन्हें ढँकना ॥ १५ ॥

यत्र॑ बा॒णाः॑ सं॒पत॑न्ति कुमा॒रा वि॑शि॒खा ऽइ॑व ।
तन्न॒ ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒राहि॑ति॒ः शर्म॑ यच्छतु वि॒श्वाहा॒ शर्म॑ यच्छतु ॥१६॥

यत्र॑ । बा॒णाः । सं॒पत॒न्तीति॑स॒म् पत॑न्ति । कुमा॒राः । वि॒शि॒खा ऽइ॒वेति॑ विशि॒खाः इ॑व ॥ तत् । न॒ः । इन्द्र॑ः । बृह॒स्पति॑ः । आदि॑ति॒ः । शर्म॑ । य॒च्छ॒तु । वि॒श्वाहा॑ । शर्म॑ । य॒च्छ॒तु ॥ १६ ॥

[अन्वयः] यत्र बाणाः संपतन्ति (कथमिव) कुमारा विशिखा इव । तत् इन्द्रः शर्म यच्छतु (कीदृश इन्द्रः) बृहस्पतिः अदितिः विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ १६ ॥

[विग्रहः] विगता शिखा येषां ते विशिखाः । बृहतां मन्त्राणां पतिः पालकः । नास्तिदितिः खण्डनं यस्य सः । विश्वान्=सर्वान् शत्रून् । आ समन्तात् हन्तीति विश्वाहा । [विश्वानि च तानि अहानि च विश्वाहा ॥ १६ ॥

[व्याख्या] यत्र=यस्मिन् युद्धे, बाणाः=इषवः, संपतन्ति=इतश्चेतश्च संभूय पतन्ति, कुमारा, विशिखा इव=शिखारहिता मुण्डितमुण्डा, विकीर्ण कवचा वा । अतिबालाश्चपलाः सन्तः यथा इतस्ततोगच्छन्ति तद्वत् । तत्=तत्र युद्धे, इन्द्रः, नः=अस्मभ्यम्, शर्म=विजयोत्थं सुखं, यच्छतु=ददातु, बृहस्पतिः=विजयोचितमन्त्रज्ञः, अदितिः=अखण्डितशक्तिः, विश्वाहा=आसमन्तात्शत्रून् हन्तीति, शर्म यच्छतु इति पुनरुक्ति आदरार्था । [यद्वा तत्र इन्द्रः बृहस्पतिः इन्द्रः अदितिः =इन्द्रमाता, च, विश्वाहा=सर्वाण्यहानि सर्वदा, शर्म यच्छतु] विश्वाहा—'विभक्तेराकारः' अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ॥ १६ ॥

[अर्थः] जिस युद्ध में मुण्डितबालकों के समान चञ्चल बाण हम पर अधिकरूप से गिरते हैं, उस युद्ध में, मन्त्रों के स्वामी अखण्डित शक्तिवाले शत्रुनाशकइन्द्र, हम लोगों को सुख दें ॥ १६ ॥

मर्मा॑णि ते॒ वर्म॑णाच्छादयामि॒ सोम॑स्त्वा॒ राजा॒मृते॒नानु॑ वस्ताम् ।
उ॒रोर्व्वरी॑यो॒ वरु॑णस्ते कृणोतु॒ जय॑न्तं॒ त्वानु॑ दे॒वा मद॑न्तु ॥ १७ ॥

मर्म्मा॑णि । ते॒ । वर्म्म॑णा । छा॒द॒या॒मि॒ । सोम॑ः । त्वा॒ । राजा॑ । अ॒मृते॑न । अनु॑ । व॒स्ता॒म् ॥ उ॒रोः । वरी॑यः । वरु॑णः । ते॒ । कृ॒णो॒तु॒ । जय॑न्तम् । त्वा॒ । अनु॑ । दे॒वाः । म॒द॒न्तु॒ ॥ १७ ॥

[अन्वयः] हे यजमान ते मर्माणि वर्मणा छादयामि राजा सोमः अमृतेन त्वा अनु वस्तां वरुणः ते उरोः वरीयः कृणोतु जयन्तं देवाः त्वा अनुमदन्तु ॥ १७ ॥

[विग्रहः] नास्ति मृतं मरणं येन तेन ॥ १७ ॥

[व्याख्याः] हे यजमान, ते = तव, मर्माणि = जीवस्थानानि, वर्मणा = कवचेन, छादयामि = आवृणोमि, राजा = विप्रादीनामधिपः, सोमः, अमृतेन = मरणनिवारकेण, त्वा = त्वाम्, अनुवस्ताम् = अन्वाच्छादयतु, "वस आच्छादने" अदादिः लोट् । वरुणः = वरुणसंज्ञकदेवः, ते, उरोः = पृथोः, वरीयः = उरुत्तरं प्रथीयः, जयन्तं = विजयं, प्राप्नुवन्तं वा । देवाः । त्वा, अनुमदन्तु = अनुकूला भूत्वा हृष्यन्तु, उत्साहयन्तु वा ॥ १७ ॥

[व्याकरणम्] “प्रस्थस्फ०” इत्यादिना उरोर्वरादेशः ।

[अर्थः] हे यजमान ! तुम्हारे मर्म स्थानों को कवच से ढँक रहा हूँ । राजा सोम मरण से रहित कवच से तुम्हें ढाकें, और वरुण तुम्हारे कवच को अत्यन्त अधिक बनावें । और देवता लोग विजय करते हुये तुमको और भी प्रोत्साहित करें ॥ १७ ॥

इति तृतीयोध्यायः समाप्तः ।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

वि॒ब्भ्राड्बृ॒हत्पि॑बतु सो॒म्म्यं मध्वा॑यु॒र्दध॑द्य॒ज्ञप॑ता॒वावि॑ह्रुतम् ।
व्वात॑जू॒तो षो अ॑भिरक्ष॑ति॒त्मना॑ प्र॒जाऽ पु॑पोष पु॒रु॒धा व्वि रा॑जति ॥१॥

व्वि॒ब्भ्राडिति॑वि॒ ब्भ्राट् । बृ॒हत् । पि॒ब॒तु । सो॒म्म्यम् । मधु॑ । आयु॑ः दध॑त् । ष॒ज्ञप॑ता॒विति॑ष॒ज्ञ प॑तौ । आवि॑ह्रु॒त मित्यवि ह्रुतम् ॥ व्वात॑जू॒तऽइति॒ वात॑ जूतऽ॑ । षऽ । अ॒भि॒रक्ष॒तीत्य॑भि॒ रक्ष॑ति । त्मना॑ । प्र॒जा ऽइति॑ प्र॒जाऽ । पु॒पो॒ष॒ । पु॒रु॒धा । व्वि॒रा॒ज॒ति॒ ॥ १ ॥

[अन्वयः] विभ्राट् सोम्यं पिबतु [कीदृशं सोम्यम्] बृहत् मधु यः त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा विराजति [कीदृशः] यज्ञपतौ अविह्रुतम् आयुः दधत् ॥ १ ॥

[विग्रहः] विविधं भ्राजते विभ्राट ॥ १ ॥

[व्याख्याः] विभ्राट्=सूयः, सोम्यम्=सोमरूपं हविः, पिबतु, [कीदृशं सोम्यम्] बृहत्=

महत्, मधु = मधुरस्वादम्, यः = सूर्यः, त्मना: = आत्मना, प्रजाः, पुपोष पुष्पाति, पुरुधा = बहुधा, विराजति = शोभते, यज्ञपतौ = यजमाने, अविह्रुतम् = अखण्डितम्, आयुः, दधत् = स्थापयन्, वातजूतः = वातेन प्रेरितः वातेन प्रेरितं रविमण्डलं भ्रमतीति प्रसिद्धिः ॥ १ ॥

[व्याकरणम्] त्मना—"मन्त्रेष्वाङ्याद्देरात्मनः" इत्याकारलोपः । "ह्वृकौटिल्ये" "ह्रु रेश्छन्दसि" इति सूत्रेण ह्रु आदेशः ॥ १ ॥

[कोष] प्रजास्यात्सन्ततौ जने । [आयुर्जीवितकालः] ॥ १ ॥

[अर्थः] वायु से प्रेरित यजमान में अखण्डित [सम्पूर्ण] आयु को स्थापन करता भया सूर्य मधुरस्वाद से युक्त सोमरूप हवि को पीवै। और जो सूर्य आत्मा से प्रजाओं की रक्षा करता है वह बहुत प्रकार से शोभित होता है ॥ १ ॥

उदु॒ त्यं जा॒तवे॑दसं दे॒वं व॑हन्ति के॒तव॑ः ।
दृ॒शे विश्वा॑य॒ सूर्य्यँम् ॥ २ ॥

उत् । ऊ ऽइत्यूँम् । त्यम् । जा॒तवे॑द॒समिति॑ जा॒त वे॑दसम् । दे॒वम् ।
व॒ह॒न्ति॒ । के॒तव॑ः । दृ॒शे । विश्वा॑य । सूर्य्यँम् ॥ २ ॥

[अन्वयः] केतवः त्यं सूर्यं देवम् उद्वहन्ति [किं भूतं सूर्यं] जातवेदसं विश्वाय दृशे ॥२॥

[विग्रह] जातं वेदो ज्ञानं धनं वा यस्मात् सः जातवेदसः तम् जातवेदसम् ॥ २ ॥

[व्याख्याः] केतवः = रश्मयः, त्यम् = तं सूर्यम्, देवम् = द्योतमानम्, उद्वहन्ति, [किं भूतं सूर्यं] जातवेदसं प्रसिद्धं वह्निम्, [किमर्थमुद्वहन्ति] विश्वाय, दृशे = दर्शनाय, जगत् द्रष्टुमित्यर्थः ॥२॥

[व्याकरणम्] "दृशे विख्ये च" इति तुमर्थे निपातः ॥ २ ॥

[कोषः] "अग्निर्वैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रो धनञ्जयः । कृपीटयोग्निर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात्" बर्हिशुष्माकृष्णवर्त्माशो" इत्यादि ॥ २ ॥

[अर्थः] रश्मियाँ उस जातवेदस द्योतमान सूर्य देवता को संसार के दर्शन के लिए उद्वहन करती हैं ॥ ३ ॥

षेना पावक चक्षंसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु । त्वं व्वरुण पश्यंसि ॥३॥

षेनं । पावक । चक्षंसा । भुरण्यन्तम् । जनान् । अनु । त्वम् । व्वरुण । पश्यंसि ॥ ३ ॥

[अन्वयः] हे पावक ! येन चक्षसा भुरण्यन्तम् अनु जनान् हे वरुण ! त्वं पश्यसि ॥ ३ ॥

[विग्रह] क्षिप्रपाती पक्षी भुरण्युः । भुरण्युमात्मानं करोति भुरण्यति भुरण्यतीति भुरण्यन् तम् भुरण्यन्तम् ॥ ३ ॥

[व्याख्या] हे पावक != हे शोधक !, येन, चक्षसा = दर्शनेन, भुरण्यन्तम् = सर्वमेधयाजिनं भुरण्युपक्षिरूपमात्मानं कृत्वा स्वर्गंच्छन्तम्, अनु, जनान्, हे वरुण != हेसूर्य, ! त्वं, पश्यसि = पश्य ॥ ३ ॥

[अर्थः] हे शोधक ! (पवित्र) ! हे सूर्य ! जिस चक्षु से सर्वमेध याजिको भुरण्यु पक्षिरूप आत्मा को धारण कर शीघ्र स्वर्ग में जाते हुए देखते हो उसी प्रकार प्राणियों [जगत] को देखो ॥३॥

दैव्व्यावध्वर्यू ऽआगतꣳ रथेन सूर्यत्वचा । मध्वा यज्ञꣳ समञ्जाथे ।
तम्प्रत्नथायं वेनश्चित्रं देवानाम् ॥ ४ ॥

दैव्व्यौ । अध्वर्यू ऽइत्यध्वर्यू । आ । गतम् । रथेन । सूर्यत्वचेतिसूर्य त्वचा ॥ मध्वा । यज्ञम् । सम् । अञ्जाथे ऽइत्यञ्जाथे ॥ ४ ॥

[अन्वयः] दैव्यौ अध्वर्यू रथेन आगतं सूर्यत्वचा यज्ञं समंजाथे । "तम्प्रत्नथा" "अयं वेनः" "चित्रं देवानाम्" प्रतीकोक्ताः तिस्रः ॥ ४ ॥

[विग्रहः] देवानाम् इमौ दैव्यौ । सूर्यस्येव त्वक् कान्तिः यस्य सः सूर्यत्वक् तेन सूर्यत्वचा ॥४॥

[व्याख्याः] दैव्यौ, अध्वर्यू = अध्वरस्य नेतारौ अश्विनौ, रथेन, आगतम् = आगच्छतम्, (कीदृशेन रथेन) सूर्यत्वचा, मध्वा = मधुरेण हविषा सोमपुरोडाशदध्यादिना, यज्ञम्, समञ्जाथे =

संभ्रक्षयतम्, बहूनि हवींषि कुरुत इत्यर्थः। “तम्प्रत्नथा” “अयंवेनः” “चित्रं देवानाम्” तिस्रः प्रतीकोक्ताः महीधराचार्यमिश्रेण ॥ ४ ॥

[व्याकरणम्] आगतम्—शपो लुक् ॥ ४ ॥

[कोषः] “याने चक्रिणि युद्धार्थे शताङ्गः स्यन्दनो रथः ॥ ४ ॥

[अर्थः] सूर्य के सदृश कान्तिवाले यज्ञ के नेता अश्विनीकुमार तुम दोनों रथ से आइये। (आकर) मधुर हवि सोमलता, पुरोडाश दध्यादि से यज्ञ का विस्तार करें। अर्थात् बहुत हविवाला यज्ञ करें ॥ ४ ॥

तम्प्र॒त्नथा॑ पू॒र्वथा॑ वि॒श्वथे॒मथा॑ ज्ये॒ष्ठता॑तिं ब्ब॒र्हि॒षद॑ꣳस्व॒र्विद॑म् ।
प्प्र॒ती॒ची॒नं व्वृ॒जनं॑न्दोहसे॒ धुनि॑मा॒शुं जय॑न्त॒मनु॒ यासु॒व्वर्ध॑से ॥५॥

तम् । प्र॒त्नथेति॑ प्र॒त्नथा॑ । पू॒र्वथेति॑ पू॒र्वथा॑ । वि॒श्वथेति॑ वि॒श्वथा॑ । इमथेती॒म था॑। ज्ये॒ष्ठता॑ति॒मिति॑ ज्ये॒ष्ठ ता॑तिम् । ब॒र्हि॒षद॑म् । ब॒र्हि॒सद॒मिति॑ ब॒र्हि॒ सद॑म् । स्व॒र्विद॒मिति॑ स्व॒ः । विद॑म् । प्र॒ती॒ची॒नम् । वृजन॑म् । दो॒ह॒से । धुनि॑म् । आ॒शुम् । अय॑न्तम् । अनु॑ । षासु॑ । वर्द्ध॑से ॥ ५ ॥

[अन्वयः] (हे इन्द्र !) यासु अनुवर्धसे घृजनं दोहसे प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथा इमथा तं ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदं प्रतीचोनं धुनिम् आशुं जयन्तम् ॥ ५ ॥

[विग्रहः] तननं तातिः विस्तारः ज्येष्ठा उत्कृष्टाताततिर्विस्तारो यस्य सः ज्येष्ठतातिः तम् ज्येष्ठतातिम् । यद्वा—प्रशस्तो ज्येष्ठो ज्येष्ठेषु प्रशस्यो वा ज्येष्ठतातिः तं ज्येष्ठतातिम् । यज्ञेषु बर्हिषि सीदतीति बर्हिषदः तम् बर्हिषदम् । स्वः द्युलोकं वेत्ति जानाति इति स्वर्वित् तम् स्वर्विदम् ॥ ५ ॥

[व्याख्या] (हे इन्द्र !) यासु = यज्ञक्रियासु, अनुवर्धसे = पुनःपुनः सोमपानेन वृद्धिं प्राप्नोषि, वृजनम् = बलं, दोहसे = क्षारयसि, ददासीत्यर्थः । प्रत्नथा = पुराणाः, पूर्वथा = विश्वेषामेव, ऋषीणां साध्यानामिव, विश्वथा = विश्वेषां सर्वेषां ऋषिपुत्राणाम्, इथमा = इदानीन्तनानां यजमानानामिव, तम् = त्वाम्, (किम्भूतं तं) ज्येष्ठतातिम् । बर्हिषदम्, स्वर्विदम्, प्रतीचीनम् = आत्मनोऽभिमुखम्, धुनिम् = कम्पितारम्, शत्रुणामितिशेषः । आशुम् = शीघ्रम्, जयन्तम् = जेतव्यानि वसूनि ॥५॥

[व्याकरणम्] प्रत्नथा—"प्रत्नपूर्व०" इत्यादिना थालप्रत्ययः । यद्वा—ज्येष्ठतातिम्—"वृकज्येष्ठाभ्याम्" इत्यादिना प्रशंसायां तातिलप्रत्ययः । धुनिम्—"धूञ् कम्पने" ॥ ५ ॥

[कोषः] द्रविणं तरः सहोबलशौ"र्याणि स्थामशुष्मं च" "शक्तिः पराक्रमः प्राणः" ॥ ५ ॥

यद्वा अस्याऋचोऽर्थान्तरम्—(हे इन्द्र ! यः त्वम्) प्रतीचीनं = प्रतिगमनमस्मत् प्रतिकूलम्, वृजनम् = वर्जनीयमालस्याश्रद्धादिकम्, दोहसे रिक्तीकरोषि विनाशयसि, "दूहप्रपूरणे" प्रतूरणं रिक्तीकरणमिति श्रीरस्वामी । यासु = क्रियासु, धुनिम् = स्वदनुग्रहाच्छत्रून्कम्पयन्तम्, आशुम् =

क्षिप्रकारिणम्, जयन्तम् = सम्यगनुष्ठानेन यजमानान्तराण्यति शयानमेनं यजमानम्, अनुसोमपानेन-स्तुत्या च यः त्वं, वर्धसे तासु क्रियासु तं = त्वाम्, स्तुम इति शेषः। [कथमिव] प्रत्नथा = प्रत्नाः पुरातना भृग्वादयः, पूर्वथा = पूर्वे पित्रादयः, इव विश्वथा = अतीताः सर्वे यजमाना इव, इमथा = इदानीन्तना वर्तमाना यजमाना इव, [कीदृशं त्वाम्] ज्येष्ठतातिम् = ज्येष्ठम्, बर्हिषदम् = यागे संनिहितत्वेन तिष्ठन्तम्, स्वर्विदम् = यजमानाय दातव्यम्, स्वर्गं वेत्ति इति स्वर्वित् तं स्वर्विदम्॥ ५॥

[अर्थः] हे इन्द्र! जो तुम, प्रतिकूलागमन आलस्य श्रद्धादिहीन विनाश करोगे, जिन क्रियाओं में तुम्हारे अनुग्रह से शत्रुओं को कपाते हुए शीघ्रकारी अच्छे अनुष्ठान से यजमानों के अन्तर इस यजमान के पीछे सोमपान से या स्तुति से तुम वर्धन करते हो उन क्रियाओं में तुम स्तुति करते हैं। [किसकी तरह] पुरातन भृगु आदि पूर्वपितर आदि की तरह, अतीत सब यजमानों की तरह, इदानीन्तन वर्तमान यजमानों की तरह [किसकी तरह] सर्वज्येष्ठ याग में सन्निहित स्थित होकर यजमान के दातव्य स्वर्ग को जानते हो॥ ५॥

अ॒यं वे॒नश्चो॑द॒य॒त्पृश्नि॑गर्भा॒ ज्योति॑र्जरायू॒ रज॑सो वि॒माने॑।
इ॒मम॒पाᳫंस॑ङ्ग॒मे सूर्य॑स्य॒ शिशु॒न्न विप्रा॑ म॒ति भी॑रिहन्ति॥६॥
अ॒यम्। वे॒नः। चो॒द॒य॒त्। पृश्नि॑ग॒र्भा ऽइति पृश्नि॑ऽगर्भाः।

ज्योति॑र्जरायु॒रिति॒ ज्योति॑÷ जरायुꣳ॑ । रज॑सꣳ । वि॒मान॒ऽइति॑ वि॒माने॑ ।
इ॒मम् । अ॒पाम् । स॒ङ्गम॒ऽइति॑ सम् ग॒मे । सूर्य॑स्य । शिशु॑म् । न । विप्राꣳ॑ ।
म॒तिभि॒रिति॑ म॒तिभि॑÷ । रि॒ह॒न्ति॒ ॥ ६ ॥

[अन्वयः] अयं वेनः रजसा विमाने पृश्निगर्भा चोदयत् ज्योतिः जरायुः । विप्राः इमं शिशुं न मतिभिः रिहन्ति सूर्यस्य अपां सङ्गमे ॥ ६ ॥

[समासः] ज्योतिर्विद्युल्लक्षणं जरायुवद्वेष्टनं यस्य स ज्योतिर्जरायुः ॥ ६ ॥

[व्याख्या] अयम्, वेनः = कान्तश्चन्द्रः, रजसः = उदकस्य, उदकं रज उच्यते । विमाने = निर्माणकाले ग्रीष्मान्ते प्राप्ते, पृश्निगर्भा = अपः, चोदयत् = चोदयति प्रेरयति वर्षतीत्यर्थः, पृश्निरादित्योद्युलोको वा गर्भोऽवस्थानं यांसा ताःद्युलोकस्था रविस्था वा अपो वर्षति । [किंभूतो वेनः] ज्योतिर्जरायुः, विप्राः = मेधाविनः ब्राह्मणाः, इमम् = सोमम्, शिशु न = बालमिव, मतिभिः = मतिपूर्वाभिर्वाग्भिः, रिहन्ति = स्तुवन्ति, [बालं यथा कश्चित् लालयति तद्वधं सोमं स्तोत्रशास्त्ररूपाभिर्वाग्भिः स्तुवन्ति] रिहतिरर्चनकर्मसु पठितः अर्चनं स्तवनमेव । [किंभूतमिमम् । सूर्यस्य, अपाम्, सङ्गमे,] यद्वायमर्थः = अपां, सूर्यस्य, सङ्गमे = निमित्ते उदकसूर्यसमागमनिमितं वृष्टिगर्भनिस्पत्यर्थं, विप्राः, इमम् = सोमम्, स्तुवन्ति यथा बालं कस्यचिद्वस्तुनो लाभाय यथा कश्चित् स्तौति ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] वेनः—'निनिकान्तौ' इत्यस्य रूपम् ॥ ६ ॥

[कोषः] 'वेनोवेनतेः' कान्तिकर्मणः इति यास्कः ॥ ६ ॥

[अर्थः] यह कान्तिवाला चन्द्रमा ग्रीष्मकाल में प्राप्त जल को वर्षाता है। ज्योतिजरायु [विद्युत् जरायु है वेष्टन जिसका] सूर्यदेव का जलके सङ्ग में मेधावी ब्राह्मण लोग सोम को बालक की तरह मतिपूर्वाभिवाग्भिर्हों स्तुति कर रहे हैं। [जैसे बालक को लालन करते हैं तद्वत् सोम को स्तोत्र ओर शस्त्ररूप वाणियों से स्तुति करते हैं] ॥ ६ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्म्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥७॥

चित्रम् । देवानाम् । उत । अगात् । अनीकम् । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः । आ । अप्राः । द्यावापृथिवी ऽइति द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् । सूर्य्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥७॥

[अन्वयः] सूर्यः चित्रं (यथा तथा) उदगात् [किंभूतः] सूर्यः देवानां अनेकं [तथा] मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः द्यावापृथिवी च अन्तरिक्षं [किं भूतः सूर्यः] जगतः तस्थुषः आत्मा ॥७॥

[विग्रहः] दीव्यन्ति द्योतन्ते इति देवाः किरणाः तेषां देवानाम् ॥ ७ ॥

[व्याख्या] सूर्यः, चित्रम् = आश्चर्यम्, [यथा तथा] उदगात् = उदयं प्राप्तः, उद्गच्छति वा । [उदयन्नेव स्व तेजसा नैशं तमो हन्ति अन्येषां ज्योतीष्यादत्त इत्याश्चर्यम् । [किं भूतः सूर्यः] देवानाम् = कारणानाम्, अनीकम् = मुखमाश्रय इत्यर्थः, यद्वानीकं समूहः । किरणपुञ्ज इत्यर्थः । [तथा] मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः, चक्षुः = नेत्रवत्प्रकाशक इत्यर्थः, द्यावापृथिवी = दिवं भूमिम्, च, अन्तरिक्षम्, आप्राः = आपूरितवान्, आपूरयति वा स्वतेजसेतिशेषः । [किं भूतः सूर्यः] जगतः = जङ्गमस्य, तस्थुषः = स्थावरस्य, आत्मा ॥ ७ ॥

[कोषः] विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमपि ॥ ७ ॥

[अर्थः] आश्चर्य है कि उदयको प्राप्त हुआ [ऊपर को जाता हुआ] सूर्य किरणों का मुख है । मित्र वरुण देवादियों के नेत्रवत्प्रकाश हुए । स्वर्गभूमि और अन्तरिक्ष इन तीनों को परिपूर्ण किया । और भी वह सूर्य जङ्गम और स्थावर की आत्मा है ॥ ७ ॥

आ न॒ ऽइडा॑भिर्व्वि॒दथे॑ सुश॒स्ति वि॒श्वान॑रꣳ सवि॒ता दे॒व ऽए॑तु ।
अपि॒ यथा॑ षुवानो॒ मत्स॑थानो॒ विश्श्व॒ञ्जग॑दभिपि॒त्वे म॑नी॒षा ॥ ८ ॥

आ । न॒ꣳ । इडा॑भिꣳ । वि॒दथे॑ । सु॒श॒स्तीति॑ सु॒ श॒स्ति । वि॒श्वा-

नरः॑ । स॒वि॒ता । दे॒वः॑ । ए॒तु । अपि॑ । यथा॑ । यु॒वा॒नः॑ । मत्स॑थ । न॒ः । विश्व॑म् । जग॑त् । अ॒भि॒पि॒त्व ऽइत्य॑भि पि॒त्वे । म॒नी॒षा ॥ ८ ॥

[अन्वयः] विश्वानरः सविता न विदथे आ एतु हे युवानः अपि अभिपित्वे यथा मत्सथ न विश्वं जगत् मनीषा ॥ ८ ॥

[व्याख्याः] विश्वानरः = विश्वानरहितकारो, सविता = देवः, नः = अस्माकम्, विदथे = यज्ञगृहे, आ एतु = आगच्छतु इडाभिः = सुशक्ति यथा स्यात् तथा इडा भक्षणेन शोभना शक्तिः शंसनं प्रशंसा यस्यां क्रियायां तथा । सर्वे इडां भक्षयन्ति तथा एतु इत्यर्थः । हे युवानः = हे जरारहितदेवाः, अपि = निश्चितम्, अभिपित्वे = अभिपतने आगमनकाले, यथा = येन प्रकारेण, मत्सथ = यूयं तृप्यथ, (तथा) नः = अस्माकम्, विश्वम् = सर्वम्, जगत् = गन्तृजङ्गमं पुत्रगवादिकम्, मनीषा = मनीषया बुद्धया मत्सथ तर्पयत (अन्भूतण्यर्थः) यथा भवद्भि स्तृप्तिः क्रियते तथाऽस्मत्प्रजास्तर्पणीया इत्यर्थः ॥८॥

[व्याकरणम्] 'मदतृप्तौ'॥ ८ ॥

[कोषः] बुद्धिर्मनोषाधिषणा धीः प्रज्ञा सेमुषी मतिः । भानु हंसिः सहस्रांशुस्तपन सवितारविः ॥ ८ ॥

[अर्थः] जगतके हितैषी देव ! इडाभक्षण से सुन्दर प्रशंसा करते हुए इस यज्ञ गृह में आ जावै । (अर्थात् सर्वइडा भक्षण कर तब आवे) हे जरा रहित देवतागण ! आगमन काल में

निश्चित जिस प्रकार तुमलोग तृप्त हो, उसी प्रकार हम लोगों को सम्पूर्ण गमनशील पुत्रगवादि बुद्धि से तृप्त करें। अर्थात् जिस प्रकार आप लोग तृप्त रहते हैं, उसी प्रकार हमारे प्रजाओं को तृप्त करें) ॥ ८ ॥

यदुद्य कच्च॑ व्वृत्रहन्नु॒दगा॑ऽअ॒भिसूर्य॑ । सर्व्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ व्वशे॑ ॥९॥

यत् । अ॒द्य । कत् । च॒ । वृ॒त्र॒ह॒न्निति॑ वृत्र हन् । उ॒द॒गा॒ऽइत्यु॒त् अगाः॑ । अ॒भि । सूर्य॒ । सर्व॑म् । तत् । इन्द्र॒ । ते॒ । व्वशे॑ ॥ ९ ॥

[अन्वयः] हे वृत्रहन् ! हे इन्द्र ! अद्य यत् कच्च [त्वम्] अभि उदगा सर्वं हे वशे ॥ ९ ॥

[विग्रहः] वृत्रं अन्धकारं शार्वरं हन्ति इति वृत्रहा तत्सम्बुद्धौ हे वृत्रहन् ॥ ९ ॥

[व्याख्या] हे वृत्रहन् = हे सूर्य, हे इन्द्र = हे ऐश्वर्ययुक्त, अद्य, यत् = यत्र, कच्च = कुत्र चित्, (त्वम्) अभि उदगा = उभ्युदेषि, (तत्) सर्वम्, ते = तव, वशे = अस्तीति शेषः ॥ ९ ॥

[कोषः] "वृत्रो मेघे रिपौ ध्वान्ते दानवे वासवे गिरौ। इन्द्रो मरुत्वान् मघवा बिडौजाः पाकशासनः ॥ ९ ॥

[अर्थः] अन्धकार के नाशक ऐश्वर्य युक्त हे सूर्य ! आज किसी भी (प्रदेश) जगह तुम उदय होते हो वह सब तुम्हारे ही वशीभूत (अधिकार में) हैं ॥ ९ ॥

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य ।
विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ १० ॥

त॒रणिः॑ । वि॒श्वद॑र्शत॒ ऽइति॑ वि॒श्व द॑र्शतः ॥ ज्यो॒ति॒ः कृदिति॑ ज्योतिः कृत् । अ॒सि॒ । सू॒र्य॒ । विश्व॑म् । आ । भा॒सि॒ । रो॒च॒नम् ॥१०॥

[अन्वयः] हे सूर्य [त्वम्] ज्योतिष्कृत् असि विश्वं भासि रोचनं तरणिः विश्वदर्शतः ॥१०॥

[विग्रहः] तरति-अतिक्रामति नभोवर्त्म तरणिः ॥१०॥

[व्याख्याः] हे सूर्य [त्वम्] ज्योतिष्कृत्=तेजसः कर्ता असि, विश्वम् भासि=प्रकाशयसि, अग्नि-विद्युत्-नक्षत्र-चन्द्र-ग्रह-तारकादिषु त्वदीयं तेज इत्यर्थः । [कीदृशं विश्वम्] रोचनम्=दीप्यमानम्, [पुनः कीदृशस्त्वम्] तरणिः, विश्वदर्शतः=विश्वस्य दर्शनीयः ॥ १० ॥

[व्याकरणम्] तरणिः—“अश्यवितृभ्योऽनि” इति उणादिसूत्रेण तातेः अनिप्रत्ययः ॥१०॥

[कोषः] द्युमणिस्तरणिर्मित्रश्चित्रभानुर्विरोचनः ॥ १० ॥

[अर्थः] हे सूर्य ! तुम अपने तेज से संसार को प्रकाश करनेवाले हो । (अर्थात् अग्नि में, बिजली में, नक्षत्रो में, चन्द्र में, ग्रहों में, ताराओं में तुम्हारा तेज है) कैसे तुम हो । देदीप्यमान हो । पुनः कैसे हो, आकाशमार्ग में चलनेवाले और सम्पूर्ण संसार के दर्शक हो ॥ १० ॥

तत्सूर्य॑स्य दे॒व॒त्वन्तन्म॑हि॒त्वं म॒ध्या कर्त्तो॒र्व्वित॑त॒ꣳ सञ्ज॑भार ।
य॒देदयु॑क्त ह॒रित॑÷ स॒धस्ता॒दाद्रात्री॒ व्वास॑स्तनुते सि॒मस्मै॑ ॥११॥

तत् । सूर्य॑स्य । दे॒व॒त्वमिति॑ दे॒व॒ऽत्वम् । तत् । म॒हि॒त्वमिति॑ महि॒ऽत्वम् । म॒ध्या । कर्त्तो॑ऽ व्वित॑त॒मिति॒वि त॑तम् । सम् । ज॒भा॒र॒ । य॒दा । इत् । अयु॑क्त । ह॒रित॑÷ । स॒धस्था॒ दिति॑ स॒ध स्था॑त् । आत् । रात्री॑ । व्वास॑÷ । त॒नु॒ते॒ । सि॒मस्मै॑ ॥ ११ ॥

[अन्वयः] सूर्यस्य तत् देवत्वं महित्वं तत् कर्तो मध्या विततं सञ्जभार । यथा इत् एव हरितः सधस्थात् आत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते ॥ ११ ॥

[विग्रहः] सह तिष्ठन्ति अंशवो यत्र तत् सधस्थः व्योममण्डलम् , तस्मात् सधस्थात् ॥ ११ ॥

[व्याख्याः] सूर्यस्य = देवस्य आदित्यस्य, देवत्वम् , महित्वम् = महाभाग्यमैश्वर्यम् , तत्, कर्तो = कर्मणः कायश्रेष्ठस्य जगद्रूपस्य, मध्या = मध्ये, विततम् = विस्तारितमंशुजालम् , सञ्जभार = सञ्जहार, [नहि अन्य एतादृशमंशुजालं प्रसारयितुं संहर्तुं वा शक्नोतीत्यर्थः] । यदा, इत् = एव,

हरितः=हरितवर्णान् रश्मीन्, सधस्थात्, 'सन्ध्याकाले पीतवर्णान् अंशून् यदा व्योममण्डलात्स्वस्मिन्योजयति । आत् अनन्तरमेव, रात्री=निशा, सिमस्मै, सर्वस्मै, वासः=सर्वं वस्तु तमसाच्छादयतीत्यर्थः । तनुते=विस्तारयति ॥ ११ ॥

[व्याकरणम्] कर्तो—"ईश्वरे तोसुन्कसुनौ" इति करोतेस्तोसुन् प्रत्ययः । "सध मादस्थयोश्छन्दसि" इति सहस्य सधमदेशः ॥ ११ ॥

[अर्थः] आदित्य सूर्य का देवत्व और महाभाग ऐश्वर्य है जो कार्यश्रेष्ठ जगत के मध्य में विस्तारित अंशुजाल को संहार किया । जो ही हरितवर्ण के रश्मीयों को व्योममण्डल से अनन्तर रात्री (अन्धकार रूप वस्त्र) सब वस्तुओं का आच्छादन कर विस्तार करतो है ॥ ११ ॥

तन्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्याभि॒चक्षे॒ सूर्यो॑ रू॒पं कृ॑णुते॒ द्योरु॒पस्थे॑ ।
अ॒न॒न्तम॒न्यद्रुश॑दस्य॒ पाजः॑ कृ॒ष्णम॒न्यद्ध॒रित॒ः सम्भ॑रन्ति ॥ १२ ॥

तत् । मि॒त्रस्य॑ । वरु॑णस्य । अ॒भि॒चक्ष॒ ऽइत्य॑भि॒ चक्षे॑ । सूर्यः॑ । रू॒पम् । कृ॒णु॒ते॒ । द्योः॑ । उ॒पस्थ॒ ऽइत्यु॒प स्थे॑ । अ॒न॒न्तम् । अ॒न्यत् । रुश॑त् । अ॒स्य॒ । पाजः॑ । कृ॒ष्णम् । अ॒न्यत् । ह॒रितः॑ । सम् । भ॒रन्ति॒ ॥ १२ ॥

[अन्वयः] सूर्यः द्योः उपस्थे मित्रस्य वरुणस्य तत् रूपं कृणुते अभिचक्षे। अस्य अन्यत् पाजः अनन्तं रुशत् अन्यत् कृष्णं हरितः संभरन्ति ॥ १२ ॥

[विग्रहः] रोचते इति रुशत् ।

[व्याख्या] सूर्यः, द्योः = द्युलोकस्य, उपस्थे = उत्सङ्गे, मित्रस्य, वरुणस्य [च] तत्, रूपम्, कृणुते = कुरुते ये न रूपेण जनान् अभिचक्षे = अभिचष्टे पश्यति [मित्ररूपेण सुकृतिनो अनुगृह्णाति, वरुणरूपेण दुष्कृतिनोऽगृह्णाति] अस्य = सूर्यस्य, अन्यत् = एकम्, पाजः = रूपम्, अनन्तम् = कालतोदेशश्चापरिच्छेद्यम्, रुशत् = शुक्लं दीप्यमानं विज्ञानघनानन्दं ब्रह्मैव, अन्यत्, कृष्णम् = द्वैतलक्षणं रूपम्, हरितः = दिशः इन्द्रियवृत्तयो वा, संभरन्ति = धारयन्ति। [इन्द्रियग्राह्यं द्वैतरूपमेकम्। एकं शुद्धं चैतन्यमद्वैतमिति द्वे रूपे सूर्यस्य सगुणनिर्गुणं ब्रह्मसूर्य एवेत्यर्थः] ॥ १२ ॥

[व्याकरणम्] "रुश हिंसायाम्" रुच्यर्थे वर्तमानादस्मात् लटः शतरि "रुशत्" इति रूपम् ॥ १२ ॥

[कोषः] द्यौःदिवौ द्वे स्त्रियामभ्रं व्योमपुष्करमम्बरम् ॥ १२ ॥

[अर्थः] सूर्य द्युलोक के उत्सङ्ग (गोदी) में मित्रदेव और वरुणदेव के रूप को करता है, जिसरूप से प्राणिमात्रों को देखता है। (अर्थात् मित्रता भाव से सुकृतिजनों पर अनुग्रह करते हैं, वरुण दृष्टि से दुष्टों पर निग्रह करते हैं) सूर्य का एकरूप काल और देश से अपरिद्ध शुक्ल दीप्यमान विज्ञान घनानन्द ब्रह्म ही है, दूसरा कृष्णवर्ण द्वैतलक्षाण रूप है जिससे दिश या इन्द्रिय वृत्ति को

धारण करती हैं। (अर्थात् इन्द्रियग्राह्य द्वैतरूप एक, द्वितीय शुद्धचैतन्य अद्वैत, ये दो रूप सूर्य के सगुण निर्गुण ब्रह्म सूर्य ही है) ॥ १२ ॥

बण्म॒हाँ२। ऽअ॑सि सूर्य॒ बडा॑दित्य म॒हाँ२। ऽअ॑सि ।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्य ते॒द्धा दे॑व म॒हाँ२। ऽअ॑सि ॥१३॥

बट् । म॒हान् । अ॒सि॒ । सू॒र्य॒ । बट् । आ॒दि॒त्य॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ । म॒हः । ते॒ । स॒तः । म॒हि॒मा । प॒न॒स्य॒ते॒ । अ॒द्धा । दे॒व॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ ॥ १३ ॥

[अन्वयः] हे सूर्य ! बट् महान् असि हे आदित्य ! बट महान् असि महः सतः ते महिमा पनस्यते हे देव ! अद्धा महान् असि ॥ १३ ॥

[विग्रहः] सुवति प्रेरयति कार्येषु जगदिति सूर्यः तत्सम्बुद्धौ हे सूर्य ! आदत्ते अंशून् इति आदित्यः तत्संबुद्धौ-हे आदित्य ! ॥ १३ ॥

[व्याख्याः] हे सूर्य ! बट् = सत्यम्, महान् = श्रेष्ठः, असि = भवसि, हे आदित्य, बट् = सत्यम्, महान् = श्रेष्ठः, असि = भवसि, महः = महतः, सतः = नित्यस्य, ते = तव, महिमा =

महाभाग्यम्, पनस्यते = लोकैः स्तूयते, हे देव ! हे दीप्यमान, अद्धा = सत्यम्, [त्वम्] महान् = श्रेष्ठः, असि = भवसि । ["अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्त" इति पुनरुक्तिरादरार्थाः] ॥ १३ ॥

[व्याकरणम्] सूर्यः—"राजसूयसूर्य०" इत्यादिनाक्यबन्तो निपातः ॥ १३ ॥

[अर्थः] हे सूर्य ! सत्य ही तुम श्रेष्ठ हो, हे आदित्य ! सत्य ही तुम श्रेष्ठ हो, बड़े होने से नित्य ही तुम्हारा महाभाग्य लोकों से (सांसारिकजनों से) स्तुति की जाती है। हे दीप्यमान सत्य ही तुम श्रेष्ठ हो ॥ १३ ॥

बट्सू॑र्य॒ इश्र॑वसा म॒हा२। ऽअ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हा२। ऽअ॑सि।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्य॑÷ पु॒रोहि॑तो वि॒भुज्ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ १४ ॥

बट् । सू॒र्य॒ । श्र॑वसा । म॒हान् । अ॒सि॒ । स॒त्रा । दे॒व॒ । म॒हान् । अ॒सि॒ । म॒न्हा । दे॒वाना॑म् । अ॒सु॒र्य॑÷ । पु॒रोहि॑त॒ ऽइति॑ पु॒रः॒ऽहि॑त॒ । वि॒भ्विति॑वि॒भु । ज्योति॑÷ । अदा॑भ्यम् ॥ १४ ॥

[अन्वयः] हे सूर्य ! बट् श्रवसा महान् असि हे देव ! सत्रा महान् असि देवानां मह्ना असुर्यः पुरः हितः विभुः ॥ १४ ॥

[विग्रहः] असवः प्राणाः येषां सन्ति ते असुराः तेभ्योहितः असुर्यः ॥ १४ ॥

[व्याख्याः] हे सूर्य ! बट्=सत्यम्, श्रवसा=धनेन यशसा वा, महान्=श्रेष्ठः, असि=भवसि, हे देव !, सत्रा=सत्यम्, महान्, असि, देवानाम्=देवानां मध्ये, मह्ना=महत्वेन, (श्रेष्ठोऽसि) असुर्यः=पुरः=अग्रे, हितः=स्थापितः, सर्वकार्येषु पुरः पूज्यः। सर्वदेवानां सूर्यार्घदानानन्तरमेव पूजाधिकारात्। विभुः=व्यापकम्, अदाभ्यम्=अनुपहिंस्यम्, ज्योतिः=तेजः, त्वमेव तेजोरूप इत्यर्थः ॥ १४ ॥

[अर्थः] हे सूर्य ! सत्य ही धन या यश से आप श्रेष्ठ हो। हे देव ! सत्य ही देवताओं के मध्य में महत्व से श्रेष्ठ हो। और असुरों के मारनेवाले आप सब कार्यों में प्रथम पूजनीय हैं। (अर्थात् सूर्य अर्घ देने के बाद ही सब देवताओं को पूजा में अधिकार है, अतः आप प्रथम पूजनीय हैं) आप विभु अनुपहिंस्य ओर तेजोरूप हैं ॥ १४ ॥

आ॒यन्त॑ ऽइव॒ सूर्य॒ं व्विश्वेदिन्द्र॑स्य भक्षत ।
व्वसू॑नि जा॒ते जन॑मान॒ ऽओज॑सा॒ प्रति॑ भा॒गन्न दी॑धिम ॥१५॥

आ॒यन्त॑ ऽइवेति॒ आ॒यन्तः॑ इव । सूर्य॑म् । विश्वा॑ । इत् । इन्द्र॑स्य ।

भक्षत ॥ वसूनि । जाते । जनमाने । ओजसा । प्रति । भागम् । न । दीधिम ॥ १५ ॥

[अन्वयः] सूर्यं श्रायन्त इव इन्द्रस्य विश्वा इत् वसूनि भक्षत जाते जनमाने ओजसा प्रतिदीधिम भागं न ॥ १५ ॥

[विग्रहः] श्रयन्त इति श्रायन्तः ॥ १५ ॥

[व्याख्याः] सूर्यम्, श्रायन्त = सूर्यरश्मयः, इव = एव, इन्द्रस्य, विश्वा = विश्वानि, सर्वाणि, इत् = इव, वसूनि = धनानि, पुत्रपौत्रादीनीत्यर्थः। वृष्टिधान्यनिष्पायादीनि, भक्षत आजन्म भजन्ते, विभजन्ते, [प्राणिभ्यो विभज्य ददातीत्यर्थः। सूर्यकिरणाइन्द्रदत्तां वृष्टिं भूमौ विभजन्तीत्यर्थः]। जाते = पुत्रे, जनमाने = उत्पद्यमाने, ओजसा = तेजसा, प्रतिदीधिम = धारयामः, स्थापयेत्यर्थः। [किमिव] भागम् = भागमिव, [यथा स्वभागं पुत्रादिषु धारयामस्तथेत्यर्थः] न = उपमानार्थः।

[व्याकरणम्] 'श्रिञ् सेवायाम्" अतः शतरि शपि गुणे प्राप्ते व्यत्ययेन वृद्धिः। "भज भागसेवयोः" अस्य लुङि तङि प्रथमबहुवचने रूपम्। अडभावः आर्षः "आत्मनेपदेष्वनतः" इति झस्योदशः। "धि धृतौ" लङ् व्यत्ययेन शपः श्लुः द्वित्वम् सुजादित्वादभ्यासदीर्घः ॥ १५ ॥

[कोषः] "वसूतोये धने मणौ" इति विश्वः। द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसू। हिरण्यं द्रविणं द्युम्नमरथरैविभवाऽअपि ॥१५॥

[अर्थः] सूर्य की रश्मियाँ ही इन्द्र की सब धन पुत्र पौत्र वृष्टि धान्यादि का विभाग करती हैं। [अर्थात् प्राणिमात्र को सूर्य की किरणें इन्द्रप्रदत्त वृष्टि को विभाग कर देती हैं] और पुत्र के उत्पद्यमान होने पर तेज से स्थापन करती है। [किसकी तरह] भाग की तरह अर्थात् जैसे अपने भाग को पुत्रादियों में धारण किया ॥ १५ ॥

अ॒द्या दे॑वा॒ ऽउदि॑ता॒ सूर्य॑स्य॒ निरꣳहसः॑ पिपृ॒ता निर॑व॒द्यात् ।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी ऽउ॒तद्यौः ॥१६॥

अ॒द्या । दे॒वाः॑ । उदि॒तेत्युत् इ॑ता । सूर्य॑स्य । निः । अꣳहसः॑ । पि॒पृत । निः । अ॒व॒द्यात् । तत् । न॒ः॑ । मि॒त्रः । वरु॑णः॑ । मा॒म॒हन्ता॒म् । म॒म॒ह॒न्ता॒मिति॑ ममहन्ताम् । अदि॑तिः॑ । सिन्धु॑ः । पृ॒थि॒वी । उ॒त । द्यौः ॥ १६ ॥

[अन्वयः] हे देवाः ! नः हसः निः पिपृत अवद्यात् अद्य सूर्यस्य उदिता तत् नः मा मामहन्तां मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी द्यौः ॥ १६ ॥

[विग्रहः] दीव्यन्ति, दीप्यन्ते इति देवाः रश्मयः तत्सम्बुद्धौ हेदेवाः ! ॥ १६ ॥

[व्याख्याः] हे देवाः !, नः = अस्मान् , हसः = पापात्, निःपिपृत = निर्मुञ्चत, अवद्यात् = दुर्यशसोऽपि, (अस्माकं पापानि दुर्यशांसि च नाशयतेत्यर्थ) अद्य अस्मिन् दिने, सूर्यस्य, उदिता = उदये उदिते, (अद्य सूर्योदये अस्मान् शुद्धान् कुरुतेत्यर्थः) तत्, मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः = समुद्रः नदो वा पृथिवी, द्यौः = स्वर्गः ॥१६॥

[व्याकरणम्] अद्येत्यत्र "द्व्यचोऽनस्तिङः" निपातस्य च" इति दीर्घः ॥१६॥

[कोषः] उदन्वानुदधिः सिन्धुः पारावारः शरित् पतिः ॥ १६ ॥

[अर्थः] सूर्य के उदय होने पर हे रश्मिसमूहस्थित देवताओं ! हमलोगों को पाप और दुर्यश से मुक्त करो। अर्थात् सूर्योदय में हमलोगों को शुद्ध करो। इस कारण मित्र वरुण—अदिति सिन्धु (समुद्र, नदी) द्यौ (स्वर्ग) हम लोगों के वचन की पूजा करें, अर्थात् अङ्गीकार करे ॥ १६ ॥

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च ।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो षा॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥ १७ ॥

आ । कृ॒ष्णेन॑ । रज॑सा । वर्त्त॑मानः । नि॒वे॒शय॒न्निति॑ नि वे॒शय॑न् ।
अ॒मृत॑म् । मर्त्य॑म् । च॒ । हि॒र॒ण्यये॑न । स॒वि॒ता रथे॑न । आ । दे॒वः । षा॒ति॒ । भुव॑नानि । पश्य॑न् ॥ १७ ॥

[अन्वयः] सविता देव हिरण्ययेन रथेन आयाति कृष्णेन रजसा आवर्त्तमानः अमृतं मर्त्यं निवेशयन् भुवनानि पश्यन् ॥ १७ ॥

[व्याख्याः] सविता, देवः, हिरण्ययेन = हिरण्मयेन, रथेन, आयाति = आगच्छति, कृष्णेन, रजसा = रात्रिलक्षणेन, आवर्त्तमानः = पुनर्भ्रमणं कुर्वन्, अमृतम् = देवादिकम्, मर्त्यम् = मनुष्यादिकम्, निवेशन् = स्वस्वप्रदेशेषु स्थापयन्, भुवनानि, पश्यन् ॥ १७ ॥

[कोषः] 'स्यात्कोषश्च हिरण्यश्च हेमरूप्यं कृताकृते । स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेमहाटकम्' । 'लोकस्तु भुवने जने' ॥ १७ ॥

[अर्थः] रात्रिलक्षण से पुनः भ्रमण करता हुआ देवादिक और मनुष्यादिकों को स्वस्व प्रदेश में स्थापन करता हुआ और भुवनों को देखता हुआ सविता देव हिरण्मयरथ से आता है ॥१७॥

इति चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नम॑स्ते रुद्र म॒न्न्यव॑ ऽउ॒तोत॒ ऽइष॑वे॒ नम॑ः ।
बा॒हुब्भ्या॑मु॒त ते॒ नम॑ः ॥ १ ॥

---

(१) शिवषोडशोपचारपूजा—शिवरहस्ये० अं० २२ श्लो० १३ से ५७ । पृ० ७ २४-२५,

ततो मूर्ध्नि ललाटे च कण्ठे कर्णौ च वक्षसि ।
नाभावंसे बाहुमूले प्रकोष्ठे मणिबन्धके ।
बाहुपार्श्वे पृष्ठदेशे नेत्रयोर्गण्डमण्डले ।
कुर्यात्प्रयत्नतः सम्यक् त्रिपुण्डं भस्मना तथा ॥

रुद्राक्षधारणं कार्यं यथाविधि ततः क्रमात् । शिवरहस्ये—पूर्वा० अं० ५ पृ० ५७६ ।

शिवरहस्ये—पूर्वा० अ० १० ।

शिवपूजार्थमालस्यं यः करिष्यति मूढधीः ।
स विहाय क्षीरमुष्णं मूत्रं पिवति सर्वदा ॥

शि० पू० अं० ११ श्लो० ३६ ।

शिवपूजाकृता येन तत्पापानि बहून्यपि ।
क्षणेनैव विनश्यन्ति वन्हिगाः शलभा इव ॥
(शि० अ० २५ पृ० ७७४)

सायङ्कालमारभ्य बिल्वपत्रैः सदाशिवम् ।
अरुणोदयपर्यन्तं पूजयामास भाग्यवान् ॥
(शि० अं० २४ पृ० ७५७)

"शिवार्चनं तपो योगो दानं धर्मः शिवार्चनम् ।
शिवार्चनं दमः शान्तिः स्नानं सन्ध्या शिवार्चनम् ॥
शिवार्चनं कृतं येन तपस्तेन कृतं सदा ।
योगाभ्यासः कृतस्तेन कृतं येन शिवार्चनम् ॥
शिवार्चनं कृतं येन धर्मस्तेन कृतं सदा ।
शिवार्चनं कृतं येन यागास्तेन कृताः सदा ॥
(शिव० अं० २४ पृ० ७५६)

सूतके शिवपूजनविचारः—

शावाशौचेऽपि कर्तव्यं विनास्पर्शं शिवाचनम् ।
जन्माशौचेप्येवमेव कर्तव्यं शङ्करार्चनम् ॥

शिवलिङ्गस्पर्शमात्रं न कार्यं सूतकद्वयोः ।
दूरे स्थित्वा यथायोग्यं पूजाकार्यैव शङ्करे ॥
दशाहे समतीते तु कृत्वा स्नानं यथा विधि ।
शिवलिङ्गार्चनं कार्यं द्विजस्त्रीभिर्द्विजैरिव ॥
कार्यं रजस्वला स्त्रीभिः मानसं शिवपूजनम् ।
स्नात्वा शिवार्चनं कार्यं चतुर्थेन्हि यथा पूर्वं शिवार्चनम् ॥
शि० अ० २५ पृ० ७७६ ।

शिवपूजने प्रदक्षिणा विचारः—

एकविंशति कर्त्तव्याः प्रणामाः पार्वतीपते ।
एकादशाथ वा अष्टौ वा नातोन्यूना कदाचन ॥
प्रातः शिवार्चनं कृत्वा दश कार्याः प्रदक्षिणाः ।
मध्याह्ने तु द्वादशैका दश सायाह्नि सादरम् ॥
शि० अं० २६ पृ० ७८५ ।

शिवपूजने दिक् विचारः-

उत्तराभिमुखैः कार्यं श्रीमहादेवपूजनम् ।
प्राङ्मुखेनाथवा कार्यं श्रीमहादेवपूजनम् ॥
पश्चिमाभिमुखैर्वापि कर्त्तव्यं शिवपूजनम् ।

नम॑÷ । ते॒ । रु॒द्र । म॒न्न्यवे॑ । उ॒तो ऽइत्यु॒तो । ते॒ । इष॑वे । नम॑ः ॥
बा॒हुभ्या॒मिति॑ बा॒हुऽभ्या॑म् । उ॒त । ते॒ । नै३म॑÷ ॥ १ ॥

दक्षिणाभिमुखैर्मर्त्यैं न कर्तव्यं शिवार्चनन् ॥
शि० अं० २६ पृ० ७८५ ।

शि० अं० १८ पृ० ८२२ ।

पद्भ्यां प्रदक्षिणाः कार्याः सावधानं शिवालये ।
हस्ताभ्यामति यत्नेन कर्तव्यं शङ्करार्चनम् ॥
प्रणामाः स्वशरीरेण कर्त्तव्याः पार्वती प्रभोः ।
श्रोत्राभ्यामति यत्नेन श्रोतव्या शाङ्कराः कथा ।
नेत्राभ्यामति यत्नेन द्रष्टव्यः पूजितः शिवः। घ्राणे नयनमलं बिल्वपत्रं शिवार्चनम् ।
जिह्वया श्रीमहादेवः कीर्तनीयः प्रयत्नतः ॥

(२) मद्यं पीत्वापि यो नित्यं श्रीरुद्रमनु वर्त्तयन् ।
स मद्यपानपापेन न लिप्तो भवति ध्रुवम् ।

कृत्वापि ब्रह्महत्या यः श्रीरुद्रमनुवर्त्तयेत् ।
स ब्रह्महत्यापापेन न लिप्तो भवति ध्रुवम् ।
गुरुदारांश्च यो गत्वा श्रीरुद्रमनुवर्त्तयेत् ।
कृत्वा सुवर्णस्तेयं च यो रुद्रमनुवर्तयेत् ।
स तेन पातकेनापि न लिप्तो भवति ध्रुवम् ।
कृत्वापि मातृगमनं श्रीरुद्रमनुवर्त्तयेत् ।
कृत्वापि पुत्रीगमनं श्रीरुद्रमनुवर्त्तयेत् ।
कृत्वापि शूद्रीगमनं यो रुद्रमनु वर्त्तयेत् ।
कृत्वापि राज्ञीगमनं योरुद्रमनु वर्त्तयेत् ।
हत्वापि पितरं यस्तु यो रुद्रमनु वर्त्तयेन् ।
गुरुं हत्वापि यो रुद्रमनु वर्त्तयेत् ।
कृत्वापि विप्रगोहत्यां यो रुद्रमनुवर्त्तयेन् ।
स तेन पातकेनापि न लिप्तो भवति ध्रुवम् ।
स्त्री हत्यापि कृत्वा यः न लिप्तो भवति ध्रुवम् ।
कृत्वाप्यन्यानि पापानि न लिप्तो भवति ध्रुवम् ॥ इति ।

(३) रुद्राध्यायजपं काश्यां यः परार्थं करिष्यति ।
स वेदराशिपूर्णोऽपि पिशाचो भवति ध्रुवम् ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! ते मन्यवे नमः उत ते इषवे नमः । बाहुभ्यां नमः ॥ १ ॥

[विग्रहः] रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः । (यद्वा "रुगतौ" ये गत्यर्थास्ते ज्ञानार्थाः) रवणं रुत् ज्ञानं राति ददाति रुद्रः, भावे क्विप् तुगागमः । यद्वा—पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयति रुद्रः ॥१॥

[व्याख्या] हे रुद्र ! ते=तव, मन्यवे=क्रोधाय, नमः=नमस्कारोस्तु, उत=अपि, ते=तव, इषवे=बाणाय, नमः=नमस्कारोस्तु, बाहुभ्याम्=हस्ताभ्याम्, नमः=नमस्कारोस्तु, [तवक्रोधबाणहस्ता अस्मदरिष्वेव प्रसरन्तु नामास्त्वित्यर्थः]॥ १ ॥

अल्पस्याप्यत्र धर्मस्य विक्रेता सर्वथा द्विज ।
भविष्यति न संदेहः पिशाचः पर्वताकृतिः ॥
अनन्तफलदं धर्मं रुद्राध्याय जपार्जितम् ।
कः प्रयच्छति मूढात्मा परस्मै धनलोभतः ॥
शरीरमपि देयं स्यात् कदाचित् धनलोभतः ।
फलं न देयमन्यस्मै रुद्राध्याय जपार्जितम् ॥
श्रीरुद्रजपमन्यार्थं करोति च धनेच्छया ।
स पतत्येव नरके यावदाचन्द्रतारकम् ॥
न ग्राह्यं तत् धनं विप्रैः प्राणैः कण्ठ तैरपि । वरमेव सुरापानं वरं गोमांसभक्षणम् ।
वरं तुलादानधनं न रुद्राध्याय जाप्यजम् । (अं० १० पृ० १० ८६)

[कोषः] कलम्ब मार्गणशरापत्रीरोषइषुर्द्वयोः ॥ १ ॥
[अर्थः] हे रुद्र ! आपके क्रोध, बाण तथा बाहु को नमस्कार है ॥१॥

याँ तेँ रुद्रशि॒वा त॒नूरघो॒रा पा॑पकाशिनी ।
तया॑ नस्त॒न्वा४ शन्त॑मया॒ गिरि॑शन्ता॒भिचा॑कशीहि ॥ २ ॥

---

(४) नमस्ते प्रथमो मन्त्रो द्वितीयो यात इत्यथ ।
याते रुद्रेति विद्यास्या यामिषुं गिरिशं तथा ॥
शिवेन वचसात्वेति ह्यध्यवोचदथापरा ॥ २ ॥
असौयस्ताम्र इत्यस्य तथाऽसौ योवसर्पति ।
नमो अस्त्विति मन्त्रो यः प्रमुञ्चेति परो मुनिः ॥ ३ ॥
अवतत्येति मन्त्रोऽन्यो विज्यंधनुरथापरः ।
याते हेतिस्तथा विद्यान्नमस्तेस्त्वा तथा परः ॥ ४ ॥
परिते धन्वन इति नमो हिरन्यबाहवे ।
नमो वृक्षेभ्य इत्यन्यो नम सष्पिञ्जराय च ॥ ५ ॥
नमो बभ्रुशायेति नमो हरिकेशाय इत्यथ ।
नमो भवस्य हेत्यै सा नमो रुद्राय मन्त्रकः ॥ ६ ॥

नमः सूताय विद्यान्या नमो रोहितायत्यथ ।
सा नमो मन्त्रिणे विद्यान्नमो भुवमथापरा ॥ ७ ॥
नम ऊच्चैस्तथा विद्यात् नमः कृत्स्नेत्यथापरा ।
सा नमः सहमानाय ककुभाय च तथा परम् ॥ ८ ॥
नमो निषङ्गिणे विद्यात् नमो वंचत इत्यथ ।
नमो निचेरवे विद्यात् नमः स्तृकायिभ्यः इत्यथ ॥ ९ ॥
नमो सिमद्भ्यो इत्यन्या नमः उष्णिषिणे तथा ।
नम इषुमद्भ्य इत्यन्या नम आतन्वानेत्यथ ॥१०॥
नमो आयच्छद्भ्यो इत्यन्या नमो स्यद्भ्यो परो मनुः ।
नमः आसीन इत्यन्या नमः स्वपद्भ्य इत्यथ ॥ ११ ॥

नमस्तिष्ठद्भ्यो इत्यन्या नम समाभ्य इत्यथ ।
नमः अश्वेभ्यः इत्यन्या नम आव्याधिनी तथा ।
नम उगणाभ्य इत्यन्या नमोगृत्सेभ्य इत्यथ ।
नमो व्रातेभ्य इत्यन्या नमो गणेभ्य इत्यथ ।
नमो विरूप इत्यन्यो नमो महद्भ्यः इत्यथ ॥
नमो रथिभ्य इत्यन्यो नमो रथेभ्य इत्यथ ।

नमः सेनाभ्यः इत्यन्यो नमः क्षतृभ्यः इत्यथ ।
नमस्तक्षद्भ्यो इत्यन्यो नमः कुलालेभ्यः तथा ।
नमः पुञ्जिष्ठेभ्यः इत्यन्यः नमः इष्त्रभिधि मनुः ।
नमो भृगयु मन्त्रोन्ये नमोश्वभ्यः परोमनुः ।
नमो भवायेत्य परो नमः शर्वाय इत्यथ ।
नमो नीलेति मन्त्रोऽन्यो नमः कपर्दिने त्यथ ॥

नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वनेति चापरः ।
नमो गिरिशाय च शिपिविष्ठाय चान्यो मनुः ।
नमो मीढुष्टमायेते नमो ह्रस्वाय चेत्यथ ।
नमो बृहत इत्यन्यो नमो वृद्धाय चेत्यथ ।
नमो अग्र्याय चेत्यन्यो नमः आत्रावेत्यथा परः ।
नमः शीघ्राय मन्त्रोन्यो नमः ऊर्म्या चेत्यथ ।
नमो स्रोतस्येति नमो ज्येष्ठाय चेत्यथ ॥
नमः पूर्वजाय चा पराजय चेत्यन्यो नमः ।
नमो मध्यमाय चापगल्भाय परो मनुः ।
नमो जघन्याय इति नमः स्रोभ्याय चेत्यथ ।

नमो याम्याय चेत्यन्यो नमः उर्वर्याय इत्यथ।
नमः श्लोकाय चेत्यन्यो नमो वन्याय चेत्यथ।
नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय चेत्यपरो मनुः।
नमो आशुषेणाय चापरो मन्त्रः द्विजोत्तमाः।
नमः शूराय चेत्यन्यो नमः वर्मिण इत्यथ।
नमो बिल्मिन इत्यन्यो नमः श्रुताय चेत्यथ।
नमो दुन्दुभ्यः हनन्याय चेत्यन्यो मनुः।
नमो धृष्णव इत्यन्यो नमः सूताय चेत्यथ।
नमो निषङ्गिणे षुधिमते चेत्यन्यो। नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधि चेत्यपरो मनु :।
नमः स्वायुधाय च सुधन्वने चेत्यपरो मनुः।
नमः स्रुत्याय चेत्यन्यो नमः काप्याय चेत्यथ।
नमः काप्याय चेत्यन्यो नीप्याय वैशन्ताय तथापरः।
नमः कूप्याय चावप्याय नमः आवरायेत्यथ।
नमः वर्ष्याय चेत्यन्यो अवर्ष्याय चेत्यथ।
नमः मेध्याय चेत्यन्यो विद्युत्याय तथापरः।
ईध्राय इत्यन्य आतप्यो इतरो मनु।

नमो वात्याय चेत्यन्यो नमो वास्त्विविवथापरः।
नमः सोमाय मन्त्रोन्य नमस्ताम्राय चेत्यथ।
नमो सङ्गाय च मन्त्रोऽन्यो नमः उग्राय चेत्यथ।
नमो भऽग्रेवधायेति मन्त्रोऽन्यः हन्त्रेत्यतथापरः।
नमः शिवायेति मन्त्रोन्यः सर्वमन्त्रे शिखामणिः।
तथा शिवतरश्चेति मन्त्रो अन्यः यः शिवबोधकृत्।
नमस्तीर्थाय चाप्यन्यो नमः पार्याय चेत्यथ।
नमः प्रतरणाय चेति नमो चोत्तरणे तथा।
नमः आतन्वको मन्त्रः नमः शष्याय चेत्यथ।
नमः सिकत्याय चेत्यन्यो नमः इरण्याय चेत्यथ।
नमः प्रपस्थायेत्यन्यो नमः पा॑ सत्यो मनुः।
नमोरजस्य इत्यन्यो शुष्कोऽथ हरितोमनुः।
नमः लोप्याय चेत्यन्यो नमो लप्येत्यतथा परः।
नमः ऊर्वर्य इत्यन्यो नमो इषुरवे मनुः।
नमः आखिदतेचेति नमोवः किरिको मनुः।
नमो देवादि हृदयं नमो वीक्षीपाकं परम्।

या । ते॒ । रु॒द्र॒ । शि॒वा । त॒नूः । अघो॑रा । अपा॑पकाशि॒नीत्यपा॑प

नमो विचिन्वतकेभ्य नमः आनिर्हतेः परम् ।
द्रापे अन्धइत्यन्यो यातेरुद्र शिवेत्यथ ।
इमारुद्राय विधान्या मृडानोरुद्र मन्त्रकः ।
मानो महान्तमित्यन्यो मानस्तोके मनुस्तवः ।
परिनोरुद्र इत्यन्यो मीढुष्टमथपरः ।
विकिरेदिति मन्त्रोन्यो सहस्त्राणि सहस्रधा ।
सहस्राणि सहेत्यन्यो अस्मिन्नित्य परो मनुः ।
नीलग्रीवाय इत्यन्यो नीलातन्वा इतीरितः ।
ये वृक्षेषु मन्त्रोऽन्यो ये भूतानामथापरः ।
ये अन्नेषु इत्यन्यो येपथां पथि मन्त्रकः ।
ये तीर्थाणि मन्त्रोन्यो यएतावन्तमित्यथ ।
नमरुद्रेभ्यः इत्यन्य तंवोजंभेति च त्रिभिः ।

(शि० र० उत्र० अं० १०; पृ० १० ५१)

काशिनी ॥ तया॑ । न॒ः । त॒न्वा॑ । शन्त॑म॒येति॒शम् तम॑या । गिरि॑श॒न्तेति॒गिरि॑ शन्त । अ॒भि । चा॒क॒शी॒हि ॥ २ ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! या ते तनूः हेगिरिशन्त ! तया तन्वा न अभिचाकशीहि शिवा अघोरा अपापकाशिनी [किदृश्या तन्वा] शन्तमया ॥ २ ॥

[विग्रहः] गिरौ पर्वते कैलाशख्ये अवस्थितः शं सुखं प्राणिनां तनोति विस्तारयति गिरिशन्तः । गिरि वाचि स्थितः शं तनोतीति वा, गिरौ मेघे स्थितो वृष्टिद्वारेण शं तनोतीति वा, गिरौ शते गिरिशः । अमति गच्छति जानातीत्यन्तः सर्वज्ञः । गिरिशश्चासावन्तश्च गिरिशन्तस्मत्सम्बुद्धौ हेगिरिशन्त । पापमसुखं काशयति प्रकाशयति पापकाशिनी न पापकाशिनी अपापकाशिनी ॥ २ ॥

[व्याख्या] हेरुद्र, या, ते = तव, तनूः = शरीरम्, हे गिरिशन्त, तया, तन्वा, न = अस्मान्, अभिचाकशीहि = अभिपश्य, [कीदृशी तनू] शिवा = शान्ता मङ्गलरूपा (अतः) अघोरा = अविषमा सौम्या, [अत एव] अपापकाशिनी = या पुण्यमेव ददाति न पापफलमित्यर्थः, [कीदृश्या तन्वा] शन्तमया = सुखतमया ॥ २ ॥

[व्याकरणम्] "अमगतौ भजने शब्दे कर्मरि क्तः" । शकन्ध्वादित्वात्पररूपम् ॥ २ ॥

[कोषः] कायो देहः क्लिबः पुंसोः स्त्रियां भूतिस्तनुस्तनूः ।

[अर्थः] हे रुद्र ! आपका जो सौम्य, शान्त तथा पुण्य के फल को देनेवाला शरीर है। हे शिव ! कल्याणकारी उस शरीर से हम सबों को देखा करें ॥ २ ॥

षामिषुं॑ङ्गिरिशन्त॒ हस्ते॑ ब्बिभ॒र्ष्य॑स्त॑वे ।
शि॒वाङ्गि॑रित्र॒ ताङ्कु॑रु॒ मा हिं॑ढः सी॒ꣳ पुरु॑ष॒ं जग॑त् ॥ ३ ॥

षाम् । इषु॑म् । गि॒रि॒श॒न्तेति॑गिरि शन्त । हस्ते॑ । बि॒भर्षि॑ । अस्त॑वे ॥
शि॒वाम् । गि॒रि॒त्रेति॑गिरि त्र । ताम् । कु॒रु॒ । मा हि॒ढः सी॒ꣳ । पुरु॑षम् । जग॑त् ॥ ३ ॥

[अन्वयः] हेगिरिशन्त ! या इषुं हस्ते बिभर्षि अस्तवे हेगिरित्र ! शिवां पुरुषं जगत् मा हिंसीः ॥ ३ ॥

[विग्रहः] गिरौ पर्वतेऽवस्थितः कैलासाख्ये सुखं तनोतीति गिरिशन्तः तस्य सम्बोधनं हेगिरिशन्त ! गिरौ कैलासे स्थितो भूतानि त्रायत इति गिरित्रः तत्सम्बुद्धौ हे गिरित्र ! ॥ ३ ॥

[व्याख्याः] हेगिरिशन्त ! याम्, इषुम् = बाणम्, हस्ते = करे, बिभर्षि = धारयसि, [किं कर्त्तुम्] अस्तवे = असितुं शत्रून् क्षेप्तुमित्यर्थः, शिवाम् = कल्याणकारिणीम्, पुरुषम् = पुत्रपौत्रादिकम्, जगत् = जङ्गममन्यदपि गवाश्वादिकम्, माहिंसीः = मावधीः ॥ ३ ॥

[व्याकरणम्] "असुक्षेपणे" तुमर्थे तवेप्रत्ययः ॥ ३ ॥

[अर्थः] हे शिवजी ! आप शत्रुओं को मारने के लिए जिस बाण को हाथ में धारण करते हैं। उसे हम सबों के लिए शान्त बनाइये। और हमारे भृत्य तथा पशु आदि की हिंसा न करें ॥ ३ ॥

शि॒वेन॒ व्वच॑सा त्वा॒ गिरि॒शाच्छा॑व्वदामसि ।
यथा॑ न॒ꣳ सर्व्व॒मि॒ज्जग॑द्य॒क्ष्मꣳ सु॒मना॒ ऽअस॑त् ॥ ४ ॥

शि॒वेन॑ व्वच॑सा । त्वा॒ । गिरि॒शेति॒गिरि श । अच्छ॑ । व्व॒दा॒म॒सि॒ ॥
यथा॑ । नꣳ । सर्व्व॑म् । इत् । जग॑त् । अ॒य॒क्ष्मम् । सु॒मना॒ ऽइतिसु॒
मना॑ꣳ अस॑त् ॥ ४ ॥

[अन्वयः] गिरिश ! शिवेन वचसा त्वा वयं वदामसि न सर्वम् इत् जगत् यथा अयक्ष्मं सुमना असत् ॥ ४ ॥

[विग्रहः] गिरौ कैलाशे शेते गिरिशः त तस्माबुद्धौ हेगिरिश ! ॥ ४ ॥

[व्याख्याः] हे गिरिश !, शिवेन, कल्याणरूपेण, (मङ्गलरूपेणेत्यर्थः) वचसा = मङ्गलेन स्तुतिरूपेण वचनेन, त्वा = त्वाम्, अच्छ = प्राप्तुम्, वदामसि = वदामः प्रार्थयामहे, न = अस्माकम्,

सर्वमित्=सर्वमेव, जगत्=जङ्गमम्, यथा=येनप्रकारेण, अयक्ष्मम्=नीरोगम्, क्षयरोगरहितमित्यर्थः। सुमनाः=शोभनमनस्कम्, असत्=भवति तथा कुरु इति शेषः॥ ४॥

[व्याकरणम्] संहितायां "निपातस्य च" इति दीर्घः। "ईदन्तो मसि"। सुमनः शब्दे पुंस्त्वमार्षं जगद्विशेषणत्वात्। असदित्यत्र "लेटोऽडाटौ" इत्यट् इलोपः॥ ४॥

[अर्थः] हे शिव! हम सब सुन्दर शब्दों से आपकी स्तुति करते हैं। हमारे सम्बन्धी सभी जीवों को नीरोग तथा प्रसन्न बनाइये॥ ४॥

अध्य॑वोचदधिव॒क्ता प्र॑थ॒मो दैव्यो॑ भि॒षक्।
अहीँ॑श्च॒ सर्वा॑ञ्ज॒म्भय॒न्त्सर्वा॑श्च षातुधा॒न्यो॑ऽध॒राचीः॒ परा॑सुव॥५॥

अधि॑। अ॒वो॒च॒त्। अ॒धि॒व॒क्तेत्य॑धि व॒क्ता। प्र॒थ॒मः। दैव्यः॑। भि॒षक्॥ अही॑न्। च॒। सर्वा॑न्। ज॒म्भय॑न्। सर्वाः॑। च॒। षा॒तु॒धा॒न्य॑ऽइति॑ षा॒तु॒ धा॒न्यः॑ अ॒ध॒राचीः॑। परा॑। सु॒व॥ ५॥

[अन्वयः] अध्यवोचत् अधिवक्ता प्रथमः दैव्यः भिषक् सर्वाः यातुधान्यः च परासुव सर्वान् अहीन् जम्भयन् अधराचीः च॥ ५॥

[विग्रहः] अधरे अधोदेशे अञ्चतीति ता अधराच्यः ताः अधराचीः ॥ ५ ॥

[व्याख्याः] अध्यवोचत्=अधिवक्तु सर्वाधिकं वदतु, अधिवक्ता=अधिकवदनशीलः, प्रथमः=सर्वेषां मुख्यः पूज्यत्वात्, दैव्यः=देवेभ्योहितः, भिषक्=रोगनाशको वैद्यः [स्मरणेनैव रोगनाशाद्भिषक्त्वमित्यर्थः [एवं परोक्षमुक्त्वा प्रत्यक्षमाह] सर्वाः, यातुधान्यः=यातुधानीः राक्षसीः, च, परासुव=पराक्षिप अस्मभ्यो दुरीकुरु, सर्वान्=सर्वप्रकारान्, सम्पूर्णान् इत्यर्थः, अहीन्=व्याघ्रादीन्, जम्भयन्=विनाशयन्, [कीदृशीर्यातुधान्यः] अधराचीः अधोऽधोगमनशीलाः, सर्पनाशराक्षसीक्षेपौ सदैव कुर्वित्यर्थः च ॥ ५ ॥

[कोषः] भिषक् वैद्यो चिकित्सके ॥ ५ ॥

[अर्थः] वाक्कुशल शिवजी अपने आशिर्वादों से मुझे सबसे अधिक (गुणी, धनी तथा मानी) बनावे। और राक्षसों तथा राक्षसियों को नष्ट कर नीचा दिखावें ॥ ५ ॥

अ॒सौ षस्ता॒म्रो ऽअ॑रु॒ण ऽउ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गल॑ः ।
षे चै॑ नꣳ रु॒द्रा ऽअ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षा॒ꣳ हेड॑ ऽईमहे ॥६॥

अ॒सौ । षः । ता॒म्रः । अ॒रु॒णः । उ॒त । ब॒भ्रुः । सु॒म॒ङ्ग॒लऽइति॑ सु

म॒ङ्ग॒ल॑÷ ॥ ये । च॒ । ए॒न॒म् । रु॒द्राः । अ॒भित॑÷ । दि॒क्षु ॥ श्रि॒ताः । स॒ह॒स्र॒-
श ऽइति॑ सहस्र॒ शाः । अव॑ । ए॒षा॒म् । हेड॑÷ । ई॒म॒हे॒ ॥ ६ ॥

[अन्वयः] यः असौ च रुद्राः एनं अभितः दिक्षु श्रिताः एषां हेडः ताम्रः अरुणः उतापि च बभ्रुः सुमङ्गलः ॥ ६ ॥

[विग्रह] शोभनानि मङ्गलानि यस्य स सुमङ्गलः ॥ ६ ॥

[व्याख्याः] यः, असौ = प्रत्यक्षो रुद्रो रविरूपः, च = पुनरर्थे एनम्, अभितः दिक्षु = प्राच्यादिक्षु, श्रिताः = किरणरूपेण सहस्रशोऽसङ्ख्याः, एषाम्, हेडः = क्रोधमस्मदपराधम्, ईमहे = निवारयामः भक्त्या निराकुर्मः। हेड इति क्रोधनाम। [कीदृशोऽसौ] ताम्रः = उदयेत्यन्तं रक्तः, अरुणः = रक्तोऽस्तकाले, उतापि च, बभ्रुः = अन्यदा पिङ्गलवर्णः, सुमङ्गलः = मङ्गलरूपः ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] "अभिसर्वतसोः" इति द्वितीया ॥ ६ ॥

[कोषः] दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः ॥ ६ ॥

[अर्थः] ताम्र तथा रक्तवर्ण सुन्दर मङ्गल को करने वाले आदित्यरूप जो रुद्र हैं, और जिनके चारो ओर फैली हुई जों असंख्य किरणे हैं, हमलोग उपरोक्त दोनों के क्रोध की बन्दना करते हैं ॥ ६ ॥

अ॒सौ षो॑व॒सर्प॑ति॒ नील॑ग्रीवो॒ विलो॑हितः ।
उ॒तैनं॑ गो॒पा ऽअ॑दृश्र॒न्नदृ॑श्रन्नुदहा॒र्य॑ः स दृ॒ष्टो मृ॑डयाति नः ॥७॥

अ॒सौ । षः । अ॒व॒ स॒र्प्प॒तीत्य॑व॒ सर्प्प॑ति । नील॑ग्रीव॒ ऽइति॒ नील॑ ग्रीवः । विलो॑हित॒ ऽइति॒ वि लो॑हितः । उ॒त । ए॒न॒म् । गो॒पाः । अ॒दृ॒श्रन् । अदृ॑श्रन् । उ॒द॒हा॒र्य्य॑ ऽइत्यु॑द हा॒र्य्य॑ः । सः । दृ॒ष्टः । मृ॒ड॒या॒ति॒ । न॒ः ॥ ७ ॥

[अन्वयः] यः असौ अवसर्पति एनं गोपाः अदृश्रन् उदहार्यः नीलग्रीवः उत विलोहितः सः दृष्टः स नः मृडयाति ॥ ७ ॥

[विग्रहः] उदकं हरन्ति ता उदहार्यः । नीला ग्रीवा कण्ठो यस्य स नीलग्रीवः ॥ ७ ॥

[व्याख्या] यः असौ=आदित्यरूपः, अवसर्पति=उदयास्तमयौ कुर्वन्निरन्तरं गच्छति, एनम्, गोपाः=गोपालाः अपि वेदोक्त संस्कारहीनाः, अदृश्रन्=पश्यन्ति, उदहार्यः=जलहारिण्यो योषित अपि आगोपालाङ्गनादिप्रसिद्ध इत्यर्थः । (कीदृशः) नीलग्रीवः=नीलकण्ठः, अस्तसमये

नीलकण्ठ इव लक्ष्यः, विलोहितः=विशेषेण रक्तः, सः=रुद्रः, नः=अस्मान्, मृडयाति=सुखयतु। (असौ मण्डलवर्त्ती रुद्र एव तपतीति ज्ञातः सुखं करोत्वित्यर्थः) ॥ ७ ॥

[व्याकरणम्] "मन्थौदनः" इत्यादिना उदकस्योदादेशः। दृशेर्लुङि "इरितो वा" इति च्लेरङ् रुगागमश्छान्दसः ॥ ७ ॥

[अर्थः] नीलग्रीव तथा रक्तवर्ण सूर्यदेव जो प्रतिदिन आकाशमार्ग से गमन करते हैं और जिनको देखकर गोप आदि भी बन्दना करते हैं। वे सूर्यदेव अपने दर्शन से हम सबों को सुखी बनावें ॥ ७ ॥

नमो॑ऽस्तु॒ नील॑ग्रीवाय सहस्त्रा॒क्षाय॑ मी॒ढषे॑ ।
अथो॒ षे अ॑स्य॒ सत्त्वा॑नो॒ हन्तेभ्यो॑ कर॒न्नम॑÷ ॥ ८ ॥

नम॑÷ । अ॒स्तु॒ । नील॑ग्रीवा॒येति॒ नील॑ऽग्रीवाय । स॒ह॒स्रा॒क्षायेति॑ सहस्त्र अ॒क्षाय॑ । मी॒ढुषे॑ ॥ अथो॒ ऽइत्यथो॑ । षे । अ॒स्य॒ । सत्त्वा॑नꣳ । अ॒हम् । तेभ्य॑÷ । अ॒क॒र॒म् । नम॑÷ ॥ ८ ॥

[अन्वयः] नीलग्रीवाय = नमः अस्तु (कीदृशाय) सहस्राक्षाय मीढुषे अथो अस्य ये सत्वानः तेभ्यः अहं नमः अकरम् ॥ ८ ॥

[विग्रहः] सहस्रमक्षीणि यस्य । मिमेहेति मीश्वन् तस्मै मीढुषे ॥ ८ ॥

[व्याख्या] नीलग्रीवाय = नीलकण्ठाय, नमः = नमस्कारः, अस्तु = भवतु । (कीदृशाय) सहस्राक्षाय = इन्द्रस्वरूपिणे, मीढषे = वृष्टिकर्त्रे पर्जन्यरूपाय, [तरुणाय वा] अथो = अपि, अस्य = रुद्रस्य । ये, सत्वानः = प्राणिनो भृत्याः, तेभ्यः, अहम्, नमः = नमस्कारः, अकरम् = करोमि ॥ ८ ॥

[व्याकरणम्] "मिह सेचने" 'दाश्वान्साह्वन्मीढ्वाँश्च' इति क्वसन्तो निपातः । 'कृञ् कृतौ' शप् लङि उत्तमैकवचनम् ॥ ८ ॥

[अर्थः] मैं नीलकण्ठ सहस्राक्ष तथा सीचनेवाले मेघरूप रुद्रको नमस्कार करता हूँ । और उनके जो सत्त्व (जीव) हैं उनको भी नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

प्रमु॑ञ्च॒ धन्व॑न॒स्त्वमु॒भयो॒रार्त्न्यो॒र्ज्याम् ।
याश्च॑ ते॒ हस्त॒ ऽइष॑व॒ꣳ परा॒ ता भ॑गवो वप ॥ ९ ॥

प्र॒ । मु॒ञ्च॒ । धन्व॑नꣳ । त्वम् । उ॒भयो॑ꣳ । आर्त्न्यो॑ꣳ । ज्याम् ॥

याः । च । ते । हस्ते॑ । इष॑वः । परा॑ । ताः । भग॑व ऽइति॑ भग॑ऽवः ।
वप ॥ ९ ॥

[अन्वयः] भगवः धन्वनः उभयोः आर्त्न्योः ज्याम् त्वं प्रमुञ्च याः च ते हस्ते इषवः ता परावप ॥ ९ ॥

[विग्रहः] भगं षड्विधमैश्वर्यमस्यास्तीति भगवान् ॥ ९ ॥

[व्याख्याः] भगवः = महदैश्वर्ययुक्तः, धन्वनः = धनुषः, उभयोः = द्वयोः, आर्त्न्योः = कोट्योः, ज्याम् = मौर्वीम्, त्वम्, प्रमुञ्च = दूरीकुरु, याः, च, ते = तव, हस्ते = करे, इषवः = बाणाः, ताः शरान् = परावप = पराक्षिप ॥ ९ ॥

[व्याकरणम्] "मतुवतो रुः सम्बुद्धौ छन्दसि" इति रुत्वम् ॥ ९ ॥

[कोषः] धनुश्चापौ धन्वशरासनः कोदण्डकार्मुकम् । मौर्वीज्याशिञ्जिनिगुणः ॥ ९ ॥

[अर्थः] हे भगवन् ! आप अपने धनुष के दोनों कोटी की प्रत्यञ्चा को उतार दीजिये और जो आप के बाण हैं उनको छोड़ दीजिये ॥ ९ ॥

विज्यन्धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ ॥ उत ।
अनेशन्नस्य या ऽइषव ऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

व्विज्य॒मिति॒व्वि ज्यं॑म्। धनुं॑÷। क॒प॒र्दिनं॑÷। व्विशं॑ल्ल्य॒ ऽइति॒वि शं॑ल्ल्यः। बाणं॑वा॒निति॒बाणं॑ व्वान्। उ॒त॥ अनैं॑शन्। अ॒स्य॒। याः। इषं॑वः। आ॒भुः। अ॒स्य॒। नि॒ष॒ङ्ग॒धिरितिं॑निषङ्ग॒ धिः॥ १०॥

[अन्वयः] कपर्दिनः धनुः विज्यम् उत बाणवान् इषुधिः विशल्यः अस्य याः इषवः अनेशन् निषङ्गधिः आभुः॥ १०॥

[विग्रहः] कपर्दो जटाजूटो अस्यास्तीति कपद्री रुद्रः तस्य कपर्दिनः। विगता ज्या यस्य तत् विज्यम्। बाणा अस्मिन् सन्तीति बाणवान्। निषज्यते इति निषङ्गः खङ्गः स धीयते अस्मिन्। इति निषङ्गधिः॥ १०॥

[व्याख्या] कपर्दिनः=रुद्रस्य, धनुः, विज्यम्=मौर्वीरहितम्, उत=अपि, बाणवान्, इषुधिः निरग्रबाणोऽस्तु, विशल्यः=विफलोऽस्तु। अस्य=रुद्रस्य, याः, इषवः=शराः, अनेशन्=नश्यन्तु, निषङ्गधिः, आभुः=खङ्गरहितोऽस्तु,। [रुद्र अस्मान् प्रति न्यस्त सर्वशास्त्रोऽस्त्वित्यर्थः]॥ १०॥

[व्याकरणम्] "णश अदर्शने" नशेरत एत्वम्। अडि वेत्येत्वम् पुषादित्वात् च्लेरङ्॥१०॥

[अर्थ] कपर्दी शंकरजी का धनुः ज्यारहित, तूणीरविफल, बाण नष्ट तथा म्यान रिक्त हो। इस प्रकार रुद्रदेव अस्त्र शस्त्रसे रहित हो ॥ १० ॥

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑ ।
तया॒ स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑भुज ॥ ११ ॥

या । ते॒ । हे॒तिः । मी॒ढु॒ष्ट॒म॒ । मी॒ढु॒स्त॒मोति॑मीढुःऽ तम । हस्ते॑ । ब॒भुव॑ । ते॒ । धनुः॑ ॥ तया॑ । अ॒स्मान् । वि॒श्वतः॑ । त्वम् । अ॒य॒क्ष्मया॑ । परि॑ । भु॒ज ॥ ११ ॥

[अन्वयः] हे मीढष्टम ते या धनुः हस्ते हेतिः बभूव तया अस्मान् परिभुज अयक्ष्मया ॥११॥

[विग्रहः] अतिशयेन मीढ्वान मीढुष्टम। नास्ति यक्ष्मा रोगो यस्याः तया ॥ ११ ॥

[व्याख्याः] हेमीढष्टम=सेक्तृतमवर्षुक, ते=तव, या, धनुः, हस्ते=करे, हेतिः=धनूरूपमायुधम्, बभूव=अस्ति, तया=धनूरूपया, विश्वतः=सर्वतः, अस्मान्, परिभुज=परिपालय, (कीदृश्या तया) अयक्ष्मया=निरुपद्रवया दृढया, अनुपद्रवकारिण्या वा ॥ ११ ॥

[व्याकरणम्] "तसौ मत्वर्थे" इति भसंज्ञायाम् "वसोः संप्रसारणम्" इति संप्रसारणम् । षत्वे ष्टुत्वे । भुजेर्विकरण व्यत्यये शप्रत्यः ॥ ११ ॥

[अर्थः] हेजगत्सेक्तारुद्र ! आपके हाथ में जो धनुष तथा आयुध हैं, भय रहित उनसे हमारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्क्तु वि॒श्वत॑ः ।
अथो॒ य ऽइ॑षु॒धिस्तवा॒रे अ॒स्मन्निधे॑हि॒ तम् ॥ १२ ॥

परि॑ । ते॒ । धन्व॑नः । हे॒तिः । अ॒स्मान् । वृ॒ण॒क्तु । वि॒श्वत॑ः । अ॒थो ऽइत्यथो॑ । यः । इ॒षु॒धिरिती॑षु॒ धिः । तव॑ । आ॒रे । अ॒स्मत् । नि । धे॒हि॒ । तम् ॥ १२ ॥

[अन्वयः] ते धन्वनः हेतिं विश्वतः अस्मान् परिवृणक्तु अथो यः तव इषुधिः आरे निधेहि ॥१२॥

[व्याख्या] ते=तव, धन्वनः=धनुः सम्बन्धि, हेतिम्=आयुधम्, विश्वतः=सर्वतः, अस्मान्, परिवृणक्तु=त्यजतु, मा हन्त्वित्यर्थः, अथो=अपि च, यः, तव, इषुधिः बाणवान्, आरे=दूरे, निधेहि=स्थापय ॥ १२ ॥

[व्याकरणम्] "वृजी वर्जने" रुधादित्वात् श्नम् ॥ १२ ॥

[अर्थः] हे धन्विन् शिव ! आपका बाण मेरे ऊपर प्रहार न करे। और आप अपने तरकस को मुझसे दूर-रखिये ॥ १२ ॥

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

अवतत्येत्यवतत्य । धनुः । त्वम् । सहस्राक्षेति सहस्र अक्ष ।
शतेषुध इति शत इषुधे ॥ निशीर्येति नि शीर्य । शल्यानाम् । मुखा ।
शिवः । नः । सुमना इति सु मनाः । भव ॥ १३ ॥

[अन्वयः] हे सहस्राक्ष ! हे शतेषुधे ! धनुः त्वम् नः शिवः सुमनाः भव [किंकृत्वा] धनुः अवतत्य शल्यानां मुखा निशीर्य ॥ १३ ॥

[विग्रहः] सहस्रमक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः तत्सम्बुद्धौ हेसहस्राक्षः ॥ १३ ॥

[व्याख्या] सहस्राक्ष ! हेशतेयुधे !, धनुः, त्वम् न = अस्मान्, शिवः = शान्तः, सुमनाः = शोभनश्चित्तश्च, भव = अनुगृहाणेत्यर्थः, [किं कृत्वा] धनुः, अवतत्य = अपज्याकं कृत्वा शल्यानाम्, मुखा = मुखानि बाणफलाग्राणि, निशीर्य = शीर्षानि कृत्वा ॥ १३ ॥

[व्याकरणम्] "शॄ हिंसायाम्" "समासे नञ् पूर्वेत्वोल्यप्" "ऋत इद्धातोः" इति ॥१३॥

[अर्थ] हे सहस्राक्ष शिव ! अपने धनुष की प्रत्यञ्चा को उतार तथा बाणाग्र को छिन्नकर हम सबों पर प्रसन्न होइए ॥ १३ ॥

नम॑स्त॒ आयु॑धा॒याना॑तताय धृ॒ष्णवे॑ ।
उ॒भाब्भ्या॑मु॒त ते॒ नमो॑ बा॒हुब्भ्या॒ं तव॒ धन्न्व॑ने ॥ १४ ॥

नम॑ः । ते॒ । आयु॑धाय । अना॑तताय । धृ॒ष्णवे॑ ॥ उ॒भाब्भ्या॑म् । उ॒त । ते॒ । नम॑ः । बा॒हुब्भ्या॒मिति॑ बा॒हु ब्भ्या॑म् । तव॑ । धन्न्व॑ने ॥१४॥

[अन्वय] [हे रुद्र !] ते आयुधाय नमोऽस्तु, अनातताय धृष्णवे उत ते उभाब्भ्यां नमः तव धन्वने ॥ १४ ॥

[व्याख्याः] हेरुद्र ! ते = तव, आयुधाय = बाणाय, नमोऽस्तु = नतिरस्तु, [कीदृक्षाय] अनातताय = धनुष्यनारोपिताय, धृष्णवे = धर्वणशीलाय, रिपून् हन्तुं = प्रगल्भायेत्यर्थः, उत अपि, च, ते = तव, उभाभ्याम् = बाहुभ्याम्, नमः = नमस्कारः, तव, धन्वने = धनुषेऽपि, ॥ १४ ॥

[व्याकरणम्] धृषेः क्नुप्रत्ययः ॥ १४ ॥

[अर्थ] हे रुद्र ! शान्त तथा धर्षणकरनेवाले आपके आयुध को नमस्कार है । और आपके दोनों बाहु तथा आपके धनुष को भी नमस्कार है ॥ १४ ॥

मानो॑ म॒हान्तं॑मु॒त मानो॑ ऽअर्भ॒कं मान॒ ऽउक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ ऽउक्षि॒तम् ।
मा नो॑ वधीꣳ पि॒तरं॒ मोत॑ मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो रुद्र रीरिषः ॥१५॥

मा । नꣳ । म॒हान्त॑म् । उ॒त । अ॒र्भ॒कम् । उ॑क्षन्तम् । उ॒क्षि॒तम् ॥
व॒धी॒ꣳ । पि॒तर॑म् । मा॒तर॑म् । प्रि॒याः । त॒न्व॒ः । रु॒द्र॒ । री॒रि॒ष॒ꣳ । रि॒रि॒षि॒
ऽइति॑ रिरिषꣳ ॥ १५ ॥

[अन्वयः] [हे रुद्रः !] न महान्तं मावधीः उत नं अर्भकं मा न उक्षन्तं मा उत न उक्षितं मा नः पितरं उत मातरं नः प्रिया तन्वः मा रीरिषः ॥ १५ ॥

[व्याख्याः] नः = अस्माकम्, महान्तम् = वृद्धगुरुपितृव्यादिकम्, मा वधीः = मा हिंसीः उत = अपि, न = अस्माकम्, अर्भकम् = बालम्, मा, नः = अस्माकम्, उक्षन्तम् = सिञ्चन्तं तरुणम्, मा, उत = अपि, नः = अस्माकम्, उक्षितम् = सिक्तगर्भस्थम्, मा, नः, पितरम् = जनकम्, उत = अपि, नः, मातरम् = जननीम्, नः = अस्माकम्, प्रियाः = वल्लभाः तन्वः = तनूशरीराणि पुत्रपौत्ररूपाणि । मा रीरिषः = मा हिंसीः । [महान्तमित्यनेन सिद्धयोः मातापित्रोः पुनरादरार्थम्] ॥१५॥

[व्याकरणम्] रिषति हिंसा कर्मा ॥ १५ ॥

[अर्थः] हे रुद्र ! आप हमारे श्रेष्ठ जनों को तथा हमारे बालकों की हिंसा न करें। प्रजन समर्थ हमारे युवा पुरुष तथा युवती स्त्रियों की हिंसा न करें। हमारे पिता तथा माता की हिंसा न करें और अत्यन्तप्रिय हमारे शरीर की हिंसा न करें ॥ १५ ॥

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषꣳ ।
मा नो॑ व्वी॒रान्रु॑द्र भा॒मिनो॑ व्वधीर्ह॒विष्म॑न्त॒ꣳ सद॒मित्त्वा॑ हवामहे ॥ १६ ॥

तो॒के । तन॑ये । आयु॑षि । गोषु॑ । अश्वे॑षु । री॒रि॒ष॒ꣳ । रि॒रि॒ष॒ऽइति॑ रिरिषꣳ ॥ व्वी॒रान् । रु॒द्र॒ । भा॒मिन॑ः । व्व॒धी॒ꣳ । ह॒विष्म॑न्तꣳ । सद॑म् । इत् । त्वा॒ । ह॒वा॒म॒हे॒ ॥ १६ ॥

[अन्वय] [हे रुद्र] न तोके तनये मा रीरिषः न आयुषि मानः गोषु मा नः अश्वेषु मा भामिनः न वीरान् मावधीः, हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ १६ ॥

[व्याख्याः] [हे रुद्र !] नः = अस्माकम्, तोके = पुत्रे, तनये = पौत्रे, मा रीरिषः = मा हिंसीः, न, अश्वेषु = तुरगेषु, मा, [तोकं तनयमायुर्गा अश्वान्माहिंसीः] भामिनः = क्रोधयुतान्, नः = अस्माकम्, वीरान = भृत्यान्, मा वधीः, हविष्मन्तः = हविर्युक्ताः, सदमित् = सदैव, त्वा = त्वाम्, हवामहे = यागायाह्वयामः, त्वदेकशरणा वयमिति भावः ॥ १६ ॥

[व्याकरणम्] विभक्ति व्यत्ययो वा । भामक्रोधे ॥ १६ ॥

[अर्थः] हे रुद्र ! हमारे पोते तथा लड़कों की हिंसा न करे । हमारे आयु तथा गौ अश्वादि पशुओं की हिंसा न करें और क्रोधयुक्त भी वीरोंकी हिंसा न करें (कारण कि) हम सब सम्पत्ति युक्त रहने पर सदैव आपकी पूजा करते हैं ॥ १६ ॥

न॒मो हिर॑ण्यबाहवे सेना॒न्ये॑ दि॒शां च॒ पत॑ये॒ न॒मो नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यꣳ पशू॒नां पत॑ये॒ न॒मो नम॑ः श॒ष्पिञ्ज॑राय॒ त्विषी॑मते प॒थीनां पत॑ये॒ न॒मो न॒मो हरि॑केशायोपवी॒तिने॑ पु॒ष्टाना॒ं पत॑ये॒ नम॑ः ॥१७॥

हिर॑ण्यबाहव॒ ऽइति॒ हिर॑ण्य बाहवे । से॒ना॒न्य॒ ऽइति॑ सेना॒न्ये॑ । दि॒शाम् । च॒ । पत॑ये । वृ॒क्षेभ्य॑ः । हरि॑केशेभ्य ऽइति॒ हरि॑ केशेभ्यꣳ । प॒शू॒नाम् । श॒ष्पिञ्जराय । त्विषि॑मते । त्विषि॑म॒त ऽइति॒ त्विषि॑मते । प॒थी॒नाम् । हरि॑के॒शाय॑ति॒हरि॑ केशाय । उ॒प॒वी॒तिन ऽइत्यु॑प वी॒तिने॑ । पु॒ष्टाना॑म् ॥ १७ ॥

[अन्वयः] हिरण्यबाहवे च सेनान्ये नमः पशूनां पतये नमः शष्पिञ्जराय त्विषिमते रुद्राय नमः पथीनां नमः, हरीकेशाय उपवीतिने नमः पुष्टानां पतये नमः ॥ १७ ॥

[विग्रहः] हिरण्यमाभरणरूपं बाह्वोर्यस्य स हिरण्यबाहुः तस्मै हिरण्यबाहवे । सेनां नयतीति सेनानीः तस्मै सेनान्ये । शष्पं बालतृणं तद्वत्पिञ्जराय पीतरक्तवर्णाय शष्पिञ्जराय । त्विषिर्दीप्तिरस्यास्ति त्विषिमान् तस्मै ॥ १७ ॥

[व्याख्याः] हिरण्यबाहवे, च, सेनान्ये = रुद्राय नमः, पशूनाम् = जीवानाम् , पतये = पालकाय रुद्राय नमः, शष्पिञ्जराय = त्विषिमते [ईदृशाय] रुद्राय नमः, पथीनाम् = मार्गाणाम्, पालकाय नमः, हरिकेशाय = नीलवर्णकेशाय जरारहिताय, उपवितिने = मङ्गलार्थयज्ञोपवीतधारिणे रुद्राय नमः, पुष्टानाम् = गुणपूर्णानाम् , पतये = स्वामिने, नमः ॥ १७ ॥

[कोषः] “शष्पं बालतृणं घासः”

[व्याकरणम्] टिलोपः छान्दसः । संहितायां त्विषि शब्दस्य दीर्घः । पथि शब्दो मार्गवाची ॥ १७ ॥

[अर्थः] मैं सुवर्णहस्त, सेनानी, दिक्पति, हरितवृक्ष, पशुपति, छोटी-छोटी घास की तरह रंगवाले, दीप्तिमान्, मार्गपति, हरे बालवाले, यज्ञोपवीतधारी तथा गुणियों के पतिरूपशंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

नमो॑ ब॒भ्लु॒शाय॑ व्या॒धिनेन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै

जग॑ता॒ं पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णा॒ं पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ः सू॒तायाह॑न्त्यै॒ वना॑ना॒ं पत॑ये॒ नम॑ः ॥ १८ ॥

ब॒भ्लु॒शाय॑ । व्या॒धिने॑ अन्ना॑नाम् । भ॒वस्य॑ । हे॒त्यै॑ । जग॑ताम् । रु॒द्राय॑ । आ॒त॒ता॒यिन॒ ऽइत्या॑तत आ॒यिने॑ । क्षेत्रा॑णाम् । सू॒ताय॑ । अह॑न्त्यै । वना॑नाम् ॥ १८ ॥

[अन्वयः] बभ्लुशाय व्याधिने नमः, अन्नानां पतये नमः, भवस्य हेत्यै नमः, आततायिने नमः, क्षेत्राणां पतये नमः, अहन्त्यै सूताय नमः, वनानां पतये नमः, ॥ १८ ॥

[विग्रहः] (यद्वा) बिभर्ति रुद्रमितिबभ्लुशः तस्मै बभ्लुशाय । विध्यति शत्रून् इति व्याधी तस्मै व्याधिने । आततेन विस्तृतेन धनुषाखद एति गच्छति आततायी उद्यतायुधः तस्मै आततायिने । न हन्ति इति अहन्ति तस्मै अहन्त्रे ॥ १८ ॥

[व्याख्या] बभ्लुशाय = कपिलवर्णाय, व्याधिने = रुद्राय, नमः, अन्नानाम् = धान्यानाम् यवतिलचणकाणाम्, पतये = पालकाय, नमः, भवस्य = संसारस्य, हेत्यै = आयुधाय संसारनिव-

र्तिकाय रुद्राय, नमः, आततायिने = रुद्राय, नमः, क्षेत्राणाम् = देहानाम्, पतये = पालकाय, नमः, अहन्त्यै, सूताय = सारथये रुद्राय, नमः, वनानाम् = अरण्यानाम्, नमः ॥ १८ ॥

[कोषः] अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम् ॥ १८ ॥

[अर्थः] कपिलवर्णरूप, व्याधिरूप, अन्नपति रूप, तथा संसार के बन्धन को काटने के (अस्त्र) आयुधरूप, जगत्पति तथा उद्यत शास्त्रवाले देह के स्वामी, सारथीरूप तथा वनों के स्वामी रूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥

नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नम ऽउच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १९ ॥

रोहिताय । स्थपतये । वृक्षाणाम् । भुवन्तये । वारिवस्कृताय । वारिवःकृतायेति वारिवःऽकृताय । ओषधीनाम् । मन्त्रिणे । वाणिजाय । कक्षाणाम् । उच्चैर्घोषायेत्युच्चैःऽघोषाय । आक्रन्दयत ऽइत्याक्रन्दयते । पत्तीनाम् ॥ १९ ॥

[अन्वयः] रोहिताय स्थपतये नमः वृक्षाणां पतये नमः, भुवंन्तये वारिवस्कृताय नमः, ओषधीनां पतये नमः, वाणिजाय नमः, कक्षानां पतये नमः, उच्चैर्घोषाय आक्रन्दयते नमः ।। १९ ।।

[विग्रहः] भुवं = पृथिवीं तनोति = विस्तारयति, भुवन्तिः तस्मै भुवन्तये । वरिबोधनं करोतीति वरिवस्कृत् स एव वारिस्कृतः । ["एकोरथो गजश्चाश्वाश्वात्रयः पञ्च पदातयः । एष सेना विशेषोऽयं पत्तिरित्यभिधीयते इति श्रुतेः] [स्वार्थेऽण्"] तस्मै वारिवस्कृताय । वाणिगेव वाणिजः तस्मै वाणिजाय । वनगता गुल्मवीरुधादयः कक्षास्तेषां कक्षाणाम् । उच्चैर्घोषो ध्वनिर्यस्य स उच्चैर्घोषः तस्मै उच्चैर्घोषाय ।।१९।।

[व्याख्याः] रोहिताय = लोहितवर्णाय, स्थपतये = स्थपतिर्गृहादिकर्त्ता, विश्वकर्मरूपेण तस्मै, नमः, वृक्षाणाम्, पतये, नमः, भुवन्तये = भूमण्डलविस्तारकारिणे, वारिवस्कृताय = स्थानभोग्यकराय, नमः, ओषधीनाम् = ग्राम्यारण्यानामोषधीनां लतापत्रादीनाम्, पतये = पालकाय, नमः, वाणिजाय = व्यापारकर्त्ते रुद्राय नमः, कक्षाय, पतये = पालकाय नमः, उच्चैर्घोषाय = युद्धेमहाशब्दस्य, आक्रन्दयते = रिपोदकाय, नमः ।। १९ ।।

[अर्थः] रक्तवर्णरूप, शिल्पिरूप, वृक्षपतिरूप, तथा इस भूमण्डल के विस्ताररूप, धनके देनेवाले कुवेररूप, ओषधिपति चन्द्रमारूप, अच्छे विचार को देनेवाले मन्त्रीरूप, तथा व्यापार कुशल व्यापारीरूप, वनमें रहनेवाले गुल्मादि के पतिरूप, भयावह शब्दवाले वज्ररूप तथा

शत्रुओं को रुलानेवाले घोरशब्दरूप तथा पैदल युद्ध करने वाली सेना के स्वामी रूप, शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

नम॑ः कृत्स्नाय॒तया॒ धाव॑ते॒ सत्व॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॒ः सह॑मानाय नि॒व्या॒धिन॑ ऽआव्या॒धिनी॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ ककु॒भाय॑स्ते॒नानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निचे॒रवे॑ परिच॒राया॑रण्यानां॒ पत॑ये॒ नम॑ः ॥२०॥

कृत्स्ना॒य॒तयेति॑ कृत्स्न आ॒य॒तया॑ । धाव॑ते । सत्व॑नाम् । सह॑मानाय । नि॒व्या॒धिन॒ ऽइति॑ नि व्या॒धिने॑ । आ॒व्या॒धीनी॑ना॒मित्या॑ व्या॒धिनी॑नाम् । नि॒ष॒ङ्गिणे॑ । क॒कु॒भाय॑ । स्ते॒नाना॑म् । नि॒चे॒र॒व॒ ऽइति॑ नि॒चे॒र॑वे । प॒रि॒च॒राये॑ति॑ परि च॒राय॑ । अर॑ण्यानाम् ॥ २० ॥

[अन्वयः] कृत्स्नायतया धावते नमः, सत्वनां पतये नमः, सहमानाय व्याधिने नमः, आव्याधिनीनां पतये नमः, निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमः निचेरवे परिचराय नमः अरण्यानां पतये नमः ॥ २० ॥

[विग्रहः] कृत्स्नं समग्रमायतं विस्तृतमर्थानुः यस्य स कृत्स्नायतः तस्य भावः कृत्स्नायतता तया कृत्स्नायतया । [यद्वा] कृत्स्नः सर्वं आपो लाभो यस्य स कृत्स्नायः तस्य भावः कृत्स्नायतता तया कृत्स्नायतया । सत्वानः सात्विकाः शरणागताः प्राणिनाः तेषां सत्वनाम् । सहतेऽरीनभि भवतीति सहमानः तस्मै सहमानाय । नितरां विध्यति हन्ति शत्रूनिति निव्याधी तस्मै निव्याधिने । आसमन्ताद्विध्यतीति आव्याधिनन्यः शूरसेनाः तासां आव्याधिनीनाम् । निषङ्गः=खङ्गः, स अस्यास्तीति निषङ्गी तस्मै निषङ्गिणे । स्तेना गुप्तचोराः तेषां स्तेनानाम् । अपहारबुद्ध्या निरन्तरं चरतीति निचेरुः तस्मै निचेरवे । परित आपणवाटिकादौ हरणेच्छया चरतीति परिचरः तस्मै परिचराय ॥ २० ॥

[व्याख्या] कृत्स्नायतया=आकृष्टपूर्णधनुष्वेन, धावते=युद्धे शीघ्रं गच्छते रुद्राय नमः, [यद्वा] सर्वलाभप्रापकत्वेन, यत्र गच्छति तत्र सर्वेष्टं लाभं प्राप्नोतीत्यर्थः । सत्वानाम्=प्राणिनाम्, सत्वन् शब्दः प्राणिवाची । पतये = पालकाय नमः, सहमानाय=अभिन्भवनशीलायेत्यर्थः, व्याधिने नमः, आव्याधिनीनाम्, पतये = पालकाय नमः, निषङ्गिणे, ककुभाय=महते रुद्राय (ककुभ इति महन्नामसु पठितम् । पतये = पालकाय, नमः, निचेरवे, परिचराय, नमः, अरण्यानाम् = वनानाम्, पतये = पालकाय, नमः ॥ २० ॥

[व्याकरणम्] "शीघ्रगतौ" सरतेर्धावादेशः, तलोपछान्दसः ॥ २० ॥

[अर्थः] कर्णपर्यन्तधनुष की ज्या को खींचकर दौड़नेवाले, भूतपति तथा शत्रुओं का पराजय करनेवाले शत्रुओं को नाश करने के लिये व्याधिरूप, वीरों के सेनापतिरूप, हाथ में तलवार-

वाले तथा महाभयानकरूप, चोरपति तथा इधर उधर घुमते हुए चोरी करनेवाले "निचेरु"रूप, चोरी करने की इच्छा से बाजार में फिरनेवाले "परिचर"रूप, तथा अरण्यों के पतिरूप इस प्रकार सर्ववस्तुओं में व्यापकरूपवाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ २० ॥

नमो॒ वञ्च॑ते परि॒वञ्च॑ते स्तायू॒नां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणं॑ ऽइषुधि॒मते॒ तस्क॑राणां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सृका॒यिभ्यो॒ जिघां॑ꣳ सद्भ्यो मुष्ण॒तां पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ सि॒मद्भ्यो॒नक्त॒ञ्चर॑द्भ्यो विकृ॒न्ताना॒ं पत॑ये॒ नमः॑ ॥ २१ ॥

वञ्च॑ते । प॒रि॒वञ्च॑त॒ ऽइति॑परि॒ वञ्च॑ते । स्ता॒यू॒नाम् । नि॒ष॒ङ्गिणे॑ इषु॒धि॒मत॒ ऽइती॑षुधि॒ मते॑ । तस्क॑राणाम् । सृ॒का॒यिभ्य॒ ऽइति॑ सृका॒यि भ्यः॑ । जिघां॑ꣳ सद्॒भ्य ऽइति॒ जिघां॑ꣳसत् भ्यः॑ । मु॒ष्ण॒ताम् । अ॒सि॒मद्भ्य॒ ऽइत्य॑सि॒ मत् भ्यः॑ । नक्त॑म् । चर॑द्भ्य ऽइति॒ चर॑त् भ्यः॑ । वि॒कृ॒न्ताना॒मिति॑ वि कृ॒न्ताना॑म् ॥ २१ ॥

[अन्वयः] वञ्चते परिवञ्चते पतये नमः, निषङ्गिणे इषुधिमते नमः, तस्कराणां पतये नमः, सृकायिभ्यः तेभ्यः उष्णतां पतये नमः, असिमद्भ्यः नक्तं चरद्भ्यः नमः विकृन्तानाम् पतये नमः ॥२१॥

[विग्रहः] वञ्चति प्रतारयति इति वञ्चन् तस्मै वञ्चते। परिः सर्वतः वञ्चति परिवञ्चन् तस्मै परिवञ्चते। निषङ्गः खड्गः बाणो वा अस्य अस्तीति निषङ्गः तस्मै निषङ्गिणे। इषुधिर्बाणाधारोऽस्यास्तीतीषुधिमान् तस्मै इषुधिमते। तस्कराः प्रकटचौराः तेषां तस्कराणाम्, सृकेन वज्रेण सह यन्ति गच्छतीति अवंशोला सृकायिणः तेभ्यः सृकायिभ्यः। शत्रून् हन्तुमिच्छन्ति जिघांसन्तोति जिघांसन्तः। श्रोत्रादिषु धान्यापहर्तारो मुष्णन्तः तेषाम् उष्णताम्। असयः खड्गाः सन्ति येषां ते असिमन्तः तेभ्यः असिमद्भ्यः। नक्तं रात्रौ चरन्ति ते नक्तं चरन्तः विकृन्तन्ति छिन्दन्ति ते विकृन्ताः छित्वापहरन्तः तेषां विकृन्तानाम् ॥ २१ ॥

[व्याकरणम्] हन्तेः शत्रन्ताच्छत् प्रत्ययः 'मुष स्तेये' ॥ २१ ॥

[व्याख्या] वञ्चते, गमनशीलाय वा, वञ्चतिर्गत्यर्थः। परिवञ्चते, नमः। [स्वामिन आप्तो भूत्वा व्यवहारे कुत्रचित्त्वदीयं धनमपहृते तद्वञ्चनं सर्वव्यवहारे धनापह्नवः'परिवञ्चनम्] गुप्तचौराद्विविधाः=रात्रौ गृहे खातादिना द्रव्यहर्तारः स्वीया एवाहर्निशमज्ञाता हर्तारश्च पूर्वे स्तेनाः उत्तरे स्तायवः तेषाम्, पतये=पालकाय, नमः, निषङ्गिणे=बाणाय, इषुधिमते नमः, तस्कराणाम्=प्रकटचौराणाम्, पतये नमः, सृकायिभ्यः, [सृक इति वज्रनाम] तेभ्यो=रुद्रेभ्यो, नमः, उष्णताम्,

पतये=पालकाय, नमः, असिमद्भ्यः, नक्तंचरद्भ्यः=खड्गं धृत्वा रात्रौ वीथिनिर्गतप्राणिघातकेभ्यः नमः, विकृन्तानाम्, पतये=पालकाय, नमः ॥ २१ ॥

[अर्थः] इधर उधर भ्रमण तथा सर्वत्र विचरण करनेवाले, चौर, पक्षिरूप, खड्ग तथा बाण वाले, तस्कर के पतिरूप, वज्रधारी, शत्रुओं की हिंसा करनेवाले, क्षेत्र में स्थित अन्न को अपहरण करनेवालों के स्वामीरूप, खड्गधारी, रात्रिचर रूप मार्ग में चलते हुए जनों को मार कर धन का अपहरण करनेवालों के स्वामीरूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ २१ ॥

नम॑ऽउष्णी॒षिणे॑ गिरिच॒राय॑ कुलु॒ञ्चाना॒ं पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ऽइषु॒मद्भ्यो॑
धन्वा॒यिभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआतन्वा॒नेभ्य॑÷ प्रति॒दधा॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒
नम॑ऽआ॒यच्छ॑द्भ्यो॒ऽस्य॑द्भ्यश्च वो॒ नम॑÷ ॥ २२ ॥

उ॒ष्णी॒षिणे॑ । गि॒रि॒च॒राये॑ति॑ गिरि च॒राय॑ । कु॒लु॒ञ्चाना॑म् । इ॒षु॒मद्भ्य॒ऽइति॑षु मत्ऽभ्य॑÷ । ध॒न्वा॒यि॒ऽभ्य ऽइति॑ धन्वा॒यिऽभ्य॑÷ । च॒ । व॒ः । आ॒त॒न्वा॒नेऽभ्य॒ ऽइत्या॑ तन्वा॒नेऽभ्य॑÷ । प्र॒ति॒दधा॑नेऽभ्य॒ ऽइति॑ प्रति॒ दधा॑नेऽभ्यः ।

आ॒यच्छ॑द्ऽभ्य॒ ऽइत्या॒ यच्छ॑त्ऽभ्यः अस्य॑द्ऽभ्य॒ ऽइत्यस्य॑त्ऽभ्यः ॥२२॥

[अन्वयः] उष्णीषिणे गिरिचराय नमः, कुलुञ्चानाम् पतये नमः, इषुमद्भ्यः नमः, धन्वायिभ्यः वः नमः, आतन्वानेभ्यः नमः प्रतिदधानेभ्यः वः नमः, आयच्छद्भ्यः नमः, असद्भ्यः नमः ॥ २२ ॥

[विग्रहः] उष्णीषं शिरोवेष्टनमस्य अस्तीति उष्णीषी तस्मै उष्णीषिणे। गिरौ चरति गरिचरः तस्मै गिरिचराय। कुं भूमिं क्षेत्रगृहादिरूपां लुञ्चति हरन्ति कुलुञ्चाः तेषां कुलुञ्चानाम्। कुत्सितं लुञ्चन्ति वा। इषवो विद्यन्ते येषां ते इषुमन्तः जनान्भीषयितुं बाणधारिणः तेभ्यः इषुमद्भ्यः। धन्वना धनुषा सह यन्ति गच्छन्ति धन्वायिभ्यः। आतन्वन्त्यारोपयन्ति ज्यां धनुषीत्यातन्वानाः तेभ्यः आतन्वानेभ्यः। प्रतिदधते सन्दधते बाणं धनुषीति सन्दधानाः तेभ्यः प्रतिदधानेभ्यः। आयच्छन्त्या कर्षन्ति धनूँषि ते आयच्छन्तः तेभ्यः आयच्छद्भ्यः। अस्यन्ति क्षियन्ति बाणानित्यस्यन्तः तेभ्यः अस्यद्भ्यः ॥ २२ ॥

[व्याख्या] उष्णीषिणे, गिरचराय- [अध्वनेनां वस्त्राद्यपहर्तुं पर्वतादिविषमस्थानचारी तदुभयरुपाय रुद्राय, नमः, पतये=पालकाय, नमः, इषुमद्भ्यः नमः, धन्वायिभ्यः=धनुर्धारिणो वः=युस्मभ्यम्, नमः, [चकारो मन्त्रभेदज्ञापनार्थः] आतन्वानेभ्यः, नमः, प्रतिदधानेभ्यः, वः=युष्मभ्यम्, नमः, आयच्छद्भ्यः, नमः, असद्भ्यः, नमः ॥ २२ ॥

[अर्थः] छिपने के विचार से शिरमें उष्णोष् (पगड़ी) बाँधने वाले तथा यात्रियों का

धन चुराने के लिए पर्वत आदि विषमस्थली में रहने वाले, गृहआदिरूप भूमि का हरण करने वाले तथा बाणवाले, ज्या के बाणको अनुसन्धान करने वाले तथा धनुष को आकर्षण कर मारनेवाले शङ्करजी को नमस्कार करता हूँ ॥ २२ ॥

नमो॑ विसृ॒जद्भ्यो॒ विध्य॑द्ब्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ः स्व॒पद्ब्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ः शया॑नेब्भ्य॒ ऽआसी॑नेब्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्ब्भ्यो॒ धाव॑द्ब्भ्यश्च वो॒ नम॑ः ॥ २३ ॥

वि॒सृ॒जद्ब्भ्य॒ ऽइति॑ विसृ॒जत् ब्भ्य॑ः । वि॒ध्य॑द्ब्भ्य॒ ऽइति॒ विध्य॑त् ब्भ्यः । स्व॒पद्ब्भ्य॒ ऽइति॑ स्व॒पत् ब्भ्य॑ः । जाग्र॑द्ब्भ्य॒ ऽइति॒ जाग्र॑त् ब्भ्यः । शया॑नेब्भ्यः । आसी॑नेब्भ्यः । तिष्ठ॑द्भ्य॒ ऽइति॒ तिष्ठ॑त् ब्भ्यः । धाव॑द्ब्भ्य॒ ऽइति॒ धाव॑त् ब्भ्यः ॥२३॥

[अन्वयः] विसृजद्भ्यः नमः विध्यद्भ्यः वः नमः, स्वपद्भ्यः नमः, जाग्रद्भ्यः नमः, शयानेभ्यः नमः, आसीनेभ्यः नमः, तिष्ठद्भ्यः नमः, धन्वद्भ्यः वः नमः ॥ २३ ॥

[विग्रहः] विसृजन्ति विमुञ्चन्ति बाणानरिष्विति विसृजन्तः तेभ्यः विसृजद्भ्यः। विध्यन्ति ताडयन्ति शत्रूनिति विध्यन्तः तेभ्यः विध्यद्भ्यः। स्वपन्ति ते स्वपन्तः स्वप्नावस्थामनुभवन्तः तेभ्यः स्वपद्भ्यः। जाग्रति ते जाग्रतः जाग्रदवस्थावन्तः तेभ्यः जाग्रद्भ्यः। शेरते ते शयानाः सुषुप्त्यवस्थावन्तः तेभ्यः शयानेभ्यः। आसते आसीना उपदिशन्तः तेभ्यः आसीनेभ्यः। तिष्ठन्ति ते तिष्ठन्तः गतिनिवृत्ताः तेभ्यः तिष्ठद्भ्यः। धावन्ति ते धावन्तः वेगवद्गतयः तेभ्यः धावद्भ्यः ॥२३॥

[व्याख्याः] विसृजद्भ्यः। नमः, वः, नमः, स्वपद्भ्यः नमः, जाग्रद्भ्यः नमः, शयानेभ्यः नमः, आसीनेभ्यः नमः, तिष्ठद्भ्यः नमः, धावद्भ्यः। नमः ॥ २३ ॥

[अर्थः] शत्रुओं के प्रति बाण छोड़नेवाले तथा अपने बाणों से शत्रुओं को वेधकर विह्वल करनेवाले, सब सुषुप्ति तथा जागरण अवस्था में वर्तमान, स्वप्नावस्थापन्न, बैठे, खड़े तथा दौड़ते इत्यादि अनेक अवस्थाओं में वर्तमान श्रीशंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ २३ ॥

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पति-भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ ऽआव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ ऽउग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

स॒भाभ्यः॑ । स॒भाप॑तिभ्य॒ ऽइति॑ स॒भाप॑तिभ्यः । अश्वे॑भ्यः ।

अश्वं॑पतिब्भ्य॒ ऽइत्यश्वं॑पति ब्भ्यꣳ । आ॒व्या॒धिनी॑ब्भ्य॒ऽइत्यां॑व्या॒धिनी॑ब्भ्यꣳ । वि॒विध्यं॑न्तीब्भ्य॒ ऽइति॑वि॒ विध्यं॑न्तीब्भ्यꣳ । ऊ॑गणाब्भ्यस् । तृ॒ꣳह॒तीब्भ्यः॑ ॥ २४ ॥

[अन्वयः] सभाभ्यः नमः, सभापतिभ्यः वः नमः, अश्वेभ्यः नमः, आव्याधिनीभ्यः नमः, विविध्यन्तीभ्यः उगणाभ्यः नमः, तृꣳहतीभ्यः वः नमः ॥ २४ ॥

[विग्रहः] विशेषेण, विध्यन्ति विविध्यन्तः ताभ्यः विविध्यन्तीभ्यः । उत्कृष्टा गणा भृत्य समूहा यासां ता उद्गणाः ताभ्यः तृंहन्ति घ्नन्ति तृंहत्यः ताभ्यः तृꣳहतीभ्यः ।

[व्याख्या] सभाभ्यः = सभारूपेभ्योरुद्रेभ्यः, नमः, [सभादिषु रुद्रदृष्टिः कर्तव्येति तात्पर्यम्] सभापतिभ्यः = सभायाः पतिभ्यः, नमः, अश्वेभ्यः = अश्वातुरगणास्तेभ्यः अश्वानां पतिभ्यः, वः, नमः, आव्याधिनीभ्यः = आसमन्ताद्विध्यन्तीत्याव्याधिन्यो देव्यः सेना वा ताभ्यः, नमः, विविध्यन्तीभ्यः, वः, नमः, उगणाभ्यः = ब्राह्मयाद्यामातराभ्यः, नमः, तृꣳहतीभ्यः, हन्तुं समर्था दुर्गादयस्तां, वः, नमः ॥ २४ ॥

[व्याकरणम्] उपसर्गान्त्यलोपः पृषोदरादित्वात् "तृहि हिंसायाम्" ॥ २४ ॥

[अर्थः] सभारूप, सभापतिरूप, अश्व तथा अश्वपतिरूप, जनों को साधारण कष्ट देने

वाली अम्बिका तथा अधिकदुःखदायिनी महामारीरूप, अधिकगणसेनाओं से परिवेष्टितब्राह्मी इत्यादि मातृरूप तथा जीवोंकी हिंसा करने में समर्थ दुर्गादेवीरूप शंकरजी को नमस्कार करता हूँ॥२४॥

नमो॑ ग॒णेब्भ्यो॑ ग॒णप॑तिब्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑ब्भ्यो॒ व्रात॑पतिब्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑ब्भ्यो॒ गृत्स॑पतिब्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेब्भ्यो वि॒श्वरू॑पेब्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २५ ॥

ग॒णेब्भ्यः॑ । ग॒णप॑तिब्भ्य॒ ऽइति॑ ग॒णप॑ति ब्भ्यः । व्राते॑ब्भ्यः । व्रात॑पतिब्भ्य॒ ऽइति॒ व्रात॑पतिब्भ्यः । गृत्से॑ब्भ्यः । गृत्स॑पतिब्भ्य॒ ऽइति॒ गृत्स॑पति ब्भ्यः । विरू॑पेब्भ्य॒ ऽइति॒वि रू॑पेब्भ्यः । वि॒श्वरू॑पेब्भ्य॒ ऽइति॑ वि॒श्वरू॑पेब्भ्यः ॥ २५ ॥

[अन्वयः] गणेभ्यः व्रः नमः गणपतिभ्यः, वः नमः, व्रातेभ्यः, व्रातपतिभ्यः वः नमः, गृत्सेभ्यः वः नमः, विरूपेभ्यः नमः विश्वरूपेभ्यः वः नमः ॥ २५ ॥

[विग्रहः] देवानुचरा भूतविशेषगणाः तेभ्यः गणेभ्यः । व्रातपालका व्रातपतयः तेभ्यः

व्रातपतिभ्यः । गृध्यन्ति वाञ्छन्ति गृत्सा विषयलम्पटाः तेभ्यः । विकृतं रूपं येषां ते विरूपा नग्नमुण्डजटिलादयः तेभ्यः । विश्वं सर्वं नानाविधं रूपं येषां ते विश्वरूपास्तुरङ्गवदनहयग्रीवादयः तेभ्यः ॥२५॥

[व्याख्याः] गणेभ्यः, वः, नमः, गणपतिभ्यः, व्रातेभ्यः, व्रातपतिभ्यः, वः, नमः, गृत्सेभ्यः, सपतिभ्यः वः, नमः, विरूपेभ्यः, वः, नमः, विरूपेभ्यः, वः, नमः, विश्वरूपेभ्यः वः नमः ॥ २५ ॥

[अर्थः] प्राणिविशेष गणरूप तथा उनके नायकगणपतिरूप, किरातरूप तथा उनके सेनापतिरूप, विषयलम्पट व्यभिचारीरूप, तथा व्यभिचारियों के नेतारूप, विकृतरूप तथा नानारूप वाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ २५ ॥

नम॒ꣳ सेना॑ब्भ्यः सेना॒नि॑ब्भ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ र॒थिब्भ्यो॑ ऽअर॒थेब्भ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑÷ क्ष॒तृब्भ्य॑÷ सङ्ग्रही॒तृब्भ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ म॒हद्भ्यो॑ ऽअर्भ॒केब्भ्य॑श्च वो नम॑÷ ॥ २६ ॥

सेना॑ब्भ्यः । से॒ना॒निब्भ्य॒ ऽइति॑ सेना॒नि ब्भ्य॑÷ । र॒थिब्भ्य॒ ऽइति॑ र॒थिब्भ्य॑÷ । अ॒र॒थेब्भ्य॑÷ । क्ष॒तृब्भ्य॒ ऽइति॑ क्ष॒तृब्भ्य॑÷ । स॒ङ्ग्र॒ही॒तृब्भ्य॒ ऽइति॑ सङ्ग्रही॒तृ ब्भ्य॑÷ । म॒हद्भ्य॒ ऽइति॑ म॒हत् ब्भ्य॑÷ । अ॒र्भ॒केब्भ्य॑÷ ॥२६॥

[अन्वयः] सेनाभ्यः नमः, सेनापतिभ्यः वः नमः, रथिभ्यः नमः, च, अरथेभ्यः वः नमः, क्षतृभ्यः नमः, च संगृहीतृभ्यः वः नमः, महद्भ्यः च अर्भकेभ्यः वः नमः ॥ २६ ॥

[विग्रहः] सेनां नयन्ति ते सेनान्यः सेनापतयः तेभ्यः सेनापतिभ्यः। रथाः सन्ति येषां ते रथिनः तेभ्यः रथेभ्यः। नास्ति रथो येषां ते अरथाः तेभ्यः अरथेभ्यः। क्षियन्ति निवसन्ति रथेषु इति क्षत्तारः। (यद्वा) क्षिप प्रेरणे, क्षिपन्ति प्रेरयन्ति सारथीनितिक्षत्तारः रथाधिष्ठातारः तेभ्यः। सङ्गृह्णन्ति अश्वानिति सङ्गृहीतारः सारथयः तेभ्यः। महान्तो जातिविद्यादिभिः उत्कृष्टस्तेभ्यः। अर्भकाः प्रमाणादिभिः अल्पाः तेभ्यः।

[व्याख्या] सेनाभ्यः = सेनारूपेभ्यः, नमः, सेनापतिभ्यः, वः, नमः, रथिभ्यः, नमः, च, अरथेभ्यः वः, नमः, क्षतृभ्यः, नमः, च, सङ्गृहीतभ्यः, वः, नमः, महद्भ्यः, च, अर्भकेभ्यः वः, नमः ॥ २६ ॥

[व्याकरणम्] "क्षिनिवासगत्योः" तुदादिः। "नप्तृनेष्टृत्वष्टृक्षतृहोतृपोतृमातृजामातृपितृदुहितृ" इत्यौणादिकसूत्रेण तृच् प्रत्ययान्तो निपातः। "ण्वुल्तृचौ" इति तृच् प्रत्ययः ॥ २६ ॥

[अर्थः] सेनारूप तथा सेनापतिरूप, रथीरूप, तथा रथरहितपदातिरूप, रथपर बैठकर घोड़ों को वश में रखनेवाले सारथिरूप, जाति तथा विद्या में वृद्ध श्रेष्ठरूप तथा बालकरूप शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥

नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॒ः कुला॒लेभ्य॑ः क॒र्मा-

रे॑ऽभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ निषा॒दे॑ऽभ्य॑ः पु॒ञ्जिष्टे॑ऽभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ः
श्व॒निऽभ्यो॑ मृग॒युऽभ्य॑श्च वो॒ नम॑ः ॥ २७ ॥

तक्ष॑ऽभ्य॒ ऽइति॒तक्ष॑ ऽभ्यꣳ । र॒थ॒का॒रे॑ऽभ्य॒ ऽइति॑ रथ का॒रे॑ऽभ्य॑ः । कु॒ला॑लेऽभ्यꣳ । क॒र्म्मा॑रे॑ऽभ्यꣳ । नि॒षा॒दे॑ऽभ्य॑ः । नि॒सा॒दे॑ऽभ्य॒ ऽइति॑ नि सा॒दे॑ऽभ्य॑ः । पु॒ञ्जिष्टे॑ऽभ्यꣳ । श्व॒निऽभ्य॒ ऽइति॑ श्व॒नि ऽभ्य॑ः । मृ॒ग॒युऽभ्य॒ ऽइति॑ मृग॒यु ऽभ्य॑ः ॥ २७ ॥

[अन्वयः] तक्षभ्यः नमः, रथकारेभ्यः वः नमः, कुलालेभ्यः नमः, कर्मारेभ्यः वः नमः, निषादेभ्यः नमः, पुञ्जिष्ठेभ्यः वः नमः, श्वनिभ्यः नमः, मृगयुभ्यः वः नमः ॥ २७ ॥

[विग्रहः] तक्षाणः शिल्पजातयः तेभ्यः तक्षभ्यः । रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यः रथकारेभ्यः । कुलालाः कुम्भकाराः तेभ्यः कुलालेभ्यः । कर्मारा लोहकाराः तेभ्यः कर्मारेभ्यः । निषादा निरिचरा मांसाशिनो भिल्लाः तेभ्यः निषादेभ्यः । पुञ्जिष्ठः पक्षिपुञ्जघातकाः पुल्कसादयः तेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यः । शुनो नयन्ति ते श्वन्यः श्वकण्ठबद्धरज्जुधारकाः श्वगणिनः तेभ्यः श्वनिभ्यः । मृगान् कामयन्ते ते मृगयवः तेभ्यः मृगयुभ्यः ॥ २७ ॥

[व्याख्या] तक्षभ्यः, नमः, रथकारेभ्यः, वः, नमः, कुलालेभ्यः, नमः, कर्मारेभ्यः, वः, नमः, निषादेभ्यः, नमः, पुञ्जिष्ठेभ्यः, वः, नमः, श्वनिभ्यः, नमः, मृगयुभ्यः, वः, नमः, ॥ २७ ॥

[कोषः] "व्याधोमृगवधाजीवोमृगयुर्लुब्धकोऽपि सः" 'इदं युरिदं कामयमानः' इति यास्कोक्तेः ॥ २७ ॥

[व्याकरणम्] नयतेर्ह्रस्व आर्षः । "सुपआत्मनः क्यच्" इति क्यच्ः, "क्यचि च" इति प्राप्तस्येत्वस्य "न छन्दस्य पुत्रस्य" इति निषेधः ॥ २७ ॥

[अर्थः] शिल्पीरूप, रथकाररूप, जातिविशेष कुम्भकार तथा लोहकाररूप, निषाद तथा पक्षिघातक व्याधरूप, कुत्तों को मारनेवाले कसाई तथा मृगों का शिकार करने वाले शिकारीरूप, शङ्करजी को नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥

नम॒ꣳ श्वभ्य॒ꣳ श्वप॑तिभ्यश्च॒ वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑ः श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥ २८ ॥

श्वभ्य॒ ऽइति॒ श्व ऽभ्य॑ः । श्वप॑तिभ्य॒ ऽइति॒ श्वप॑ति ऽभ्यꣳ । भ॒वाय॑ । रु॒द्राय॑ । श॒र्वाय॑ । प॒शुप॑तय॒ ऽइति॑ प॒शु पत॑ये । नील॑ग्रीवा॒येति॒ नील॑ ग्रीवाय । शि॒ति॒कण्ठा॒येति॑ शिति॒ कण्ठा॑य ॥ २८ ॥

[अन्वयः] श्वभ्यः नमः, श्वपतिभ्यः वः नमः, च भवाय नमः, रुद्राय नमः, शर्वाय नमः, पशुपतये नमः, नीलग्रीवाय, शितिकण्ठाय नमः ॥ २८ ॥

[विग्रहः] श्वानः कुक्कुराः तद्रूपेभ्यः तेभ्यः श्वभ्यः । शुनां पतयः श्वपतः श्वपालकाः तेभ्यः श्वपतिभ्यः । भवन्ति उत्पद्यन्ते जन्तवः यस्मात् इति भवः तस्मै भवाय । रुत् दुःखं द्रावयति नाशयति रुद्रः तस्मै रुद्राय । शृणाति हिनस्ति पापमिति शर्वः तस्मै शर्वाय । पशून् अज्ञान् पाति रक्षति इति पशुपतिः तस्मै पशुपतये । विषभक्षणेन नीला नीलवर्णा ग्रीवा कण्ठैकदेशो यस्य स नीलग्रीवः तस्मै नीलग्रीवाय । शितिः श्वेतः कण्ठो नीलातिरिक्तभागो यस्य शितिकण्ठः तस्मै शितिकण्ठाय ॥ २८ ॥

[व्याख्या] श्वभ्यः, नमः, श्वपतिभ्यः, वः =युष्मभ्यम्, नमः, च, भवाय, नमः, रुद्राय, नमः, शर्वाय, नमः, पशुपतये, नमः, शितिकण्ठाय, नमः ॥ २८ ॥

[कोषः] "कपर्दोऽस्य जटाजूटः" ॥ २८ ॥

[अर्थः] कुटुम्बरूप तथा उनका पालन करनेवाले स्वामीरूप, जीवों को उत्पन्न करनेवाले भवरूप दुःख के नाशक रुद्ररूप पापनाशक शर्वरूप ज्ञानशून्य जीवों की रक्षा करनेवाले पशुपतिरूप विषसे नीलग्रीवावाले नीलग्रीवरूप तथा श्वेतगलावाले शितिकण्ठरूप शंकर को नमस्कार है ॥ २८ ॥

नमः॑ कप॒र्दिने॑ च॒ व्युप्तकेशाय च॒ नमः॑ सहस्त्रा॒क्षाय॑ च श॒त-

ध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरि॒शया॑य च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥ २९ ॥

क॒प॒र्द्दिने॑ । व्यु॑प्तकेशा॒येति॒व्यु॑प्त केशाय । स॒ह॒स्रा॒क्षायेति॑ सहस्र अ॒क्षाय॑ । श॒तध॑न्व॒न ऽइति॑ श॒त ध॑न्वने । गि॒रि॒श॒यायेति॑ गि॒रि श॒याय॑ । शि॒पि॒ वि॒ष्टायेति॑ शिपि वि॒ष्टाय॑ । मी॒ढुष्ट॑माय । मी॒ढुस्त॑मा॒येति॑ मी॒ढु॒ऽत॑माय । इषु॑मत॒ ऽइतीषु॑ मते ॥ २९ ॥

[अन्वयः] कपर्दिने नमः, च, व्युप्तकेशाय नमः, सहस्राक्षाय नमः, शतधन्वने नमः, गिरिशाय नमः शिपिविष्टाय नमः मीढुष्टमाय इषुमते नमः ॥ २९ ॥

[विग्रहः] कपर्दो जटाजूटो अस्यास्तीति कपर्दी तस्मै कपर्दिने । व्युप्ता मुण्डिताः केशा यस्य स व्युप्तकेशः तस्मै व्युप्तकेशाय । सहस्रमक्षीणि यस्य सहस्राक्षः तस्मै सहस्राक्षाय । शतं धनूंषि यस्य स शतधन्वा तस्मै शतधन्वने । गिरौ कैलाशे शेते असौ गिरिशयः तस्मै गिरिशयाय । अतिशयेन मीढ्वान् मेघरूपेण सेक्ता मीढुष्टमः तस्मै मीढुष्टमाय । इषवोः वाणाः सन्ति अस्य इति इषुमान् तस्मै इषुमते ॥२९॥

[व्याख्या:] कपर्दिने, नमः च, व्युप्तकेशाय = मुण्डितकेशाय, नमः, सहस्राक्षाय = इन्द्ररूपाय, नमः, शतधन्वने = बहुधनुर्धारिणे, नमः, गिरिशयाय, नमः, शिपिविष्टाय = विष्णुरूपाय, ["विष्णुः शिपिविष्टः" इति श्रुतेः । यद्वा शिपिषु पशुषु विष्टः प्रविष्टः "पशवोः वैशिपिः" इति श्रुतेः । सर्वप्राणिष्वन्तर्यामितयास्थित इत्यर्थः । यद्वा "यज्ञो वै शिपिः" यज्ञेऽधिदेवतात्वेन प्रविष्टः शिपिरादित्यो वा मण्डलाधिष्ठातेत्यर्थः । शिपयोऽत्र रश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवतीति यास्कोक्तेः । मिढुष्टमाय युवा परिणामरहितायेत्यर्थः, इषुमते, नमः ॥ २९ ॥

[अर्थः] जटाधारी तथा मुण्डितरूपवाले, सहस्राक्षइन्द्ररूप, बहुतधनुषधारणकरनेवाले शतधन्वारूप, कैलाशशिखरपर शयनकरनेवाले गिरिशरूप, बहुकिरणवाले सूर्यरूप, जल से तृप्त करनेवाले मेघरूप तथा बाणसहित तरकसरूप भगवान् शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ २९ ॥

नमो॑ ह्र॒स्वाय॑ च वा॒म॒नाय॑ च॒ नमो॑ बृह॒ते च॒ वर्षी॑यसे च॒ नमो॑
ऽवृद्धाय॑ च स॒वृधे॑ च॒ नमोऽग्र्या॑य च प्र॒थ॒माय॑ च ॥ ३० ॥

ह्र॒स्वाय॑ । वा॒म॒नाय॑ । बृह॒ते । वर्षी॑यसे । ऽवृ॒द्धाय॑ । स॒वृ॒ध॒ ऽइति॑ स॒ ऽवृ॒धे॑ । अग्र्या॑य । प्र॒थ॒माय॑ ॥ ३० ॥

[अन्वयः] ह्रस्वाय नमः, च वामनाय नमः, बृहते नमः ऽवर्षीयसे नमः, वृद्धाय, नमः, सवृधे नमः, अग्र्यायः प्रथमाय च नमः ॥ ३० ॥

[विग्रहः] ह्रस्वः = अल्पशरीरः, तस्मै ह्रस्वाय । वामनः सङ्कुचितावयवः तस्मै वामनाय । बृहन् प्रौढाङ्गः तस्मै बृहते । वर्षीयान् अतिशयेन वृद्धः तस्मै वर्षीयसे । वृद्धो वयसाधिकः तस्मै वृद्धाय । वर्धन्ते विद्याविनयादिगुणैः ते वृद्धाः पण्डिताः तैः सह वर्तत इति सवृत् तस्मै सवृधे । जगतामग्रे भवो अग्र्यः तस्मै अग्र्य ॥ ३० ॥

[व्याख्या] ह्रस्वाय = अल्पशरीराय, नमः, वामनाय = सङ्कुचितावयवाय, नमः, वर्षीयसे, नमः, वृद्धाय, नमः, सवृधे, नमः, अग्र्याय, प्रथमाय = मुख्याय । नमः ॥ ३० ॥

[व्याकरणम्] “प्रस्थस्फ” इत्यादिना “वर्षादेशः” । “अग्राद्यत्” इति यत्प्रत्ययः ॥ ३० ॥

[अर्थः] ह्रस्वकाय रूप तथा अतिलघुशरीरवाले वामनरूप, दीर्घशरीर तथा अत्यन्त दीर्घशरीरवाले वयोवृद्ध तथा गुणसे वृद्ध रूपवाले जगत्के सबजीवोंसे पहले उत्पन्न तथा सर्वप्रथम पूजनीय शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३० ॥

नम॑ऽआ॒शवे॑ चाजि॒राय॑ च॒ नम॒ꣳ शीघ्र्या॑य च॒ शीभ्या॑य च॒ नम॒ऽऊर्म्या॑य चावस्व॒न्या॑य च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च॒ द्वीप्या॑य च ॥ ३१ ॥

आ॒शवे॑ । अ॒जि॒राय॑ । शीघ्र्या॑य । शीभ्या॑य । ऊर्म्या॑य । अ॒व॒स्व॒न्या॒येत्य॑व स्व॒न्या॒य । ना॒दे॒याय॑ । द्वीप्या॑य ॥ ३१ ॥

[अन्वयः] आशवे च अजिराय नमः, शीघ्र्याय च शीभ्याय नमः उर्म्याय च नमः अवस्वन्याय नमः च नादेयाय च, द्वीप्याय नमः ॥ ३१ ॥

[विग्रहः] अश्नुते जगद्व्याप्नोति इति आशुः तस्मै आशवे । अजति = गच्छति, अजिरः गतिशीलः तस्मै अजिराय । शीघ्रे वेगवत् वस्तुनि भवः शीघ्र्यः तस्मै शीघ्र्याय । शीभते कथ्यते इति शीभः आत्मश्लाघी तत्रभवः शीभ्यः तस्मै शीभ्याय । ऊर्मिषु कल्लोलेषु भव ऊर्म्यः तस्मै ऊर्म्याय । अवगतः स्वनो यस्मात् तदवस्वनम् स्थिरजलम् तत्र भवाय अवस्वन्याय । [यद्वा] अवनीचैर्गर्तादौ-स्वनोऽवस्वनः तत्र भवाय । नद्यां भवो नादेयः तस्मै नादेयाय । द्वीपे जलान्तर्ववर्तिनि जलभूमौ भवोद्वीप्यः तस्मै द्वीप्याय ॥ ३१ ॥

[व्याख्या] आशवे, च, अजिराय, नमः, शीघ्र्याय, च, शीभ्याय, नमः, ऊर्म्याय, च, नमः, अवस्वन्याय, नमः, च, नादेयाय, च, द्वीप्याय, नमः ॥ ३१ ॥

[व्याकरणम्] "तत्रभवः" इति यत् प्रत्ययः । शीभृ कत्थने ["स्त्रीभ्योढक्" इतिढक् प्रत्ययः] ॥ ३१ ॥

[अर्थः] गतिशील तथा शीघ्रगमनशील, वेगरूप, जल में कल्लोल पैदा करनेवाली शक्तिरूप,

जल में स्थिरता पैदा करनेवाली शक्तिरूप, नदी में होनेवाले सैत्य गुणरूप तथा निर्जलप्रदेश में होनेवाली रूक्षतारूप इस प्रकार अनेक रूपवाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३१ ॥

नमो॑ ज्ये॒ष्ठाय॑ च कनि॒ष्ठाय॑ च॒ नम॑ः पूर्व्व॒जाय॑ चापर॒जाय॑ च॒ नमो॑ मध्य॒माय॑ चापग॒ल्भाय॑ च॒ नमो॑ जघ॒न्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

ज्ये॒ष्ठाय॑ । क॒नि॒ष्ठाय॑ । पू॒र्व्व॒जायेति॑पूर्व्व॒ जाय॑ । अ॒प॒र॒जायेत्य॑पर॒जाय॑ । म॒ध्य॒माय॑ । अ॒प॒ग॒ल्भायेत्य॑प ग॒ल्भाय॑ । ज॒घ॒न्याय । बु॒ध्न्याय ॥३२॥

[अन्वयः] ज्येष्ठाय च नमः, कनिष्ठाय नमः, च, पूर्वजाय नमः, अपरजाय नमः, मध्यमाय अपगल्पाय नमः, जघन्याय च बुध्नाय नमः ॥ ३२ ॥

[विग्रहः] अत्यन्तं प्रशस्यः ज्येष्ठः तस्मै ज्येष्ठाय। अत्यन्तं युवाल्पो वा कनिष्ठः तस्मै कनिष्ठाय। पूर्वं जगदादौ हिरण्यगर्भरूपेणोत्पन्नः पूर्वजः तस्मै पूर्वजाय। अपरस्मिन् काले प्रलये कालाग्निरूपेण जातः अपरजः तस्मै अपरजाय। मध्ये सृष्टिसंहारान्तर्देवतिर्यगादिरूपेण भवो मध्यमः तस्मै मध्यमाय। गल्भनं गल्भः धाष्टर्यं अपगतो गल्भो यस्मात् स अपगल्भः तस्मै अपगल्भाय। जघनं गवादीनां पश्चात् भागः तत्र भवः जघन्यः तस्मै जघन्याय। बुधे वृक्षादिमूले भवो बुध्न्यः तस्मै बुध्न्य ॥ ३२ ॥

[व्याख्या] ज्येष्ठाय, च, नमः, कनिष्ठाय, नमः, च पूर्वजाय, नमः, अपरजाय, नमः, मध्यमाय, अपगल्भाय: = अव्युत्पन्नेन्द्रियरूपाय, नमः, जघन्याय, च, बुध्न्याय, नमः ॥ ३२ ॥

[कोषः] "मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः" ॥ ३२ ॥

[व्याकरणम्] "ज्य च" इति प्रशस्य शब्दस्येष्ठनि ज्यादेशः। "युवाल्पयोः कन्यतरस्याम्" इति कनादेशः। "मध्यान्मः" इति म प्रत्ययः। "गल्भधार्ष्ट्ये" ॥३२॥

[अर्थः] संसारभर से ज्येष्ठ तथा संसारभर से कनिष्ठरूपवाले सर्वप्रथमोत्पन्न हिरण्यगर्भरूप तथा सब के अन्त में होनेवाले कालाग्निरूप, जगत् के मध्यकाल में होनेवाले यागादिरूप, निरभिमानरूप, जघन (योनि) से उत्पन्न होनेवाले जंगमरूप तथा वृक्षादि के मूल से उत्पन्न होनेवाले स्थावरवृक्षवल्मीकादिरूपवाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३२ ॥

नम॒ꣳ सोऽभ्या॑य च प्रति स॒ऽर्ष्या॑य च॒ नम॒ो षाम्म्या॑य च॒ क्षेम्म्या॑य
च॒ नम॒ꣳ श्लोक्या॑य चावसा॒न्या॑य च॒ नम॑ उर्व॒॑र्ष्या॑य खल्या॑य च ॥ ३३ ॥

सोऽभ्या॑य। प्र॒ति॒स॒ऽर्ष्या॑येति॑ प्रति स॒ऽर्ष्या॑य। षाम्या॑य क्षेम्या॑य।
श्लोक्या॑य। अ॒व॒सा॒न्या॑येत्य॑व सा॒न्या॑य। उ॒र्व॒॑र्ष्या॑य। खल्या॑य ॥ ३३ ॥

[अन्वयः] सोभ्याय च प्रतिसर्याय नमः, याम्याय क्षेम्याय श्लोक्याय अवसान्याय नमः । च उर्व्वर्य्याय च खल्याय नमः ॥ ३३ ॥

[विग्रहः] सोभं गन्धर्वनगरं तत्र भवः सोभ्यः तस्मै सोभ्याय । [यद्वा] उभाभ्यां पुण्यपापाभ्यां सहितः सोभो मनुष्यलोकः, तत्रभवः सोभ्यः तस्मै सोभ्याय । प्रतिसरो विवाहोचितं हस्तसूत्रमभिचारो वा तत्र भवः प्रति सर्यः तस्मै प्रतिसर्याय । यमे भवः याम्यः पापिनां नरकार्तिदाता तस्मै याम्याय । क्षेमे कुशले भवः क्षेम्यः तस्मै क्षेम्याय । श्लोका वैदिकमन्त्रा यशो वा तत्र भवः श्लोक्यः तस्मै श्लोक्याय । अवसानं समाप्तिर्वेदान्तो वा तत्र भवः अवसान्यः तस्मै अवसान्याय । उर्वरा सर्वसस्याढ्याभूः तत्र धान्यरूपेण भवः उर्वर्यः तस्मै उर्वर्याय । खलो धान्यविवेचनदेशः तत्र भवः खल्यः तस्मै खल्याय ॥ ३३ ॥

[व्याख्या] सोभ्याय च, प्रतिसर्य्याय, नमः, याम्याय, क्षेम्याय, श्लोक्याय, अवसान्याय नमः, च, उर्वर्य्याय, च, खल्याय नमः ॥ ३३ ॥

[कोषः] "आहुः प्रतिसरं हस्तसूत्रे मालस्य मण्डने । व्रणशुद्धौ चमूपृष्ठे नियोज्यारक्षके तथा । कर्णेथ मन्त्रभेदेऽपि । "खलः कल्के भुवि धान्ये पुरे कर्णे जयेऽधमे" इत्युक्तेः ॥ ३३ ॥

[अर्थः] पुण्य, पापयुक्त मनुष्यलोक में होनेवाले पाणिरूप विवाहकाल में हस्त में पहनने योग्य सूत्रमें रहनेवाले मंगलरूप पापपुण्य के फल को देनेवाला प्रथम देवमें वर्तमान न्याय-

स्वरूप, क्षेमरूप, यशरूप अन्तमें होनेवाली शान्तिरूप, उर्वरा में अन्य रूप तथा खलिहान में वर्तमान परिमार्जित अन्नरूप शंकरको नमस्कार करता हूँ ॥ ३३ ॥

न॑मो॒ व्वन्या॑य च॒ कक्ष्या॑य च॒ नम॑: श्र॒वाय॑ च प्रतिश्र॒वाय॑ च॒ नम॑ ऽआ॒शुषे॑णाय चा॒शुर॑थाय च॒ नम॒ꣳ शूरा॑य चावभे॒दिने॑ च ॥ ३४ ॥

व्वन्या॑य । कक्ष्या॑य । श्र॒वाय॑ । प्र॒ति॒श्र॒वायेति॒ प्रति श्र॒वाय॑ । आ॒शुषे॑णाय । आ॒से॑ना॒येत्या॒शु से॑नाय । आ॒शुर॑था॒येत्या॒शुर॑थाय । शूरा॑य । अ॒व॒भेदि॒न॒ ऽइत्य॑व भे॒दिने॑ ॥ ३४ ॥

शिवरहस्ये अं० ३ अ० २८ पृ० १८४ पूर्वार्द्धं—

“शिवार्चनं विना भुक्त्वा दरिद्रो भवति ध्रुवम् ।
अन्ते नरकमाप्नोति शिवार्चनविवर्जितः ॥

शिवपूजनप्रकारः—

“आवाहनं चासनं च अर्घ्यं वाद्यं साक्षाच्छिवव्रतम् ।
त्वदङ्गाचमनं चैव स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम् ॥

वस्त्रं गन्धं तथा पुष्पं धूपं दीपं निवेदनम् ।
नीराजनं च ताम्बूलं नमस्कारो विसर्जनम् ॥
अथवाऽर्घ्यादिकं कृत्वा नैवेद्यान्तं यथाविधि ।
अभिषेकं नैवेद्यं नमस्कारं च तर्पणम्" ॥

"त्रिपुंडं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः ।
शिवपूजाफलं साङ्गं तस्यैव हि निश्चितम् ॥
दिवा वा यदि वा रात्रौ नारीवाथ नरोऽपि वा ।
पूजार्थं सजलं भस्म त्रिपुण्डे नैव धारयेत्" ॥

शि० अ० १८ पृ० १६ ।

"शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम्"

शिवरहस्ये उत्तरार्द्धं अध्याय ४६ पृ० १२७५ ।

"गर्भादिसर्वसंस्कारश्मशानाद्यैश्च भोजनम् ।
सर्वश्राद्धानि नियतात्मा शिवभक्तो विवर्जयेत् ॥

इति प्रशंसावचनमेव । शिवपुराणे अ० १८ पृ० १६ ।

विद्येश्वरसंहितायाम्—शिवपुराणे अध्याय १८ ।

"विवाहे यादृशं चित्तं तादृशं कार्यमेव हि ।

अन्या चिन्ता विनिर्वाह्या सर्वा शौनिकलौकिकी” ॥
शि० पुरा० अ० ४ श्लो० ४३

“यथा सर्वेषु वर्णेषु ब्राह्मणः श्रेष्ठ मुच्यते ।
तथा सर्वेषु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ॥
यथा पुरीषु सर्वासु काशी श्रेष्ठा सुरापगा ।
शिवपुराणे अ० १६ पृ० २१ ।

शिवपुराणे अ० १६ पृ० २–१ श्लो०

“सङ्गृह्य मृत्तिकां लिङ्गनिर्माणार्थं प्रयत्नतः ।
अतीव शुभे देशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम् ॥
संशोध्य च जलेनापि पिण्डीकृत्य शनैः शनैः ।
नमः शिवाय मन्त्रेणार्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत् ॥
भूरसीति च मन्त्रेण क्षेत्रसिद्धिं प्रकारयेत् ।
आपोऽस्मानिति मन्त्रेण जलसंस्कारमाचरेत् ॥
नमस्ते रुद्र मन्त्रेण फाटिकाबन्धमुच्यते ।
शंभवायेति मन्त्रेण क्षेत्रशुद्धिं प्रकारयेत् ॥
मानो सहान्तमिति च मन्त्रेणावाहनं चरेत् ।
याते रुद्रेण मन्त्रेण सञ्चरेदुपवेशनम् ॥

मन्त्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्याच्छिवस्य च ।
अध्यवोचदिति प्रेम्णाधिवासं मनुना चरेत् ॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुना हरेत् ।
अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याऽऽचमनं त्र्यम्बकेण च ॥
पयः पृथिव्यामिति च पयसा स्नानमारचेत् ।
दधिक्राव्णेति मन्त्रेण दधिस्नानं च कारयेत् ॥
घृते स्नानं खलु घृतं घृतयावेति मन्त्रतः ।
मधुव्वाता-मधुनक्तं-मधुमान्न-इति त्र्यृचा ॥
मानस्तोके इति प्रेम्णा मन्त्रेण कटिबन्धनम् ।
नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धापयेत् ॥
याते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः ।
शिवाय विधिना भक्तश्चरेद्वस्त्रसमर्पणम् ॥
नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गन्धं दद्यादृचा सुधीः ।
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मन्त्रेण चार्पयेत् ॥
नमः पार्याय इति वा पुष्पं मन्त्रेण चार्पयेत् ।
नमः पर्ण्णाय इति वा बिल्वपत्रसमर्पणम् ॥

नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि ।
दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम ऽआशव इत्यृचा ।
नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम् ।
मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम् ।
इमारुद्रायेति ऋचा कुर्यात्फलसमर्पणम् ।
नमो व्रज्यायेति ऋचा सकलं शम्भवेऽर्पयेत् ॥
मानो महान्तमिति च मानस्तोके इति ततः ।
हिरण्यगर्भ इति ऋचा दक्षिणां हि समर्पयेत् ॥
देवस्य त्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद् बुधः ।
दीपमन्त्रेण वा शम्भोर्नीराजनविधिं चरेत् ॥
पुष्पाञ्जलिं चरेद्भक्त्या इमारुद्राय च ऋचा ।
मानो महान्तमिति च चरेत्प्राज्ञः प्रदक्षिणाम् ॥
मानस्तोकेति मन्त्रेण साष्टाङ्गं प्रणमेत्सुधीः ।
एषते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
नमः सेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।
देवागात्विति मन्त्रेण कुर्याच्छंभोर्विसर्जनम् ॥

रुद्रसंहितायाम्—अ० १३ पृ० ४५ ।

“यदि गेहे पार्थिवीं वा हैमीं वा राजतीं तथा ।
धातुजन्यां तथैवान्यां पारदां वा प्रकल्पयेत् ॥
पूजाकाले च साङ्गं वै परिवारेण संयुतम् ।
आवाह्य पूजयेद्देवं नियमोऽत्र न विद्यते ॥ इति ।
“गोकर्णे शिवलिङ्गानि विद्यन्ते कोटयो नव” पृ० २८० ।
पृथिव्यां यानि लिङ्गानि तेषां सङ्ख्या न विद्यते ।
तथापि च प्रधानानि कथ्यन्ते च मया द्विजाः ॥
“सौराष्ट्रे सोमनाथश्च श्रीशैले मल्लिकार्जुनः ।
उज्जयिन्यां महाकाल ओंकारे चामरेश्वरः ॥
केदारो हिमवत्पृष्ठे डाकिन्याम्भीमशङ्करः ।
वाराणस्यां च विश्वेशस्त्र्यम्बको गौतमीतटे ॥
वैद्यनाथश्चिताभूमौ नागेशोदारुकावने ।
सेतुबन्धे च रामेशो घुश्मेशश्च शिवालये ॥
तत्राद्य सोमनाथो हि चन्द्रदुःखक्षयङ्करः ।
क्षयकुष्ठादिरोगाणां नाशकः पूजनान्मुने ॥

शतरुद्रसंहितायाम् अ० ४२ पृ० २८२ ।

शिवपूजनप्रकारः—

"चन्दनेन विचित्रेण तण्डुलैश्चाप्यखण्डितैः ।
कृष्णैश्चैव तिलैः पूजा कार्या शभोः परात्मनः ॥
अर्घ्यं च श्रीफलं दत्वा ताम्बूलं च विसर्जयेत् ।
अर्घ्यं च बीजपूरेण नैवेद्यं पायसं तथा ॥
पूर्वैस्तिलयवैश्चाथ कमलैः पूजयेच्छिवम् ।
अर्घ्यं च दाडिमं दद्यात्" ॥

शिवपुराणे अ० ३८ पृ० ३२२ ।

मासविशेषे लिङ्गलक्षणम्—

शिवपुराणे अ० ३३ पृ० ४३६ ।

"वैशाखे वज्रलिङ्गं तु ज्येष्ठे मारकतं शुभम् ।
आषाढे मौक्तिकं विद्याच्छ्रावणे नीलनिर्मितम् ॥
मासे भाद्रपदे चैव पद्मरागमयं परम् ।
आश्विने मासि विद्याद्व लिङ्गं गोमेदकं वरम् ॥
कार्तिक्यां वैद्रुमं लिङ्गं वैदूर्यं मार्गशीर्षके ।
पुष्परागमयं पौषे माघे द्युमणिजन्तथा ॥

फाल्गुने चन्द्रकान्तोत्थं चैत्रे तद्वयत्यथोऽथवा ।
सर्वमासेषु रत्नानामभावे हैममेव वा ॥
हैमाभावे राजतं वा ताम्रजं शलजन्तथा ।
मृन्मयं वा यथालाभं जातुषं चाम्यदेव वा ॥
सर्वगन्धमयं वाथ लिङ्गं कुर्याद्यथारुचि । इति ॥
सामनस्य सुतः श्रेष्ठः पाणिनिर्नाम विश्रुतः ॥
कण्वभृंगवरशिष्यैश्च शास्त्रज्ञैः स पराजितः ।
लज्जितः पाणिनिस्तत्र गतस्तीर्थान्तरं प्रति ॥
स्नात्वा सर्वाणि तीर्थाणि संतर्प्य पितृदेवताः ।
केदारमुदकं पीत्वा शिवध्यानपरो ऽभवत् ॥
पर्णाशी सप्तदिवसाञ्जलभक्षस्ततोऽभवत् ।
ततो दशदिशान्ते स वायुभक्षो दशाहनि ॥
अष्टाविंशद्दिने रुद्रो मां ब्रूहि वचोऽब्रवीत् ।
यदि प्रसन्नो देवेश विद्यामूलप्रदो भव ॥
इति श्रुत्वा महादेवः सूत्राणि प्रददौ मुदा ।
सर्ववर्णमयाम्येव अइउणादि शुभानि वै" ॥

[अन्वयः] वन्याय नमः, कक्ष्याय च नमः, श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नमः, आशुषेणाय च आशुरथाय च शूराय च नमः ॥ ३४ ॥

[विग्रहः] वने वृक्षादिरूपेण भवो वन्यः तस्मै वन्याय। कक्षं तृणं वल्ली वा तत्र भवः कक्ष्यः तस्मै कक्षाय। श्रूयते इति श्रवः तस्मै शब्दरूपाय श्रवाय। प्रतिभवः प्रतिशब्दः तस्मै प्रतिश्रवाय। आशुः शीघ्रा सेना यस्य स आशुषेणः तस्मै आशुषेणाय। आशुः शीघ्रः रथो यस्य असौ आशुरथः तस्मै आशुरथाय। अवभिनत्ति रिपून्नीचैर्विदारयतीति अवभेदी तस्मै अवभेदिने ॥ ३४ ॥

[व्याख्या] वन्याय नमः, कक्षाय, च, नमः श्रवाय, च, प्रतिश्रवाय, च, नमः, आशुषेणाय, च, आशुरथाय, च, शूराय=युद्धधीराय, अवभेदिने, च नमः, ॥ ३४ ॥

[कोषः] "वनं प्रस्रवणे गेहे प्रवासेऽम्भसि कानने।" "कक्षो वीरुधि दोर्मूले कच्छे शुष्कवने तृणे" ॥ ३४ ॥

[अर्थः] वन और पवत की प्रकृति शोभारूप, प्रश्नोत्तरके शब्दब्रह्मरूप, शीघ्रगामी सेना तथा रथवाले तथा शत्रुनाशकरूप शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३४ ॥

सूत्रपाठं धातुपाठं गणपाठं तथैव च ।
लिङ्गसूत्रं तथा कृत्वा परनिर्वाणमाप्तवान् ॥ इति
"गङ्गातीर्थात्परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
भविष्यपुराण उत्तरार्धे अ० ३१ पृ० २७६ श्लोक २–१५।

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्म्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒
नम॑ः श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च॒ नमो॑ दुन्दु॒भ्या॑४य चाहन॒न्या॑४य च ॥३५॥

बि॒ल्मिने॑ । क॒व॒चिने॑ । व॒र्म्मिणे॑ । व॒रू॒थिने॑ । श्रु॒ताय॑ । श्रु॒त॒से॒ना-येति॑श्रुत से॒नाय॑ । दुन्दु॒भ्या॑४य । आ॒ह॒न॒न्या॑४येत्या॑ ह॒न॒न्या॑४य ॥ ३५ ॥

[अन्वयः] बिल्मिने च कवचिने नमः वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च नमः दुन्दुभ्याय च आहन्याय नमः ॥ ३५ ॥

[विग्रहः] बिल्मं शिरस्त्राणमस्यास्तीति बिल्मी तस्मै बिल्मिने । पटस्यूतं कार्पासगर्भं देहरक्षकं कवचं तदस्यास्तीति कवची तस्मै कवचिने । लोहमयं शरीररक्षकं वर्म तदस्यास्तीति वर्मी तस्मै वर्मिणे । गजोपरिस्थो गजाकारः कोष्ठो वरूथः रथगुप्तिर्वा सः अस्यास्तीति वरुथो तस्मै वरूथिने । श्रुता प्रसिद्धा सेना यस्य स श्रुतसेनः तस्मै श्रुतसेनाय । दुन्दुभौ भेर्यां भवो दुन्दुभ्यः तस्मै दुन्दुभ्याय । आहन्यते ताड्यते अनेन इति आहननं वाद्यसाधनं दण्डादि तत्र भव आहनन्यः तस्मै आहन्याय ॥३५॥

[व्याख्या] बिल्मिने, च, कवचिने, नमः, वर्मिणे, च, वरुथिने, च, नमः, श्रुताय = प्रसिद्धाय, च, नमः, दुन्दुभ्याय, च, आहनन्याय, नमः ॥ ३५ ॥

[कोषः] वरूथं तु तनुत्राणे रथगौषनवेश्मयोः ॥ ३५ ॥

[अर्थः] वस्त्रधारी, कवची, लोहमयवर्म तथा वरूथवाले, प्रसिद्धरूप तथा प्रसिद्धसेनानायक, दुन्दुभी तथा उसके दण्डरूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३५ ॥

नमो॑ धृष्णवे॑ च प्रमृशाय॑ च॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ चेषुधि॒मते॑ च॒ नम॑स्ती॒क्ष्णेष॑वे चायु॒धिने॑ च॒ नम॑ः स्वायु॒धाय॑ च सु॒धन्व॑ने च ॥ ३६ ॥

धृष्णवे॑ । प्र॒मृशायेति॑प्र मृशाय॑ । नि॒ष॒ङ्गिणे॑ । इषु॒धि॒मत॒ ऽइती॑षुधि॒ मते॑ ।। ती॒क्ष्णेष॑व॒ ऽइति॑ ती॒क्ष्ण ऽइ॑षवे । आ॒युधिने॑ । स्वा॒यु॒धायेति॑सु आ॒युधाय॑ । सु॒धन्न्व॑न॒ ऽइति॑ सु॒ धन्न्व॑ने ॥ ३६ ॥

[अन्वयः] धृष्णवे नमः च प्रमृशाय च निषङ्गिणे च इषुधिमते च नमः च तीक्ष्णेषवे च युधिने नमः च स्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ ३६ ॥

[विग्रहः] धृष्णोति इति धृष्णुः प्रगल्भः तस्मै धृष्णवे। प्रमृशति विचारयति प्रमृशः पण्डितः तस्मै प्रमृशाय। तीक्ष्णा असह्या इषवो बाण यस्य स तीक्ष्णेषुः तस्मै तीक्ष्णेषवे। आयुधीनि अन्यान्यपि सन्तीति आयुधी तस्मै आयुधिने। शोभनमायुधं त्रिशूलं यस्य स स्वायुधः तस्मै स्वायुधाय। शोभनं धनुः पिनाकं यस्य स सुधन्वा तस्मै सुधन्वने ॥ ३६ ॥

[व्याख्या] धृष्णवे, नमः च, प्रमृशाय, च निषङ्गिणे=खड्गयुताय, च, इषुधिमते तूणयुताय, च, नमः, तीक्ष्णेषवे, च, आयुधिने, नमः, च, स्वायुधाय, च, सुधन्वने, च ॥ ३६ ॥

[व्याकरणम्] "इगुपधः" इति कप्रत्ययः ॥ ३६ ॥

[अर्थः] प्रगल्भ तथा पण्डितरूप तीखेबाण, तरकस, खड्ग, त्रिशूल तथा धनुषादि आयुधोंसे युक्त शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३६ ॥

न॒मः स्रुत्या॑य च॒ पथ्या॑य च॒ न॒मः काट्या॑य च॒ नीप्या॑य च॒ न॒मः
कुल्या॑य सर॒स्याय च॒ नमो॑ नादे॒याय॑ च वै॒श॒न्ताय॑ च ॥ ३७ ॥

स्रुत्या॑य । पत्थ्या॑य । काट्ट्या॑य । नीप्प्या॑य । कुल्ल्या॑य । स॒र॒स्याय ।
ना॒दे॒याय॑ । वै॒श॒न्ताय॑ ॥ ३७ ॥

[अन्वयः] स्रुत्याय नमः, पथ्याय नमः च काट्याय च नीप्याय, च नमः कुल्याय सरस्याय च नमः नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

[विग्रहः] स्रुतिः क्षुद्रः क्षुद्रमार्गो वा तत्र भवः स्रुत्यः तस्मैस्रुत्याय । पन्था रथाश्वादियोग्यो मार्गः तत्र भवः पथ्यः तस्मै पथ्याय । कुत्सितमटति जनो यत्र इति काटः विषममार्गः तत्र भवः काट्यः, तस्मै काट्याय । [काटः कुल्या प्रदेशो वा] नीचैः पतन्ति आपः यत्र इति नीपो गिर्यधोभागः तत्र

भवः नीप्यः तस्मै नीप्याय। कुल्या कृत्रिमा सरित्तत्र भवः कुल्यः, कुलेषु देहेषु वा अन्तर्यामिरूपेण भवः कुल्यः तस्मै कुल्याय। सरसि भवः सरस्यः तस्मै सरस्याय। नद्यां भवो नादेयः तस्मै नादेयाय। वेशन्तोऽल्पसरः तत्र भवः वैशन्तः तस्मै वैशन्ताय ॥ ३७ ॥

[व्याख्या] स्रुत्याय, नमः, पथ्याय, नमः, च, काट्याय, च नीप्याय, च, नमः, कुल्याय, सरस्याय, च, नमः, नादेयाय=नदीजलरूपाय, च, वैशन्ताय, च, ॥ ३७ ॥

[व्याकरणम्] 'ऋक्पूरब्धूपथामानक्०' इत्यप्रत्ययः । "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" इत्यप् शब्दस्येकारः ॥ ३७ ॥

[कोषः] कुलं देहेऽन्वये गणे" ॥ ३७ ॥

[अर्थः] मार्ग, राजमार्ग, कूप, निर्झर, नहर, तालाब, तलैया तथा नदी आदि अनेक रूपवाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३७ ॥

नम॒ꣳ कूप्या॑य चाव॒ट्या᳖य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चात॒प्या᳖य च॒ नमो॒ मेध्या॑य च विद्यु॒त्या᳖य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चाव॒र्ष्याय॑ च ॥ ३८ ॥

कूप्या॑य । अ॒व॒ट्या᳖य । वीध्र्या॒येति॑ वि ई॑ध्र्याय । आ॒त॒प्या॒येत्या॑ त॒प्या᳖य । मेध्या॑य । वि॒द्यु॒त्या॒येति॑ वि द्यु॒त्या᳖य । वर्ष्या॑य । अ॒व॒र्ष्याय॑ ॥३८॥

[अन्वयः] कूप्याय अवट्याय नमः वीध्र्याय च आतप्याय च नमः मेघ्याय च ऽविद्युत्याय च नमः ऽवर्षाय च अवर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

[विग्रहः] कूपे भवः कूप्यः तस्मै कूप्याय। अवटो गर्तः तत्र भवः अवट्यः तस्मै अवट्याय। विशेषेण इध्रं वीध्रं निर्मलं शरदम् तत्र भवः वीध्र्यः तस्मै वीध्र्याय। (यद्वा) विदत इध्रो दीप्तिर्यस्मात् स वीध्रः घनागमः तत्र भवः वीध्र्यः तस्मै वीध्र्याय। आतपे भवः आतप्यः तस्मै आतप्याय। मेघे भवः मेघ्यः तस्मै मेघ्याय। विद्युति भवो विद्युत्यः तस्मै ऽविद्युत्याय। वर्षे वृष्ट्यां भवः वर्ष्यः तस्मै वर्ष्याय। अवर्षे वृष्टिप्रतिबन्धे भवः अवर्ष्यः तस्मै अवर्ष्याय॥ ३८ ॥

[व्याख्या] कूप्याय, अवट्याय, नमः, वीध्रयाय, च आतप्याय, च, नमः, मेघ्याय, च, विद्युत्याय, च, नमः, वर्ष्याय, च, अवर्ष्याय, च ॥ ३८ ॥

[व्याकरणम्] "इन्धी दीप्तौ" ॥ ३८ ॥

[अर्थः] कूप, गर्त, आतप, मेघ, बिजली, वर्षा तथा अनावृष्टि (सूखा) इत्यादि सभी पदार्थों में वर्तमान सर्वशक्तिसम्पन्न शंकरजी को नमस्कार करता हूँ ॥ ३८ ॥

नमो॒ व्रात्या॑य च॒ रेष्म्या॑य च॒ नमो॑ वास्त॒व्या॑य च वास्तु॒पाय॑ च॒
नमः॒ सोमा॑य च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑स्ता॒म्राय॑ चारु॒णाय॑ च ॥ ३९ ॥

व्वात्या॑य । रेष्म्या॑य । व्वा॒स्त॒व्व्याय । व्वा॒स्तु॒पायेति॑वास्तु॒ पाय॑ । सो॑माय । रु॒द्राय॑ । ता॒म्म्राय॑ । अ॒रु॒णाय॑ ॥ ३९ ॥

[अन्वयः] वात्याय नमः च रेष्म्याय च नमः वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय च अरुणाय च ॥ ३९ ॥

[विग्रहः] वाते भवः वात्यः तस्मै वात्याय । रिष्यन्ते नश्यन्ति भूतानि अन्यत्र इति रेष्मा प्रलयकालः तत्र भवः रेष्म्यः तस्मै रेष्म्याय । वास्तुनि गृहभुवि भवो वास्तव्यः तस्मै वास्तव्याय । वास्तुं गृहभुवं पाति वास्तुपः तस्मै वास्तुपाय । उमया सहितः सोमः तस्मै सोमाय । रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः दुःखनाशकः तस्मै रुद्राय । ताम्रो रक्तवर्णः उदयद्रविरूपेण तस्मै ताम्राय ॥ ३९ ॥

[व्याख्या] वात्याय, नमः, च, रेष्म्याय, प्रलयेऽपि विद्यमानायेत्यर्थः, च, नमः, वास्तव्याय, च, वास्तुपाय, च, नमः, सोमाय, च, रुद्राय, च, नमः, अरुणाय = अरुण ईषद्रक्त उदयोत्तरकालीनार्करूपाय, च ॥ ३९ ॥

[व्याकरणम्] "अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते" । इति मनिन् प्रत्ययः ॥ ३९ ॥

[कोषः] "वेश्मभुर्वास्तुस्त्रियाम्" ॥ ३९ ॥

[अर्थः] प्रचण्डवायु तथा प्रलयकाल में भी रहनेवाले, गृह तथा गृहपतिरूप, माता

पार्वती के साथ वर्तमान भक्त भयहारक रुद्ररूप रक्तवर्ण उदयकालीन सूर्यरूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ३९ ॥

नम॑ः श॒ङ्गवे॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नम॑ ऽउ॒ग्राय॑ च भी॒माय॑ च॒ नमो॑ऽग्रेव॒धाय॑ च दू॒रे व॒धाय॑ च॒ नमो॑ ह॒न्त्रे च॒ हनी॑यसे च॒ नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यो॒ नम॑स्ता॒राय॑ ॥ ४० ॥

श॒ङ्गव॒ ऽइति॑ श॒म् गवे॑ । प॒शु॒पत॑य॒ ऽइति॑ पशु॒पत॑ये । उ॒ग्राय॑ । भी॒माय॑ । अ॒ग्रे॒व॒धायेत्य॑ग्रे व॒धाय॑ । दू॒रे॒व॒धायेति॑ दू॒रे व॒धाय॑ । ह॒न्त्रे । हनी॑यसे । वृ॒क्षेभ्य॑ः । हरि॑केशेभ्य॒ ऽइति॒हरि॑ केशेभ्यः । ता॒राय॑ ॥४०॥

[अन्वयः] शङ्गवे नमः च पशुपतये च नमः उग्राय च भीमाय च नमः अग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमः हन्त्रे च हनीयसे च नमः हरिकेशेभ्यः वृक्षेभ्यः ताराय नमः ॥ ४० ॥

[विग्रहः] शं सुखं गमयति शङ्गुः, (यद्वा) शं सुखरूपा गावो वाचो वेदरूपा यस्य, तस्मै शङ्गवे । पशूनां प्राणिनां पतिः पालकः तस्मै पशुपतये । उग्र उद्गूर्णायुधः शत्रून् हन्तुं तस्मै उग्राय । भीमः = शत्रुभयोत्पादकः तस्मै भीमायः । अग्रे पुरोवर्तमानो हन्ति इति अग्रेवधः तस्मै अग्रेवधाय ।

दूरे वर्त्तमानो हन्ति इति दूरेवधः तस्मै दूरेवधाय। हन्ति इति हन्ता तस्मै हन्त्रे। अतिशयेन हन्ता हनीयान् तस्मै हनीयये। हरयो हरिताः केशाः पत्रारूपा येषां तेभ्यः हरिकेशेभ्यः। तारयति संसारमिति तारः तस्मै ताराय ॥ ४० ॥

[व्याख्या] शङ्कवे, नमः, च, पशुपतये, च, नमः, उग्राय, च, भीमाय, च, नमः, अग्रेवधाय, च, दूरेवधाय, च, नमः, हन्त्रे = लोके यो हन्ति तद्रूपेण रुद्र एवहन्तीत्यर्थः, च, हनीयसे = प्रळये सर्वहन्तेत्यर्थः, च, नमः, हरिकेशेभ्यः, वृक्षेभ्यः कल्पतरुरूपेभ्यः, नमः, ताराय ॥ ४० ॥

[व्याकरणम्] "तुरिष्ठेमेयः सुः" इति तृचो लोपः ॥ ४० ॥

[अर्थः] सुख के दातारूप, पशुपतिरूप, उग्र और भीमरूप तथा सेनानायक तथा जीवों के हन्तारूप, हरेपर्णवाले वृक्षरूप तथा संसार से पार करनेके लिए नौका रूप शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४० ॥

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च ॥ ४१ ॥

श॒म्भ॒वायेति॑ शम् भ॒वाय॑। म॒यो॒ भवा॑येति॑ मय॑ऽ भ॒वाय॑। श॒ङ्क॒रायेति॑

शम् क॒राय॑ । म॒य॒स्क॒राय॑ । म॒य॒ꣳ क॒राये॑ति॒मयꣳ क॒राय॑ । शि॒वाय॑ ।
शि॒वत॑रा॒ये॑ति शि॒व त॑राय ॥ ४१ ॥

[अन्वयः] शम्भवाय नमः, च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः, शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

[विग्रहः] शं सुखं भवति अस्मात् शम्भवः तस्मै शम्भवाय । [यद्वा] शं सुखरूपश्चासौ भवः संसाररूपश्च मुक्तिरूपो भवरूपश्च तस्मै शम्भवाय । मयः सुखं भवति अस्मात् मयोभवः संसारसुखप्रदः तस्मै मयोभवाय । शं लौकिकसुखं करोति शङ्करः तस्मै शङ्कराय । मयो = मोक्षसुखं, करोति मयस्करः तस्मै मयस्कराय । शिवः कल्याणरूपो निष्पापः शिवः तस्मै शिवाय । शिवतरो अत्यन्तं शिवभक्तानपि निष्पापान् करोति शिवतरः तस्मै शिवतराय ॥ ४१ ॥

[व्याख्या] शम्भवाय, नमः, च, मयोभवाय, च, नमः, शङ्कराय, च, मयस्कराय, [स्रक्चन्दनादिरूपेण लौकिकसुखकारित्वं शास्त्रादिरूपेण ज्ञानप्रदत्वान्मोक्षसुखकारित्वमित्यर्थः । एताभ्यां पदाभ्यां साक्षात्सुखकारित्वं पूर्वपदाभ्यां तद्द्वाराकारयितृत्वमिति विवेकः] च, नमः, शिवाय, च, शिवतराय, नमः ॥ ४१ ॥

[अर्थः] पारलौकिक सुख तथा सुख के दातारूप, ऐहलौकिकसुख एवं कल्याण तथा भक्तों का कल्याणकारकरूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४१ ॥

नम॒ꣳ पार्य्या॑य चावा॒र्य्या॑य च॒ नम॑ः प्प्र॒तर॑णाय चो॒त्तर॑णाय च॒
नम॒स्तीर्त्थ्या॑य च॒ कूल्या॑य च॒ नम॒ꣳ शष्प्या॑य च॒ फेन्या॑य च ॥ ४२ ॥

पार्य्या॑य । अ॒वा॒र्य्या॑य । प्र॒तर॑णा॒येति॑प्र॒ तर॑णाय । उ॒त्तर॑णा॒येत्यु॒त्
तर॑णाय । तीत्थ्या॑य । कुल्ह्या॑य । शष्प्या॑य । फेन्न्या॑य ॥ ४२ ॥

[अन्वयः] पार्य्याय नमः च अवार्य्याय च नमः प्रतरणाय च उत्तरणाय च नमः तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

[विग्रहः] पारे संसाराब्धेः परतीरे जीवन्मुक्तिरूपेण भवः पार्यः तस्मै पार्याय। आवारे अर्वाक्तीरे संसारमध्ये संसारित्वेन भवः अवार्यः तस्मै अवार्याय। प्रकर्षेण मन्त्रजपादिना पापतरणहेतुः प्रतरणः तस्मै प्रतरणाय। उत्कृष्टेन तत्वज्ञानेन संसारोत्तरणहेतुरुत्तरणः तस्मै उत्तरणाय। तीर्थे प्रयागादौ भवः तीर्थ्यः तस्मै तीर्थ्याय। कूले तटे भवः कूल्यः तस्मै कूल्याय। शष्पं बालतृणं गङ्गातीरोत्पन्नं कुशाङ्कुरादि तत्र भवः शष्प्यः तस्मै शष्प्याय। फेने डिण्डीरे भवः फेन्यः तस्मै फेन्याय ॥ ४२ ॥

[व्याख्या] पार्याय, नमः, च, आवार्याय, च, नमः, प्रतरणाय, च, उत्तरणाय, च, नमः, तीर्थ्याय, च, कूल्याय, च, नमः, शष्प्याय, च, फेन्याय, च ॥ ४२ ॥

[कोषः] “पारावारे परार्वाची तीरे पात्रं यदन्तरम्” ॥ ४२ ॥

[अर्थः] संसार एवं संसार से परे जीवन्मुक्तादिरूप, मन्त्र तथा तत्त्वज्ञानरूप, तीर्थों में होनेवाले पुण्यरूप, घास तथा फेन वर्तमान शक्तिरूप शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४२ ॥

नमः॑ सिक॒त्या॑य च प्रवा॒ह्या॑य च॒ नमः॑ किꣳशि॒लाय॑ च क्षय॒णाय॑ च॒ नमः॑ कप॒र्दिने॑ च पुल॒स्तये॑ च॒ नमः॑ ऽइरि॒ण्या॑य च प्रप॒थ्या॑य च ॥ ४३ ॥

सि॒क॒त्या॑य । प्र॒वा॒ह्या॒येति॑ प्र वा॒ह्या॑य । कि॒ꣳ॒ शि॒लाय॑ । क्ष॒य॒णाय॑ । क॒प॒र्दिने॑ । पु॒ल॒स्तये॑ । इ॒रि॒ण्या॑य । प्र॒प॒थ्या॒येति॑ प्र प॒थ्या॑य ॥ ४३ ॥

[अन्वयः] सिकत्याय नमः च प्रवाह्याया च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नमः इरिण्याय च प्रपथ्याय च ॥ ४३ ॥

[विग्रहः] सिकतासु भवः सिकत्यः तस्मै सिकत्याय । प्रवाहे स्तोतसि भवः प्रवाह्यः तस्मै प्रवाह्याय । कुत्सिताः क्षुद्राः शिलाः शर्करारूपाः पाषाणा यत्र प्रदेशे स किंशिलः तस्मै किंशिलाय । क्षियन्ति निवसन्ति आपो यत्र स क्षयणः स्थिरजलप्रदेशः तस्मै क्षयणाय । कपर्दो जटाजूटो अस्य अस्तीति कपर्दी तस्मै कपर्दिने । पुरोऽग्रे तिष्ठति पुलस्तिः तस्मै पुलस्तये । यद्वा—पूर्षु शरीरेषु अस्ति

सत्ता यस्य सः पुलस्तिः सर्वान्तर्यामी तस्मै पुलस्तये। इरिणम् उषरं वितृणदेशः तत्र भवः इरिण्यः तस्मै इरिण्याय। प्रकृष्टः पन्थाः प्रपथः बहुसेवितः मार्गः तत्र भवः प्रपथ्यः तस्मै प्रपथ्याय।

[व्याख्या] सिकत्याय, नमः, च, प्रवाह्याय, च, नमः, किꣳशिलाय, च, क्षयणाय, च, नमः, कपर्दिने, च, पुलस्तये, च, नमः, इरिण्याय, च, प्रपथ्याय, च ॥ ४३ ॥

[व्याकरणम्] पुलस्तये—थस्य तत्वं रस्य लत्वं च छान्दसम् ॥ ४३ ॥

[अर्थः] सिकता, प्रवाह, पाषाण, स्थिरजलप्रदेश, जटिल, अग्रणी, उषर तथा राजमार्गादि रूप से शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४३ ॥

नमो॒ व्रज्या॑य च॒ गोष्ठ्या॑य च॒ नम॒स्तल्प्या॑य च॒ गेह्या॑य च॒ नमो॑ हृदु॒रु꣤ष्याय च निवे॒ष्प्य꣤ाय च॒ नम॑ः का॒ट्या॑य च गह्व॒रे॒ष्ठा॑य च ॥ ४४ ॥

व्रज्या॑य। गोष्ठ्या॑य। गोस्त्थ्या॒येति॒गो स्त्थ्या॑य। तल्प्या॑य। गेह्या॑य। हृदु॒रु꣤ष्याय। नि॒वे॒ष्प्य꣤ायेति॑नि व्वे॒ष्प्य꣤ाय। काट्या॑य। ग॒ह्व॒रे॒ष्ठा॑य। ग॒ह्व॒रे॒स्थायेति॑गह्व॒रे॒ स्त्था॑य ॥ ४४ ॥

[अन्वयः] व्रज्याय नमः च गोष्ठयाय च नमः तल्प्याय च गेह्याय च नमः हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमः ॥ ४४ ॥

[विग्रहः] व्रजे गोसमूहे भवः व्रज्यः तस्मै व्रज्याय । गावः तिष्ठन्ति यत्र इति तद्गोष्ठं तत्र भवः गोष्ठ्यः तस्मै गोष्ठ्याय । तल्पं शय्या तत्र भवः तल्प्यः तस्मै तल्प्याय । गेहे गृहे भवः, गेह्यः तस्मै गेह्याय । हृदये भवः हृदय्यः जीवः तस्मै हृदय्य्याय । निवेष्प आवर्तो नीहारजलं वा तत्र भवः निवेष्प्यः तस्मै निवेष्प्याय । कुत्सितमटन्ति गच्छन्ति जना यत्र स काटः दुर्गारन्यदेशः काटः कूपो वा तत्र भवः काट्यः तस्म काट्याय । गह्वरे विषमे गिरिगुहादौ गम्भीरे जले वा, तिष्ठति गह्वरेष्ठः तस्मै गह्वरेष्ठाय ॥ ४४ ॥

[व्याख्या] व्रज्याय, नमः, च, गोष्ठ्याय, च, नमः, तल्प्याय, च, गेह्याय, च, नमः । हृदय्याय, च, निवेष्प्याय, च, नमः, काट्याय, च, गह्वरेष्ठाय, च नमः ॥ ४४ ॥

[कोषः] "गोष्ठाध्वनिवहाव्रजाः" "गह्वरं बिलदम्भयोः" ॥ ४४ ॥

[अर्थः] गोसमूह, गोगोष्ठ, शय्या, गृह, हृदय, हिम, विषम मार्ग और कन्दराओं में वर्तमानशक्तिवाले शङ्कर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४४ ॥

नम॒ꣳ शुष्क्या॑य च हरि॒त्या॑य च॒ नम॑ः पाꣳस॒व्या॑य च रज॒स्या॑य च॒ नमो॒ लोप्या॑य चोल॒प्या॑य च॒ नम॑ ऽऊर्व्या॑य च॒ सूर्व्या॑य च ॥ ४५ ॥

शुष्क्या॑य । ह॒रि॒त्या᳖य । पा॒ꣳस॒ऽव्या᳖य । र॒ज॒स्या᳖य । लोप्या॑य ।
उ॒ल॒प्या᳖य । ऊऽर्व्या॑य । सूऽर्व्या॒येति॒ सु ऊंऽर्व्या॑य ॥ ४५ ॥

[अन्वयः] शुष्क्याय नमः च हरित्याय च नमः पाꣳसऽव्याय च रजस्याय च नमः लोप्याय च उलप्याय च नमः ऊऽर्व्याय च सूऽर्व्याय च ॥ ४५ ॥

[विग्रहः] शुष्के काष्ठादौ भवः शुष्क्यः तस्मै शुष्क्याय । हरिते आर्द्रे काष्ठादौ भवः हरित्यः तस्मै हरित्याय । पांसुषु धूलिषु भवः पांशऽव्यः तस्मै पांसऽव्याय । रजसि गुणे परागे वा भवः रजस्यः तस्मै रजस्याय । लुप्यते नश्यति गमनादि यत्र इति अगम्यप्रदेशः तत्र भवः लोप्यः तस्मै लोप्याय । उलपा बल्वजादितृणविशेषाः तत्र भवः उलप्यः तस्म उलप्याय । उऽर्व्यां भूमौ भवः उऽर्व्यः [वडवानलो वा] तस्मै ऊऽर्व्याय । शोभन ऊर्वः कल्पानलः तत्र भवः सूऽर्व्यः तस्मै सूऽर्व्याय ॥ ४५ ॥

[व्याख्या] शुष्क्याय, नमः, च, हरित्याय, च, नमः, पाꣳसऽव्याय, च, रजस्याय, च, नमः, लोप्याय, च, उलप्याय, च, नमः, ऊऽर्व्याय, च, सूऽर्व्याय, च ॥ ४५ ॥

[व्याकरणम्] ऊर्वशब्दस्य दीर्घ आर्षः ॥ ४५ ॥

[कोषः] 'रजो रेणुपरागयोः । स्त्रीपुष्पे गुणभेदे च । उलपस्तु गुल्मिनीतृणभेदयोः ॥ ४५ ॥

[अर्थः] शुष्ककाष्ठ, हरेवृक्ष, धूलि, पुष्प-पराग, अगम्यप्रदेश सर्वसस्यसम्पन्न उर्वरा में स्थित शक्तिवाले शंकर को नमस्कार करता हूँ ॥ ४५ ॥

नम॑ः प॒र्ण्याय॑ च पर्णश॒दाय॑ च॒ नम॑ ऽउद्गु॒रमा॑णाय चाभिघ्न॒ते च॒ नम॑ ऽआखिद॒ते च॑ प्रखिद॒ते च॒ नम॑ः इषु॒कृद्भ्यो॑ धनु॒कृद्भ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ वꣳ किरि॒केभ्यो॑ दे॒वाना॒ꣳ हृद॑येभ्यो॒ नमो॑ विचिन्व॒त्केभ्यो॒ नमो॑ विक्षिण॒त्केभ्यो॒ नम॑ ऽआनिर्ह॒तेभ्य॑ः ॥ ४६ ॥

प॒र्ण्याय॑ । प॒र्ण॒श॒दायेति॑ पर्ण्ण श॒दाय॑ । उ॒द्गु॒रमा॑णा॒येत्यु॑त् गु॒र॒माणा॑य । अ॒भि॒घ्न॒त ऽइत्य॑भि घ्न॒ते । आ॒खि॒द॒त ऽइत्या॑ खिद॒ते । प्र॒खि॒द॒त ऽइति॑ प्र खिद॒ते । इ॒षु॒कृद्भ्य॒ ऽइतीषु॑ कृत् भ्य॑ः । ध॒नु॒ष्कृद्भ्य॑ः । ध॒नु॒ꣳकृद्भ्य॒ ऽइति॑ धनुꣳ कृत् भ्य॑ः । कि॒रि॒केभ्य॑ः । दे॒वाना॑म् । हृद॑येभ्यꣳ । वि॒चि॒न्व॒त्केभ्य॒ ऽइति॑ वि॒ चिन्व॒त्केभ्य॑ः । वि॒क्षि॒ण॒त्केभ्य॒ ऽइति॑ वि क्षिण॒त्केभ्य॑ः । आ॒निर्ह॒तेभ्य॒ ऽइत्यानिꣳ ह॒तेभ्य॑ः ॥ ४६ ॥

[अन्वयः] पर्णाय पर्णशदाय च नमः उद्गुरमाणाय अभिघ्नते च नमः आखिदते च प्रखिदते च नमः इषुकृद्भ्यः धनुष्कृद्भ्यः च वः नमः नमः वः देवानां हृदयेभ्यः किरिकेभ्यः नमः विचिन्वत्केभ्यः नमः विक्षिणत्केभ्यः आनिर्हतेभ्यः नमः ॥ ४६ ॥

[विग्रहः] शदनं शदः शातनम्, यद्वा—पर्णानि शीर्यन्ते शात्यन्ते पक्वानि पतन्ति यत्र स पर्णशदः पतितपर्णस्थितिदेशः तत् रूपाय तस्मै पर्णशदाय । उद्गुरते उद्यमं करोति उद्गुरमाण उद्यमो तस्मै उद्गुरमाणाय । अभिहन्ति शत्रूनित्यभिघ्नन् तस्मै अभिघ्नते । आ समन्तात् खिद्यते दैन्यं करोत्यभक्तानामित्याखिदन् तस्मै आखिदते । प्रकर्षेण खेदयति पापिन इति प्रखिदन् तस्मै प्रखिदते । इषून् बाणान् कुर्वन्ति ते इषुकृतः तेभ्यः इषुकृद्भ्यः । धनूँषि च आपानि कुर्वन्ति ते धनुष्कृतः तेभ्यः धनुष्कृद्भ्यः । वृष्ट्यादिद्वारा जगत् कुर्वन्ति किरिकाः तेभ्यः किरिकेभ्यः । विचिन्वन्ति पृथक्कुर्वन्ति धर्मिष्ठं पापिष्ठं इति विचिन्वत्काः तेभ्यः विचिन्वत्केभ्यः । विविधं क्षिण्वन्ति हिंसन्ति पापं विक्षिणत्काः तेभ्यः विक्षिणत्केभ्यः । आसमन्तात् निर्हता निर्गताः सर्गादौ लोकेभ्य इति आनिर्हताः तेभ्यः आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

[व्याख्या] पर्णाय=तरूणां पत्ररूपाय, पर्णशदाय, च, नमः, उद्गुरमाणाय, अभिघ्नते, च, नमः, आखिदते, च, प्रखिदते, च, नमः। इषुकृद्भ्यः, धनुष्कृद्भ्यः, वः=युष्मभ्यम्, नमः, नमः, वः, हृदयेभ्यः=रुद्राणां हृदयवत्प्रधानभूतेभ्योऽग्निवायुरादित्येभ्यः, किरिकेभ्यः, विचिन्वत्केभ्यः, विक्षिणत्केभ्यः, आनिर्हतेभ्यः, नमः ॥ ४६ ॥

[व्याकरणम्] "गुरी उद्यमे" "तुदादिभ्यः शः" ॥ ४६ ॥

[अर्थः] पत्र, पक्वपत्ररूप, उद्यमी, शत्रुहन्तारूप, निन्दकों के दलन करनेवाले तथा पापियों को नष्ट करनेवाले धनुषबाणयुक्त रूपवाले रुद्र को नमस्कार करता हूँ। इस प्रकार १७ मन्त्र से ४६ पर्यन्त २४० शङ्कर के रूप को नमस्कार किया गया। अब अग्नि वायु सूर्य को नमस्कार करते हैं। सृष्ट्यादि से जगत्की उत्पत्ति करनेवाले पापी तथा पुण्यात्मा को छान-बीनकर अलग-अलग करने वाले, नाना प्रकार के पापों को नाश करनेवाले, तथा सृष्ट्यादि के आदि में अवतरण उत्पन्न होनेवाले अग्नि वायु सूर्य को नमस्कार करता हूँ ॥ ४६ ॥

द्रापे॒ ऽअन्ध॑सस्पते॒ दरि॑द्र॒ नील॑लोहित । आ॒सां प्र॒जाना॑मे॒षां प॑शू॒नां मा भे॒र्मा रो॒ङ्मो च॑ न॒ः किञ्च॒नाम॑मत् ॥ ४७ ॥

द्रापे॑ । अन्धस॑ः । प॒ते॒ । दरि॑द्र । नील॑लोहि॒तेति॒नील॑ लोहित । आ॒साम् । प्प्र॒जाना॒मिति॑प्र जाना॑म् । ए॒षाम् । प॒शू॒नाम् । मा । भे॒ः । मा । रो॒क् । मोऽइति॒मो । च॒ । न॒ः । किम् । च॒न । आ॒म॒म॒त् ॥ ४७ ॥

[अन्वयः] हेद्रापे ! अन्धस सस्पते ! हे दरिद्र ! हेनीललोहित ! न आसां प्रजानां एषां पशूनां मा भेः मा रोक् च न किञ्चन मा आगमत् ॥ ४७ ॥

[विग्रहः] द्रापयति कुत्सितां गतिं पापिनः प्रापयति इति द्रापि तत्सम्बुद्धौ हे द्रापे ॥ ४७ ॥

[व्याख्या] हे द्रापे ! हे अन्धसस्पते = सोमस्य पते पालक, हे दरिद्र ! निष्परिग्रह, हे नीललोहित ! = कण्ठे नीलोऽन्यत्रलोहितः हेशिव, नः = अस्माकम्, आसां प्रजानाम् = पुत्रादिनाम्, एषाम् = पशूनाम् = गवादीनाम्, मा भेः = भयं मा कुरु, मा रोक् = प्रजापशूनां भङ्गं मा कार्षीः, [कर्मणि षष्ठ्यौ] च, न, किंचन = किमपि द्विपदचतुष्पादादिकम्, मा, आगमत् = रुग्णं मा कार्षीत्। [यद्वा रुग्णं मास्तु] ॥ ४७ ॥

[व्याकरणम्] 'द्रा कुत्सायां गतौ' "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुक् 'रुजो भङ्गे' "अम् रोगे"। लङि धातोरमागम आर्षः ॥ ४७ ॥

[अर्थः] पापियों को नीच गति देनेवाले, सोमरक्षक, अद्वितीय, नीललोहित हे शिव ! हमारे पुत्रपौत्रादिकों को आप न डरावें। पशु तथा प्रजाओं को नष्ट न करें। इस प्रकार हमारे द्विपद जन तथा चतुष्पद पशु रोग आदि से दुख न पावें ॥ ४७ ॥

इ॒मा रु॒द्राय॑ त॒वसे॑ कप॒र्दिने॑ क्ष॒यद्वी॑राय॒ प्रभ॑रामहे म॒तीऽ। यथा॒
शमस॑द्द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे॒ विश्वं॑ पु॒ष्टं ग्रामे॑ ऽअ॒स्मिन्न॑नातु॒रम् ॥ ४८ ॥

इ॒माः । रु॒द्राय॑ । त॒वसे॑ । क॒प॒र्दिने॑ । क्ष॒यद्वी॑रा॒येति॑क्ष॒यत् व्वी॑राय ।
प्र । भ॒रा॒म॒हे । म॒तीः । यथा॑ । शम् । अस॑त् । द्वि॒पद॒ ऽइति॑द्वि॒ पदे॑ ।
चतु॑ष्पदे । चतु॑ःऽपद॒ ऽइति॒ चतु॑ःऽपदे । विश्व॑म् । पु॒ष्टम् । ग्रामे॑ ।
अ॒स्मिन् । अ॒ना॒तु॒रम् ॥ ४८ ॥

[अन्वयः] इमाः मतीः रुद्राय प्रभरामहे [कीदृशाय] तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय द्विपदे चतुष्पदे यथा शं असत् अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरम् ॥ ४८ ॥

[विग्रहः] क्षयन्तो निवसन्तो वीराः शूरा यत्र स क्षयद्वीरः तस्मै क्षयद्वीराय । यद्वा—क्षयन्तो नश्यन्तो वीरा रिपवो यस्मात् सः क्षयद्वीरः तस्मै क्षयद्वीराय ॥ ४८ ॥

[व्याख्या] इमाः = अस्मदीयाः, मतीः = बुद्धीः, रुद्राय = शङ्कराय, प्रभरामहे = प्रहरामये-समर्पयामः, रुद्रं स्मराम इत्यर्थः । [कीदृशाय] तवसे = महते, बलवते वा, उभयत्र तव शब्दः पठितः । कपर्दिने = जटिलाय, क्षयद्वीराय = शूराय, द्विपदे = पुत्रादये, चतुष्पदे = गवादिपशवे, यथा = येन प्रकारेण, शम् = सुखम्, असत् = भवति, अस्मिन् = कस्मिन्, ग्रामे = वासस्थाने, विश्वम् = सर्वं प्राणिजातम्, पुष्टम् = समृद्धम्, अनातुरम् = निरुपद्रवम् ॥ ४८ ॥

[अर्थः] पूजनीय, जटाजूटको धारणकरनेवाले, वीराग्रणी रुद्र से मैं इस प्रकारकी स्तुति करता हूँ कि मनुष्य पशु तथा इस जगत् के सभीं जीवमात्र नीरोग तथा पुष्ट रहें ॥ ४८ ॥

या ते॑ रुद्र शि॒वा त॒नूः शि॒वा वि॒श्श्वाहा॑ भेष॒जी ।
शि॒वा रु॒तस्य॑ भेष॒जी तया॑ नो मृड जी॒वसे॑ ॥ ४९ ॥

या । ते॒ । रु॒द्र॒ । शि॒वा । त॒नूः । शि॒वा । वि॒श्वाहा॑ । भे॒ष॒जी ।
शि॒वा । रु॒तस्य॑ । तया॑ । भे॒ष॒जी । न॒ः । मृ॒ड॒ । जी॒वसे॑ ॥ ४९ ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! या तनूः शिवा विश्वाहा शिवा भेषजी रुतस्य शिवा भेषजी तया नः जीवसे मृड ॥ ४९ ॥

[व्याख्या] हे रुद्र ! या, ते=तव, तनूः=शरीरम्, [कीदृशी] शिवा=शान्ता, विश्वाहा=सर्वदा, शिवा=कल्याणकारिणी, भेषजी=औषधरूपा संसारव्याधिनिवर्त्तिका, रुतस्य=शारीरव्याधेः, शिवा=समीचीना, भेषजी=निवर्तकौषधिः तया=तन्वा, नः=अस्मान्, जीवसे =जीवितुम्, मृड=सुखय ॥ ४९ ॥

[व्याकरणम्] "मृडपृडसुखने" । विश्वाहा—इत्यत्र "कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इति द्वितीया । तस्या आकारः ॥ ४९ ॥

[अर्थः] हे रुद्र ! शान्त सब दिन तथा सम्पूर्णसमय में कल्याणकरनेवाली संसाररूपी रोग की औषधि तथा शारीरिक रोग का महौषधिरूप जो आपका शरीर है उस अपने शरीर से हम सबों को सुखी बनावें ॥ ४९ ॥

प॑रि॑ नो रु॒द्रस्य॑ हे॒तिर्व्वृ॒णक्तु॒ परि॑ त्वे॒षस्य॑ दुर्म्म॒तिर॑घा॒योऽ ।
अव॑ स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृड ॥५०॥

---

(१) नमस्ते देवदेवाय नमस्ते रुद्रमन्यवे ।
नमस्ते चन्द्रचूडायाप्युतोत इषवे नमः ॥
नमस्ते पार्वतीकान्त नमस्ते मेरुधन्वने ।
नमस्ते भगवाञ्छम्भो बाहुभ्यामुत ते नमः ॥
इषुशिवतमाया ते तया मृडय रुद्रमाम् ।
शिवं धनुर्यद्बभूव तेनापि मृडयाधुना ॥
शरव्यायाशिवतमा तयाति मृडय प्रभो ।
याते रुद्र शिवानित्यं सर्वमङ्गलसाधनः ॥
तयाभिचाकशी हि त्वं वनवामामुमापते ।
अघोरायापि तनुवारुद्राद्या पापकाशिनी ॥

या तया मृडयः स्वामिन्त्सदा शन्तमया प्रभो ।
गिरिशन्त महारुद्र हस्तेयामिषुहस्तवे ॥
बिभर्षिताङ्गिरित्राद्य शिवां कुरु शिवापते ।
शिवेन वचसा रुद्र नित्यं त्वाच्छावदामसि ॥
त्यद्भक्तिपरिपूताङ्गमाहिंसीः पुरुषं जगत् ।
यन्नः शर्वजगत्सर्वमयक्ष्म सुमना ऽअसत् ॥
यथा तथावमां रुद्र तदन्यदपि मे प्रभो ।
रुद्रत्वं प्रथमो दैव्यो भिषक् पापविनाशकः ॥
अधिवक्ताध्यवोचन्मभवलिङ्गार्चकं मुदा ।
अहीन्सर्वान्यातुधान्यः सर्वा अप्यघजं भयम् ॥
असौ ताम्रो रुणो बभ्रुः नीलग्रीवः सुमङ्गलः ।
विलोहितोस्त्ययं शम्भो त्वदधिष्ठानमेव हि ॥
नमो नमस्ते भगवन्नीलग्रीय मीढूषे ।
सहस्राक्षाय शुद्धाय सच्चिदानन्दमूर्तये ॥
उभयोरालियोर्ज्यायाधन्वनस्तां प्रमुञ्चताम् ।
सं प्राप्यं धनुरेन्योर्षां भव्याय (या) प्रभविष्यति ॥

अस्मद्भयविनाशार्थमधुना भयदप्रभम् ।
याश्च ते हस्तइषवः पराताभगवो वप ॥
अवतत्यधनुस्तत्वं सहस्राक्ष शतेषुधे ।
मुखानिशीर्यँ शल्यानां शिवो नः सुमना भव ॥
विज्यं धनुरिदं भूयाद्विशल्यो ऽवाणवानपि ।
अनेषं (शं) त्रिषवोप्यस्यप्योभुरस्तु निषङ्गधिः ॥
कपर्दिनो महेशस्य यदिनाभूर्निषङ्गधिः ।
इषमेवोपि समर्थाश्चेत् साग्रत्वेन भयं भवेत् ॥
याते हेतिधनुर्हस्त मीढुष्टमबभूव या ।
तयास्मान्विश्वतस्तेन पालयत्वमयक्ष्मया ॥
अनाततायायुधाय नमस्ते धृष्णवे नमः ।
बाहुभ्यां धन्वने शम्भो नमो भूयो नमो नमः ॥
परिते धन्वनो हेति विश्वतोस्मान्वृणक्तु सः ।
इषुधिस्तवपस्तावदस्मवारे निधेहितम् ॥
हिरण्यबाहवे तुभ्यं सेनान्ये ते नमो नमः ।
दिशाञ्च पतये तुभ्यं पशूनां पतये नमः ॥

त्विषीमते नमस्तुभ्यं शष्पिञ्जराय ते ।
नमः पथीनां पतये बभ्रूषाय नमो नमः ॥
नमो विव्याधिनेन्नानां पतये प्रभवे नमः ।
नमस्ते हरिकेशाय रुद्रायास्तूपवीतिने ॥
पुष्टानां पतये तुभ्यं जगतां पतये नमः ।
संसारहेतिरुपाय रुद्रायाप्याततायिने ॥
क्षेत्राणां पतये तुभ्यं सूताय सुकृतात्मने ।
अहन्याय नमस्तुभ्यं वनानां पतये नमः ॥
रोहिताय स्थपतये मन्त्रिणे वाणजाय च ।
कक्षाणां पतये तुभ्यं नमस्तुभ्यं भुवन्तये ॥
तद्वारिवस्कृताय महादेवाय ते नमः ।
ओषधीनां च पतये नमस्तुभ्यं महात्मने ॥
उच्चैर्घोषाय धीराय आक्रन्दयते नमः ।
पत्तीनां पतये तुभ्यं कृत्स्नवीताय ते नमः ॥
धावते धवलायाऽपि सत्त्वनां पतये नमः ।
नमस्ते सहमानाय तुभ्यं निव्याधिने नमः ॥

व्याधिनीनां पतये ककुभाय निषङ्गिणे ।
स्तेनानां पतये तुभ्यं दिव्येषुधिमते नमः ॥

तस्कराणां च पतये वञ्चते परिवञ्चते ।
स्तायूनां पतये तुभ्यं नमस्तेऽस्तु निचेरवे ॥

नमः परिचरायापि महारुद्राय ते नमः ।
आरण्यानाञ्च पतये मुष्णतां पतये नमः ॥

उष्णीषिणे नमस्तुभ्यं नमो गिरिचराय ते ।
कुलुञ्चानां च पतये नमस्तेऽस्तु भवाय च ॥

नमोरुद्राय शर्वाय तुभ्यं पशुपते नमः ।
नम ऽउग्राय भीमाय नमो ऽग्रेवधाय च ॥

नमोदूरे वधायापि नमो हन्त्रे नमो नमः ।
हनीयसे नमस्तुभ्यं नीलग्रीवाय ते नमः ॥

नमस्ते शितिकण्ठाय नमस्तुभ्यं कपर्दिने ।
नमस्ते व्युप्तकेशाय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥

गिरिशाय नमस्तेऽस्तु शिपिविष्टाय ते नमः ।
नमस्ते शंभवे तुभ्यं मयो भव नमोस्तु ते ॥

मयस्करनमस्तुभ्यं शङ्कराय नमो नमः ।
नमः शिवाय शर्वाय नमः शिवतराय च ॥
नमस्तीर्थ्याय कुल्याय नमः पार्याय ते नमः ।
अवार्याय नमस्तेऽस्तु नमः प्रतरणाय च ॥
नम उत्तरणायापि हरार्ताय ते नमः ।
आत्माद्याय नमस्तेऽस्तु भक्तानां वरदाय च ॥
नमः शष्प्याय फेन्याय सिकत्याय नमो नमः ।
प्रवाध्याय नमस्तेऽस्तु ह्रस्वायाऽस्तु नमो नमः ॥
वामनाय नमस्तेऽस्तु नमोऽस्तु बृहते नमः ।
वर्षीयसे नमस्तेऽस्तु नमः वृद्धथाय ते नमः ॥
संवृध्वनें नमस्तुभ्यं अग्रियाय नमो नमः ।
प्रथमाय नमस्तुभ्यं आशवेचाजिराय च ॥
शीघ्रियाय नमस्तुभ्यं शीभ्याय च नमो नमः ।
नमऽऊर्म्याय शर्वायप्यस्वन्याय ते नमः ॥
स्रोतस्याय नमस्तुभ्यं द्वीप्याय च तमो नमः ।
ज्येष्ठाय नमस्तुभ्यं कनिष्ठाय च ते नमः ॥

पूर्वजाय नमस्तुभ्यं नमोस्त्वपरजाय च ।
मध्यमाय नमस्तुभ्यमपगल्भाय ते नमः ॥
जघन्याय नमस्तुभ्यं वुधिन्याय नमो नमः ।
सोम्याय प्रतिसर्याय याम्याय च क्षेम्याय च ॥
उर्वयाय नमस्तुभ्यं खल्याय च नमो नमः ॥
श्लोक्याय चावसन्यायावस्वन्याय ते नमः ।
नमो वन्याय कक्षाय श्रवाय च नमो नमः ॥
प्रतिश्रवणाय आशुषेणाय नमो नमः ।
नमस्तुभ्यं शूराय नमोस्त्वा शूरथाय च ॥
वरूथिने वर्मिणे च विल्मिने च नमो नमः ।
श्रुताय श्रुतसेनाय नमः कवचिने नमः ॥
दुन्दुभाय च नमस्तुभ्यं आहनन्याय ते नमः ।
प्रतिहिताय नमस्तुभ्यं धृष्णवे प्रहिताय च ॥
पाराय पारचिदाय नमस्तीक्ष्णेषवे नमः ।
सुधन्वने नमस्तुभ्यं स्वायुधाय नमो नमः ॥

नम स्रुत्याय पथ्याय नमः काद्याय ते नमः ।
नमो नीप्याय कुल्याय सरस्याय च ते नमः ॥
नमो नाद्याय भव्याय वैशन्ताय ते नमः ।
अवट्याय नमस्तुभ्यं अवर्ष्याय ते नमः ॥
कूप्यावर्ष्याय मेध्याय………………… ।
विद्युत्याय नमस्तुभ्यं ईध्रियाय नमो नमः ॥
आतप्याय नमस्तुभ्यं वात्याय च नमो नमः ।
रेष्म्याय च नमस्तुभ्यं वास्तवाय च नमो नमः ॥
वस्तुपाय नमस्तेस्तु नमः सोम्याय ते नमः ।
नमो रुद्राय ताम्राय च रुणाय च ते नमः ॥
नमः उग्राय भीमाय नमः शास्त्राय ते नमः ।
नमस्तीर्थ्याय कूल्याय सिकत्याय नमो नमः ॥
प्रवाह्याय नमस्तुभ्यं इरण्याय च ते नमः ।
नमस्ते चन्द्रचूडाय प्रपथ्याय च ते नमः ॥
किंशिलाय नमस्तेऽस्तु क्षयमाणाय च ते नमः ।
कपर्दिने नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु पुलस्तये ॥

परि॑ । न॒ꣳ । रु॒द्रस्य॑ । हे॒तिः । ꣳवृ॒ण॒क्तु॒ । परि॑ । त्वे॒षस्य॑ ।
दु॒र्म॒तिरिति॑दुꣳ म॒तिः । अ॒घा॒योः । अ॒घ॒योरित्य॑घ॒ घो॒ꣳ ॥ अव॑ ।
स्थि॒रा । म॒घव॑द्ꣳभ्य॒ ऽइति॑ म॒घव॑त् ꣳभ्यꣳ । त॒नु॒ष्व॒ । मीढ्व॒ः । तो॒काय॑ ।
तन॑याय । मृ॒ड॒ ॥ ५० ॥

नमो गोष्ठ्याय गृह्याय ग्रहणं पतये नमः ।
नमस्तल्प्याय गेह्याय गुहावासायते नमः ॥
काट्याय गह्वरेष्ठाय हृदय्याय च ते नमः ।
निवेष्प्याय नमस्तुभ्यं पांसव्याय च ते नमः ॥
रजस्याय नमस्तुभ्यं परात्परतराय च ।
नमस्ते हरिकेशाय शुष्क्याय च नमो नमः ॥
हरित्याय नमस्तुभ्यं हरिहर्णाय ते नमः ।
नम ऊर्व्याय सूर्व्याय पर्ण्याय च नमो नमः ॥
नमो पशुरुमामाणय पर्णशदाय ते नमः ।
अभिघ्नते चाखिदते नमः प्रखिदते नमः ॥
(शिवरहस्ये तृतीयअंशे पूर्वार्द्धे एकादशोध्याये पृ० १४५-१४७)

[अन्वयः] रुद्रस्य हेतिः न परिवृणक्तु त्वेषस्य अघायोः दुर्मतिः परि हे मीढ्व स्थिरा अवतनुष्व [किमर्थम्] मघवद्भ्यः [किंच] तोकाय तनयाय मृड ॥ ५० ॥

[विग्रहः] त्वेषति क्रोधेन ज्वलति त्वेषः तस्य त्वेषस्य। अघं पापं परस्य इच्छति अघायुः तस्य अघायोः। मेहति सिञ्चतीति मीढ्वान् तत्संबुद्धौ हे मीढ्व। मघं हविर्लक्षणं धनं विद्यते येषां ते मघवन्तः यजमानाः तेभ्यः मघवद्भ्यः ॥ ५० ॥

[व्याख्या] रुद्रस्य = शिवस्य, हेतिः = आयुधम्, नः = अस्मान्, परिवृणक्तु = परितो वर्जयतु, अस्मान् मा हन्त्वित्यर्थः। त्वेषस्य = क्रुद्धस्य, अघायोः, दुर्मतिः = दुष्टमतिः द्रोहबुद्धिः, परि = परिवृणक्तु, हे मीढ्व = हे सिक्त !, स्थिरा = स्थिराणि दृढानि धनूंषि, अवतनुष्व = अवतारय, ज्यारहितानि कुरु, (किमर्थम्) मघवद्भ्यः = यजमानानां भयनिवृत्तये इत्यर्थः (किञ्च) तोकाय = पुत्राय, तनयाय = पौत्राय, च, मृड = पुत्रं पौत्रं च सुखय ॥ ५० ॥

[व्याकरणम्] "सुपः आत्मनः क्यच्" इत्यत्र परेच्छायामपि वाच्यमिति क्यच्। "क्यचि च" इतीत्वे प्राप्ते "अश्वाघस्यात्" इत्याकारः। "क्याच्छन्दसि" इत्युप्रत्ययः।" मिह सेचने ॥ ५० ॥

[अर्थः] रुद्र भगवान् अपने अस्त्र तथा हिंसकजीवों से हम सबों को बचावें। तथा हे शिव ! यज्ञादि सत्कर्म करने वाले धनीजनों के निमित्त आप अपने धनुष से ज्याको उतार दीजिये। और पुत्र पौत्रादिकों को सुखी बनावें ॥ ५० ॥

मीढु॑ष्टम॒ शिवं॑तम शि॒वो न॑÷ सु॒मना॑ भव । प॒र॒मे ऽवृ॒क्ष आयु॑धं
नि॒धाय॒ कृत्तिं॒ वसा॑न॒ ऽआच॑र॒ पिना॑कं॒ बिभ्र॒दाग॑हि ॥ ५१ ॥

मीढु॑ष्टम । मीढु॑स्त॒मेति॒ मीढु॑÷ तम । शिवं॑त॒मेति॒ शिवं॑ तम । शि॒वः । न॒ꣳ । सु॒मना॒ ऽइति॑सु मना॑ꣳ । भ॒व॒ । प॒र॒मे । ऽवृ॒क्षे । आयु॑धम् । नि॒धायेति॑नि॒ धाय॑ । कृत्ति॑म् । वसा॑नꣳ । आ । च॒र॒ । पिना॑कम् । बिभ्र॑त् । आ । ग॒हि॒ ॥ ५१ ॥

[अन्वयः] हेमीढुष्टम, हेशिवतम न शिवः सुमनाः भव । परमे वृक्षे आयुधं निधाय कृत्ति वसानः आचर पिनाकं बिभ्रत् आगहि ॥ ५१ ॥

[विग्रहः] अति शयेन मीढवान् मीढुष्टम । अत्यन्तं शिवः शिवतम ॥ ५१ ॥

[व्याख्या] हेमीढुष्टम = अतिशयेन कामसेक्तः, हे शिवतम ! = अत्यन्तं कल्याणकर्तः, नः = अस्मान्, शिवः = शान्तः, सुमनाः = हृष्टचित्ताः, भव, परमे = दूरस्थे, उन्नते वा । वृक्षे = वटादौ, आयुधम् = त्रिशूलादिकम्, निधाय = संस्थाप्य, कृत्ति = चर्म, वसानः = परिदधानः सन् आचर

आगच्छ, तपश्चरेति वा । पिनाकम् = धनुः, बिभ्रत् = धारयन् सन्, आगहि = आगच्छ, (ज्याशरहीनं धनुर्मात्रं शोभार्थं धारयन्नागच्छेत्यर्थः) ॥ ५१ ॥

[कोषः] पिनाको जगबन्धनुः ॥ ५१ ॥

[अर्थः] संसार की इच्छा पूर्ति करनेवाले कल्याणकारी हे शिव हम सबों पर प्रसन्नमना होइये । और अपने त्रिशूल को दूर रख कर हस्तिचर्म को धारण कर तथा ज्यारहित धनुष को साथ ले शान्त होकर तपस्या कीजिये ॥ ५१ ॥

विकि॑रिद्र॒ विलो॑हित॒ नम॑स्ते अस्तु भगवः । यास्ते॑ स॒हस्र॑ꣳ हे॒तयो॒-
न्यम॒स्मन्निव॑पन्तु॒ ताः ॥ ५२ ॥

वि॒कि॑रि॒द्रेति॒वि ऽकि॑रिद्र । वि॒लो॑हि॒ते॒ति॒वि लो॑हित । नम॑ः । ते॒ ।
अ॒स्तु । भ॒ग॒व॒ऽइति॑भग वः ॥ याः । ते॒ । स॒हस्र॑म् । हे॒तय॑ः ।
अ॒न्यम् । अ॒स्मत् । नि । व॒प॒न्तु॒ । ताः ॥ ५२ ॥

[अन्वयः] हे विकिरिद्र ! हे विलोहित ! भगवः ते नमः । अस्तु ते याः सहस्रं हेतयः ताः अस्मत् अन्यम् निवपन्तु ॥ ५२ ॥

[विग्रहः] विविधं किरिं धाताद्युपद्रवं द्रावयति नाशयति विकिरिद्रः । तत्सम्बुद्धौ हे विकिरिद्र ! विगतं लोहितं कल्मषं यस्मात् स विलोहितः तत् सम्बुद्धौ हेविलोहित ! ॥ ५२ ॥

[व्याख्या] हे विकिरिद्र ! हे विलोहित != हे शुद्धस्वरूप !, भगवः = भगवन् , ते = तुभ्यं, नमः, अस्तु, ते = तव, याः, सहस्रं हेतयः = असङ्ख्यानि आयुधानि ताः, अस्मत्, अन्यम् = अस्मद्व्यतिरिक्तम् = निवपन्तु = घ्नन्तु ॥ ५२ ॥

[अर्थः] विविधउपद्रव के नाशक तथा निष्कलल्मष शुद्धस्वरूप हेभगवन् आपको नमस्कार करता हूँ आप अपने असङ्ख्य आयुधों से मेरे शत्रुओं की खबर लीजिये ॥ ५२ ॥

स॒हस्रा॑णि सहस्र॒शो बा॒ह्वोस्तव॑ हे॒तय॑ः । ता॒सामीशा॑नो भगवः
प॒रा॒ची॒ना॒ मुखा॑ कृधि ॥ ५३ ॥

स॒हस्रा॑णि । स॒ह॒स्र॒ऽइति॑ सहस्र॒ऽशः॑ । बा॒ऽह्वोः॑ । तव॑ ।
हे॒तय॑ः । तासा॑म् । ईशा॑नः । भ॒ग॒व॒ऽइति॑ भग॒ऽवः॑ । प॒रा॒चीना॑ ।
मुखा । कृ॒धि॒ ॥ ५३ ॥

[अन्वयः] हे भगवः ! तव बाह्वोः सहस्राणि सहस्रः हेतयः तासां मुखा पराचीना कृधि ईशानः ॥ ५३ ॥

[विग्रहः] ईष्टे इति ईशानः ॥ ५३ ॥

[व्याख्या] हे भगवः = हे भगवन्, षड्गुणैश्वर्यसम्पन्न, तव बाह्वोः = हस्तयोः, सहस्राणि = सहस्रसङ्ख्यानि धनुः खड्गः शूलं वर्मेत्यादिभेदेन सहस्रसंख्यत्वम्। सहस्रशः = धनुरादीनां प्रत्येकं सहस्रसंख्यत्वमित्यर्थः। हेतयः, तासां = हेतीनां, मुखा = मुखानि, पराचीनाः = अस्मत्तः पराङ्मुखानि, कृधि = कुरु। (कीदृशस्त्वम्) ईशानः = जगन्नाथः ॥ ५३ ॥

[व्याकरणम्] करोतेः शपि लुप्ते "श्रुशृणुपॄकृभ्यश्छन्दसि" इति हेर्धिः। सहस्रशः— "संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्" इति शस्प्रत्ययः ॥ ५३ ॥

[अर्थः] हे भगवन् आपके बाहु में सहस्रों आयुध वर्तमान हैं उनके मुखको हमसे विमुख कीजिये ॥ ५३ ॥ भूमिस्था रुद्रा उच्यन्ते—

अस॑ङ्ख्याता स॒हस्रा॑णि॒ षे रु॒द्रा ऽअधि॒ भूम्या॑म्। तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५४ ॥

अस॑ङ्ख्या॒तेत्यस॑म्ऽख्याता। स॒हस्रा॑णी। षे। रु॒द्राऽ। अधि॑। भूम्या॑म्। तेषा॑म्। स॒ह॒स्र॒यो॒ज॒न ऽइति॑सहस्र ऽ षो॒ज॒ने। अव॑। धन्वा॑नि। त॒न्म॒सि॒ ॥ ५४ ॥

[अन्वयः] असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्राः भूम्याम् अधि तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि ॥ ५४ ॥

[व्याख्या] असङ्ख्याता = असङ्ख्यातानि, सहस्राणि = अमितानि, ये, रुद्राः, भूम्याम् = भूमेः, अधि = अपरि स्थिताः, तेषाम् = रुद्राणाम्, धन्वानि = धनूँषि, सहस्रयोजने = सहस्रं योजनानि यस्मिन् तादृशे पथि सहस्रयोजनव्यवहिते मार्गे, अवतन्मसि = अवतन्मः अवतारयामः, [अपज्यानि कृत्वास्मत्तो दूरं क्षिपाम इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

[अर्थः] अमित रुद्र जो भूमिपर निवास करते हैं। उनके धनुष को हम हजारोंयोजन की दूरी पर परित्याग करते हैं ॥ ५४ ॥

अन्तरिक्षस्था रुद्रा उच्यन्ते—

अ॒स्मिन्म॑ह॒त्य॑र्ण॒वे॒ऽन्तरि॑क्षे भ॒वा ऽअधि॑ तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒
धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५५ ॥

अ॒स्मिन् । म॒ह॒ति । अ॒र्ण॒वे । अ॒न्तरि॑क्षे । भ॒वाऽ । अधि॑ ॥ ५५ ॥

[अन्वयः] अस्मिन् अधि भवा तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि महति अर्णवे ॥५५॥

[विग्रहः] अर्णांसि जलानि विद्यन्ते यत्र तत् अर्णवम्, तस्मिन् अर्णवे ॥ ५५ ॥

[व्याख्या] अस्मिन् = अन्तरिक्षे, अधि = अधिश्रित्य, भवा = रुद्राः, तेषाम् = रुद्राणाम्, धन्वानि = धनुंषि, सहस्रयोजने = सहस्रं योजनाति यस्मिन् तादृशे पथि सहस्रयोजनव्यवहिते मार्गे, अवतन्मसि = अवतन्मः अवतारयामः । [अपज्यानि कृत्वास्मत्तो दूरं क्षिपाम इत्यर्थः] [कीदृक्षी अन्तरिक्षे] महति = विशाले, अर्णवे ॥ ५५ ॥

[व्याकरणम्] "अर्णसो लोपश्च" इति वप्रत्ययोऽन्तलोपश्च ॥ ५५ ॥

[अर्थः] समुद्र की तरह विशाल रूप में फैले हुए अन्तरिक्ष में रहनेवाले रुद्रके धनुष को हम हजारों योजन की दूरी पर परित्याग करते हैं ॥ ५५ ॥

द्युस्था रुद्रा उच्यन्ते—

नील॑ग्रीवाः शिति॒कण्ठा॒ दिव॑ꣳ रु॒द्रा उप॑श्रिताः ।
तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५६ ॥

नील॑ग्रीवा॒ ऽइति॒नील॑ ग्रीवाः । शि॒ति॒कण्ठा॒ ऽइति॑ शिति॒ कण्ठा॑ः । दिव॑म् । रु॒द्राः । उप॑श्रिता॒ऽइत्युप॑ श्रिताः । श॒र्वाः । अ॒धः । क्ष॒मा॒च॒रा ऽइति॑ क्षमा च॒राः ॥ ५६ ॥

[अन्वयः] रुद्राः दिवं उपश्रिताः, तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः ॥ ५६ ॥

[विग्रहः] नीला श्यामा ग्रीवा येषां ते नीलग्रीवाः। श्वेतः कण्ठो येषां ते शितिकण्ठाः ॥५६॥

[व्याख्या] रुद्राः, दिवम् = द्युलोकम्, उपश्रिताः = उपरि श्रिताः अधिष्ठिताः। तेषाम् = रुद्राणाम्, धन्वानि = धनूँषि, सहस्रयोजने = सहस्रं योजनानि अस्मिन् तादृशे पथि सहस्रयोजनव्यवहिते मार्गे, अवतन्मसि = अवतन्मः अवतारयामः, [अपज्यानि कृत्वास्मत्तो दूरं क्षिपाम इत्यर्थः] [कीदृशाः] नीलग्रीवाः, शितिकण्ठाः। [विषग्रासात्कियान् कण्ठभागः कृष्णः कियान् श्वेत इत्यर्थः]

[अर्थः] नील तथा श्वेतकण्ठवाले स्वर्ग में रहनेवाले रुद्रके धनुष को हजारों योजन की दूरी पर परित्याग करते हैं ॥ ५६ ॥

पातालस्था रुद्रा उच्यन्ते—

नील॑ग्रीवाः शिति॒कण्ठाः॑ श॒र्वा॑ अ॒धः क्ष॑माच॒राः ।
तेषा॑ᳪ स॒हस्र॒योज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मासि ॥ ५७ ॥

[अन्वयः] अधः शर्वाः क्षमाचराः शेषं पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

[विग्रहः] क्षमाया भुवो ऽधोभागे चरन्ति गच्छन्ति ते क्षमाचराः ॥ ५७ ॥

[व्याख्या] अधः = अधोभागे, शर्वाः = रुद्राः, क्षमाचराः = पाताले वर्तमानाः शेषं पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

[अर्थः] नील तथा श्वेतकण्ठवाले पाताल में निवासकरनेवाले रुद्र के धनुष को हम हजारों योजन की दूरी पर परित्याग करते हैं ॥ ५७ ॥

अश्वत्थादिवृक्षेषु स्थिता रुद्रा उच्यन्ते—

ये व्वृ॒क्षेषु॑ श॒ष्पिञ्ज॑रा॒ नील॑ग्ग्रीवा॒ व्विलो॑हिताः ।
तेषा॑ᳫं स॒हस्र॑योज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५८ ॥

व्वृ॒क्षेषु॑ । श॒ष्पिञ्ज॑राः । नील॑ग्ग्रीवा॒ ऽइति॒ नील॑ ग्ग्रीवाः । व्विलो॑हिता॒ ऽइति॒ वि लो॑हिताः ॥ ५८ ॥

[अन्वयः] ये वृक्षेषु स्थिताः [कीदृशाः] शष्पिञ्जराः नीलग्रीवाः विलोहिता। शेषं पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

[विग्रहः] शष्पं = बालतृणं, तद्वत्पिञ्जरा हरितवर्णाः शष्पिञ्जराः । नीला ग्रीवा येषां ते कण्ठे नीलग्रीवाः, यद्वा–विगतं लोहितं । [लोहितपदं मांसादीनामुपलक्षणम्] रुधिरं येषां ते विलोहिताः ॥ ५८ ॥

[व्याख्याः] ये = रुद्राः, वृक्षेषु = अश्वत्थादिषु, स्थिताः, [कीदृशाः] शष्पिञ्जराः, नीलग्रीवाः, (केचन) विलोहिताः = विशेषेण रक्तवर्णाः, शेषं पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

[अर्थ] जो नीलग्रीवावाले, हरेवर्ण तथा अधिकरक्तवर्ण तेजोमयवृक्षों के अवयवों में निवास करते हैं हम उनके धनुष को हजारों योजन की दूरी पर परित्याग करते हैं ॥ ५८ ॥

ये भू॒ता॒नामधि॑पतयो वि॒शि॒खास॑ः कप॒र्द्दिन॑ः ।
तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५९ ॥

भू॒ताना॑म् । अधि॑पतय॒ ऽइत्यधि॑ पतयः । वि॒शि॒खास॒ ऽइति॑ वि शि॒खास॑ः । क॒प॒र्द्दिन॑ः ॥ ५९ ॥

[अन्वयः] ये तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि । भूतानां अधिपतयः विशिखासः कपर्दिनः शेषं पूर्ववत् ॥ ५९ ॥

[विग्रहः] विगता शिखा [शिखा शब्दः केशोपलक्षणः] येषां ते ॥ ५९ ॥

[व्याख्या] ये = ईदृशा रुद्राः, तेषां, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि, भूतानां = देवविशेषाणाम्, अधिपतयः = अन्तर्हितशरीराः सन्तः मनुष्योपद्रवकरा भूताः तेषां पालकाः, (तत्र केचित्) विशिखासः = मुण्डितमुण्डा इत्यर्थः । [अन्ये] कपर्दिनः = जटाजूटः युताः ॥ ५९ ॥

[अर्थः] जो रुद्र प्राणिमात्र के अधिपति शिखारहित तथा जटाजूटधारी हैं हम उनके धनुष को हजारों योजन की दूरी पर परित्याग करते हैं।

ये प॒थां प॑थि॒रक्ष॑य ऽऐलबृ॒दा ऽआ॑यु॒र्युध॑÷ ।
तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ६० ॥

प॒थाम् । प॒थि॒रक्ष॑य॒ ऽइति॑ प॒थि॒ रक्ष॑यः । ऐ॒ल॒बृ॒दाः । आ॒यु॒र्यु॒ध॒ऽ इत्या॑यु॒ः युध॑÷ ॥ ६० ॥

[अन्वयः] ये तेषां धन्वानि सहस्रयोजने अवतन्मसि। पथां पथिरक्षय ऐल वृदा आयुर्युधः शेषं पूर्ववत्॥ ६० ॥

[विग्रहः] पथो मार्गाः तानि एव अन्यानि अपि रक्षन्ति पालयन्ति ते पथिरक्षयः। इलानामन्नानां समूह ऐलम् अन्नसमूहः। यद्वा—इला=पृथ्वी तस्या इदमैलम्=अन्नं, तद्बिभ्रति ते ऐलभृतः त एव परोक्षवृत्या ऐलबृदाः। आयुषा जीवनेन युध्यन्ते ते यावज्जीवयुद्धकरा आयुर्युधः। यद्वा—आयुर्जीवनं पणीकृत्य युध्यन्ते ते आयुर्युधः शेषं पूर्ववत्॥ ६० ॥

[व्याख्या] ये=रुद्राः, तेषाम्, धन्वानि, सहस्रयोजने, अवतन्मसि, पथाम्=लौकिक-वैदिकमार्गाणाम्, पथिरक्षयः, ऐलबृदाः—अन्नैर्जन्तूनां पोषका इत्यर्थः आयुर्युधः॥ ६० ॥

[अर्थः] जो लौकिक तथा वैदिकमार्ग के पूर्व तक ईश्वर रूप है, जो मर्यादा रूप मार्ग के प्रवर्तक राजारूप है, जो जीवों के पोषणार्थ अस्त्र को धारण करते है तथा जो आजन्म युद्ध करनेवाले हैं इन सब प्रकार के रुद्र के धनुष को हम हजारों योजन दूर परित्याग करते हैं ॥ ६० ॥

ये ती॒र्थानि॑ प्र॒चर॑न्ति सृ॒काह॑स्ता नि॒ष॒ङ्गिण॑÷ ।
तेषा॑ꣳ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ६१ ॥

ती॒र्थानि॑ । प्प्र॒चर॒न्तीति॑प्र चर॑न्ति । सृ॒काह॑स्ता॒ऽइति॑ सृ॒का ह॑स्ताꣳ॑ । नि॒ष॒ङ्गिण॑÷ ॥ ६१ ॥

[अन्वयः] ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ताः निषङ्गिणः । शेषं पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

[विग्रहः] सृका आयुधानि हस्ते येषां ते सृकाहस्ताः । निषङ्गाः खड्गा विद्यन्ते येषां ते निषङ्गिणः ॥ ६१ ॥

[व्याख्याः] ये = रुद्राः, तीर्थानि = प्रयागकाश्यादीनि, प्रचरन्ति = गच्छन्ति, [कीदृशाः] सृकाहस्ताः, निषङ्गिणः, शेषं पूर्ववत् ॥ ६१ ॥

[अर्थः] जो रुद्र अपने हाथों में आयुध तथा विशेषतः तलवार लेकर काशी प्रयागादि

तीर्थों में रक्षा के निमित्त विचरण करते हैं। हम उनके धनुप को हजारों योजन की दूरी पर परित्यागते हैं ॥ ६१ ॥

येन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

अन्नेषु । विविध्यन्तीतिं वि विध्यन्ति । पात्रेषु । पिबतः । जनान् ॥६२॥

[अन्वयः] ये अन्नेपु जनान् विविध्यन्ति (तथा) पात्रेपु पिबतः । शेपं पूर्ववत् ॥ ६२ ॥

[व्याख्याः] ये = रुद्राः, अन्नेपु = भुज्यमानेपु, जनान्, विविध्यन्ति = विशेपेण ताडयन्ति । धातुवैषम्यं कृत्वा रोगान् उत्पादयतीत्यर्थः । पात्रेपु = पात्रस्थक्षीरोदकादिपु स्थिताः सन्तः, पिबतः । शेषं पूर्ववत् ॥ ६२ ॥

[अर्थः] जो छोटे कीट पतङ्गरूपसे भोजन तथा पीने के पात्र में रहते हैं। और खाने तथा पीने वालों को रोग उत्पन्न कर पीड़ित करते हैं। हम उनके धनुष को हजारों योजन की दूरी पर परित्यागते है ॥ ६२ ॥

य एतावन्तश्च भूयाᳫंसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाᳫं सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

ए॒तावं॑न्तः । च॒ । भू॒यांꣳ॑सः । च॒ । दिशः॑ । रु॒द्राः । वि॒त॒स्थि॒र इति॑ वि त॒स्थि॒रे ॥ ६३ ॥

[अन्वयः] ये रुद्राः एतावन्तः च भूयांसः दिशः वितस्थिरे । शेषं पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

[विग्रहः] एतत् प्रमाणं येषां ते एतावन्तः । अतिशयेनबह्वोभूयांसः ॥ ६३ ॥

[व्याख्याः] ये=रुद्राः, एतावन्तः, च, भूयांसः दिशः वितस्थिरे । शेषं पूर्ववत् ॥ ६३ ॥

[अर्थः] जो ऊपर के मन्त्रों में कहे गये हैं, तथा जिनका कथन हम नहीं कर सकते हैं ऐसे रुद्र जो दशों दिशाओं में व्याप्त हैं हम उनके धनुष को सहस्र योजन की दूरी पर निक्षेप करते हैं ॥ ६३ ॥

त्रिलोकस्था रुद्रा उच्यन्ते—

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये दि॒वि येषां॑ व॒र्षमिष॑वः । तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः । तेभ्यो॒ नमो॑ ऽअस्तु ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वे॒ष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥६४॥

नम॑ः । अ॒स्तु । रु॒द्रेभ्य॑ः । ये । दि॒वि । येषा॑म् । व॒र्षम् । इष॑वः ॥
तेभ्य॑ः । दश॑ । प्राची॑ः । द॒क्षि॒णा । प्र॒तीची॑ः । उदी॑चीः । ऊ॒र्ध्वाः ॥
अ॒न्तरि॑क्षे । वात॑ः ॥ पृ॒थि॒व्याम् । अन्न॑म् ॥ ६४ ॥

[अन्वयः] दिवि ये येषां वर्षम् इषवः तेभ्यः नमः तेभ्यः दशप्राचीः दशदक्षिणाः दशप्रतीचीः दशोदीचीः दशोदर्ध्वाः नमः तेन भवन्तु तेन मृडयन्तु न द्वेष्टितम् एषां जम्भेदध्मः ॥ ६४ ॥

[व्याख्या] दिवि=द्युलोके, ये=रुद्राः, येषाम्=रुद्राणाम्, वर्षम्=वृष्टिरेव, इषवः=बाणाः तेभ्यः=रुद्रेभ्यः, नमः नमस्कारोऽस्तु, तेभ्यः, रुद्रेभ्यः, दशप्राची=दशसङ्ख्याकाः, दशदक्षिणाः=दक्षिणाभिमुखः, दशप्रतीचीः=प्रत्यङ्मुखाः दशाङ्गुलीः, दशोदीचीः=उदीचीः उदङ्मुखाः दशाङ्गुलीः, दशोर्ध्वाः=उपरिदशाङ्गलीः, नमः, ते=रुद्राः, न=अस्मान्, भवन्तु=रक्षन्तु, ते, न, मृडयन्तु=सुखयन्तु, न, द्वेष्टि=द्वेषं करोति, तम्=पुरुषम्, एषाम्, पूर्वोक्तानां रुद्राणाम्, जम्भे=दंष्ट्राकराळे मुखे, दध्मः=स्थापयामः ॥ ६४ ॥

[अर्थः] जो रुद्र द्युलोक में निवास करते हैं तथा वर्षा ही रूप जिनका बाण है हम उनको नमस्कार करते हैं। तथा दशों अङ्गुलियों से युक्त दोनों करों से हम पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा ऊपर चारों ओर से नमस्कार करते हैं। वे रुद्र हम सबों की रक्षा करें तथा सुखी बनावें। और

जिससे हम द्वेष करते तथा जो मुझसे द्वेष करता है इन दोनों प्रकार के शत्रु को उपरोक्त रुद्र के मुख में डालते हैं। अर्थात् रुद्र मेरे शत्रुओं का नाश तथा मेरी रक्षा करें ॥ ६४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः। तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६५ ॥

[**अन्वयः**] ये अन्तरिक्षे तेभ्यः रुद्रेभ्यः नमः अस्तु येषां वात इषवः। शेषं पूर्ववत् ॥६५॥

[**व्याख्या**] ये=रुद्राः, अन्तरिक्षे, तेभ्यः, रुद्रेभ्यः, नमः, अस्तु, येषाम्=रुद्राणाम्, वातः = वायुः, [वायुः आयुधस्थानीयः कुवातेनान्नं विनाश्य वातरोगं वा उत्पाद्य जनान् घ्नन्ति तेभ्यो अन्तरिक्षस्थेभ्यो वातेभ्यो रुद्रेभ्यो नमः। अवशिष्टं व्याख्यातम् ॥ ६५ ॥

[**अर्थः**] जो रुद्र अन्तरिक्षलोक में निवास करते हैं तथा जिनके बाण पवन हैं शेष ६४ मन्त्रवत् समझना चाहिये ॥ ६५ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः। तेभ्यो दश

प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः। तेभ्यो नमो अस्तु ते नोवन्तु ते नो मृडयन्तु ते षं द्विष्मो षश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६६ ॥

[अन्वयः] ये पृथिव्यां येषाम् अन्नम् इषवः तेभ्यः रुद्रेभ्यः नमः। शेषं पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

[व्याख्याः] येरुद्राः, पृथिव्याम्, येषाम्, अन्नम् = अदनीयं वस्तु, इषवः, तेभ्यः = पृथिवीस्थेभ्योऽन्नायुधेभ्यः, रुद्रेभ्यः, नमः। शेषं पूर्ववत् ॥ ६६ ॥

[अर्थः] जो रुद्र पृथिवीलोक में निवास करते हैं तथा जिनका बाण अन्न है शेष ६४ मन्त्रवत् समझना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः

अथ षष्ठोऽध्यायः

व॒यꣳ सोम ऽव्र॒ते तव॒ मन॑स्त॒नूषु॒ बिभ्र॑तꣳ । प्र॒जाव॑न्तः सचेमहि ॥१॥

ऽव॒यम् । सो॒म॒ । ऽव्र॒ते । तव॑ । मन॑ः । त॒नूषु॑ । बिभ्र॑तꣳ । प्र॒जाव॑न्त॒ ऽइति॑ प्र॒जा व॑न्तꣳ । स॒चे॒म॒हि॒ ॥ १ ॥

[अन्वयः] हे सोम ! वयं तव व्रते तनूषु मनः बिभ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि ॥ १ ॥

[व्याख्या] हे सोम != हे सोमनामकोदेवः, वयम् = यजमानाः, तव, व्रते = कर्माणि वर्तमानाः, तनूषु = भवच्छरीरेषु, मनः, बिभ्रतः = धारयन्तः, प्रजावन्तः = पुत्रपौत्रादिसम्पन्नाः सन्तः, सचेमहि = सेवेमहि, सेव्यतानि वस्तूनीति शेषः। यद्वा—'षच सम्बन्धे' सर्वदा त्वत्सम्बद्धा भवेम ॥ १ ॥

[अर्थः] हेसोमनामकदेवता ! हम सब यजमान तुम्हारे कर्म में वर्तमान होते हुए आपके शरीरादियों में मन को धारण करते हुए और पुत्र-पौत्रादियुक्त हमलोग सेवा करते हैं, या सर्वदा सम्बन्धवाले हमलोग हैं ॥ १ ॥

ए॒ष ते॑ रु॒द्र भा॒गः स॒ह स्वस्राम्बि॑कया॒ तं जु॑षस्व॒ स्वाहै॒ष ते॑ रुद्र भा॒ग ऽआ॒खुस्ते॑ प॒शुः ॥ २ ॥

ए॒षः । ते॒ । रु॒द्र॒ । भा॒गः । स॒ह । स्वस्रा॑ । अम्बि॑कया । तम् । जु॒ष॒स्व॒ । स्वाहा॑ । आ॒खुः । ते॒ । प॒शुः ॥ २ ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! ते स्वस्रा अम्बिकया सह एषः भागः तं जुषस्व स्वाहा हे रुद्र ! एष ते आखुः पशुः ॥ २ ॥

[व्याख्या] हे रुद्र !, ते=तव, स्वस्रा=भगिन्या, अम्बिकया=अम्बिकानाम्न्या, सह, एषः=अस्माभिर्दीयमानः पुरोडाशः, भागः=भजनीयः स्वीकर्तुं योग्यः, तम्=तथाविधं पुरोडाशम्, जुषस्व=सेवस्व, स्वाहा=इदं हविर्दत्तं सुहुतमस्तु, हे रुद्र !, एषः=अस्माभिरुपकीर्यमाणोऽतिरिक्तः पुरोडाशः, ते, भागः=त्वया भजनीयः, तथा ते, आखुः=मूषकः, पशुः=पशुत्वेन समर्पितः। आखुदानेन तुष्टो रुद्रस्तयाम्बिकया यजमानपशून्नमारयतीत्यर्थः ॥ २ ॥

[अर्थः] हे रुद्रदेव ! तुम्हारी बहिन अम्बिका के साथ हम लोगों से दीपमान पुरोडाश स्वीकार करने योग्य है। इसलिए इस पुरोडाश की सेवा करो, इसमें हविर्दत्त सुहुत हो, हे रुद्र ! हमलोगों से उपकीर्यमाणातिरिक्तपुरोडाश तुम्हारे स्वीकारकरने योग्य हो, इसलिए तुम्हारा मूषा

(चूहा) पशुत्वेन समर्पित (रक्षणीयपशु) है। अर्थात् मूषकदान से अम्बिका के साथ प्रसन्नचित्तवाले रुद्र यजमान और पशुओं को नहीं मारते हैं ॥ २ ॥

अव॑ रु॒द्रम॑दीम॒ह्यव॑ दे॒वन्त्र्य॑म्बकम्। यथा॑ नो॒ वस्य॑स॒स्कर॒द्यथा॑ न॒ꣳ श्रेय॑स॒स्कर॒द्यथा॑ नो व्यवसा॒यया॑त् ॥ ३ ॥

अव॑। रु॒द्रम्। अ॒दी॒म॒ही॒। अव॑। दे॒वम्। त्र्य॑म्बक॒मिति॒ त्रि॒ अम्ब॑कम्। यथा॑। न॒ꣳ। वस्य॑सꣳ। कर॑त्। श्रेय॑सꣳ। व्य॒व॒सा॒य॒या॒दिति॒ वि अ॒व॒सा॒यया॑त् ॥ ३ ॥

[अन्वयः] रुद्रम् अव अदीमहि त्र्यम्बकं यथा न-वस्यसः करत् यथा नः श्रेयसः करत् व्यवसाययात् ॥ ३ ॥

[समासः] त्रीणि अम्बिकानि नेत्राणि यस्य असौ त्र्यम्बकः तं त्र्यम्बकम्। वस्यसः वसतीति वस्ता अतिशयेन वस्ता वसीयान् ॥ ३ ॥

[व्याख्या] रुद्रम् अव = असौ रुद्र इति मनसा तमवगत्य, अदीमहि = त्वदनुग्रहादन्नं भक्षयेम, (तथा) त्र्यम्बकम् = त्रिनेत्रोऽयं देवम्, यथा = येन प्रकारेण, नः = अस्मान्, वस्यसः =

वस्तवान् वसनशीलान् करत् = असौ कुर्यात् यथा न श्रेयसः = ज्ञातिषु प्रस्तरान् कुर्यात् व्यवसाययात् = सर्वेषु कार्येषु निश्चययुक्तान् कुर्यात् तथैनं जपाम इत्यर्थः ॥ ३ ॥

[व्याकरणम्] आशीरियम् = अदीमहि "छन्दस्युभयथा" इत्यार्धधातुकत्वाल्लिङि णिचो लोपः, "तुरिष्ठेमेयः सु" इति सूत्रेण तृनो लोपः। वसीयस इति प्राप्ते ईलोपश्छन्दसः। करत्—"छन्दसि लुङ्लङ्लिटः" इति सूत्रेण लुङ्। विकरणव्यत्ययेन शपि गुणः। "बहुलं छन्दस्यामाङ्योगेऽपि" इति सूत्रेण अडभावः। व्यवसाययात्—लेटि आडागमे "इतश्च लोपः परस्मैपदेषु" इति सूत्रेण इलोपे रूपं विपूर्वस्य ण्यन्तस्य स्यतेः ॥ ३ ॥

[अर्थः] रुद्र मन से जानकर तुम्हारे अनुग्रह से भक्षण करते हैं। त्रिनेत्रदेव जिसप्रकार वसनशीन करें। ज्ञातियों निश्चययुक्त करें ॥ ३ ॥

भे॒ष॒जम॑सि भेष॒जङ्गवेऽश्वा॑य॒ पुरु॑षाय भेष॒जम् ।
सु॒खं मे॒षाय॑ मे॒ष्यै ॥ ४ ॥

भे॒ष॒जम् । अ॒सि॒ । भे॒ष॒जम् । गवे॑ । अश्वा॑य । पुरु॑षाय । भे॒ष॒जम् ।
सु॒षमिति॑सु॒ षम् । मे॒षाय॑ । मे॒ष्यै ॥ ४ ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! त्वम् भेषजम् असि, गवे अश्वाय पुरुषाय भेषजम् मेषाय मेष्यै ॥ ४ ॥

[विग्रहः] सुहितं खेभ्यः प्राणेभ्यः इति सुखम् ॥ ४ ॥

[व्याख्या] हे रुद्र। त्वम् भेषजमसि=औषधवत्सर्वोपद्रवनिवारकोऽसि, [अतः] गवे, अश्वाय, पुरुषाय, भेषजम्—सर्वव्याधिनिवारकमौषधम् देहि, मेषाय, मेष्यै, सुखं देहि [अनेन मन्त्रेण गृहपशूनां क्षेमप्राप्तिर्भवति] ॥ ४ ॥

[अर्थः] हे रुद्रदेव ! तुम औषधिवत् सम्पूर्णउपद्रव के निवारक हो, इसलिए गौ, घोड़े और पुरुष के लिए सर्वव्याधिनिवारणऔषध (दवा) दो। मेष और मेषी आदि पशु के लिए सुख दो ॥ ४ ॥

त्र्यं॑म्बकं ऽषजामहे सु॒गन्धिं॑ पुं॑ष्टि॒वर्द्ध॑नम्। उ॒र्व्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नान्मृ॒त्योर्मु॑क्षीय॒ मामृता॑त्। त्र्यं॑म्बकं ऽषजामहे सु॒गन्धिं॑ प॑ति॒वेद॑नम्। उ॒र्व्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नादि॒तो मु॑क्षीय॒ मामुतः॑ ॥ ५ ॥

त्र्यं॑म्बक॒मिति॒ त्रि अं॑म्बकम्। ष॒जा॒म॒हे॒। सु॒ग॒न्धिमिति॑सु ग॒न्धिम्। पु॒ष्टि॒वर्द्ध॑न॒मिति॑ पुष्टि॒ व॒र्द्ध॑नम्। उ॒र्व्वा॒रु॒कमि॒वेत्यु॑र्वा॒रु॒कम्।

इव । बन्धनात् । मृत्योः । मुक्षीय । मा । अमृतात् । पतिवेदनमिति पति वेदनम् ॥ इतः । मुक्षीय । मा । अमुतः ॥ ५ ॥

[अन्वयः] सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं त्र्यम्बकं यजामहे । मृत्योः मुक्षीय अमृतात् मा उर्वारुकम् इव बन्धनात् । सुगन्धिं त्र्यम्बकं यजामहे पतिवेदनं उर्वारुकम् इव बन्धनात् इतः मुक्षीय अमृतः मा ॥५॥

[समासः] पतिं वेदयतीति पतिवेदनः तं पतिवेदनम् ॥ ५ ॥

[व्याख्या] सुगन्धिम् = दिव्यगन्धोपेतं मर्त्यधर्महीनम्, पुष्टिवर्धनम् = धनधान्यादिपुष्टेर्वर्धयितारम्, त्र्यम्बकम् = नेत्रत्रयोपेतं रुद्रम्, यजामहे = पूजयामः, मृत्योः = अपमृत्योः संसारमृत्योश्च, मुक्षीय = मुक्तो भूयासम्, अमृतात् = स्वर्गरूपान्मुक्तिरूपाच्च मा = मुक्तो भूयास्मेत्यर्थः । नृमत्युर्मोचने दृष्टान्तः । उर्वारुकम् इव = यथा उर्वारुकं कर्कन्ध्वादेः फलमत्यन्तपक्वं शत्, बन्धनात् = स्वस्य वृन्तात् स्वमुच्यते तद्वत् । सुगन्धिम्, त्र्यम्बकम्, यजामहे, [कीदृशम्] पतिवेदनम् = भर्तुलम्भयितारम्, विद्लृलाभे । उर्वारुकम्, इव, बन्धनात्, इतः मातृपितृभ्रातृवर्गात्, मुक्षीय = मुक्तो भूयासम्, अमुतः = विवाहादूर्ध्वं भविष्यतः पत्युः, मा = मुक्तो भूयासम्, [जनकस्य गोत्रं गृहं च परित्यज्य पत्युर्गोत्रे गृहे च सर्वदा त्र्यम्बकप्रसादाद्वसामीत्यर्थः ॥ ५ ॥

[अर्थः] दिव्यगन्धोपेतधनधान्यादिपुष्टि को वर्धयितारनेत्रत्रयोपेत हमलोग शिवकी पूजा करते हैं। अपमृत्यु और संसार मृत्यु से मुक्त करे। स्वर्गरूपमुक्तिरूप से न मुक्त करे। जैसे ककन्धु

(ककड़ी) फल अत्यन्त पक्क होने से टूट जाती है उसकी तरह। पितृमातृवर्ग से मुक्त हो। विवाह के बाद पति से मुक्त न होऊं। (अर्थात् पिता के गोत्र और गृह का परित्याग कर पति के गोत्र और घर में सर्वदा शिवजी के प्रसाद से वास करूं ॥ ५ ॥

ए॒तत्ते॑ रुद्द्राव॒सन्तेन॑ प॒रो मूज॑व॒तोती॑हि । अव॑ततधन्न्वा॒ पिना॑कावस॒ः कृत्ति॑वा॒सा ऽअहि॑ᳪं सन्नः॑ शि॒वोती॑हि ॥ ६ ॥

ए॒तत् । ते॒ । रु॒द्द्र॒ । अ॒व॒सम् । तेन॑ । प॒रः । मूज॑व॒त॒ ऽइति॒मूज॑व्वतः । अति॑ ॥ इ॒हि॒ । अव॑ततधन्वेत्यव॑तत धन्वा । पिना॑कावस॒ ऽइति॒ पिना॑क अवसः । कृत्ति॑वा॒सा ऽइति॒ कृत्ति॑ व्वासाः । अहि॑ᳪंसन् । न॒ः । शि॒वः । अति॑ । इ॒हि॒ ॥ ६ ॥

[अन्वयः] हे रुद्र ! एतत् अवसं[1] तेन मूजवतः[2] सत् नः अतीहि अवततधन्वा[3] पिनाकावसः[4] कृत्तिवासा अहिंसन् शिवः ॥ ६ ॥

---

(१) अवसशुद्धेन देशान्तरं गच्छतो मार्गमध्ये तटाकादिसमीपे भोक्तव्य ओदनविशेष उच्यते ।

(२) मूजवन्नाम कश्चित् पर्वतो रुद्रस्य वासस्थानन् ।

[विग्रहः] पिनाकाख्यं त्वदीयं धनुरावस्ते सर्वत आच्छादयतीति पिनाकावसः ॥ ६ ॥

[व्याख्या] हे रुद्र ! एतत् = ते, अवसम् = हविःशेषाख्यं भोज्यम्, तेन मूजवतः = पर्वतात्, परः = पार भागवर्त्ती, सत्, नः = अस्मान, अतीहि = अतिक्रम्य गच्छ [कीदृशस्त्वम्] अवततधन्वा = अवरोपितधनुष्कः, पिनाकावसः, कृतिवासाः = चर्म्माम्बरः, अहिंसन् = हिंसामकुर्वन्, शिवः = अस्मदीयपूजया सन्तुष्टः कोपरहितो भूत्वा, अतीहि = पर्वतमतिक्रम्य गच्छ ॥ ६ ॥

[अर्थः] हे रुद्रदेव ! तुमारा हविः शेषाख्यभोजन है, पर्वत से पर भागवर्त्ती हम लोगों को अतिक्रमणकर जाओ । [कैसे तुम हो] रोपितधनुष्कपिनाकारधनुषचर्म्माम्बितहिंसा नहीं करते हुए हमारी पूजा से सन्तुष्ट कोप रहित हो पर्वतको अतिक्रम कर जाओ ॥ ६ ॥

त्र्यायुषञ्जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् ।
षद्देवेषु त्र्यायुषन्तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम् ॥ ७ ॥

---

(३) अस्मद्विरोधिनां त्वया निवारितस्त्वादित ऊर्ध्वं धनुषि ज्यासमारोपणस्य प्रयोजनाभावादवरोपणमेवेदानीमुक्तम् !

(४) यथा धनुर्दंष्ट्वा प्राणिनो न बिभ्यति तथा त्वदीयम् धनुर्वस्त्रादिना प्रच्छाद्य गच्छेत्यर्थः ।

त्र्यायुषमितिंत्रि आयुषम् । जमदग्नेरितिंषमत् अग्नेः । कश्यपंस्य । त्र्यायुषमितिं त्रि आयुषम् । षत् । देवेषु ॥ त्र्यायुषमितिं त्रि आयुषम् । तत् । नः । अस्तु । त्र्यायुषमितिं त्रि आयुषम् ॥ ७ ॥

[अन्वयः] जमदग्नेः यत् त्र्यायुषं कश्यपस्य त्र्यायुषं देवेषु त्र्यायुषं नः अस्तु ॥ ७ ॥

[विग्रहः] त्रयाणां बाल्ययौवनस्थाविराणामायुषां समाहारः त्र्यायुषम् ॥ ७ ॥

[व्याख्याः] जमदग्नेः = मुनेः, यत्, त्र्यायुषम् [तथा] कश्यपंस्य = कश्यपस्यैतन्नामकस्य प्रजापतेः, त्र्यायुषम्, देवेषु = इन्द्रादिषु, यत्, त्र्यायुषम् [अस्ति] [तत् सर्वम् त्र्यायुषम्] नः = अस्माकम् यजमानाम्, अस्तु [जमदग्न्यादीनां बाल्यादिषु यादृशं चरितं तादृशं नो [अस्माकम्] भूयादित्यर्थः] ॥ ७ ॥

[अर्थः] जमदग्निऋषि की कश्यप प्रजापति की और इन्द्रादियों की जो त्र्यायुष है वह सब हम सब यजमानों को हो । [अर्थात् जमदग्न्यादियों का बाल्यादियों में जैसा चरित्र है वैसा हम लोगों में हो जाय] ॥ ७ ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽअस्तु मा मां हिंसीः ।

निव॑र्त्तया॒म्यायु॑षे॒ऽन्नाद्या॑य प्प्र॒जन॑नाय रा॒यस्पोषा॑य सुप्प्रजा॒स्त्वाय॑ सुवीर्य्या॑य ॥ ८ ॥

शि॒वः। नाम॑। अ॒सि॒। स्वधि॑ति॒रिति॒ स्वऽधि॑तिः। ते॒। पि॒ता। नम॑ः। ते॒। अ॒स्तु॒। मा। मा॒। हि॒ꣳसीः॒ ॥ नि। व॒र्त्त॒या॒मि॒। आयु॑षे। अ॒न्ना॒द्याये॒त्य॑न्न॒ऽअद्या॑य। प्प्र॒जन॑न॒ायेति॑ प्प्र॒ऽजन॑नाय। रा॒यः। पोषा॑य। सु॒प्प्र॒जा॒स्त्वायेति॑ सु॒प्प्र॒जाः त्वाय॑। सु॒वी॒र्य्या॒येति॑ सु॒ऽवीर्य्या॑य ॥ ८ ॥

[अन्वयः] हेक्षुर ! त्वम्, नाम शिवः असि स्वधितिः ते पिता ते नमः अस्तु मा हिंसीः निवर्त्तयामि आयुषे अन्नाद्याय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ ८ ॥

[व्याख्याः] हेक्षुर ! त्वम्, नाम = नाम्ना, शिवः = शान्तः, असि = भवसि, स्वधितिः = वज्रम्, ते = तव, पिता, ते = तुभ्यम्, नमः, अस्तु, मा = माम्, माहिंसीः = मा विनाशय, हेयजमान ! त्वाम्, निवर्त्तयामि = मुण्डयामि [किमर्थम्] आयुषे = जीवनाय, अन्नाद्याय = अन्नभक्षणाय,

प्रजननाय=सन्तानाय, रायस्योपाय=धनस्यपुष्ट्यै, सुप्रजास्त्वाय=शोभनपत्यतायै, सुवीर्याय=शोभनसामर्थ्याय ॥ ८ ॥

[अर्थ] हेक्षुर देव ! तुम नाभ से शान्त हो, वज्र तुम्हारा पिता है, तुम्हारे लिए नमस्कार है मुझको मत मारना, हेयजमान ! मुडित करता हूँ, जीवन, अन्न, भक्षण, सन्तान, धनपुष्टि प्रभृति के लिए ॥ ८ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः।

---

(१) "नतं विदाथ०" अ० १७ म० ३१, "विश्वकर्मा ह्यजनि०" अ० १७ म० ३२, इत्यधिकपाठो दृश्यते देवकृतपद्धतौ, इदानीं न प्रचलति। इति रुद्रकल्पद्रूमे पृ० २७४।

अथ सप्तमोध्यायः

[२]उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॑ ध्वा॒न्तश्च॒ धुनि॑श्च । सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिप॒ः स्वाहा॑ ॥ १ ॥

उ॒ग्रः । च॒ । भी॒मः । ध्वा॑न्त ऽइति॒ धू आ॑न्तः । धुनि॑ः ॥ सा॒स॒ह्वान् । स॒स॒ऽह्वानिति॑ सस॒ऽह्वान् । अ॒भि॒युग्वेत्य॑भि ऽयु॒ग्वा । च॒ । वि॒क्षिप॒ऽइति॑ वि॒ क्षिप॑ः । स्वाहा॑ ॥ १ ॥

[अन्वयः] उग्रः च भीमः च ध्वान्तः धुनिः च सासह्वान् अभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥ १ ॥

[विग्रहः] बिभेति अस्मात् असौ भीमः। ध्वनति शब्दं करोतीति ध्वान्तः। धूनयति

---

(२) उग्रश्चेति तिसृभिः सप्तभिर्वा रुद्रजटा नाम्नीभिश्चेति परशुरामादयः। निर्मूलत्वान्नेति देवयाज्ञिकादयः।

कम्पयति शत्रून् इति धुनिः। सहते शत्रून् अभिभवति सासह्वान् । अभियुनक्ति अस्मत्संमुखं योगं प्राप्नोति इति अभियुग्वा। विविधं क्षिपति रिपून् इति विक्षिपः ॥ १ ॥

[व्याख्या] उग्रः = उत्कृष्टः, च, भीमः, च, ध्वान्तः, च धुनिः, च, सासह्वान्, अभियुग्वा, च, विक्षिपः स्वाहा ॥ १ ॥

[व्याकरणम्] "सहतेः क्वसुश्च" इति क्वसुप्रत्ययः। संहितायामभ्यासदीर्घश्छान्दसः । 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति युजेः क्वनिप् प्रत्ययः। विक्षिपः—"इगुपधः ज्ञा प्रीकिरः कः" इति क प्रत्ययः ॥ १ ॥

[अर्थः] (१) उग्र, (२) भीम, (३) ध्वान्त, (४) धुनि, (५) सासह्वान्, (६) अभियुग्वा, और (७) विक्षिप ये सात तत् २ नामवाले मरुतों के लिए सुहुत हो ॥ १ ॥

अ॒ग्निꣳ हृद॑येना॒शनिꣳ॑ हृदया॒ग्ग्रेण॑ पशु॒पतिं॑ कृत्स्न॒हृद॑येन भ॒वं
य॒क्ना । श॒र्वं मत॑स्नाभ्या॒मीशा॑नं म॒न्युना॑ महादे॒वम॑न्तःपर्श॒व्ये॒नो-
ग्ग्रन्दे॒वं व॑नि॒ष्ठुना॑ वसि॒ष्ठहनुः॑ शिङ्गी॑नि को॒श्याभ्या॑म् ॥ २ ॥

अ॒ग्निम् । हृद॑येन । अ॒शनि॑म् । हृ॒द॒या॒ग्रेणेति॑ हृदय अ॒ग्रेण॑ ।

प॒शु॒पति॒मिति॑ पशु॒ पति॑म् । कृ॒त्स्न॒हृ॒द॑ये॒नेति॑ कृत्स्न॒ हृद॑येन । भ॒वम् । य॒क्ना ॥ श॒र्वम् । मत॑स्नाऽभ्याम् । ईशा॑नम् । म॒न्युना॑ । म॒हा॒दे॒वमिति॑ म॒हा दे॒वम् । अ॒न्तः॒ प॒र्श॒व्येनेत्य॑न्तः प॒र्श॒व्येन॑ । उ॒ग्रम् । दे॒वम् । व॒नि॒ष्ठुना॑ । व॒सि॒ष्ठ॒ह॒नु॒रिति॑ वसिष्ठ॒ हनु॑ः । शि॒ङ्गीनि॑ । को॒श्याऽभ्या॑म् ॥ २ ॥

[अन्वयः] हृदयेन अग्निं हृदयाग्रेण अशनिं कृत्स्नहृदयेन पशुपतिं यक्ना भवं मतस्नाभ्यां शर्वं मन्युना ईशानम् अन्तः पर्शव्येन महादेवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः कोशाभ्याम् ॥ २ ॥

[विग्रहः] मतस्ने हृदयास्थिविशेषौ ताभ्यां मतस्नाभ्याम् । वनिष्ठुः स्थूलान्त्रं तेन वनिष्ठुना ॥ २ ॥

[व्याख्या] हृदयेन=अङ्गेन, अग्निम्=देवं प्रीणामि, हृदयाग्रेण=हृदयस्याग्रभागेन, अशनिम्=देवं प्रीणामि, हृदये=समग्रहृदयेन, पशुपतिम्=देवम् प्रीणामि, यक्ना=यकृता कालखण्डेन, भवम्—देवम् प्रीणामि । मतस्नाभ्याम्, शर्वम्=देवं प्रीणामि । मन्युना=अश्वसम्बन्धिक्रोधेन, ईशानम्=देवं प्रीणामि, अन्तः पर्शव्येन=अन्तर्वर्तमानेन पर्शव्येन पार्श्वास्थिसम्बन्धिना मांसेन, महादेवम्=देवम् प्रीणामि, वनिष्ठुना, वसिष्ठहनुः=वसिष्ठस्य देवस्य हनुः कपोलैकदेशो

ज्ञातव्यः, यद्वा—वसिष्ठाया हनुः कपोलाधोदेशः । कोशाभ्याम्=कीशो हृदयकोशः तत् स्थाभ्यां मांसपिण्डाभ्याम्, शिङ्गीनि=शिङ्गिसंज्ञकानि देवतानि प्रीणामि ॥ २ ॥

[व्याकरणम्] “पद्दन्न” इत्यादिना यकृच्छब्दस्य यकन्नादेशः ॥ २ ॥

[कोषः] “तत्परा हनुः”

[अर्थ] अङ्ग से अग्निदेवको, हृदयके अग्रभागसे अशनिदेवको, सम्पूर्णहृदयसे पशुपति देवको, कालखण्ड से भवदेव को, हृदयस्थ विशेष से शर्वदेव को, अश्वसम्बन्धिक्रोध से ईशानदेव को पार्श्वस्थिसम्बन्धिमहादेव देवको, स्थूथान्त से, वसिष्ठदेव के हनु कपोलदेश से मैं प्रसन्न करता हूँ ॥२॥

उ॒ग्रं लोहि॑तेन मि॒त्रꣳ सौव्र॑त्येन रु॒द्रन्दौर्व्र॑त्ये॒नेन्द्रं॑ प्रक्री॒डेन॑ म॒रुतो॒ बलै॑न सा॒ध्यान्प्र॒मुदा॑ । भ॒वस्य॒ कण्ठ्य॑ꣳ रु॒द्रस्या॑न्तः पा॒र्श्व्यं म॑हादे॒वस्य॒ यकृ॑च्छ॒र्वस्य॑ वनि॒ष्ठुः प॑शु॒पतेः॑ पुरी॒तत् ॥ ३ ॥

उ॒ग्रम् । लोहि॑तेन । मि॒त्रम् । सौव्र॑त्येन । रु॒द्रम् । दौर्व्र॑त्ये॒नेति॒ दौःऽव्र॑त्येन । इन्द्र॑म् । प्र॒क्री॒डेनेति॑ प्र क्री॒डेन॑ । म॒रुतः॑ । बलै॑न । सा॒ध्यान् । प्र॒मुदेति॑ प्र॒ मुदा॑ ॥ भ॒वस्य॑ । कण्ठ्य॑म् । रु॒द्रस्य॑ । अ॒न्त॒ः पा॒र्श्व्य॑मित्य॑न्तः

पा॒श्र्व्य॑म् । म॒हा॒दे॒वस्येति॑ म॒हा दे॒वस्य॑ । य॒कृत् । श॒र्वस्य॑ । व॒नि॒ष्ठुः॑ ।
प॒शु॒प॒ते॒रिति॑ पशु पतेः॑ । पु॒री॒तत् । पु॒रि॒तदिति॒ पुरि॒ तत् ॥ ३ ॥

[अन्वयः] लोहितेन उग्रं सौव्रत्येन मित्रं दौर्वत्येन रुद्रं प्रक्रीडेन इन्द्रं बलेन मरुतः प्रमुदा साध्यान् भवस्य कण्ठ्यम् अन्तः पाश्र्व्यं रुद्रस्य यकृत् महादेवस्य वनिष्ठः, शर्वस्य पुरीतत् पशुपतेः ॥३॥

[विग्रहः] शोभनं व्रतं कर्म यस्य स सुव्रतः तस्य भावः सौव्रत्यं शोभनगत्यादिकर्मकर्तृत्वं तेन सौव्रत्येन । दुष्टं स्खलनोच्छलनादि व्रतं यस्य स प्रवतः तस्त भावः द्रौर्व्रत्यं तेन दौर्वत्येन । प्रकृष्टं क्रीडनं प्रक्रीडं तेन प्रक्रीडेन । प्रमुदा प्रकृष्टा मुत् हर्षः प्रमुत् तया प्रमुदा । कण्ठे भवं कण्ठम् ॥ ३ ॥

[व्याख्याः] लोहितेन = उसृजा, उग्रं = देवम् प्रीणामि, सौव्रत्येन, मित्रम् = देवं प्रीणामि, दौर्वत्येन, रुद्रम् = देवं प्रीणामि, प्रक्रीडेन, इन्द्रम् = देवं प्रीणामि, बलेन = सामर्थ्येन, मरुत; देवान् प्रीणामि, प्रमुदा, साध्यान् = देवान् प्रीणामि, भवस्य = अत्र षष्ठन्तो देवः अङ्गं प्रथमान्तम्, कण्ठ्यम् = मांसम्, अन्तपाश्र्व्यम् = पार्श्वस्यानार्मध्ये भवं समन्तः पार्श्व्यम्, रुद्रस्य = रुद्रदेवस्य, यकृत् = कालखण्डम्, महादेवस्य = महादेवदेवस्य, वनिष्ठुः = स्थूलान्त्रम्, शर्वस्य, पुरीतत् = हृदयाच्छादकमन्त्रम्, पशुपतेः = पशुपतिर्देवस्य, अस्तु ॥ ३ ॥

[अर्थः] लोहित को उग्रदेव को, शोभनव्रत कर्म है जिसका ऐसे मित्रदेवको, द्रौर्वत्य से रुद्र को, प्रक्रीडेन से इन्द्र को, सामर्थ्य से मरुत देवताओं को प्रमुद से देवताओं को, भव के मांस को

पार्श्वके मध्यमें रुद्र देव की कालखण्ड को महादेव के स्थूलाभ्रको शर्व के हृदयाच्छादकमन्त्र के पशुपति देवको प्रसन्न करता हूँ ॥ ३ ॥

लोम॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॒ लोम॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॑ त्व॒चे स्वाहा॑ व॒चे स्वाहा॒ लोहि॑ताय॒ स्वाहा॒ लोहि॑ताय॒ स्वाहा॒ मेदो॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॒ मेदो॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॑ ॥ मा॒ꣳ॒ सेब्भ्य॒ः स्वाहा॑ मा॒ꣳ॒ सेब्भ्य॒ः स्वाहा॒ स्नाव॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॒ स्नाव॑ब्भ्य॒ः स्वाहा॒ स्त्थब्भ्य॒ः स्वाहा॒ऽस्थब्भ्य॒ः स्वाहा॑ म॒ज्जब्भ्य॒ः स्वाहा॑ म॒ज्जब्भ्य॒ः स्वाहा॑ । रेत॑से॒ स्वाहा॑ पा॒यवे॒ स्वाहा॑ ॥ ४ ॥

लोभ॑ब्भ्य॒ ऽइति॒ लोम॑ ब्भ्यꣳ । त्व॒चे । लोहि॑ताय । मेदो॑ब्भ्य॒ ऽइति मेद॑÷ ब्भ्यः । मा॒ ꣳ॒ सेब्भ्य॑÷ । स्नाव॑ब्भ्य॒ ऽइति॒ स्नाव॑ ब्भ्यः । अ॒स्थब्भ्य॒ ऽइत्य॒स्थ ब्भ्य॑÷ । म॒ज्जब्भ्य॒ इति॑ म॒ज्जब्भ्य॑÷ ॥ रेत॑से । पा॒यवे॑ ॥ ४ ॥

[अन्वयः] लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा २, इत्यादि मन्त्रवत् ॥ ४ ॥

[व्याख्या] लोमभ्यः स्वाहा = लोमभ्यः स्वाहा = लोमानि जुहोमीत्यर्थः, त्वचे, स्वाहा, २, लोहिताय, स्वाहा, मेदोभ्यः = मेदो धातुविशेषः, मांसेभ्यः, स्नावभ्यः स्नावानः स्नायवो नसाः अस्थभ्यः, मज्जभ्यः = मज्जा षष्ठी धातुः, रेतसे – रेतोवीर्यम्, पायवे = पायुर्गुदम् ॥ ४ ॥

[अर्थः] लोम त्वचा लोहित मेद मांस नश अस्थि मज्जा बीर्य गुदा इन सबके लिए सुहुत हो ॥ ४ ॥

आ॒या॒साय॒ स्वाहा॑ प्रा॒या॒साय॒ स्वाहा॑ संऽया॒साय॒ स्वाहा॑ विया॒साय॒ स्वाहो॑द्या॒साय॒ स्वाहा॑ । शु॒चे स्वाहा॒ शोच॑ते॒ स्वाहा॒ शोच॑मानाय॒ स्वाहा॒ शोका॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

आ॒या॒सायेत्वा॑ या॒साय॑ । प्रा॒या॒साय॑ । प्र॒या॒सायेति॑ प्र या॒साय॑ । स॒ञ्ज्ञा॒सायेति॑सम् ज्ञा॒साय॑ । वि॒या॒सायेति॑ वि या॒साय॑ । उ॒द्या॒सायेत्यु॑त् या॒साय॑ । शु॒चे । शोच॑ते । शोच॑मानाय । शोका॑य ॥ ५ ॥

[अन्वयः] आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयसाय स्वाहा वियासाय स्वाहा उद्यासाय स्वाहा शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा ॥ ५ ॥

[अर्थः] आयास प्रायास संयास वियास उद्यास शुच शोच सोचमान शोक प्रभृति देव विशेष के लिए सुहृत हो ॥ ५ ॥

तप॑से॒ स्वाहा॒ तप्प्य॑ते॒ स्वाहा॒ तप्प्य॑मानाय॒ स्वाहा॑ त॒प्ताय॒ स्वाहा॑ घ॒र्म्माय॒ स्वाहा॑ । निष्कृ॑त्यै॒ स्वाहा॒ प्राय॑श्चित्त्यै॒ स्वाहा॑ भे॒ष॒जाय॒ स्वाहा॑ ॥६॥

तप॑से । तप्प्य॑ते । तप्प्य॑मानाय । त॒प्ताय॑ । घ॒र्म्माय॑ । निष्कृ॑त्यै । निः कृ॑त्या॒ ऽइति॒ निः कृ॑त्यै । प्राय॑श्चित्त्यै । भे॒षजाय॑ ॥ ६ ॥

[अन्वयः] तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा ॥ ६ ॥

[अर्थः] तप, तप्य, तप्यमान, तप्त, घर्म, निष्कृति, प्रायश्चित्त, भेषज प्रभृतिदेवविशेष के लिए सुहुत हों ॥ ६ ॥

य॒माय॒ स्वाहान्त॑काय॒ स्वाहा॑ मृ॒त्यवे॒ स्वाहा॑ । ब्रह्म॑णे॒ स्वाहा॑ ब्ब्रह्म-

हु॒त्यायै॒ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्य॒ः स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳪं स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

य॒माय॑ । अन्त॑काय । मृ॒त्यवे॑ । ब्रह्म॑णे । ब्र॒ह्म॒हु॒त्याया॒ ऽइति॑ ब्रह्म हु॒त्यायै॑ । विश्वे॑भ्यः । दे॒वेभ्य॑ः । द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् ॥ ७ ॥

[अन्वयः] यमाय स्वाहा अन्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिभ्यां स्वाहा ॥ ७ ॥

[अर्थः] यम, अन्तक, मृत्यु, ब्रह्मा, ब्रह्महत्या और प्रभृतिदेवों के लिए और विश्वों के लिए देवों के लिए द्यावापृथिवीयों के लिए सुहुत हों ॥ ७ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः समाप्तः

अथ अष्टमोध्यायः

वाज॑श्च मे प्रस॒वश्च॑ मे॒ प्रय॑तिश्च मे॒ प्रसि॑तिश्च मे धी॒तिश्च॑ मे॒ क्रतु॑श्च मे॒ स्वर॑श्च मे॒ श्लोक॑श्च मे श्र॒वश्च॑ मे॒ श्रुति॑श्च मे॒ ज्योति॑श्च मे॒ स्व᳖श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

वाजः॑ । च॒ । मे॒ । प्र॒स॒व ऽइति॑ प्र स॒वः । प्रय॑ति॒रिति॒ प्र य॑तिः । प्रसि॑ति॒रिति॒ प्र सि॒तिः । धी॒तिः । क्रतुः॑ । स्वरः॑ । श्लोकः॑ । श्र॒वः । श्रुतिः॑ । ज्योतिः॑ । स्व॒रिति॒ स्व᳖ः । च॒ । मे॒ । य॒ज्ञेन॑ । कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

[अन्वयः] वाजः च प्रसवः प्रयतिः प्रसितिः धीतिः क्रतुः स्वरः श्लोकः स्वरः श्रवः श्रुतिः ज्योतिः स्वर्गः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

[विग्रहः] प्रयतनं प्रयतिः । प्रसयनं प्रसितिः ॥ १ ॥

[व्याख्याः] वाजः = अन्नम्, च = शद्बाः समुच्चयार्थाः, प्रसवः = अन्नदानाऽभ्यनुज्ञा दीयतां

भुज्यतामिति, प्रयतिः = शुद्धिः, प्रसितिः = बन्धनमन्नविषयौत्सुक्यम्, धीतिः = ध्यानम्, क्रतुः = संकल्पः, यज्ञो वा । स्वरः = साधु शब्दः, श्लोकः = गद्यपद्यबन्धः, स्तुतिर्वा, श्रवः = वेदमन्त्राः श्रवणसामर्थ्यं वा, श्रुतिः = ब्राह्मणम्, श्रवणसामर्थ्यं वा, ज्योतिः = प्रकाशः, स्वः = स्वर्गः, [एते] मे = मम, यज्ञेन, कल्पन्ताम् = कॢप्ताः सम्पन्ना भवन्तु, [मे पदानामावृत्तिः प्रत्येकं प्राप्त्यर्थाः] स यज्ञः वाजादीनां दातास्मभ्यं भवत्वित्यर्थः । यद्वा = वाजादयः पदार्था मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

[व्याकरणम्] "ध्यै चिन्तायाम्" छान्दसं संप्रसारणम् ॥ १ ॥

[अर्थः] अन्न और अन्नदान करने की प्रेरणा, शुद्धि, बन्धन अन्नविषयकउत्सुकता, ध्यान, सङ्कल्प या यज्ञ, साधुशब्द, गद्यपद्यबन्ध या स्तुति, वेदमन्त्र या श्रवणसामर्थ्य, ब्राह्मण या श्रवणसामर्थ्य, प्रकाश, स्वर्ग ये मेरे यज्ञ से सम्पन्न हों। अर्थात् यज्ञ वाजादियों को देनेवाला हो। वाजादिपदार्थ मेरे यज्ञ से सम्पन्न हों ॥ १ ॥

प्रा॒णश्च॑ मे ऽपा॒नश्च॑ मे ऽव्या॒नश्च॒ मेऽसु॑श्च मे चि॒त्तं च॑ म॒ ऽआधी॑तश्च मे॒ व्वाक् च॑ मे॒ मन॑श्च मे॒ चक्षु॑श्च मे॒ श्रोत्रं॑श्च मे॒ दक्ष॑श्च मे॒ बलं॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

प्रा॒णः । अ॒पा॒नऽइत्य॑प आ॒नः । ऽव्या॒न ऽइति॑ विः आ॒नः ।

असु॑÷ । चि॒त्तम् । आधी॑त॒मित्या धी॑तम् । व्वाक् । मन॑÷ । चक्षु॑÷ । श्रोत्र॑म् । दक्ष॑÷ । बल॑म् ॥ २ ॥

[अन्वयः] प्राणः अपानः व्यानः असु चित्तम् आधीतं वाक् मनसः चक्षुः श्रोत्रं दक्षः [एतानि] यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

[व्याख्याः] प्राणः = ऊर्ध्वसंचारी शरीरवायुः, अपानः = अधोवृत्तिर्वायुः, व्यानः = सर्वशरीरचरः वायुः, असुः = प्रवृत्तिमान् वायुः, चित्तं = मानसः सङ्कल्पः, आधीतम् = बाह्यविषयज्ञानम्, वाक् = वागिन्द्रियम्, मनः = प्रसिद्धम्, चक्षुः = चक्षुरिन्द्रियम्, श्रोत्रम् = श्रवणेन्द्रियम्, दक्षः = ज्ञानेन्द्रियकौशलम्, बलम् = कर्मेन्द्रियकौशलम्, [एतानि] मे = मम, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

[अर्थः] ऊर्ध्वसंचारीशरीरवायु, अधोवृत्तिर्वायु, सर्वशरीरचरवायु, प्रवृत्तिमानवायु, मानससंकल्प, बाह्यविषयज्ञान, वागिन्द्रिय, मन, चक्षुरिन्दिय, श्रवणेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रियकौशल, कर्मेन्द्रियकौशल, ये मेरे यज्ञ से सम्पन्न हों ॥ २ ॥

ओज॑श्श्च मे॒ सह॑श्श्च म ऽआ॒त्मा च॑ मे त॒नूश्च॑ मे॒ शर्म्म᳚ च मे॒ व्वर्म्म᳚ च॒ मेऽङ्गा॑नि च॒ मेऽस्थी॑नि च मे॒ परू॑ᳪषि च मे॒ शरी॑राणि च म॒ ऽआयु॑श्च मे ज॒रा च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

ओज॑ः। सह॑ः। आ॒त्मा। त॒नूः। शर्म॑। वर्म॑। अङ्गा॑नि। अस्थी॑नि। परू॑ꣳषि। शरी॑राणि। आयु॑ः। ज॒रा॥ ३॥

[अन्वयः] ओजः सह आत्मा तनूः शर्म वर्म अङ्गानि अस्थीनि परुंषि शरीराणि आयुः जरा [एते] यज्ञेन कल्पन्ता ॥ ३ ॥

[व्याख्या] ओजः=बलहेतुरष्टमोधातुः, सह=शारीरं बलं सपत्नाभिभवितृत्वं वा। आत्मा=परमात्मा, तनूः=रम्यं वपुः, शर्म=सुखम्, वर्म=कवचम् अङ्गानि=हस्ताद्यवयवाः अस्थीनि=शरीरगतानि, परुंषि=अङ्गुल्यादिपर्वाणि, शरीराणि=पूर्वानुक्ताः शरीरावयवाः, आयुः=जीवनम्, जरा=वार्धकान्तमायुः, [एते] यज्ञेन, कल्पन्ताम्=सम्पद्यन्ताम् ॥ ३ ॥

[अर्थः] बलहेतुअष्टमधातु, शारीरबल या सपत्नाभिभवितृत्व, परमात्मा, सुन्दरशरीर, सुख, कवच, हस्ताद्यवयवस्थियाँ, अङ्गुल्यादिपर्व, शरीरावयव, जीवन, वार्धक्य, ये यज्ञ से सम्पन्न हों॥३॥

ज्यैष्ठ्य॑ञ्च म॒ आधि॑पत्यञ्च मे म॒न्युश्च॑ मे॒ भाम॑श्च॒ मेऽम॑श्च॒ मेऽम्भ॑श्च मे जे॒मा च॑ मे महि॒मा च॑ मे वरि॒मा च॑ मे प्रथि॒मा च॑ मे वर्षि॒मा च॑ मे द्राघि॒मा च॑ मे वृ॒द्धञ्च॑ मे॒ वृद्धि॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

ज्यैष्ठ्य॑म् । आधि॑पत्य॒मित्याधि॑ऽपत्यम् । म॒न्युः । भाम॑ः । अम॑ः । अम्भ॑ः । जे॒मा । म॒हि॒मा । व॒रि॒मा । प्र॒थि॒मा । व॒र्षि॒मा । द्रा॒घि॒मा । वृ॒द्धम् । वृ॒द्धिः ॥४॥

[अन्वयः] ज्यैष्ठ्यम् आधिपत्यं मन्युः भामः अमः अम्भः जेमा महिमा वरिमा प्रथिमा वर्षिमा द्राघिमा वृद्धः (एते) मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ४ ॥

[विग्रहः] ज्येष्ठस्य भावो ज्यैष्ठ्यम् । अधिपतेर्भावः आधिपत्यम् । न मीयते इति अमः । जयस्य भावो जेमा । महतो भावो महिमा । उरोर्भावो वरिमा । पृथोर्भावः प्रथिमा । वृद्धस्य भावो वर्षिमा । दीर्घस्य भावो द्राघिमा ॥ ४ ॥

[व्याख्या] ज्यैष्ठ्यम् = प्रशस्तत्वम्, आधिपत्यम् = स्वामित्वम्, मन्युः = मानसः कोपः, भामः = अधिक्षेपादिलिङ्गको बाह्यः कोपः, अमः = अपरिमेयत्वमन्यैरियत्तया परिच्छेत्तुमशक्यत्वम्, अम्भः = शीतमधुरं जलम्, जेमा = जयसामर्थ्यम्, महिमा = सम्पत्यादिना महत्वम्, वरिमा = प्रजादिविशालता, प्रथिमा = गृहक्षेत्रादिविस्तारः, वर्षिमा = दीर्घजीवित्वम्, द्राघिमा = अविच्छिन्नवंशत्वम्, वृद्धम् = प्रभूतमन्नधनादि, वृद्धिः = विद्यादिगुणैरुत्कर्षः, [एते] मे = मम, यज्ञेन कल्पन्ताम् = सम्पद्यन्ताम् ॥ ४ ॥

[अर्थः] ज्येष्ठ, स्वामित्व, मानसकोप, बाह्यकोप, अशक्य, शीतलमधुरजल, जयसामर्थ्यसम्पत्यादिसे महत्व, प्रजा आदि विशालता, घर और क्षेत्रादि का विस्तार, चिरकालतक

जीवन, अविच्छिन्नवंशकी परम्परा बहुत अन्न धन आदि की प्राप्ति, विद्याःआदि गुणोंसे उत्तमता ये सब मेरे यज्ञ से प्राप्त हों ॥ ४ ॥

सत्यञ्च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनञ्च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

सत्यम् । श्रद्धा । जगत् । धनम् । विश्वम् । महः । क्रीडा । मोदः । जातम् । जनिष्यमाणम् । सूक्तमिति सू उक्तम् । सुकृतमिति सु कृतम् ॥ ५ ॥

[अन्वयः] सत्यं श्रद्धा जगत् धनं विश्वं महः क्रीडा मोदः जातं जनिष्यमाणं सुकृतं [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

[व्याख्या] सत्यम् = यथार्थभाषित्वम्, श्रद्धा = परलोकविश्वासः, जगत् = जङ्गमं गवादि, धनम् = कनकादि, विश्वम् = स्थावरम्, महः = दीप्तिः, क्रीडा = अक्षद्यूतादिः, मोदः = क्रीडादर्शनजो

हर्षः, जातम् = पुत्रोत्पन्नमपत्यम्, जनिष्यमाणम् = भविष्यदपत्यम्, सूक्तम् = ऋक्समूहः, सुकृतम् = ऋक्पाठजन्यं शुभादृष्टम्, [एते] मे = मम, यज्ञेन, कल्पन्ताम् = सम्पद्यन्ताम् ॥ ५ ॥

[अर्थः] यथार्थभाषी, परलोकविश्वास, जङ्गमगवादि, कनकादि, स्थावर, दीप्ति, अक्षद्यूतादि, क्रीडादर्शनसे हर्ष पुत्रोत्पन्नसे अपत्य, भविष्य में होनेवाले अपत्य ऋक् समूह, ऋक् पाठजन्य शुभ अदृष्ट, ये सब मेरे यज्ञ से प्राप्त हों ॥ ५ ॥

ऋ॒तञ्च॑ मे॒ ऽमृत॑ञ्च मे ऽय॒क्ष्मञ्च॒ मे ऽना॑मयच्च मे जी॒वातु॑श्च मे दी॒र्घा॑यु॒त्वञ्च॑ मे ऽनमि॒त्रञ्च॒ मे ऽभ॑यञ्च मे सु॒खञ्च॑ मे॒ शय॑नञ्च मे सू॒षाश्च॑ मे सु॒दिन॑ञ्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

ऋ॒तम् । अ॒मृत॑म् । अ॒य॒क्ष्मम् । अना॑मयत् । जी॒वातुः॑ । दी॒र्घा॒युत्वमिति॑ दी॒र्घा॑यु॒ त्वम् । अ॒न॒मि॒त्रम् । अभ॑यम् । सु॒खमिति॑सु॒ खम् । शय॑नम् । सू॒षा ऽइति॑ सु उ॒षाः । सु॒दि॒न ऽमिति॑ सु॒ दिन॑म् ॥ ६ ॥

[अन्वयः] ऋतम् अमृतम् अयक्ष्मम् अनामयत्जीवातुः दीर्घायुत्वम् अनभित्रम् अभयं सुखं शयनं सूषाः सुदिनम् [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

[विग्रहः] यक्ष्मणोऽभावो ऽयक्ष्मम् । आमयति पीडयति इति आमयत् न आमयत् अनामयत् । जीवयति इति जीवातुः । दीर्घायुषोभावो दीर्घायुत्वम् । अमित्राणाम् अभावोऽनमित्रम् ॥ ६ ॥

[व्याख्या] ऋतम् = यज्ञादिकर्म, अमृतम् = तत्फलभूतं स्वर्गादि, अयक्ष्मम् = धातुक्षयादिरोगाभावः, अनामयत् = सामान्यव्याधिराहित्यम्, जीवातुः = व्याधिनाशकमौषधम्, दीर्घायुत्वम् = बहुकालमायुः । पृषोदरादित्वात् सलोपः आयुः उदन्तो वा, अनमित्रम् = शत्रुराहित्यम्, अभयम् = भीतिराहित्यम्, सुखम् = आनन्दः, शयनम् = संस्कृता शय्या, सूषाः = शोभन उषाः स्नानसन्ध्यादियुक्तः प्रातःकालः, सुदिनम् = यज्ञदानाध्ययनादियुक्तं सर्वं दिनम्, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् = सिध्यन्तु ॥ ६ ॥

[अर्थः] यज्ञादिकर्म, तत्फलभूतस्वर्गादि, धातुक्षयादिरोगाभाव, सामान्यव्याधि न होना, व्याधिनाशकदवा, बहुतकालतक आयुर्बल, शत्रुओं का न होना, भय से राहित्य, आनन्द, सजी हुई शय्या, स्नानसन्ध्यादियुक्तप्रातःकाल यज्ञदानाध्ययनादियुक्तसम्पूर्णदिन, ये सब मेरे यज्ञ से सिद्ध हो ॥ ६ ॥

य॒न्ता च॑ मे ध॒र्ता च॑ मे॒ क्षेम॑श्च मे॒ धृति॑श्च मे॒ विश्व॑ञ्च मे॒

मह॑श्च मे सं॒विच्च॑ मे॒ ज्ञात्र॑ञ्च मे॒ सूश्च॑ मे प्र॒सूश्च॑ मे॒ सीर॑ञ्च मे॒ लय॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

य॒न्ता । ध॒र्त्ता । क्षेम॑ः । धृति॑ः । विश्व॑म् । मह॑ः । सं॒विदिति॑ सम् । वित् । ज्ञात्र॑म् । सू॒ः । प्र॒सूरिति॑ प्र॒ सूः । सीर॑म् । लय॑ः ॥ ७ ॥

[अन्वयः] यन्ता धर्ता क्षेमः धृतिः विश्वं. महः संवित् ज्ञात्रं सूः प्रसूः सीरं लयः [एते] यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

[विग्रहः] ज्ञातुर्भावो ज्ञात्रम् ॥ ७ ॥

[व्याख्या] यन्ता = अश्वादेर्नियन्ता, धर्ता = पित्रादिपोषकः, क्षेमः = विद्यमानधनस्य रक्षणशक्तिः, धृतिः = आपत्स्वपि स्थिरचित्तत्वम्, विश्वम् = सर्वानुकूल्यम्, महः = पूजा, संवित् = वेदशास्त्रादिज्ञानम्, ज्ञात्रम् = विज्ञानसामर्थ्यम्, सूः = पुत्रादिप्रेरणसामर्थ्यम्, प्रसूः = पुत्रोत्पत्यादिसामर्थ्यम्, सीरम् = हलादिकृषिकृतधान्यनिष्पत्तिः, लयः = कृषिप्रतिबन्धनिवृत्तिः, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

[अर्थः] घोड़े के नियन्ता, पित्रादि का पोषक, विद्यमानधनकी रक्षा करनेमें शक्ति, आपत्तिकाल में चित्तस्थिररहना, सबकी अनुकूलता, पूजा, वेदशास्त्रप्रभृति का जानना, विज्ञान की

शक्ति, पुत्रादिप्रेरणसामर्थ्य, पुत्रोत्पत्यादिसामर्थ्य, हलादिकृषिकृतधान्यनिष्पत्ति, कृषिप्रतिबन्धनिवृत्ति, ये सब मेरे यज्ञसे सिद्ध (प्राप्त) हों ॥ ७ ॥

शञ्च॑ मे॒ मय॑श्च मे प्रि॒यञ्च॑ मे ऽनुका॒मश्च॑ मे॒ काम॑श्च मे सौमन॒सश्च॑ मे॒ भग॑श्च मे॒ द्रवि॑णञ्च मे भ॒द्रञ्च॑ मे॒ श्रेय॑श्च मे॒ वसी॑यश्च मे॒ यश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

शम् । मय॑ः । प्रि॒यम् । अ॒नु॒का॒म ऽइत्य॑नु का॒मः । काम॑ः । सौ॒म॒न॒सः । भग॑ः । द्रवि॑णम् । भ॒द्रम् । श्रेय॑ः । वसी॑यः । यश॑ः ॥ ८ ॥

[अन्वयः] शं मयः प्रियम् अनुकामः कामः सौमनसः भगः द्रविणं भद्रं श्रेयः वसीयसः यशः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

[विग्रहः] अनुकाम्यते इति अनुकामः । सुमनसो भावः सौमनसः । वसतीति वस्तृ अतिशयेन वस्तृ वसीयः ॥ ८ ॥

[व्याख्या] शम् = ऐहिकं सुखम् , मयः = आमुष्मिकं सुखम्, प्रियम् = प्रीत्युत्पादकं वस्तु, अनुकामः = अनुकूलयत्नसाध्यपदार्थः, कामः = विषयभोगजनितं सुखम् , सौमनसः = मनः स्वास्थकरो-

बन्धुवर्गः, भगः=सौभाग्यम्, द्रविणम्=धनम्, भद्रम्=ऐहिकं कल्याणम्, श्रेयः=पारलौकिकम्, वसीयः=निवासयोग्यो वसुमान् गृहादिः, यशः=कीर्तिः, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

[व्याकरणम्] वसीयः="तुरिष्ठेमेयस्सु" इति सूत्रेण तृचो लोपः ॥ ८ ॥

[अर्थः] ऐहलौकिकसुख, परलौकिकसुख, परमोत्पादकवस्तु, अनुकूलयत्नसाध्यपदार्थ, विषयभोगसे जनित (उत्पन्न) सुख, मन को स्वास्थकर (सावधान) करनेवाले बन्धुवर्ग, सौभाग्य, धन, ऐहिककल्याण, परलोकका कल्याण, निवास के योग्य धन से भरे हुए गृहादि कीर्ति, ये सब मेरे यज्ञसे साध्य हों ॥ ८ ॥

ऊर्क् च॑ मे सू॒नृता॑ च मे॒ पय॑श्च मे॒ रस॑श्च मे घृ॒तं च॑ मे॒ मधु॑ च मे॒ सग्धि॑श्च मे॒ सपी॑तिश्च मे कृ॒षिश्च॑ मे॒ वृष्टि॑श्च मे॒ जैत्रं॑ च म॒ औद्भि॑द्यं च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

ऊर्क् । सू॒नृता॑ । पय॑ः । रस॑ः । घृ॒तम् । मधु॑ । सग्धि॑ः । सपी॑ति॒रिति॒ स पी॑तिः । कृ॒षिः । वृष्टि॑ः । जैत्र॑म् । औद्भि॒द्यमित्यौत् भि॑द्यम् ॥ ९ ॥

[अन्वयः] ऊर्क् सूनृता पयः रसः घृतं मधु सग्धिः सपीतिः कृषिः वृष्टिः जैत्रं औद्भिद्यं यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

[विग्रहः] समानाग्धिर्भोजनं सग्धिः । जेतुर्भावो जैत्रम् । उद्भिदोभावः औद्भिद्यम् ॥ ९ ॥

[व्याख्या] ऊर्क् = अन्नम्; सूनृता = प्रिया सत्या वाक्, पयः = दुग्धम्, रसः = तत्रत्यः-सारः, घृतम् = आज्यम्, मधु = क्षौद्रम्, सग्धिः = बन्धुभिः सहभोजनमित्यर्थः सपीतिः = बन्धुभिः सह पानम्, कृषिः = तत्कृतधान्यसिद्धिः, वृष्टिः = धान्यनिष्पादिकानुकूला, जैत्रम् = जयसामर्थ्यम्, औद्भिद्यम् = चूतादितरोरुत्पत्तिः, (एते) मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ ९ ॥

[व्याकरणम्] अदेः क्तिनि घस्लादेशः । "घसिभसोर्हलि" इति सूत्रेण घस् उपधालोपे कृते "झलोझलि" इति सलोपे कृते "झषस्तथोर्धोधः" इति सूत्रेण जश्त्वम् ॥ ९ ॥

[अर्थः] अन्न, मनोहर वाणी, दुग्ध, दुध का सार, आज्य, मधु, बन्धुओं के साथ भोजन, बन्धुओं के साथ पान करना, धान्य की सिद्धि, धान्यनिष्पादिकवर्षा, जयसामर्थ्य, आमवृक्षादियों की उत्पत्ति, ये सब मेरे यज्ञ से सम्पन्न हों ॥ ९ ॥

र॒यिश्च॑ मे॒ राय॑श्च मे पु॒ष्टं च॑ मे॒ पुष्टि॑श्च मे वि॒भु च॑ मे प्र॒भु च॑ मे पू॒र्णं च॑ मे पू॒र्णत॑रं च मे॒ कुय॑वं च॒ मेऽक्षि॑तं च॒ मेऽन्नं॑ च॒ मेऽक्षु॑च्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

रयिः । रायः । पुष्टम् । पुष्टिः । विभ्वितिविभु । प्रभ्वितिप्रभु । पूर्णम् । पूर्णतरमितिपूर्णतरम् । कुयवम् । अक्षितम् । अन्नम् । अक्षुत् ॥ १० ॥

[अन्वयः] रयिः रायः पुष्टं पुष्टिः विभु प्रभु पूर्णं पूर्णतरं कुयवमें अक्षितमे अन्नम् क्षुत् (एते) मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

[विग्रहः] अत्यन्तं पूर्णं पूर्णतरम् ॥ १० ॥

[व्याख्या] रगिः = सुवर्णम् , रायः = मुक्तादिमणयः, पुष्टम् = धनपोषकः, पुष्टिः = शरीरपोषकः, विभु = व्याप्तिसामर्थ्यम् , प्रभु = ऐश्वर्यम् , पूर्णम् = धनपुत्रादिबाहुल्यम् , पूर्णतरम् = गजतुरगादिबाहुल्यम् , कुयवम् = कुत्सितमपि धान्यम् , अक्षितम् = क्षयहीनं धान्यादिः, अन्नम् = ओदनादिः, क्षुत् = भुक्तान्नपरिपालकः, (एते) मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

[अर्थः] सुवर्ण, मुक्ता (मोती) दि मणीमें, धनपोषक, शरीरकी पुष्टता, व्याप्ति सामर्थ्य, ऐश्वर्य, धनपुत्रादिवृद्धि हाथी, घोड़े आदि की बाहुल्यता, और कुत्सितधान्य, क्षयहीनधान्यादि ओदनादि, मुक्तान्नपरिपालक, ये सब मेरे यज्ञसे प्राप्त हों ॥ १० ॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे

सु॒प॒थ्यञ्च म ऋ॒द्धं च॑ म॒ ऽऋद्धि॑श्च मे क्लृ॒प्तं च॑ मे॒ क्लृप्ति॑श्च मे म॒ति॑श्च मे सुम॒ति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

वि॒त्तम् । वे॒द्य॑म् । भू॒तम् । भ॒वि॒ष्यत् । सु॒गमिति॑सु गम् । सु॒प॒थ्यमिति॑ सु प॒थ्यम् । ऋ॒द्धम् । ऋद्धि॑ः । क्लृ॒प्तम् । क्लृप्ति॑ः । म॒तिः । सु॒म॒तिरिति॑सु म॒तिः ॥ ११ ॥

[अन्वयः] वित्तं वेद्यं भूतं भविष्यत् सुगं सुपत्थ्यंच ऋद्धं ऋद्धिः क्लृप्तं क्लृप्तिः मतिः सुमतिः मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

[विग्रह] सुखेन गम्यते यत्र तत्र सुगम् ॥ ११ ॥

[व्याख्या] वित्तम् = 'विद्लृलाभे' पूर्वलब्धं वित्तम्, धनमित्यर्थः। वेद्यम् = लब्धव्यम्, भूतम् = पूर्वसिद्धं क्षेत्रादि, भविष्यत् = संपत्स्यमानं क्षेत्रादि, सुगम् = सुगम्योदेशः, सुपत्थ्यम् = शोभनं हितम्, ऋद्धम् = समृद्धं यज्ञफलम्, ऋद्धिः = यज्ञादिसमृद्धिः, क्लृप्तम् = कार्यक्षेमं द्रव्यादि, क्लृप्तिः = स्वकार्यसामर्थ्यम्, मतिः = पदार्थमात्रनिश्चयः, सुमतिः = दुर्घटकार्यादिषु निश्चयः, [एते] मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

[व्याकरणम्] सुगमित्यत्र "सुदुरोरधिकरणे" इति गमेर्डः ॥ ११ ॥

[अर्थः] पूर्वलब्धजोधन, लब्धहोनेवालाधन पूर्वसिद्ध जो क्षेत्रादि, आगे को प्राप्त होने वाला जो क्षेत्रादि, सुख से प्राप्त होने वाला जो देश, श्रेष्ठ जो हित, समृद्धिसे जो यज्ञका फल, यज्ञादिकों की जो समृद्धि, कार्यों में धनादिक, अपने कार्य करने की सामर्थ्य, पदार्थमात्रका निश्चय, कठिनकार्यों का निश्चय, ये सब यज्ञ से सिद्ध हों ॥ ११ ॥

व्री॒हय॑श्च मे॒ यवा॑श्च मे॒ माषा॑श्च मे॒ तिला॑श्च मे मु॒द्गाश्च॑
मे ख॒ल्वाश्च॑ मे प्रि॒यङ्ग॑वश्च॒ मे ऽण॑वश्च मे श्या॒माका॑श्च मे नी॒वारा॑श्च
मे गो॒धूमा॑श्च मे म॒सूरा॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

व्री॒हय॑ः । यवा॑ः । माषा॑ः । तिला॑ः । मु॒द्गाः । ख॒ल्वा॑ः । प्रि॒यङ्ग॑वः । अण॑वः । श्या॒माका॑ः । नी॒वारा॑ः । गो॒धूमा॑ः । म॒सूरा॑ः ॥ १२ ॥

[अन्वयः] व्रीहयः यवाः माषाः तिलाः मुद्गाः खल्वाः प्रियङ्गवः अणवः श्यामाकाः निवाराः गोधूमाः मसूराः मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

[व्याख्या] व्रीहयः, यवाः, माषाः, तिलाः मुद्गाः, एषां पूर्वोक्तानामर्थाः प्रसिद्धाः । खल्वाः=

चणकाः खल्वाश्च, प्रियङ्गवः = कङ्गवः, अणवः = चीनकाः, श्यामाकाः, नीवाराः गोधूमाः, मसूराः, (एते धान्यविशेषाः) मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

[अर्थः] धान्य, यव, उड़द, तिल, मूंग, चना, कंगनी, चीनक तण्डुल, श्यामाकचावल, नीवार, गेहूँ, मसूर ये धान्यविशेष मेरे यज्ञ से प्राप्त हों ॥ १२ ॥

अश्म्मा॑ च मे॒ मृत्ति॑का च मे गि॒रय॑श्च मे॒ पर्व्व॑ताश्च मे॒ सिक॑ताश्च मे॒ व॒न॒स्पत॑यश्चमे॒ हिर॑ण्यञ्च॒ मेय॑श्च मे श्या॒मं च॑ मे लो॒हं च॑ मे॒ सीसँ॑ च मे॒ त्र॒पु॑ च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

अश्मा॑ । मृत्ति॑का । गि॒रय॑ः । पर्व्व॑ताः । सिक॑ताः । व॒न॒स्पत॑यः । हिर॑ण्यम् । अय॑ः । श्या॒मम् । लो॒हम् । सीस॑म् । त्रपु॑ ॥ १३ ॥

[अन्वयः] अश्मा मृत्तिका गिरयः पर्वताः सिकताः वनस्पतयः हिरण्यम् अयः श्यामं लोहं सीसं त्रपु मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

[व्याख्याः] अश्मा = पाषाणः, मृत्तिका, प्रशस्ता मृत्, गिरयः = क्षुद्रपर्वताः, गोवर्धनार्बुर-रैवतिकादयः। पर्वताः = महान्तो मन्दरहिमाचलादयः, सिकताः = शर्कराः, वनस्पतयः = पुष्पं विना

फलवन्तः पनसो दुम्बरादयः, हिरण्यम्=सुवर्णम्, रजतं वा । अयः=लोहम्, श्यामम्=ताम्रलोहं, कांस्यं रजतं कनकं वा । सीसम्=प्रसिद्धम्, त्रपु=रङ्गम्, [एते कार्यविशेषेषु] मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

[अर्थः] पत्थर, श्रेष्ठ मृक्षिका, छोटेपर्वत, बड़े-बड़े मन्दराचल-हिमाचल शर्करा, वनस्पतियाँ, सुवर्ण या चाँदी, लोहा, या तांबा कांस्य, रजत, कनक, सीसा, रांग ये कार्यविशेषोंमें मेरे यज्ञसे प्राप्त हों ॥ १३ ॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ ऽआप॑श्च मे वी॒रुध॑श्च म॒ ओष॑धयश्च मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मे कृष्टप॒च्याश्च॑ मे ग्रा॒म्याश्च॑ मे प॒शव॑ ऽआर॒ण्याश्च॑ मे वि॒त्तं च॑ मे॒ वित्ति॑श्च मे भू॒तं च॑ मे॒ भूति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

अ॒ग्निः । आप॑ः । वी॒रुध॑ः । ओष॑धयः । कृ॒ष्टप॒च्या ऽइति॑ कृष्टप॒च्याः । अकृ॒ष्टप॒च्या ऽइत्य॑ कृष्ट॑ प॒च्याः । ग्रा॒म्याः । प॒शव॑ः । आ॒र॒ण्याः । वि॒त्तम् । वि॒त्ति॑ः । भू॒तम् । भूति॑ः ॥ १४ ॥

[अन्वयः] अग्निः आपः वीरुधः ओषधयः कृष्टपच्याः अकृष्टपच्याः ग्राम्याः पशवः आरण्याः वित्तं वित्तिः भूतं भूतिः मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

[विग्रहः] कृष्टे पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः । कृष्टे पच्यन्ते इति कृष्टपच्याः न कृष्टपच्याः अकृष्टपच्याः । ग्रामे भवाः ग्राम्याः । अरण्ये भवा आरण्याः ॥ १४ ॥

[व्याख्याः] अग्निः = पृथिवीस्थो वन्हिः, आपः = अन्तरिक्षस्थानि जलानि, वीरुधः = गुल्माः, ओषधयः = फलपाकान्ताः, कृष्टपच्याः = भूमिकर्षणबीजवापादिकर्मनिष्पाद्या ओषधयः, अकृष्टपच्याः = स्वयमेवोत्पद्यमाना नीवारगवेधुकादयः ग्राम्याः, पशवः = गो-अश्व-महिषा-जावि-गर्द-भोष्ट्रादयः, आरण्याः = हस्ति-सिंह-शरभ-मृग-गवय-मर्कटादयः, वित्तम् = पूर्वलब्धम्, वित्तिः = भाविलाभः, भूतम् = जातपुत्रादिकम्, भूतिः = स्वार्जितं ऐश्वर्यम्, (एतानि) मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

[व्याकरणम्] "राजसूर्य" इत्यादिना क्यबन्तो निपातः ॥ १४ ॥

[अर्थः] अग्नि, अन्तरिक्षस्थजल, लता, फल या काल औषधियां, भूमि जोतने बोने प्रभृति से औषधि, स्वयं उत्पन्न होनेवाले नीवार गवेधुकादि, ग्राम्यपशु-गौ, घोड़ा, महिषी, जावि, गदर्भ, ऊँट, आरण्यपशु हाथी, सिंह, शरभ-मृग-प्रभृति, पूर्वलब्धधन, होनहारलाभ, वर्तमानपुत्रादि लाल, ऐश्वर्य, ये सब मेरे यज्ञ से प्राप्त हों ॥ १४ ॥

वसु॑ च मे व॒सतिश्च॑ मे॒ कर्म्म॑ च मे॒ शक्ति॑श्च॒ मे ऽर्थ॑श्च म॒ एम॑श्च
म ऽइत्या॑ च॑ मे॒ गति॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

व॒सु॑ । व॒स॒तिः॑ । कर्म्म॑ । शक्तिः॑ । अर्थः॑ । एमः॑ । इ॒त्या । गतिः॑ ॥ १५ ॥

[अन्वयः] वसु वसति कर्म शक्तिः अथः एमः इत्या गतिः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥

[विग्रहः] ईयत इति एमः ॥ १५ ॥

[व्याख्या] वसु=धनं गवादिकम्, वसतिः=वासस्थानं गृहम्, कर्म=अग्निहोत्रादि, शक्तिः=तदनुष्ठानसामर्थ्यम्, अर्थः=अभिलषितः पदार्थः, एमः=प्राप्तव्योऽर्थः, इत्या=अयनमिष्टप्राप्त्युपायः, गतिः=इष्टप्राप्तिः, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

[अर्थः] गवादिकधन, वासस्थानगृह, अग्निहोत्रादि करने की सामर्थ्य, उसके अनुष्ठान की सामर्थ्य, अभिलसितपदार्थ प्राप्ति के योग्य द्रव्य, इष्टप्राप्ति का उपाय, इष्टप्राप्ति, ये सब यज्ञ से प्राप्त हों ॥ १५ ॥

अ॒ग्निश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

अ॒ग्निः । इन्द्र॑÷ । सोम॑÷ । स॒वि॒ता । सर॑स्वती । पू॒षा ।
बृह॒स्पति॑÷ ॥ १६ ॥

[अन्वयः] अग्निः इन्द्रः सोमः इन्द्रः सविता इन्द्रः सरस्वती इन्द्रः पूष इन्द्रः बृहस्पतिः इन्द्रः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

[व्याख्या] अग्निः, इन्द्रः, सोमः, इन्द्रः, सविता, इन्द्रः सरस्वती, इन्द्रः पूषा इन्द्रः बृहस्पतिः इन्द्रः, [एते] देवानामर्थाः प्रसिद्धाः [इन्द्रशब्दस्य नानार्थाः कार्याः यास्कोक्ता] एवम् १७–१८, कण्डिकाद्वयेऽपि । मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

[अर्थः] अग्नि, इन्द्र, सोम, इन्द्र, सविता, इन्द्र, सरस्वती, इन्द्र, पूषा, इन्द्र, बृहस्पति, ये सब मेरे यज्ञ से प्रसन्न रहें ॥ १६ ॥

मि॒त्रश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे धा॒ता च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च
मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे म॒रुत॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ विश्वे॑ च मे दे॒वा
ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

मि॒त्रः । वरु॑णः । धा॒ता । त्वष्टा॑ । म॒रुत॑÷ । विश्वे॑ । दे॒वाः ॥ १७ ॥

इस मन्त्र का अन्वय और व्याख्या सरल है मन्त्र से ही समझ लेवें।

[अर्थः] मित्र, इन्द्र, वरुण, इन्द्र, धाता, त्वष्टा, इन्द्र, मरुत, इन्द्र विश्वेदेवा, इन्द्र ये सब यज्ञ से सिद्ध हों ॥ १७ ॥

पृथि॒वी च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ऽन्तरि॑क्षं च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ समा॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ इन्द्र॑श्च मे॒ दि॒शा॑श्च म॒ इन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

पृ॒थि॒वी । अ॒न्तरि॑क्षम् । द्यौः । समाः॑ । नक्ष॑त्राणि । दिशः॑ ॥१८॥

[अन्वयः] पृथिवी इन्द्रः अन्तरिक्षं इन्द्रः द्यौः इन्द्रः समाः इन्द्रः नक्षत्राणि इन्द्रः दिशः इन्द्रः (एते) मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

[व्याख्या] पृथिवी, इन्द्रः, अन्तरिक्षम्, इन्द्रः, द्यौः = दिवस्त्रैलोक्यम्, इन्द्रः, समाः = वर्षाधिष्ठात्र्यो देवताः, इन्द्रः, नक्षत्राणि = अश्विन्यादीनि, इन्द्रः, दिशः = प्रागाद्याः, [एते] मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

[अर्थ] पृथिवी, इन्द्र, अन्तरिक्ष, इन्द्र, द्यौ, इन्द्र, वर्षाधिष्ठातृदेवता, इन्द्र, अश्विन्यादि-नक्षत्र, इन्द्र, दिशाएँ, ये सब मेरे यज्ञ से सिद्ध हों ॥ १८ ॥

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च म उपा॒ꣳ॒शुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ म ऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ म आश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्र॒स्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १९ ॥

अ॒ꣳ॒शुः । र॒श्मिः । अदा॑भ्यः । अधि॑पति॒रित्यधि॑ पतिः । उ॒पा॒ꣳ॒शुरित्यु॑प अ॒ꣳ॒शुः । अ॒न्त॒र्या॒म ऽइत्य॑न्तः ऽया॒मः । ऐ॒न्द्र॒वा॒य॒वः । मै॒त्रा॒व॒रु॒णः । आ॒श्वि॒नः । प्रा॒ति॒प्र॒स्था॒न ऽइति॑ प्रति प्र॒स्थान॑ः । शु॒क्रः । म॒न्थी ॥ १९ ॥

मन्त्र से अन्वय व्याख्या प्रभृति जान ले ।

[अर्थः] अंशुग्रह, रश्मिग्रह, अदाभ्यग्रह, अधिपतिग्रह, उपांशुग्रह, अन्तर्यामग्रह, ऐन्द्रवायवग्रह, मैत्रावरुणग्रह, आश्विनग्रह, प्रतिप्रस्थाताग्रह, शुक्रग्रह, मन्थीग्रह, ये यज्ञ से सिद्ध हों ॥ १९ ॥

आ॒ग्र॒य॒णश्च॑ मे वै॒श्वदे॒वश्च॑ मे ध्रु॒वश्च॑ मे वैश्वान॒रश्च॑ म ऽऐन्द्रा॒ग्नश्च॑ मे म॒हावै॑श्वदे॒वश्च मे मरुत्व॒तीया॑श्च मे॒ निष्कैवल्यश्च मे सा॒वि॒त्रश्च॑ मे सारस्व॒तश्च॑ मे पात्नीव॒तश्च॑ मे हारियोजन॒श्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

आ॒ग्र॒य॒णः । वै॒श्व॒दे॒व ऽइति॑ वैश्व दे॒वः । ध्रु॒वः । वै॒श्वा॒न॒रः । ऐ॒न्द्रा॒ग्नः । म॒हा वै॑श्वदे॒व ऽइति॑ म॒हा वै॒श्वदे॑वः । म॒रु॒त्व॒तीया॑ः । निष्कै॑वल्यः । निः॑ कै॑वल्य॒ ऽइति॒ निः॑ कै॑वल्यः । सा॒वि॒त्रः । सा॒र॒स्व॒तः । पा॒त्नी॒व॒त ऽइति॑ पात्नी व॒तः । हा॒रि॒यो॒ज॒न ऽइति॑ हारि यो॒ज॒नः ॥ २० ॥

अन्वय और व्याख्या सरल होने के कारण जान लेना चाहिये ॥ २० ॥

[अर्थः] आग्रयणग्रह, वैश्वदेवग्रह, ध्रुवग्रह, वैश्वानरग्रह, ऐन्द्राग्नग्रह महावैश्वदेवग्रह,

निष्केवल्यग्रह, सावित्रग्रह, सारस्वतग्रह, पात्नीवतग्रह, हारियोजनग्रह ये सब यज्ञ से प्राप्त हों ॥२०॥

स्रुच॑श्च मे चम॒साश्च॑ मे व्वाय॒व्यानि च मे द्रोणकल॒शश्च॑ मे॒ ग्ग्रावा॑णश्च मे ऽधि॒षव॑णे च मे पूत॒भृच्च॑ म ऽआधव॒नीय॑श्च मे॒ वेदि॑श्च मे ब॒र्हिश्च॑ मे ऽवभृ॒थश्च॑ मे स्वगाका॒रश्च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

स्रुच॑÷ । च॒म॒साः । व्वा॒य॒व्यानि । द्रो॒ण॒क॒ल॒श ऽइति॑ द्रोण क॒ल॒शः । ग्ग्रावा॑णः । अ॒धि॒षव॑णे । अ॒धि॒सव॒न ऽइत्य॑धि॒ सव॑ने । पू॒त॒भृदिति॑ पू॒त॒ भृत् । अ॒ध॒व॒नी॒य ऽइत्या॑ ध॒व॒नीय॑÷ । व्वेदि॑÷ । ब॒र्हिः । अ॒व॒भृ॒थ॒ऽइत्य॑वभृ॒थः । स्व॒गा॒का॒रः इति॑ स्वगाका॒रः ॥ २१ ॥

[अन्वयः] स्रुचः चमसा व्वायव्यानि द्रोणकलशः ग्रावाणः अधिषवणे पूतभृत् आधवनीयः वेदिः बर्हिः अवभृतः स्वगाकारः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

[व्याख्याः] स्रुचः = जुह्वादयः, चमसा = ग्रहपात्राणि, व्यायव्यानि = पात्रविशेषाः, द्रोणकलशः ग्रावाणः, अधिषवणे = काष्ठफलके, पूतभृत् आधवनी यौसोमपात्रविशेषौ, वेदिः, बर्हिः, अवभृथः, स्वगाकारः, शम्म्युवाकः (एते) मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २१॥

[अर्थः] जुह्वादि, चमसग्रह, व्यायव्यपात्रग्रह, द्रोणकलश, ग्रावाण, अधिषवण, पूतभृत्, आधवनीय, वेदि, कुशा, अवभृथ, स्वगाकार ये सब यज्ञ से प्राप्त हों ॥ २१ ॥

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्म्मश्च॑ मे॒ऽर्क्कश्च॑ मे॒ सूर्य्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मे ऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॒ मे ऽदि॑तिश्च मे॒ दिति॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ ऽङ्गुल॑य॒ः शक्व॑रयो॒ दिश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

अ॒ग्निः । घ॒र्म्मः । अ॒र्क्कः । सूर्य्यः॑ । प्रा॒णः । अ॒श्व॒मे॒ध ऽइत्य॑श्व मे॒धः । पृ॒थि॒वी । अदि॑तिः । दिति॑ः । द्यौः । अ॒ङ्गुल॑यः । शक्व॑रयः । दिश॑ः ॥ २२ ॥

[अन्वयः] अग्निः धर्मः अर्कः सूर्यः प्राणः अश्वमेधः पृथिवी अदितिः दितिः द्यौः अङ्गुलयः शक्व-रयः दिशः [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

[व्याख्या] अग्निः = चीयमानोवन्हिः, अग्निष्टोमो वा। घर्मः = प्रवर्ग्यः, अर्कः = 'इन्द्राकर्वते पुरोडाशम्' इति विहितो यागोऽर्कः, सूर्यः = "सौर्यं चरुम्" इति विहितः सूर्यः, प्राणः = गवामयनम्, अश्वमेधः = अश्वमेधो यज्ञः प्रसिद्धः, पृथिवी, अदितिः, दितिः, द्यौः, अङ्गुलयः = विराट् पुरुषावयवाः, शक्करयः = शक्तयः, दिशः = प्राच्याद्याः, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

[अर्थः] इकट्ठी की भई अग्नि या अग्निष्टोम, प्रवर्ग्य, यज्ञसम्बन्धिपुरोडाश, सूर्यसम्बन्धि चरु, गवामयन, अश्वमेध, अदिति देवता, दिति देवता, स्वर्ग, विराट पुरुषावयव, शक्ति, दिशाएँ, यज्ञसे प्राप्त हों ॥ २२ ॥

व्रतं च मऽऋतवश्श्च मे तपश्श्च मे संव्वत्सरश्श्च मे ऽहोरात्रे ऽऊर्व्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

व्रतम् । ऋतवः । तपः । सम्व्वत्सरः । अहोरात्रे इत्यहोरात्रे । ऊर्व्वष्ठीवे ऽइत्यूर्व्वष्ठीवे । बृहद्रथन्तरे ऽइति बृहत् रथन्तरे ॥२३॥

[अन्वयः] व्रतं ऋतवः तपः संवत्सरः अहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे [एतानि] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

[विग्रहः] अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रे। अरु च अष्ठीवन्तौ जानुनी च ऊर्वष्ठीवे ॥ २३ ॥

[व्याख्या] व्रतम् = नियमः, ऋतवः = वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद्हेमन्तशिशिरादयः, तपः कृच्छ्रचान्द्रायणादि, संवत्सरः = प्रभवादि, अहोरात्रे = दिननिशे, ऊर्वष्ठीवे = अवयवविशेषौ बृहद्रथन्तरे = एतन्नामके सामनी, [एतानि] मे, यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

[व्याकरणम्] "अचतुर विचतुर" इत्यादिना निपातः ॥ २३ ॥

[अर्थः] नियम, वसन्तादि ऋतु, कृच्छ्र चान्द्रायणादि, प्रभावादिवर्ष, दिन और रात, जानु जङ्घा प्रभृति अवयवविशेष, बृहद्रथन्तरसाम, ये यज्ञ से प्राप्त हों ॥ २३ ॥

एका॑ च मे ति॒स्रश्च॑ मे ति॒स्रश्च॑ मे॒ पञ्च॑ च मे॒ पञ्च॑ च मे स॒प्त च॑ मे स॒प्त च॑ मे॒ नव॑ च मे॒ नव॑ च म॒ ऽएका॑दश च म॒ ऽएका॑दश च मे॒ त्रयो॑दश च मे॒ त्रयो॑दश च मे॒ पञ्च॑दश च मे॒ पञ्च॑दश च मे स॒प्तद॑श च मे स॒प्तद॑श च मे॒ नव॑दश च मे॒ नव॑दश च म॒ ऽएक॑विꣳशतिश्च म॒ ऽएक॑विꣳशतिश्च मे॒ त्रयो॑विꣳशतिश्च मे॒ त्रयो॑विꣳशतिश्च मे॒ पञ्च॑विꣳशतिश्च मे॒ पञ्च॑विꣳशतिश्च मे स॒प्तवि॑ꣳशतिश्च मे स॒प्त-

वि॑ꣳशतिश्च मे॒ नव॑विꣳशतिश्च मे॒ नव॑विꣳशतिश्च म॒ ऽएक॑त्रिꣳशच्च म॒ ऽएक॑त्रिꣳशच्च मे॒ त्रय॑स्त्रिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

एका॑ । ति॒स्रः । पञ्च॑ । स॒प्त । नव॑ । एका॑दश । त्रयो॑द॒शेति त्रय॑ः दश । पञ्च॑द॒शेति॒पञ्च॑ दश । स॒प्तद॒शेति॑ स॒प्त द॑श । नव॑द॒शेति॒ नव॑ दश । एक॑विꣳ शति॒रित्येक॑ विꣳशतिः । त्रयो॑विꣳशति॒रिति॒त्रय॑ः विꣳशतिः । पञ्च॑विꣳशति॒रिति॒पञ्च॑ विꣳशतिः । स॒प्तवि॑ꣳशति॒रिति॑ स॒प्त वि॑ꣳशतिः । नव॑विꣳशति॒रिति॒ नव॑ विꣳशतिः । एक॑त्रिꣳशदि॒त्येक॑ त्रिꣳशत् । त्रय॑स्त्रिꣳश॒दिति॒त्रय॑ः त्रिꣳशत् ॥ २४ ॥

अन्वय और व्याख्या मन्त्र पर ही समझ ले ॥ २४ ॥

[अर्थः] एक, तीन, पाच, सात, नौ, ग्यारह, तेरह, पन्द्रह, सोलह, उन्नीस, इक्कीस, तेईस, पचीस, सताइस, उन्तीस, इकतिस, ये सब यज्ञ के स्तोम यज्ञ से प्राप्त हों ॥ २४ ॥

चत॑स्रश्च मे॒ऽष्टौ च मे॒ऽष्टौ च॑ मे॒ द्वाद॑श च॑ मे॒ द्वाद॑श च मे॒ षोड॑श च मे॒ षोड॑श च मे विꣳश॒तिश्च॑ मे॒ विꣳश॒तिश्च म॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ चतु॑र्विꣳशतिश्च मे॒ ऽष्टाविꣳशतिश्च मे॒ऽष्टाविꣳशतिश्च मे॒ द्वात्रिꣳशच्च मे॒ द्वात्रिꣳशच्च मे॒ षट्त्रिꣳशच्च मे॒ षट्त्रिꣳशच्च मे चत्वारि॒ꣳशच्च॑ मे चत्वारि॒ꣳशच्च॑ मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ चतु॑श्चत्वारिꣳशच्च मे॒ ऽष्टाच॑त्वारिꣳशच्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

चत॑स्रः । अ॒ष्टौ । द्वाद॑श । षोड॑श । वि॒ꣳश॒तिः । चतु॑र्विꣳशति॒रिति॒ चतु॑÷ विꣳशतिः । अ॒ष्टाविꣳशति॒रित्य॒ष्टा विꣳशतिः । द्वात्रिꣳशत् । षट्त्रिꣳश॒दिति॒षट् त्रिꣳशत् । च॒त्वा॒रि॒ꣳशत् । चतु॑श्चत्वारिꣳश॒दिति॒ चतु॑÷ चत्वारिꣳशत् । अ॒ष्टाच॑त्वारिꣳश॒दित्य॒ष्टा च॑त्वारिꣳशत् ॥ २५ ॥

मन्त्र पर ही अन्वयादिक समझले

[अर्थः] चार, आठ, बारह, सोलह, बीस, चौबीस, अठाईस, बत्तीस, छत्तीस, चालीस, चौवालीस, अड़तालीस, ये सब यज्ञ के स्तोम यज्ञ से प्राप्त हों ॥ २५ ॥

त्र्यवि॑श्च मे त्र्य॒वी च॑ मे दित्य॒वाट् च॑ मे दित्यौ॒ही च॑ मे॒ पञ्चा॑विश्च मे पञ्चा॒वी च॑ मे त्रिव॒त्सश्च॑ मे त्रिव॒त्सा च॑ मे तु॒र्य॑वाट् च॑ मे तु॒र्यौही च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

त्र्यवि॒रिति॑ त्रि अवि॑ः । त्र्य॒वीति॑ त्रि अ॒वी । दि॒त्य॒वाडिति॑ दित्य॒वाट् । दि॒त्यौ॒ही । पञ्चा॑वि॒रिति॒ पञ्च॑ अवि॑ः । प॒ञ्चा॒वीति॑ पञ्च॑ अ॒वी । त्रि॒व॒त्स ऽइति॑ त्रि व॒त्सः । त्रि॒व॒त्सेति॑ त्रि व॒त्सा । तु॒र्य॒वाडिति॑ तु॒र्य॒वाट् । तु॒र्यौ॒ही ॥ २६ ॥

[अन्वयः] त्र्यविः त्र्यवी दित्यवाट् दित्यौही पञ्चाविः पञ्चावी त्रिवत्सः त्रिवत्सा तुर्यवाट् तुर्यौही [एते] मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

[विग्रहः] त्रयोवयो यस्य स त्र्यविः । त्रयोवत्सा यस्य स त्रिवत्सः । तुर्यं वर्षं वहतीति तुर्यवाट् ॥ २६ ॥

[व्याख्या] त्र्यविः = सार्धसंवत्सरो वृषः त्र्यवी = तादृशी गौः, दित्यवाट् = दित्यौही = तादृशीगौः, दित्यौही, पञ्चाविः = सार्धसम्वत्सरो वृषः, पञ्चावी = तादृशी गौत्रि, ह्वत्सः = त्रिवत्सो वृषः, त्रिवत्सा = तादृशीगौः, तुर्यवाट् = सार्धत्रिमवर्षो वृषः, तुर्यौही = तादृशी गौ, [एते] मे, यज्ञेन, कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

[अर्थः] डेढ़ वर्ष का बैल, वैसे ही गौ, दो वर्ष का बैल, वैसी ही गौ, अढ़ाई वर्ष का बैल, वैसी ही गौ, तीन वर्षका बैल, वैसी ही गौ, साढ़े तीन वर्ष का बैल, वैसो ही गौ, ये यज्ञसे प्राप्त हों ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च म ऽउक्षा च मे वशा च म ऽऋषभश्च मे वेहच्च मे ऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

पष्ठवादिति पष्ठ ऽवाट् । पष्ठौही । उक्षा । वशा । ऋषभः । वेहत् । अनड्वान् । धेनुः ॥ २७ ॥

[अन्वयः] पष्ठवाट् पष्ठौ ही उक्षा वशा ऋषभः वेहत् अनड्वान् धेनुः मे यज्ञेन कल्पन्ताम्॥२७॥

[विग्रहः] षष्ठं वर्षचतुष्कं वहतीति पष्ठवाट् । अनः शकटं वहतीति अनड्वान् ॥ २७ ॥

[व्याख्या] पष्ठवाट् = चतुर्वर्षोवृषः, पष्ठोही = तादृशी गौः, उक्षा = सेचनक्षमोवृषः, वशा =

वन्ध्या गौः, ऋषभः=अतियुवा ऋषभः, वेहत्=गर्भघातिनी गौः, अनड्वान्=शकटवहनक्षमो वृषः, धेनुः=नव प्रसूता गौः [एते] मे यज्ञेन=निमित्तेन कल्पन्ताम्=स्वस्वव्यापारसमर्था भवन्तु। यद्वा—[एते] यज्ञेन, मे, कल्पन्ताम्=मध्यमुपभोगक्षमा भवन्त्वित्यर्थः ॥ २७ ॥

[व्याकरणम्] वहेः क्विपि सम्प्रसारणमनसो डकारः "चतुरनडुहोरामुदात्तः" इति सूत्रेण आमागमः ॥ २७ ॥

[अर्थः] चारवर्षका बैल, वैसीही गौ, से चन क्षमवैल, बन्ध्यागौं अतियुवा बैल, गर्भघातिनी गौ, शकटवहन योग्य वैल, नवीन प्रसूता गौ, ये स्वस्व व्यापार में समर्थ हों। या ये मेरे लिए उपभोगक्षम हों ॥ २७ ॥

वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑ऽपि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ऽह॒र्पत॑ये॒ स्वाहाऽह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॑ वैनꣳशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ꣳशिन॑ऽआन्त्याय॒नाय॒ स्वाहाऽन्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाऽधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जाप॑तये॒ स्वाहा॑। इयन्ते॒ राण्मि॒त्राय॑ ष॒न्तासि॒ षम॑न॒ऽऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जाना॒न्त्वाधि॑पत्याय ॥ २८ ॥

वाजा॑य । स्वाहा॑ । प्र॒स॒वायेति॑प्र स॒वाय॑ । प्र॒जाप॑तय॒ ऽइति॑ प्र॒जाप॑तये । इ॒यम् । ते॒ । राट् । मि॒त्राय॑ । य॒न्ता । अ॒सि॒ । यम॑नः । ऊ॒र्ज्जे । त्वा॒ । ऽवृ॒ष्ट्यै॑ । प्र॒जाना॒मिति॑प्र॒ जाना॑म् । आधि॑पत्या॒येत्याधि॑ पत्याय ॥ २८ ॥

[अन्वयः] वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहा अपिजाय स्वाहा कतवे स्वाहा वसवे स्वाहा अहर्पतये स्वाहा मुग्धायाह्ने स्वाहा अमुग्धाय, वैनं शिनाय स्वाहा अविनंशिने आन्त्यायनाय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहा अधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा इयं ते राट् मित्राय यन्ता असि यमन अर्जे त्वा घृष्ण्यै त्वा प्रजानां आधिपत्याय ॥ २८ ॥

[विग्रहः] वाजः अनंतस्मै वाजाय । अप्सु जायते अपिजः [सप्तम्ताअलुक] तस्मै अपिजाय । वासयति वासुः तस्मै यसवे । विनश्यतीति विनंशी विनंश्येव वैनंशिनः तस्मै वैनंशिवाय । न विनश्यति इति अविनंशी तस्मै अविनंशिने । अन्ते सर्वेषां नाशे भवं अन्त्यं तत् अयनं चेत्यन्त्यायनं तत्रभवः आन्त्यायनः तस्मै आन्त्यायनाय यमतीति यमनः ॥ २८ ॥

[व्याख्या] वाजाय स्वाहा=अन्ते स्वरूपे भवः आन्त्यः तस्मै आन्त्याय । भुवनानामयं वाजादीनि भौवनः तस्मै भौवनाय । चैत्रादिमासानां नामानि तन्नाम गृहीत्वा होतव्यमित्यर्थः ।

अन्नं प्रचुर्यात् चैत्रोऽन्नरूपः, प्रसवाय=अनुज्ञारूपाय जलक्रीडादौ अभ्यनुज्ञादानात् प्रसवो वैशाखः, स्वाहा, अपिजाय=जलक्रीडारतत्वात् अपिजो ज्यैष्ठः, स्वाहा, क्रतवे=यागरूपाय चातुर्मास्यादियागप्राचुर्यात्क्रतुः आषाढः, स्वाहा, वसवे=चातुर्मास्ये यात्रानिषेधात् वसुः श्रावणः, स्वाहा, अहर्पतये=दिनस्वामिने सूर्यरूपाय तापकरत्वात् भाद्रपदस्य अहर्पतित्वम्, स्वाहा, मुग्धायाहे=तुषारादिनामोहरूपाय दिवसाय तुषारबाहुल्यात् मुग्धमह आश्विनः, स्वाहा, अमुग्धाय वैनंशिवाय=अल्पघटिकावत्वेन विनाशशीलाय कार्तिकाय स्नाननियमादिना, पापनाशकत्वात् अमुग्धाय मोहनिवर्तकाय कार्तिकाय, स्वाहा, अविंशिने=विनाशरहिताय, आन्त्यायनाय=सर्वनाशेऽप्यवशिष्टाय, अत एव अविंशिने विष्णुरूपाय मार्गशीर्षाय। 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' इति स्मृतेः, आन्त्याय भौवनाय लोकस्वरूपपुष्टिकरत्वात् तत्र भवत्वम्। जाड्याग्नेर्दीप्तिकरत्वेन पुष्टिकरत्वं पौषस्य, स्वाहा भुवनस्य=भूतजातस्य, पतये=पालकाय माघाय, स्नानादिनापुण्यजनकत्वेन पालकत्वं माघस्य। अधिपतये=अधिकपालकाय वर्षान्तत्वात् फाल्गुनाय, स्वाहा हे अग्ने! इयं, ते=तव, राट्=यत्र २ यागाः क्रियन्ते त चैवैव राज्यम्, हे अग्ने! त्वम्, मित्रस्य=मित्रस्य सख्युर्यजमानस्य, षष्ठ्यर्थे चतुर्थी मित्राय। यन्ता=नियामकः, असि=भवति, [कीदृशास्त्वम्] यमनः=अग्निष्टोमादिकर्मसु सर्वान्नियमयन्, [अत] ऊर्जे=विशिष्टान्नरसाय, त्वा=त्वाम्, अभिषिञ्चामीति शेषः। [तथा] वृष्ट्यै=वर्षणाय, त्वा, प्रजानामधिपत्याय प्रजास्वामित्वाप्त्यै, त्वा=त्वाम्, वसोर्धारया अभिषिचामीति शेषः ॥ २८ ॥

[व्याकरणम्] "मस्जिनशोर्झलि" इति बाहुलकात् झल्यपि नशेर्नुमागमः ॥ २८ ॥

[अर्थ] चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन्, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन, द्वादशमासाधिष्ठातृ देवताओं को सुहृत हो ! हे अग्ने ! तुम यज्ञराज्य, मित्र, यजमानके नियामक, हो। अग्निष्टोमादिकर्मों में नियामक, विशिष्टरस के लिए तुमको अभिषेचन करता हूँ। वर्षा के लिए, प्रजा के प्रभुत्व प्राप्ति के लिये वसोर्धारासे अभिषेचन करता हूँ ॥ २८ ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग् यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्चऽ ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च। स्वर्देवा ऽअगन्मामृता ऽअभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

वाक्। मनः। आत्मा। ब्रह्मा। ज्योतिः। स्वः ॥ स्तोमः।

यजुं÷ । ऋक्। सामं। बृ॒हत्। र॒थ॒न्त॒रमिति॑रथम्ऽत॒रम्। वेट्। स्वाहा॑।।२९।

[अन्वयः] यज्ञेन आयुः कल्पतां यज्ञेन प्राणः कल्पतां यज्ञेन चक्षुः कल्पतां यज्ञेन श्रोत्रं कल्पतां यज्ञेन वाक् कल्पतां यज्ञेन मनः कल्पतां यज्ञेन आत्मा कल्पतां यज्ञेन ब्रह्मा कल्पतां यज्ञेन ज्योतिः कल्पतां यज्ञेन स्वः कल्पतां यज्ञेन पृष्ठं कल्पतां यज्ञेन यज्ञः कल्पताम् स्तोमः यजुः ऋक् साम बृहच्च रथन्तरं च। देवाः स्वः अगन्म अमृता अभूम प्रजापतेः प्रजाः अभूम वेट् स्वाहा ॥ २९ ॥

[व्याख्या] यज्ञेन = निमित्तेन, आयुः = जीवनकालः, कल्पताम् = साध्यताम्, प्राप्यताम्, यज्ञेन, प्राणः, कल्पताम्, यज्ञेन, चक्षुः, कल्पताम्, यज्ञेन, श्रोत्रम्, कल्पताम्, यज्ञेन, वाक्, कल्पताम् यज्ञेन, ब्रह्मा = वेदः, कल्पताम्, यज्ञेन ज्योतिः, कल्पताम्, यज्ञेन, स्वयः = स्वर्गः, कल्पताम्, यज्ञेन, पृष्ठम् स्वर्गस्थानं वा = स्तोत्रम्, कल्पताम्, यज्ञेन, यज्ञः, कल्पताम्, स्तोमः = यजुर्ऋक्साम-बृहद्रथन्तराणि, यजुः = अनियतपादोमन्त्रः, ऋक् = नियतपादा, साम = गीतिप्रधानम्, बृहच्च, रथन्तरं च, देवाः, स्वः = स्वर्गम्, अगन्म = गतवन्तः, अमृता = अमरणधर्मिणः, अभूम = भूताः, प्रजापतेः = हिरण्यगर्भस्य, प्रजाः, अभूम, वेट् वषट्कारः स्वाहा ॥ २९ ॥

[अर्थः] आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाक्, मन, आत्मा, ब्रह्मा, ज्योति, स्वर्ग, स्तोत्र या स्वर्गस्थान, यज्ञ, यजु अनियतपादमन्त्र, नियतपादमन्त्र ऋक्, बृहत् रथन्तर साम, देव स्वर्ग, प्रजा सब यज्ञके द्वारा प्राप्त करें ॥ २९ ॥

इति अष्टमोऽध्यायः समाप्तः

अथ नवमोऽध्यायः

ऋचं॒ व्वाचं॒ प्रप॑द्ये॒ मनो॒ यजु॒ꣳ प्रप॑द्ये॒ साम॑ प्रा॒णं प्रप॑द्ये॒ चक्षु॒ꣳ श्रोत्रं॒
प्रप॑द्ये । व्वागोजः॑ स॒हौजो॒ मयि॑ प्राणापा॒नौ ॥ १ ॥

ऋच॑म् । व्वाच॑म् । प्र । प॒द्ये॒ । मन॑ः । यजु॑ः । साम॑ । प्रा॒णम् । चक्षु॑ः । श्रोत्र॑म् ॥ व्वाक् । ओज॑ः । स॒ह । ओज॑ः । मयि॑ । प्रा॒णा॒पा॒नौ ॥ १ ॥

[अन्वयः] ऋचं वाचं प्रपद्ये यजुः मनः प्रपद्ये प्राणं साम प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये वाक् ओजः ओजः प्राणापानौ सहमयि वर्तन्ते ॥ १ ॥

[व्याख्या] ऋचम् = ऋग्रूपाम्, वाचम् = बाणीम्, प्रपद्ये = प्रविशामि, शरणं व्रजामीत्यर्थः। यजुः = यजुरूपम्, मनः = चित्रम्, प्रपद्ये, प्राणम् = प्राणरूपम्, साम = सामरूपम्, प्रपद्ये, चक्षुः = चक्षुरिन्द्रियम्, श्रोत्रम् = श्रवणेन्द्रियम्, प्रपद्ये, वाक् = वागिन्द्रियम्, ओजः = मानसिकबलम्, ओजः = शारीरं बलम्, प्राणापानौ = उच्छ्वासनिश्वासवायू, सह = सार्धम्, मयि = मदात्मनि वर्तन्ते ॥ १ ॥

[अर्थः] ऋक्‌रूप, यजुरूप, प्राणरूप, चक्षुरूपीइन्द्रिय और श्रोत्रके शरण जाता हूँ। वागिन्द्रिय मानसबल शारीरिकवल और उच्छ्वासनिश्वासवायु सब एक होकर मेरेमें रहें ॥ १ ॥

षन्मे॑ च्छिद्रं॒ चक्षु॑षो॒ हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ व्वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु । शन्नो॑ भवतु भुव॑नस्य॒ षस्पति॑ः ॥ २ ॥

षत् । मे॒ । छि॒द्रम् । चक्षु॑षः । हृद॑यस्य । मन॑सः । व्वा॒ । आति॑ तृण्ण॒मित्यति॑ तृण्णम् । बृह॒स्पति॑ः । मे॒ । तत् । द॒धा॒तु । शम् । न॒ः । भ॒व॒तु । भुव॑नस्य । षः । पति॑ः । ऊ॒ति॒भि॒रित्यू॒ति ऽभि॑ः ॥ २ ॥

[अन्वयः] मे चक्षुषः यत् हृदयस्य छिद्रं मनसः वा अतितृण्णं बृहस्पतिः मे तत् दधातु भुवनस्य यः पतिः नः शम् भवतु ॥ २ ॥

[व्याख्याः] मे = मम, चक्षुषः = चक्षुः इन्द्रियस्य, यत् हृदयस्य = चेतसः, छिद्रम् = अघण्डनम्, मकसः = बुद्धे, वा = अथवा, अतितृण्णम्: अतिर्हिंसितम्, (प्रवर्ज्या चरणेन यत् चक्षुः बुद्धिः मनसी व्याकुलत्वं जातम्) बृहस्पतिः = देवगुरुः, मे = मम, तत् दधातु = सन्दधातु, (छिद्रं निर्वर्त्तयतु) भुवनस्य = भूत जातस्य, यः पतिः = स्वामी, नः अस्माकम्, (प्रवर्ग्यरूप यज्ञः) शम् =

सुखरूपम् भवतु (बृहस्पतिना छिद्रा वा करणात् प्रवर्ग्यः कल्याण रूपोऽस्तु इति भाव) ॥ २ ॥

[अर्थः] मेरी चक्षुन्द्रिय का हृदय का अखण्डन या बुद्धि का अतिहिंखित करो। देवगुरु मेरा धारण करे। भूतजात का जो पति हमलोगों का सुखरूप हो ॥ २ ॥

भूर्भुव॒ः स्व॒४ः तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि । धियो॒ यो नः॑ प्र॒चोद॒या२त् ॥ ३ ॥

---

(१) योगि याज्ञवल्क्यः—

तच्छब्देन तु यच्छब्दो बोद्धव्यः सततं बुधैः ।
उदाहृते तु यच्छब्दे तच्छब्दः स्यादुदाहृतः ॥
सविता सर्वभूतानां सर्वकामान्प्रसूयते ।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते ॥
दीव्यते क्रीडते यस्माद् द्योतते रोचते दिवि ।
तस्माद्देव इति प्रोक्तः स्तूयते सर्वदैवतैः ॥
चिन्तयामो वयं भर्गो धियो यो नः प्रचोदयात् ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु बुद्धिवृत्तीः पुनः पुनः ॥

भ्रस्जपाके भवेद्धातुर्यस्मात्पाचयते ह्यसौ ।
भ्राजते दीप्यते यस्माज्जगच्चान्ते हरत्यपि ॥

कालाग्निरूपमास्थाय सप्तार्चिः सप्तरश्मिभिः ।
भ्राजते यत्स्वरूपेण तस्माद्भर्गः स उच्यते ॥
भेति भीषयते स्तोकान् रेति रञ्जयते प्रजाः ।
गत्या गच्छत्यजस्त्रं यो भगवान्भर्ग उच्यते ॥

वरेण्यं भरण्डीयं च संसार भय भीरुभिः ।
आदित्यान्तर्गतं यच्च भर्गाख्यं वा मुमुक्षुभिः ॥

जन्ममृत्यु विनाशाय दुःखस्य त्रिविधस्य च ।
ध्यानेन पुरुषो यस्तु द्रक्ष्यः स सूर्यमण्डले ॥

(२) गायत्रीजपनिबन्धों में विशेषतया तीन प्रकार का मिलता है एकप्रणवयुक्त, द्विप्रणवयुक्त, षट् प्रणवयुक्त। उसमें एक प्रणवयुक्त गायत्रीजप—गृहस्थों को और ब्रह्मचारियों को - द्विप्रणव विहित है सन्यासि प्रभृति को षट् प्रणवयुक्त गायत्री का जप विहित है—

स्मृतिरत्नावल्याम्—"संपुटैकषडोङ्कारा गायत्री त्रिविधा मता ।
तत्रैकप्रणवा ग्राह्या गृहस्थैर्जपकर्मणि ॥

गृहस्थवत्तु जप्तव्या सदैव ब्रह्मचारिभिः ।
संपुटा च षडोङ्कारा भवेतामूर्ध्वरेतसाम् ॥"

स्मृतिसारसमुच्चये—"गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत् ।
अन्ते यः प्रणवं कुर्यान्नासौ वृद्धिमवाप्नुयात् ॥"

"यो न वाञ्छति सन्तानं मोक्षमिच्छति केवलम् ।
अन्त्योङ्कारमसौ कुर्वन्नक्षरं पदमाप्नुयात् ॥"

संवर्तः—"प्रणवाद्यां तु सन्ध्यायां जपेद् व्याहृतिभिः सह"

मनुः—"एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् ।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥"

नीचे लिखे हुए दो वचन (सम्पुट) आद्यन्त गायत्री जप विधायक वाक्य सन्यासी के लिये हैं गृहस्थ और ब्रह्मचारी के लिये नहीं यह सब निबन्धकार लिखते हैं वे वचन यह हैं—

याज्ञवल्क्यः—"प्रणवः पूर्वमुच्चार्यो भूर्भुवः स्वस्ततः परम् ।
गायत्री प्रणवश्चान्ते जपे ह्येवमुदाहृतम् ॥
एषा सम्पुटगायत्री सर्वपापप्रणाशिनी ।

बौधायनः— "उभयतः प्रणवां सव्याहृतिकां गायत्रीं जपेत् ॥"

षडोङ्कारयुक्त गायत्री का स्वरूप इस प्रकार है—

"षडोङ्कारां जपेद्विप्रो गायत्रीं मनसा शुचिः ।
तिस्रो व्याहृतयः पूर्वं पृथगोङ्कारसंयुताः ॥
पुनः संहृत्य चोङ्कारं मन्त्रस्याद्यन्तयोस्तथा ।

इसी प्रकार विश्वामित्र कल्प में पञ्चप्रणवा और त्रिप्रणवा गायत्री का भी विधान है वह भी गृहस्थ और ब्रह्मचारी के लिये नहीं है ।

नित्यस्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) में दशप्रणवा भी गायत्री विहित है जिसका स्वरूप यह है—

"आदौ प्रणवमुच्चार्यं व्याहृतीः प्रणवान्विताः ।
मन्त्रादौ प्रणवः कार्यो मन्त्रान्ते प्रणवः पुनः ॥

अथवा—"आदौ प्रणवमुच्चार्यं सप्त व्याहृतयस्ततः ।
मन्त्रादौ प्रणवः कार्यो मन्त्रान्ते प्रणवः पुनः ।"

होम भी एक प्रणवा गायत्री से होता है द्विप्रणवासे नहीं ।

"प्रणवव्याहृतिभिः सार्धं स्वाहा होमकर्मणि" ।

(२) गायत्रीजपमें "ण्यम्" ऐसा ही पढ़ना चाहिये "णियम्" ऐसा नहीं पढ़ा जाता है णियम् ऐसी भावना करनी चाहिये संस्काररत्नमाला आदि ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा है कि—

तत् । स॒वि॒तुः । वरे॑ण्यम् । भर्गः॑ । दे॒वस्य॑ । धी॒म॒हि॒ । धियः॑ । यः । नः॒ । प्र॒चो॒द॒या॒दिति॑प्र चो॒दया॑त् ॥ ३ ॥

[अन्वयः] भूर्भुवः स्वः तत् देवस्य सवितुः वरेण्यं भर्गः धीमहि सविता यः नः धियः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥

[विग्रहः] भूर्भुवः स्वः, तत् = तत् इति षष्ठ्यर्थे, तस्य देवस्य द्योतनात्मकस्य, सवितुः = प्रेरकस्यान्तर्यामिणो विज्ञानन्दस्वभावस्य, हिरण्यगर्भोपाध्यवच्छिन्नस्य वा, आदित्यान्तरपुरुषस्य वा । वरेण्यम् = वरणीयम्, सर्वैः प्रार्थनीयम् । भर्गः = सर्वपापानां सर्वसंसारस्य च भर्जनसमर्थं तेजः सत्यज्ञानानन्दादिवेदान्तप्रतिपाद्यम् । [यद्वा—मण्डलं पुरुषो रश्मय इति त्रयं भर्गः शब्दवाच्यम् । भर्गो वीर्यं वा ।] धीमहि = ध्यायामः, यः = सविता देवः नः = अस्माकम्, धियः = बुद्धीः कर्माणि

“अत्र यद्यपि स्वशास्त्रयोर्विंशतिरेव गायत्रीमन्त्रे वर्तन्ते तथापि ण्यमित्यस्य भावनया णियमिति स्वरद्वयं ज्ञेयम्” ।

इससे भावना मात्र ही है जप नहीं । गायत्र्युपदेश भी ण्यम् ऐसा ही होता है उपदेशानुसार जप है । इसी प्रकार “भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराणि” यह बृहदारण्यकोपनिषत् में लिखा है (१४ । १४ । ५ । १ ।)

वहाँ भी द्यौः को दियौः ऐसा मानकर आठ अक्षर मानते हैं परन्तु उच्चारण द्यौः यही होता है यह वहाँ के भाष्यादि में स्पष्ट है । इति ।

वा। प्रचोदयात्=प्रकर्षेण चोदयति प्रेरयति सत्कर्मानुष्ठानाय, यद्वा=वाक्यभेदेन योजना। सवितुः देवस्य तत् वरेण्यं भर्गो ध्यायामः, यश्च नो बुद्धीः प्रेरयति तं च ध्यायामः। स च सवितैव। लिङ्गव्यत्ययेन योजना। सवितुर्देवस्य तत् भर्गो धीमहि। यो यत् भर्गो नो बुद्धीः प्रेरयति ॥ ३ ॥

[अर्थः] उस द्योतनात्मक प्रेरक अन्तर्यामी विज्ञानन्दस्वभावका वरणीय संसार के सब पापों का ध्यान करता हूँ। सवितादेव हमलोगों के कर्मों को प्रेरणा करते हैं ॥ ३ ॥

कयानश्चि॒त्र ऽआभु॑वदू॒ती स॒दावृ॑ध॒ᳲ सखा॑ ।
कया॒ शचि॑ष्ठया ऽवृता ॥ ४ ॥

कया॑ । न॒ᳲ । चि॒त्रᳲ । आ । भु॒व॒त् । ऊ॒ती । स॒दावृ॑ध॒ऽइति॑ स॒दावृ॑धᳲ । सखा॑ । कया॑ । शचि॑ष्ठया । वृता ॥ ४ ॥

[अन्वयः] कया ऊती नः सखा आभवत् वृता शचिष्ठया चित्रः सदावृधः ॥ ४ ॥

[विग्रहः] वर्तत इति वृत् तया वृता। अतिशयेन शची इति शचिष्ठा तया शचिष्ठया। सदावर्धत इति सदावृधः ॥ ४ ॥

[व्याख्या] कया, ऊती=ऊत्या अवनेन तर्पणेन प्रीणनेन वा। नः=अस्माकम्, सखा=

सहायः, आभुवत्=भूयाम्, वृता=वर्णमानया, शचिष्ठया, सचीतिकर्मनाम। चित्रः=विचित्रः, पूज्यो वा। सदावृधः=सदावर्धमानः ॥ ४ ॥

[व्याकरणम्] सदावृधः—“इगुपधज्ञाप्री किरः कः” इति सूत्रेण क प्रत्ययः। ऊती—तृतीयैकवचनस्य “सुपां सुलुक्०” इति सूत्रेण पूर्वसवर्णदीर्घे कृते। आभुवत्—“इतश्च लोपः परस्मैपदेषु” इति सूत्रेण तिप इलोपः शपश्छान्दसे ङित्वे धातोरुवङ्ङा देशे ॥ ४ ॥

[अर्थः] वर्तमान विचित्र सदावर्धमान इन्द तर्पणसे या कान्तिसे हमलोगोंके सहायक हों ॥४॥

कस्त्वा॑ स॒त्यो मदा॑नां॒ मꣳहि॑ष्ठो मत्स॒दन्ध॑सः । दृ॒ढा
चिदा॒रुजे॒ वसु॑ ॥ ५ ॥

कः । त्वा॒ । स॒त्यः । मदा॑नाम । मꣳहि॑ष्ठः । म॒त्स॒त् । अन्ध॑सः ।
दृढा । चि॒त् । आ॒रु॒ज॒ ऽइत्या॒ रुजे॑ । वसु॑ ॥ ५ ॥

[अन्वयः] हेइन्द्र ! अन्धसः कः त्वा मत्सत् मदानां मंहिष्टः दृढ़ाचित् वसु आरुजे भङ्क्त्वा ॥ ५ ॥

[विग्रहः] मंहयति द्योतते मंही अत्यन्तं मंही मंहिष्ठः, यद्वा=(. महि वृद्धौ”–भ्वादिः) मंहते वर्धते मंही अत्यन्तं मंही मंहिष्ठः ॥ ५ ॥

[व्याख्या] [हेइन्द्र !] अन्धसः = अन्नस्य सोमरूपस्य, कः = अंशः, त्वा = त्वाम्, मत्सत् = माद्यति मत्तं करोति। मदानाम् — मदयन्ति तानि मदानि पचाद्यत् मदकानि हवींषि तेषां मध्ये, मंहिष्ठ श्रेष्ठः, दृढा चित् = दृढान्यपि, वसु = वसूनि धनानि कनकादीनि, त्वम् आरुजे = आरुजसि चूर्णयसि दातुं भनक्षि, मङ्क्त्वा = भङ्क्त्वा ददासीत्यर्थः ॥ ५ ॥

[व्याकरणम्] मदी हर्षे—“लेटोऽडाटौ” इत्यडागमः। सिबहुलं लेटि” इति सिप् प्रत्ययः तिप्इलोपे। मंहि कान्तौ चुरादिः ॥ ५ ॥

[अर्थः] हे इन्द्र ! सोमरूप अन्न का कौन अंश तुमको प्रसन्न करता है। मदक हवियों के मध्य में श्रेष्ठ धनों को विभाग करते हो ॥ ५ ॥

अ॒भी षु ण॒ः सखी॑नामवि॒ता ज॑रितॄ॒णाम् ।
श॒तं भ॑वास्यू॒तिभि॑ः ॥ ६ ॥

अ॒भि । सु । न॒ः । सखी॑नाम् अ॒वि॒ता । ज॒रि॒तॄ॒णाम् ।
श॒तम् । भ॒वा॒सि॒ । ऊ॒तये॑ ॥ ६ ॥

[अन्वयः] [हेइन्द्र !] [त्वम्] ऊतिभिः अभिशतं भवासि सखीनां जरितॄणां नः अविता ॥ ६ ॥

[व्याख्या] [हे इन्द्र !] [त्वम्] ऊतिभिः = रक्षाभिः, अभि, शतम्, भवासि = भवसि, शतशब्दो बहुवाची। बहुरूपो भवसि। पालनाय नानारूपाणि दधासीत्यर्थः। सखीनाम् = मित्राणाम्, जरितॄणाम् = स्तोतॄणाम्, नः = अस्माकम्, अविता = पालयिता ॥ ६ ॥

[व्याकरणम्] अभि = अभीत्यस्य संहितायां दीर्घः। "सुञः" इति सुशब्दस्य षत्वम्। "नश्च" इति धातुस्थोरुषुभ्यः" इति सु शब्दात् परस्य नः इत्यस्य णत्वम् ॥ ६ ॥

[अर्थः] हे इन्द्र तुम पालन करने के लिये बहुत रूप धारण करते हो। मित्रोंके स्तोतृयों के और हमलोगोंके पालयिता हो ॥ ६ ॥

क॒या त्वन्नं ऊ॒त्याभि प्रमंन्दसे ऽवृषन्। कयां स्तो॒तृभ्य॒ ऽआभंर ॥७॥

कया॑ । त्वम् । न॒ः । ऊ॒त्या । अ॒भि । प्र॒ । म॒न्द॒से॒ । ऽवृ॒ष॒न् ॥

कया॑ । स्तो॒तृभ्य॒ ऽइतिस्तो॒तृ ऽभ्यः॑ । आ । भ॒र ॥ ७ ॥

[अन्वयः] हेवृषन् ! कया ऊत्या नः अभिप्रमन्दसे कया स्तोतृभ्यः आभर ॥ ७ ॥

[विग्रहः] वर्षति इति वृषा तत्सम्बुद्धौ हेवृषन्।

[व्याख्याः] हेवृषन् ! = हेसेक्त, इन्द्र !, कया, ऊत्या केन तर्पणेन हविर्दानेन, नः = अस्मान्, अभिप्रमन्दसे = अभिमोदयसि। कया, ऊत्या = तृप्त्या, स्तोतृभ्यः = स्तुतिकर्तृभ्यो यजमानेभ्यः, आभर = आहरसि, धनं दातुमिति शेषः ॥ ७ ॥

[व्याकरणम्] "मदिस्तु स्वपने जाड्ये मदे मोदे स्तुतौ गतौ" लट् । आभर–इति लङर्थे लोट् ॥ ७ ॥

[कोषः] वासवो वृत्रहा वृषा ॥ ७ ॥

[अर्थ] हे इन्द्र किस तर्पण से हमलोकों को तृप्त करते हो । किस तृप्ति से स्तुतिकर्तृक यजमानों के निमित्त धन देते हो ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शन्नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

इन्द्रः । विश्वस्य । राजति ॥ शम् । नः । अस्तु । द्विपद ऽइति द्वि पदे । चतुष्पदे । चतुः पद ऽइति चतुः पदे ॥ ८ ॥

[अन्वयः] विश्वस्य इन्द्रः राजति नः द्विपदे शम् अस्तु चतुष्पदे शम् ॥ ८ ॥

[विग्रहः] "इदि परमैश्वर्ये" इन्दति इति इन्द्रः ॥ ८ ॥

[व्याख्या] विश्वस्य = सर्वस्य जगतः, इन्द्रः = परमेश्वरः, महावीरः, आदित्यो वा । राजति = देदीप्यते, ईष्टे वा । नः = अस्माकम्, द्विपदे = द्विपदां पुत्रादीनाम्, विभक्तिव्यत्ययः । शम् = सुखरूपः, अस्तु = भवतु, चतुष्पदे = चतुष्पदां गवादीनां, (च) शम् = सुखरूपः ॥ ८ ॥

[अर्थः] सब जगत का परमेश्वर या सूर्य संसार को दीप्त करता है वह हम लोगों के पुत्रादियों को और गवादियों को सुखरूप में तत्पर हो ॥ ८ ॥

शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शन्नो॑ भवत्वर्य्य॒मा । शन्न॒ ऽइन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ १ ॥

मि॒त्रः । वरु॑णः । भ॒व॒तु॒ । अ॒र्य्य॒मा ॥ इन्द्रः॑ । बृह॒स्पतिः॑ । विष्णु॑ः । उ॒रु॒क्र॒म ऽइत्यु॑रु क्र॒मः ॥ १ ॥

[अन्वयः] मित्रः नः शं वरुणः अर्यमा नः शं इन्द्रः सः शम् बृहस्हतिः नः शं उरुक्रमः विष्णुः नः शम् ॥ १ ॥

[विग्रहः] वृणोति अङ्गीकरोति भक्तमिति वरुणः । इयर्ति गच्छति भक्तं प्रति इति अर्यमा । उरुर्विस्तीर्णः क्रमः पदन्यासो यस्य सः । वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णुः ॥ १ ॥

[व्याख्या] मित्रः=देवः, नः=अस्माकम्, शम्=सुखरूपः, अर्यमा, नः=अस्माकम्, शं=सुखरूपो भवतु, इन्द्रः=देवेशः, नः, शम्, वृहस्पतिः=देवगुरुः, नः, शम्, उरुक्रमः, विष्णुः, नः, शम्, ॥ १ ॥

[अर्थः] मित्र-वरुण—अर्यमा—इन्द्र-विष्णु-वृहस्पति—ये सब हम लोगों के सुखरूप हों ॥ १ ॥

शन्नो॒ वात॑ः पवता॒ᳫं॒ शन्नं॑स्तपतु॒ सूर्य्य॑ः ।
शन्न॒ः कनि॑क्क्रदद्दे॒वः प॒र्जन्न्यो॑ऽअ॒भिव॑र्षतु ॥ १० ॥

वात॑ः । प॒व॒ता॒म् । त॒प॒तु॒ । सूर्य्य॑ः ॥ कनि॑क्रदत् । दे॒वः ।
प॒र्ज्जन्य॑ः । अ॒भि । वृ॒ष॒तु॒ ॥ १० ॥

[अन्वयः] वातः नः शं पवतां सूर्यः शं नः तपतु पर्जन्यः कनिक्रदत् देवः नः शम् अभि वर्षतु ॥ १० ॥

[विग्रहः] सुवति जनान् स्वस्वव्यापारेषु प्रेरयति सूर्यः । पिपर्ति पूरयति जनमिति पर्जन्यः । अत्यन्तं क्रन्दतीति शब्दं कुर्वन् ॥ १० ॥

[व्याख्या] वातः=वायुः=नः, शम्=सुखकारः अपरूषः अव्याधिजनकश्च, पवताम्=वहताम्, सूर्यः, शम्=सुखरूपोऽदहनो भेषजरूपश्च, नः, तपतु=किरणान्प्रसारयतु, पर्जन्यः, देवः, कनिक्रदत्, नः, शम्=सुखकरं काशनिक्षाररहितम्, अभिवर्षतु=सिञ्चतु ॥ १० ॥

[व्याकरणम्] कनिक्रदत्—“दाधात दर्धर्ति” इत्यादिना यङ्लुगन्तो निपातः । पवताम्—“पवगतौ” इति लोट् ॥ १० ॥

[अर्थः] वायु हमलोगों का सुख रूप हो। सूर्य सुखरूप किरणों को प्रसारण करें। पर्जन्यदेव सुखकर सिञ्चन करें ॥ १० ॥

अहा॑नि॒ शं भ॑वन्तु न॒ः शꣳरात्री॒ः प्रति॑ धीयताम् । शन्न॑ ऽइन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः शन्न॒ ऽइन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ॥ शन्न॑ ऽइन्द्रापू॒ष॒णा वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं षोः ॥ ११ ॥

अहा॑नि । भ॒व॒न्तु॒ । न॒ः । रात्री॑ः । प्रति॑ । धी॒य॒ता॒म् ॥ इ॒न्द्रा॒ग्नी ऽइतीन्द्रा॒ग्नी । भ॒व॒ता॒म् । अवो॑भि॒रित्यव॑÷ भिः । इन्द्रा॒वरु॑णा । रा॒त ह॒व्येति॑ रा॒त ह॑व्या ॥ इ॒न्द्रा॒पू॒षणा॑ । वाज॑साता॒विति॒ वाज॑सातौ । इन्द्रा॒सोमा॑ । सु॒वि॒ताय॑ । षोः ॥ ११ ॥

[अन्वयः] अहानि नः शं भवन्तु रात्रिः शं प्रति धीयतां शं नः इन्द्राग्नी इन्द्रावरुणौ इन्द्रापूषणौ अवोभिः नः शं रातहव्या इन्द्रासोमा नः सुविताय ॥ ११ ॥

[व्याख्याः] अहानि = दिनानि, नः = अस्माकम्, शम् = सुखरूपाणि, भवन्तु रात्रीः,

शम्, प्रतिधीयताम् = प्रति दधातु, शं, नः, इन्द्राग्नी: = इन्द्रावरुणौ, इन्द्रापूषणौ, इन्द्राग्नी अवोभिः = पालनैः कृत्वा नः, शम् = सुखरूपौ भवताम्, रातहव्या = रातं दत्तं हव्यं ययो तौ रातहव्यौ हविस्तृप्तौ, इन्द्रासोमा = इन्द्रसोमौ देवौ, नः शं भवताम्, सुविताय = सुष्ठ इतं सुवितं साधुगमनाय साधुप्रसवाय वा, शम् = रोगाणाम् शमनाय ।। ११ ।।

[अर्थः] दिन, रात्रो, इन्द्राग्नी, इन्द्रावरूण, इन्द्रपूषा और इन्द्रसोम ये हम हमलोगों के सुखरूप हों ।। १० ।।

शन्नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ ऽआपो॑ भव॑न्तु पी॒तये॑ ।
शं योर॒भिस्र॑वन्तु नः ॥ १२ ॥

दे॒वीः । अ॒भिष्ट॑ये । आपः॑ । भव॑न्तु॒ । पी॒तये॑ । योः । अ॒भि । स्र॒वन्तु॒ । न॒ः ॥ १२ ॥

[अन्वयः] देवीः आपः नः अभिष्टये पीतये शं भवन्तु शं योः अभिस्त्रवन्तु नः ।। १२ ।।

[व्याख्या] देवीः = देव्यो दीप्यमानाः, आपः नः अभिष्टये = अभिषेकायाभीष्टाय वा, पीतये = पानाय, शम् = सुखरूपाः भवन्तु = अस्माकं स्नाने पाने चापः सुखयित्र्यो भवन्तु । आपः शं योः = रोगाणां शमनं भयानां यवनं पृथक्करणं च, अभिस्त्रवन्तु, नः अस्माकं भयरोगनाशं कुर्वन्त्वित्यर्थः ।। १२ ।।

[अर्थः] देदीप्यमान जल अभिषेक और पीने के लिये सुखरूप हों और हमलोगों का भय और रोग का नाश करे ॥ १२ ॥

स्यो॒ना पृ॑थिवी नो भवानृक्ष॒रा नि॒वेश॑नी । यच्छा॑ न॒ः शर्म्म॑ स॒प्रथा॑ः ॥ १३ ॥

स्यो॒ना पृ॒थि॒वी । न॒ः । भ॒व॒ । अ॒नृ॒क्ष॒रा । नि॒वेश॒नीति॑ नि॒ऽवेश॑नी ॥ यच्छ॑ । न॒ः । शर्म्म॑ । स॒प्रथा॒ ऽइति॑ स॒ प्रथा॑ः ॥ १३ ॥

[अन्वयः] हे पृथिवि ! त्वं नः स्योना भव अनृक्षरा निवेशनी स प्रथाः न शर्म यच्छ ॥१३॥

[विग्रह] निवशन्ति जनाः यस्यां सा निवेशनी । प्रथनं प्रथः विस्तारः प्रथसा सह वर्तमाना सप्रथाः ॥ १३ ॥

[व्याख्या] हे पृथिवि ! त्वं नः, स्योना = सुखरूपा, भव, अनृक्षरा निवेशनी, सप्रथाः, नः = अस्मभ्यम्, शर्म = शरणम्, यच्छ = देहि ॥ १३ ॥

[कोषः] ऋक्षरः कण्टकः "ऋच्छतेः कण्टकः कन्तपो वा कण्टतेर्वा कृन्ततेर्वास्याद्गतिकर्मणः" निरु० ९।३२।तद्ग्रहणं चौर्यादिनिवृत्यर्थम्] ॥ १३ ॥

[अर्थः] कण्टकहीन पृथिवी में हमलोगों सुखरूप निवास करे, पृथिवी लोगों को शरण में लो ॥ १३ ॥

आपो॒ हि ष्ठा म॑यो॒भुव॒स्ता न॑ ऊ॒र्जे द॑धातन। म॒हेरणा॑य॒ चक्ष॑से ॥१४॥

आप॑ः । हि । स्थ । म॒यो॒भुव॒ ऽइति॑मय॒ः भुव॑ः । ताः । न॒ः ।
ऊ॒र्ज्जे । द॒धा॒त॒न॒ ॥ म॒हे । रणा॑य । चक्ष॑से ॥ १४ ॥

[अन्वयः] हे आपः । मयोभुवः स्थ नः ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥

[विग्रहः] मयः सुखं भावयन्ति प्रापयन्ति ता मयोभुवः । मह्यते पूज्यते इति महः तस्मै महे । रण्यते स्तूयते सर्वैरिति रणम् तस्मै रणाय । चष्टे पश्यति सर्वं येन इति चक्षः तस्मै चक्षसे ॥१४॥

[व्याख्या] हे आपः !, मयोभुवः=सुखस्य भावयित्र्यः स्थ=भवथ, नः, ऊर्जे=रसाय, दधातन=स्थापयत, (वयं सर्वस्य भोगस्य रसस्य भोक्तारो भवेम तथा स्मान्कुरुतेति भावः) । महे=महते, रणाय=रमणीयाय, चक्षसे=दर्शनाय ॥ १४ ॥

[व्याकरणम्] "तप्तनप्तनथनाश्च" इति लोट् मध्यमबहुवचनस्य तनबादेशे दधातनेति रूपम् "महपूजायाम्" "रणशब्दे" "चक्षसे" इत्यत्र असुन्प्रत्ययः ॥ १४ ॥

[अर्थः] हे जल सुखके देनेवाले हो, रस की स्थापनाकरनेवाले हो, महतीरमणीय दर्शनको देनेवाले हो ॥ १४ ॥

षो व॑ः शि॒वत॑मो॒ रस॒स्तस्य॑ भाजयते॒ ह न॑ः । उ॒श॒तीरि॑व मा॒तर॑ः ॥१५॥

षः । व॒ः । शि॒वत॑म॒ ऽइति॑ शि॒व तम॑ः । रस॑ः । तस्य॑ । भा॒ज॒य॒त॒ । इ॒ह । न॒ः ॥ उ॒श॒तीरि॒वेत्यु॑ श॒तीः॑ इ॑व । मा॒तर॑ः ॥ १५ ॥

[अन्वयः] हे आपः ! वः यः रसः इह नः तस्य भाजयत उशती मातरः इव ॥ १५ ॥

[विग्रहः] उशन्ति ता उशत्यः ॥ १५ ॥

[व्याख्याः] हे आपः ! वः=युष्माकम्, यः, शिवतमः=शान्ततमः, रसः=रसोऽस्ति, इह=अस्मिन् कर्मणि इहलोके वा स्थितान्, नः, तस्य=रसस्य, भाजयत=भागिनः कुरुत, उशतोः =उशत्यः कामयमानाः प्रीतियुक्ताः;, मातरः, इव, यथा स्वकीयस्तन्यरसे बालं पाययन्ति तद्वत् ॥ १५ ॥

[अर्थः] हे जल हमलोगों के लिए तुम शान्तमयरस हो, इस रसके भागी बनाओ। जैसे माता अपने स्तनोंको लड़कोंको पीलाती है उसकी तरह ॥ १५ ॥

तस्मा॒ ऽअर॑ङ्गमाम वो॒ षस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ । आपो॑ ज॒नय॑था च नः ॥ १६ ॥

तस्मै॑ । अर॑म् । ग॒मा॒म॒ । व॒ः । यस्य॑ । क्षया॑य । जिन्व॑थ ॥ आप॑ः । ज॒नय॑था । च॒ । न॒ः ॥ १६ ॥

[अन्वयः] हे आप ! वः गमाम तस्मै यस्य क्षयाय जिन्वथ नः जनयथ ॥ १६ ॥

[व्याख्याः] हे आपः, वः गमाम = गच्छेम, तस्मै यस्य, क्षयाय, जिन्वथ = तर्पयथ, नः, जनयथ = उत्पादयत ॥ १६ ॥

[व्याकरणम्] "क्षयो निवासे" क्षयायेति चतुर्थी षष्ठ्यर्थः गच्छतेर्लुङि उत्तमबहुवचनेऽगमामेति रूपम् । ऊडभाव आर्षः । "बहुलं छन्दसि" इति शपो लुकि लोटि वा रूपम् । जिन्वति प्रीतिकर्मा ॥ १६ ॥

[अर्थः] हे जल ! हमलोगों के लिये चलो जिसके क्षयके लिये तृप्त करो । हमलोगों का उत्पादन करो ॥ १६ ॥ [अलमिति प्राप्ते लकारस्य रेफश्छान्दसः]

द्यौः॑ शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॒राप॒ः शान्ति॒रोष॑धय॒ः शान्तिः॑ । वन॒स्पत॑य॒ः शान्ति॒र्विश्वे॑दे॒वाः शान्ति॒ ब्र॑ह्म॒ शान्ति॒ः सर्व॒ꣳ शान्ति॒ः शान्ति॑रे॒व शान्ति॒ः सा मा॒ शान्ति॑रेधि ॥ १७ ॥

द्यौः॑ । शान्ति॑ः । अ॒न्तरि॑क्षम् । पृ॒थि॒वी । आप॑ः । ओष॑धयः ।
व॒न॒स्पत॑यः । वि॒श्वे॑ । दे॒वाऽ । ब्रह्म॑ । सर्व॑म् । ए॒व । सा । मा॒ । ए॒धि॒ ॥१७॥

[अन्वयः] द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः आपः शान्तिः ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिः विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिः ॥ १७ ॥

[व्याख्या] द्यौः=द्युलोकरूपा, शान्तिः, अन्तरिक्षम्=अन्तरिक्षरूपा, शान्तिः, पृथिवी=भूलोकरूपा, शान्तिः, आपः=जलरूपा, शान्तिः, ओषधयः=ओषधिरूपा, वनस्पतयः=वृक्षरूपा, शान्तिः, विश्वेदेवाः=सर्वदेवरूपा, शान्तिः, ब्रह्म=त्रयीलक्षणं परं वा, शान्तिः, सर्वम्=सर्वजगद्रूपा, शान्तिः, शान्तिरेव शान्तिः, सा, शान्तिः, मा=माम्, प्रति एधि=अस्तु ॥ १७ ॥

[अर्थः] द्युलोकरूपाशान्ति, अन्तरिक्षरूपाशान्ति, वृक्षरूपाशान्ति, सर्वदेवरूपाशान्ति, ब्रह्मरूपाशान्ति, सम्पूर्णजगत्रूपाशान्ति, शान्ति ही शान्ति, वह शान्ति मुझमें हो ॥१७॥

दृ॒ते॒ दृꣳह॑मा मि॒त्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षा॒ सर्वा॑णि भू॒तानि॒ समी॑क्षन्ताम् ।

मि॒त्रस्या॒हञ्चक्षु॑षा॒ सर्व्वा॑णि भू॒तानि॒ समी॑क्षे । मि॒त्रस्य॒ चक्षु॑षा॒ समी॑क्षामहे ॥ १८ ॥

दृते॑ । दृꣳह॑ । मा॒ । मि॒त्रस्य॑ । मा॒ । चक्षु॑षा । सर्व्वा॑णि । भू॒तानि॑ । सम् । ई॒क्ष॒न्ता॒म् ॥ अ॒हम् । ई॒क्षे॑ । ई॒क्षा॒म॒हे॒ ॥ ज्योक् । ते॒ । स॒न्दृशी॑ति॒ स॒म् दृशि॑ । जी॒व्या॒स॒म् ॥ १८ ॥

[अन्वयः] दृते मा दृंह सर्वाणि भूतानि मा मित्रस्य चक्षुषा समीक्षन्ताम् अहं सर्वाणि भूतानि मित्रस्य चक्षुषा समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥

[व्याख्या] दृते=विदीर्णे जराजर्जरितेऽपि शरीरे हे महावीर, मा=माम्, दृंह=दृढीकुरु, यद्वा—विदीर्णे कर्मणि मां दृंह अच्छिद्रं कर्म कुरु। यद्वा=ससुषिरत्वात् संस्कृतत्वाच्च दृतिशब्देन महावीरः। हे दृते=महावीर, मां दृंह दृढ़ी कुरु। सर्वाणि, भूतानि=प्राणिनः, मा=माम्, मित्रस्य, समीक्षन्ताम्=सम्यक् पश्यन्तु, मित्रदृष्ट्या सर्वे मां पश्यन्तु नारिदृष्ट्या। सर्वेषां प्रियोभूयासमित्यर्थः। अहम्, सर्वाणि, भूतानि, मित्रस्य, चक्षुषा, समीक्षे=पश्यामि सर्वे मे प्रियाः सन्तु।

मित्रचक्षुः शान्तं भवति मित्रः कश्चन न हन्ति, मित्रं च कश्चन न हन्ति, एवं परस्पराद्रोहेण सर्वानहिं सन्तः। मित्रस्य, चक्षुषा, (वयम्) समीक्षामहे=पश्यामः ॥ १८ ॥

[व्याकरणम्] दृते—"दृ विदारणे" ॥ १८ ॥

[अर्थः] जराजर्जरितशरीरमें भी हेमहावीर मुझको दृढ करो और मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणिमात्र मेरे को देखें और मैं भी मित्र चक्षुसे सबको देखता हूँ, मित्र की चक्षुसे हमलोग भी देखते हैं ॥ १८ ॥

दृते॒ दृꣳह॑ मा मि॒त्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षा॒ सर्व्वा॑णि भू॒तानि॒ समी॑क्षामहे ।
ज्योक्ते॑ स॒न्दृशि॑ जीव्यासं॒ ज्योक्ते॑ स॒न्दृशि॑ जीव्यासम् ॥ १९ ॥

[अन्वयः] हे दृते ! मा दृंह ते संदृशि अहं ज्योक् जीव्यासं ज्योक् ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १९ ॥

[व्याख्या] हे दृते !=हे वीर ! मा=माम्, दृंह, आदरार्थं पुनर्वचनम्, ते=तव, संदृशि=संदर्शने अहम्, ज्योक्=चिरम्, जीव्यासम्=जीवेयम्, ज्योक्, पुनरुक्ति आदरार्था। ते, संदृशि, जीव्यासम्=जीवेयम् ॥ १९ ॥

[व्याकरणम्] जीवेराशीर्लिङि रूपम्। "ज्योक्" इति निपात चरार्थः ॥ १९ ॥

[अर्थः] हे वीर ! मुझको दृढ़ करो, तुम्हारे दर्शनसे चिरकाल तक जीवेगें ॥ १९ ॥

नम॑स्ते॒ हर॑से शो॒चिषे॒ नम॑स्ते अस्त्व॒र्चिषे॑ । अ॒न्याँस्ते॑ अ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तय॑ः पाव॒को ऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥ २० ॥

नम॑ः । ते॒ । अ॒स्तु॒ । वि॒द्युत॒ऽइति॑ वि॒ द्युते॑ । स्त॒न॒यि॒त्नवे॑ ॥ भ॒ग॒व॒न्निति॑ भव वन् । अ॒स्तु॒ । यत॑ः । स्व॒रिति॒ स्वः ॥ स॒मीह॑स॒ ऽइति॑ सम् ईह॑से ॥ २० ॥

[अन्वयः] हे अग्ने ! ते शोचिषे नमः हरसे ते अर्चिषे नमः हेतयः अस्मत् अन्यान् तपन्तु पावकः शिवः भव ॥ २० ॥

[विग्रहः] हरति सर्वरसान् इति हरः तस्मै हरसे ।

[व्याख्या] हे अग्ने ! ते = तव, शोचिषे = शोचनहेतवे तेजसे, नमः, हरसे, ते, अर्चिषे = पदार्थप्रकाशनाय तेजसे, नमः, हेतयः, अस्मत्सकाशात् अन्यान् अस्मद्विरोधिनः पुरुषान् तपन्तु क्लेदयन्तु अस्मभ्यमस्मदर्थं पावकः = शोधकः शिवः शान्तश्च भव ॥ २० ॥

[व्याकरणम्] हरसे—असुन् प्रत्ययः ॥ २० ॥

[अर्थः] हे अग्ने ! तुम्हारे शोचनहेतु तेज को नमस्कार है सब रसों को हरनेवाले तुम्हारे

पदार्थप्रकाशनतेज के लिए नमस्कार है, हमारे विरोधि पुरुषों को क्लेद न करो। और हमारे लिए पावक शान्त हो ॥ २० ॥

नम॑स्ते ऽअस्तु वि॒द्युते॒ नम॑स्ते स्तनयि॒त्नवे॑ । नम॑स्ते भगवन्नस्तु॒
यत॒ः स्व॒÷ स॒मीह॑से ॥ २१ ॥

[अन्वयः] स्तनयित्नवे हे भगवन् ! विद्युते ते नमः अस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

[व्याख्या] स्तनयित्नवे=स्तनयित्नुरूपभगवद्देवते, हे भगवन् !=हे महावीर, विद्युते=विद्युद्रूपाय, ते=तव, नमः, अस्तु, यतः=यस्मात् कारणात्, स्वः=स्वर्गम्, गन्तुम् (त्वम्) समीहसे=चेष्टसे । अतः, ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ २१ ॥

[अर्थः] हे महावीर विद्युद्रूप को नमस्कार है जिसकारण स्वर्गजानेके हेतु चेष्टा करते हो इसकारण तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ २१ ॥

यतो॑ यत॑ः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ ऽअभ॑यङ्कुरु । शन्न॑÷ कुरु प्र॒जाभ्यो-
भ॑यन्नः प॒शुभ्य॑÷ ॥ २२ ॥

यतो॑ यत ऽइति॒ यत॑÷ यतः । स॒मीह॑स॒ ऽइति॑ स॒म् ईह॑से । तत॑÷ ।

न॒ः । अभ॑यम् । कु॒रु॒ । शम् । न॒ः । कु॒रु॒ । प्र॒जाभ्य॒ ऽइति॑ प्र॒जाभ्य॑ः ।
अभ॑यम् । न॒ः । प॒शुभ्य॒ ऽइति॑ प॒शुभ्य॑ः ॥ २२ ॥

[अन्वयः] यतोयतः समीहसे ततः नः अभयं कुरु नः प्रजाभ्यः शं कुरु नः पशुभ्यः ॥२२॥

[व्याख्या] यतोयतः = यस्माद्यस्माद् दुश्चरितात्, समीहसे = अस्मास्वपकर्त्तुं चेष्टसे, ततस्तस्मात्, नः = अस्माकम्, अभयम् = भयरहितम्, कुरु, नः = अस्माकम्, प्रजाभ्यः, शम् = सुखम्, कुरु, नः, पशुभ्यः ॥ २२ ॥

[अर्थः] जिस दुश्चरित्र से उपकार करने की चेष्टा करते हो उस कारण से हम लोगों को भयरहित करो और हम लोगों की प्रजाओं और पशुओं को सुख दो ॥ २२ ॥

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ ऽआप॒ ओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु॒ षो ४
ऽस्मान्द्वेष्टि॒ यश्चं॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

सु॒मि॒त्रि॒या ऽइति॑सु मि॒त्रि॒याः । न॒ः । आप॑ः । ओष॑धयः ।
स॒न्तु॒ । दु॒र्म्मि॒त्रि॒या ऽइति॑दुः मि॒त्रि॒याः । तस्मै॑ । स॒न्तु॒ ॥ २३ ॥

[अन्वयः] सुमित्रिया: नः आपः ओषधयः सन्तु यः अस्मान् द्वेष्टि वयं यं द्विष्मः तस्मै दुर्मित्रियाः सन्तु ॥ २३ ॥

[व्याख्या] सुमित्रियाः = साधुमित्रत्वेनावस्थिताः, वः = अस्माकम्, आपः, ओषधयः, सन्तु, यः = शत्रुः, अस्मान्, द्वेष्टि, वयं, यम् = शत्रुम्, द्विष्मः = द्वेषं कुर्मः, तस्मै = उभयात्मकाय शत्रवे आपः ओषधयश्च, दुर्मित्रियाः = अमित्रत्वेनावास्थिताः सन्तु ॥ २३ ॥

[अर्थः] साधुमित्रत्वेनअवस्थित हमलोगों की ओषधियाँ हो जो शत्रु हमलोगों से द्वेष करता है और हमलोग जिससे द्वेष करते हैं, ऐसे उभयात्मकशत्रु अमित्रत्वेन अवस्थित हों ॥ २३ ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त् । पश्ये॑म श॒रद॑ः श॒तं जीवे॑म श॒रद॑ः श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रद॑ः श॒तं प्रब्र॑वाम श॒रद॑ः श॒तमदी॑नाꣳ स्याम श॒रद॑ः श॒तं भूय॑श्च श॒रद॑ः श॒तात् ॥ २४ ॥

तत् । चक्षु॑ः । दे॒वहि॑त॒मिति॑ दे॒व हि॑तम् । पु॒रस्ता॑त् । शु॒क्रम् । उत् । च॒र॒त् । पश्ये॑म । श॒रद॑ः । श॒तम् । जीवे॑म । शृणु॑याम । प्र । ब्र॒वा॒म॒ । अदी॑नाꣳ । स्या॒म॒ । भूय॑ः । च॒ । श॒तात् ॥ २४ ॥

[अन्वयः] तत् चक्षुः देवहितं पुरस्तात् उच्चरत् शुक्रं शतं शरदः शतं शरदः जीवेम शतं शरदः शृणुयाम शतं शरदः प्रब्रवाम शतं शरदः अदीनाः स्याम शतात् शरदः भूयः च ॥ २४ ॥

[विग्रहः] देवैर्हितं देवहितम् । यद्वा—देवानां हितं देवहितम् ॥ २४ ॥

[व्याख्या] तत्, चक्षुः=जगतां नेत्रभूतमादित्यरूपम्, देवहितम्=देवस्थापितम्, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि उच्चरत्, शुक्रम्=शुक्लम्, शतं शरदः=वर्षाणि वयं पश्येम, शतवर्षपर्यन्तं वयमव्याहतचक्षुरिन्द्रिया भवेम। प्रार्थनायां लिङ्—"अत्यन्तसंयोगे द्वितीया" शतं शरदः जीवेम=अपराधीनजीवना भवेम, शतं शरदः शृणुयाम=स्पष्टश्रोत्रेन्द्रिया भवेम, शतं शरदः प्रब्रवाम=अस्खलितवागिन्दिया भवेम, शतं शरदः अदीनाः स्याम=न कस्याप्यग्रे दैन्यं कुर्याम, शतात् शरदः=शतवर्षोपर्यपि, भूयः=बहुकालं पश्येमेत्यादियोज्यम् ॥ २४ ॥

[अर्थः] जिस कारण जगतों का नेत्रभूतआदित्यरूपदेवस्थापित पूर्वदिशामें उदित होता है। वैसे ही सौवर्ष तक हमलोग अव्याहतचक्षु इन्द्रिय अपराधीन जीवन श्रोत्रेन्द्रियअस्खलित वाक् इन्द्रिय और नक के भी आगे दैन्य हों और हमलोग सौ वर्ष के आगे भी देखे ॥२४॥

इति माध्यन्दिनशाखीयपद्धतौ नवमोध्यायः समाप्तः ।

अथ शान्तिपाठमन्त्राः—

ॐ स्व॒स्ति न॒ ऽइन्द्रो॑ ठवृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति न॑÷ पू॒षा व्वि॒श्ववे॑दाः । स्व॒स्तिन॒स्तार्क्ष्यो॒ ऽअरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्तिनो॒ बृह॒स्पति॑र्द्दधातु ॥ १ ॥

स्व॒स्ति । न॒ः । इन्द्र॑÷ । ठवृ॒द्धश्र॑वा॒ ऽइति॑ वृ॒द्ध श्र॑वाः । स्व॒स्ति । न॒ः । पू॒षा । व्वि॒श्ववे॑दा॒ ऽइति॑ व्वि॒श्व वे॑दाः ॥ स्व॒स्ति । न॒ः । तार्क्ष्य॑÷ । अरि॑ष्टनेमि॒रित्यरि॑ष्टनेमिः । स्व॒स्ति । न॒ः । बृह॒स्पति॑÷ । द॒धा॒तु ॥ १ ॥

पय॑÷ पृथि॒ठ्व्याम्पय॒ ऽओष॑धीषु॒ पयो॑दि॒ठ्व्यु॒न्तरि॑क्षे॒ पयो॑धाः । पय॑स्वतीः प्प्र॒दिश॑÷ सन्तु॒ मह्य॑म् ॥ २ ॥

पय॑÷ । पृ॒थि॒ठ्व्याम् । पय॑÷ । ओष॑धीषु । पय॑÷ । दि॒वि । अ॒न्त-

रि॑क्षे । पय॑ः । धा॒ः ॥ पय॑स्वतीः । प्र॒दि॒श॒ इति॑ प्र॒दिश॑ः । स॒न्तु॒ । म॒ह्य॑म् ॥ २ ॥

विष्णो॑ र॒राट॑मसि॒ विष्णो॒ः श्नप्त्रे॑स्थो॒ विष्णो॒ः स्यूर॑सि॒ विष्णो॑र्ध्रु॒वो॑सि । वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा ॥ ३ ॥

विष्णो॑ः । र॒राट॑म् । अ॒सि॒ । श्नप्त्रे॒ इति॑ श्नप्त्रे॑ । स्थ॒ः । स्यूः॑ । ध्रु॒वः॑ । वै॒ष्ण॒वम् । विष्ण॑वे । त्वा॒ ॥ ३ ॥

अ॒ग्निर्दे॒वता॒ वातो॑ दे॒वता॒ सूर्यो॑ दे॒वता॑ च॒न्द्रमा॑ दे॒वता॒ वस॑वो दे॒वता॑ रु॒द्रोदे॒वता॑दि॒त्यादे॒वता॑ म॒रुतो॑ दे॒वता॒ विश्वे॑ दे॒वा दे॒वता॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वतेन्द्रो॑ दे॒वता॒ वरु॑णो दे॒वता॑ ॥ ४ ॥

अ॒ग्निः । दे॒वता॑ । वात॑ः । सूर्य॑ः । च॒न्द्रमा॑ः । वस॑वः । रु॒द्राः

आ॒दि॒त्याः॒। म॒रुत॑ः। वि॒श्वे॑। दे॒वाः॒। बृह॒स्पति॑ः। इन्द्र॑ः। वरु॑णः ॥४॥

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नाति भवे भवस्वमां भवोद्भवाय नमः ॥ ५ ॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय
नमः कल विकरणाय नमो बलविकरणाय नमः ॥ ६ ॥
बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः सर्व-
भूतद्मनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ ७ ॥
अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते ऽअस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ८ ॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि । तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥९॥

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे ऽअस्तु सदा शिवोऽम् ॥ १० ॥

शि॒वोनामा॑सि॒ स्वधि॑तिस्ते पि॒तानम॑स्ते ऽअस्तु॒मामा॑हिꣳसीः । निव॑र्त्तया॒म्म्यायु॑षे॒न्नाद्या॑य प्र॒जन॑नाय रा॒यस्पोषा॑य सुप्रजा॒स्त्वाय॑ सु॒वीर्य्या॑य ॥ ११ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्द्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रन्तन्न॒ ऽआसु॑व ॥१२॥

विश्वा॑नि । दे॒व॒ । स॒वि॒त॒ः । दुरि॒तानीति॑ दुःइता॑नि । परा॑ । सु॒व॒ ॥ यत् । भ॒द्रम् । तत् । न॒ः । आ । सु॒व॒ ॥ १२ ॥

द्यौः शान्ति॑र॒न्तरि॑क्ष॒ꣳ शान्तिः॑ पृथि॒वी शान्ति॒राप॒ः शान्ति॒रोष॑धय॒ः

शान्ति॑ः ॥ वन॒स्पत॑य॒ꣳ शान्ति॒र्विश्वे॑दे॒वाः शान्ति॒र्ब्रह्म॒शान्ति॒ꣳ सर्व॒ꣳ शान्ति॒ꣳ शान्ति॑रे॒व शान्ति॒ꣳ सामा॒ शान्ति॑रेधि ॥ १३ ॥

इति शान्ति पाठं पठित्वा मनोजूतिरित्यादिषण्मन्त्रैः पूर्ववत् न्यासान् कुर्यात्। ततः षोडशोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा अभिषेकाङ्गमुत्तरपूजनं विदध्यात्। ततः ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दद्यात् तत्र सङ्कल्पः—

"अद्य कृतस्य रुद्राभिषेककर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं च रुद्राभिषेककर्तृभ्यो ब्राह्मणेभ्यो मनसोद्दिष्टां दक्षिणां दातुमहमुत्सृज्ये।

---

(१) रुद्रकल्पद्रुमटीकायाम्—

"दक्षिणाभिश्च फलदो हतयज्ञो ह्यदक्षिणः।
दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्काले एव दीयते ॥
एकरात्रव्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं स्मृतम्।
मासे शतगुणं प्रोक्तं द्विमासे तु सहस्रकम् ॥

संवत्सरे व्यतीते तु स दाता नरकं व्रजेत् ।
ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्तश्च पातकी ॥

वर्षाणां च सहस्रं च मूत्रकुण्डे निपत्य च ।
ततश्चाण्डालतां याति व्याधियुक्तश्च पातकी ॥

दात्रा न दीयते दानं ग्रहीत्रा चेन्न गृह्यते ।
उभौ तौ नरकं यातौ वर्षाणां च सहस्रकम् ॥"

मुहूर्ते तु व्यतीते सा दक्षिणा द्विगुणा भवेत् ।
वासरे च बहिर्भूते भवेत्सापि चतुर्गुणा ॥
पक्षान्ते तु शतगुणा मासान्ते च चतुर्गुणा ।
षण्मासेऽप्यधिके न्यूने च साहस्रगुणाधिका ॥
वर्षान्ते सा लक्षगुणा ब्रह्मणोक्तं हि यादव ।

गीतायाम् १७–१३

विधिहीनसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं चैव तामसं परिकीर्तितम् ॥

“अद्य कृतस्य रुद्राभिषेककर्मणः नट-नर्त्तक-दीनानाथेभ्यश्च यथाकाले भूयसीं दक्षिणां दास्ये ।

“अद्य कृतस्य रुद्राभिषेककर्मणः साङ्गतासिद्ध्यर्थं तत्संपूर्णफलप्राप्त्यर्थं च यथा काले यथोत्पन्नेनान्नेन यथासङ्ख्यकान् ब्राह्मणान् भोजयिष्ये तेभ्यः दक्षिणां चदास्ये ।

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तच्छम्भो सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपो यज्ञः क्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥

मन्त्रहीनः क्रियाहीनो भक्तिहीनो महेश्वर ।
जपः सम्पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादात्त्रिलोचन ॥

अनुस्वारेण हीनस्य जपस्याम्रेडितस्य च ।
दोषाः प्रयान्तु नाशं च त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

ॐ शिवाय नमः ॐ शिवाय नमः ॐ शिवाय नमः ।

वत् सत् श्री साम्बसदाशिवार्पणमस्तु

इति भाषाभाष्यसमन्विता माध्यन्दिनशाखीयरुद्रपद्धतिः समाप्ता ।

परिशिष्टो भागः

रुद्रयाग का संक्षिप्त परिचय

रुद्रयाग तीन प्रकार का होता है—रुद्रयाग, महारुद्रयाग तथा अतिरुद्रयाग। रुद्रयाग पाँच, सात या नौ दिन में सम्पन्न होता है, महारुद्रयाग नौ या ग्यारह दिन में पूर्ण होता है और अति-रुद्रयाग नौ दिन में अथवा ग्यारह दिन में पूर्ण होता है। रुद्रयाग में सोलह या इक्कीस विद्वानों का वरण होता है, महारुद्रयाग में इकतीस अथवा इकतालीस विद्वानों का वरण किया जाता है तथा अतिरुद्रयाग में इकसठ या इकहत्तर विद्वानों का वरण होना अति आवश्यक है। मानसिक क्लेश में फँसने पर, मृत्यु के मुँह में पड़ने पर एवं शत्रुओं का भय उपस्थित होने पर खीर से या घृत से हवन करना चाहिए, क्योंकि रुद्रयाग सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाला एवं सर्वत्र शान्ति प्रदान करने वाला यज्ञ कहा गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि भगवान् शिव समस्त यज्ञों के भोक्ता हैं। रुद्रयाग में उन्नीस हजार नौ सौ इक्कीस आहुति देनी चाहिए। महारुद्रयाग में दो लाख उन्नीस हजार एक सौ इकतीस आहुति होती है। अतिरुद्रयाग में चौबीस लाख दस हजार चार सौ इकतालीस आहुति देने का विधान है। इस यज्ञ में भगवान् रुद्र के मन्त्रों से ही हवन होता है। रुद्रयाग में हवन सामग्री ग्यारह मन, महारुद्रयाग में इक्कीस मन और अतिरुद्रयाग में सत्तर मन लगती है। रुद्रयाग में भी विष्णुयाग के सदृश एक, पाँच और नौ कुण्डों का निर्माण होता है। कुछ विद्वान् रुद्रयाग में रुद्रपदेन ग्यारह कुण्ड बनाते हैं। रुद्रयाग में चारों दिशाओं में लगे हुए चारों तोरणद्वारों

के ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिए। रुद्रयाग में उत्तम मण्डप में १३ अंगुल लम्बा और ३। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिए। मध्यम मण्डप में ११ अंगुल लम्बा और २।।। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिए। अधम मण्डप में ९ अंगुल लम्बा और २। अंगुल चौड़ा त्रिशूल तोरण में गाड़ना चाहिए। अधम मण्डप में २ अंगुल त्रिशूल को तोरण में गाड़ना चाहिए। उपर्युक्त रुद्रयाग के उत्तमादि मण्डप के त्रिशूलादि के कीलों का पञ्चमांश तोरण पर गाड़ना चाहिए और द्वारका पाँचवाँ हिस्सा मण्डप से एक हाथ बाहर पूर्ववत् गाड़ना चाहिए। रुद्रयाग में प्रधान वेदी ईशानकोण में होती है और उसके दाहिने ग्रह वेदी होती है। रुद्रयाग में चारों तोरणद्वारों के ऊपर मध्य में त्रिशूल लगाना चाहिए। तोरणद्वार में कथित काष्ठ से ही शंख, चक्र, पद्म और त्रिशूल का निर्माण करवाना चाहिए। तोरणद्वारों में मण्डपद्वारों की तरह देहली नहीं होती है।

रुद्रयाग का महत्त्व

जब मनुष्य मृत्यु के मुँह में पड़ जाय या आकष्मिक क्लेश व विवाद निरन्तर होते रहे, शत्रुओं से बाधा का भय हो उस समय इन सबसे मुक्त होने के लिये मनुष्य को रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग करना चाहिये। क्योंकि इस यज्ञ के द्वारा भगवान् शंकर की पूजा होती है और स्वयं भगवान् शंकर कहते हैं, यज्ञ और वेदमन्त्र से जो मेरा ही पूजन करते हैं और मेरा ही यजन करते हैं वे सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाते हैं।

रुद्रयाग का मुहूर्त

१. अश्वनि, रेवती, आर्द्रा, हस्त, पुनर्वसु, पुष्य और ध्रुव नक्षत्रों में रविवार और मंगलवार को रुद्रयाग का प्रारम्भ होना उत्तम कहा गया है।

२. जब कि सूर्य उत्तरायण में हो, दोषों से रहित दिन हो, शुभग्रहों का गोचर हो, जया, नन्दा, पूर्णा तिथियाँ हों और सूर्य प्रभृत्ति शुभ ग्रहों के दिन हो, उस समय रुद्रयाग, महारुद्रयाग या अतिरुद्रयाग को करना चाहिये।

३. आर्द्रा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपदा, हस्त आदि अग्न्याधान में शुभकारक नक्षत्रसमूह से युक्त इस शुभ मुहूर्त में रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग करना चाहिये।

४. वैशाष, श्रावण, आश्विन, मार्गशीर्ष, माघ तथा फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष एवं शुभदिन में पुत्र-पौत्रादि के वृद्धि के लिए एवं विपत्तियों के नाश के लिये रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग करना चाहिये।

५. अनध्याय तिथि, रित्ता तिथि और षष्ठी तिथि को छोड़कर अन्य तिथियों में रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग का प्रारम्भ करना शुभप्रद होता है।

रुद्र के भेद

शास्त्रों में ‘रुद्र’ के पाँच भेद कहे गये हैं—रूपक, रुद्र, रुद्री, महारुद्र और अतिरुद्र।

रुद्रकल्पद्रुम ग्रन्थ में लिखा है कि—‘आचार्यों के द्वारा रुद्रयाग उत्तरोत्तर एक से एक श्रेष्ठ पाँच प्रकार के कहे गए हैं। अङ्गसहित शीर्षयुक्त ‘रूपक’ नाम का पहला रुद्र कहा जाता है। वैसे ही ग्यारह आवृत्तियों वाला ‘रुद्री’ नामका दूसरा रुद्र कहा जाता है। एकादश (ग्यारह) रुद्रियों से ‘लघुरुद्र’ नामका तीसरा रुद्र कहा जाता है। ग्यारह लघुरुद्रों से ‘महारुद्र’ नामका चौथा रुद्र कहा जाता है। ग्यारह महारुद्रों से ‘अतिरुद्र’ नामका पाँचवाँ रुद्र अन्तिम कहा जाता है। अतिरुद्र सब रुद्रों से उत्तमोत्तम है।

१–छः अङ्ग के सहित रुद्राध्याय को ‘रूपक’ कहते हैं। २–रूपक में ‘वर्यठ० सोम’ (शीर्षसंज्ञक) यह आठ मन्त्र मिला दिये जाएँ, तो वह ‘रुद्र’ (रुद्री) हो जाता है। ३–सब अङ्ग के सहित ११ ‘नमस्ते’ पढ़ी जाय और ‘वयर्ठ०, उग्रश्च, वाजश्च, ऋचं वाचम्’ भी पढ़ा जाय, तो वह ‘रुद्री’ हो जाती है। ४–रुद्री को ११ गुना करने से वह ‘लघुरुद्र’ हो जाता है, इसमें १२१ नमस्ते का पाठ होता है। ५–लघुरुद्र को ११ गुना करने से ‘महारुद्र’ हो जाता है। इसमें १३३१ ‘नमस्ते’ का पाठ होता है। ६–महारुद्र को ११ गुना करने से ‘अतिरुद्र’ हो जाता है। ७–‘शतरुद्रिय’ नाम वस्तुतः ‘नमस्ते’ अध्याय का है।

रुद्रयागन्यासविधिः

रुद्रसूक्तेन न्यासः

विनियोगः-नमस्त इति षोडशर्चस्य परमेष्ठी ऋषिः, नमस्त इत्यस्य गायत्रीछन्दः, यात इति त्रयाणामनुष्टुप्छन्दः, अध्यवोचदिति त्रयाणां पङ्क्तिश्छन्दः, नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति सप्तानामनुष्टुप्छन्दः, मा नो महान्तमिति द्वयोः कुत्स ऋषिःर्जगतीछन्दः, सर्वेषामेको रुद्रो देवता, न्यासे हवने च विनियोगः।

१. ॐ नमस्ते० वामकरे। २. ॐ याते रुद्र शिवा० दक्षिणकरे। ३. ॐ यामिषुं गिरिशन्त० वामपादे। ४. ॐ शिवेन वचसा० दक्षिणपादे। ५. ॐ अध्यवोचदधिवक्ता० वामजानौ। ६. ॐ असौ यस्ताम्रः० दक्षिणजानौ। ७. ॐ असौ योऽवसर्पति० वामकट्याम्। ८. ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय० दक्षिणकट्याम। ९. ॐ प्रमुञ्च० नाभौ। १०. ॐ विज्यन्धनु० हृदये। ११. ॐ या ते हेतिः० वामबाहौ। १२. ॐ परि ते धन्वनः० दक्षिणबाहौ। १३. ॐ अवतत्त्यधनुष्ट्वम्० कण्ठे। १४. ॐ नमस्ते ऽआयुधाय० मुखे। १५. ॐ मा नो महान्तम्० नेत्रयोः। १६. ॐ मा नस्तोके० मूर्ध्नि।

पुनः—१. या ते हेतिः० हृदयाय नमः। २. परि ते धन्वनः० शिरसे स्वाहा। ३. अवतत्त्य धनुष्ट्वम्० शिखायै वषट्। ४. नमस्ते ऽआयुधाय० कवचाय हुम्। ५. मा नो महान्तम्० नेत्राभ्यां वौषट्। ६. मा नस्तोके० अस्त्राय फट्।

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

रुद्रयागस्य हवनमन्त्राः

ॐ गणनान्त्वा० स्वाहा।

ॐ अम्बे अम्बिके० स्वाहा । इति हुत्वा—

ॐ यज्जाग्रतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा।

ॐ सहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा।

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा।

ॐ आशुः शिशानो० (१२ मन्त्राः) स्वाहा।

ॐ विब्भ्राड् बृहत्पिबतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ नमस्ते रुद्द्र मन्यव ऽउतो तऽ इषवे नमः। बाहुब्भ्यामुत ते नमः स्वाहा॥ १॥

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा॥ २॥

ॐ यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते व्विभर्ष्यस्तवे शिवाङ्गिरित्रताङ्कुरु मा हिꣳसीः पुरुषञ्जगत् स्वाहा॥ ३॥

ॐ शिवेन व्वचसा त्त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि। यथा नः सर्व्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमनाऽ असत् स्वाहा॥ ४॥

ॐ अद्ध्यवोचदधिवक्ता प्प्रथमो दैव्व्यो भिषक। अहींश्च सर्व्वाञ्जम्भयनत्सर्व्वाश्च्च यातुधान्न्योऽधराचीः परासुव स्वाहा॥ ५॥

ॐ असौ यस्त्ताम्म्रोऽ अरुण ऽउत बब्भ्रुः सुमङ्गलः। ये चनꣳ रुद्द्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्त्रशो वैषाꣳ हेडऽ ईमहे स्वाहा॥ ६॥

ॐ असौ योऽवसर्प्पति नीलग्ग्रीवो व्विलोहितः। उतैनङ्गोपाऽ अदृश्रन्नदृश्र्नुदहार्य्यः स दृष्ट्टो मृडयाति नः स्वाहा॥ ७॥

ॐ नमोऽस्तु नीलग्ग्रीवाय सहस्त्राक्क्षाय मीढुषे। अथो येऽ अस्य सत्त्वानो हन्तेब्भ्यो करन्नमः स्वाहा॥ ८॥

ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्। याश्च्च ते हस्तऽइषवः परा ता भगवो व्वप स्वाहा ॥ ९ ॥

ॐ विज्ज्यन्धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवाँ२ऽ उत। अनेशन्नस्य याऽ इषवऽ आभुरस्य निषङ्गधिः स्वाहा ॥ १० ॥

ॐ या ते हेतिर्म्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्श्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज स्वाहा ॥ ११ ॥

ॐ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु व्विश्श्वतः। अथो यऽ इषुधिस्तवारेऽ अस्म्मन्निधेहि तम् स्वाहा ॥ १२ ॥

ॐ अवतत्त्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीय शल्ल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव स्वाहा ॥ १३ ॥

ॐ नमस्तऽ आयुधायानातताय धृष्ष्णवे। उमाब्भ्यामुत ते नमो बाहुब्भ्यान्तव धन्वने स्वाहा ॥ १४ ॥

ॐ मानो महान्तमुत मा नोऽ अर्ब्भकम्मा नऽ उक्षितम्। मानो व्वधीः पितरम्मोत मातरम्मानः प्प्रियास्तन्न्वोरुद्र रीरिषः स्वाहा ॥ १५ ॥

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽ आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्श्वेषु रीरिषः। मा नो व्वीरान् रुद्द्र भामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा॥ १६ ॥

ॐ नमो हिरण्यबाहवे सेनान्न्ये दिशाञ्च पतये नमः स्वाहा॥ १७॥

ॐ नमो व्वृक्षेब्भ्यो हरिकेशेब्भ्यः पशूनाम्पतये नमः स्वाहा॥ १८॥

ॐ नमो शष्प्पिञ्जराय त्त्विषीमते पथीनाम्पतये नमः स्वाहा॥ १९॥

ॐ नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्ट्टानाम्पतये नमः स्वाहा॥ २०॥

ॐ नमो बब्भ्लुशाय व्याधिनेन्नानाम्पतये नमः स्वाहा॥ २१॥

ॐ नमो भवस्य हेत्त्यै जगताम्पतये नमः स्वाहा॥ २२॥

ॐ नमो रुद्द्रातुतायिने क्षेत्त्राणाम्पतये नमः स्वाहा॥ २३॥

ॐ नमो सूतायाहन्त्यै व्वनानाम्पतये नमः स्वाहा॥ २४॥

ॐ नमो रोहिताय स्त्थपतये व्वृक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा॥ २५॥

ॐ नमो भुवन्तये व्वारिवस्कृतायोषधीनाम्पतये नमः स्वाहा॥ २६॥

ॐ नमो मन्त्रिणे व्वाणिजाय कक्षाणाम्पतये नमः स्वाहा॥ २७॥

ॐ नमऽ उच्चैर्ग्घोषायाक्क्रन्दयते पतीनाम्पतये नमः स्वाहा॥ २८॥

ॐ नमो कृत्स्नायतया धावते सत्त्वनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ २९ ॥
ॐ नमः सहमानाय निव्व्याधिनऽ आव्व्याधिनीनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३० ॥
ॐ नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्त्तेनानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३१ ॥
ॐ नमो निचेरवे परिचरायारण्ण्यानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३२ ॥
ॐ नमो व्वञ्चते परिवञ्चते स्त्तायूनाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३३ ॥
ॐ नमो निषङ्गिणऽ इषुधिमते तस्क्कराणाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३४ ॥
ॐ नमः सृकायिब्भ्यो जिघाꣳसद्ब्भ्यो मुष्ष्णताम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३५ ॥
ॐ नमो सिमद्ब्भ्यो नक्त्तञ्चरद्ब्भ्योव्विकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३६ ॥
ॐ नमऽ उष्ष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानाम्पतये नमः स्वाहा ॥ ३७ ॥
ॐ नमऽ इषुमद्ब्भ्यो धन्वायिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ३८ ॥
ॐ नमऽ आतन्वानेब्भ्यः प्प्रतिदधानेब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा ॥ ३९ ॥
ॐ नमऽ आयच्छद्ब्भ्योऽस्यद्ब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा ॥ ४० ॥
ॐ नमो व्विसृजद्ब्भ्यो व्विद्ध्यद्ब्यश्च्च वो नमः स्वाहा ॥ ४१ ॥
ॐ नमः स्वपद्ब्भ्यो जाग्ग्रद्ब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा ॥ ४२ ॥

ॐ नमः शयानेब्भ्यऽ आसीनेब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४३ ॥
ॐ नमस्तिष्ठद्ब्भ्यो धावद्ब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४४ ॥
ॐ नमः सभाब्भ्यः सभापतिब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४५ ॥
ॐ नर्मोऽश्श्वेब्भ्याोऽश्स्वपतिब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४६ ॥
ॐ नमऽ आव्व्याधिनीब्भ्यो व्विविद्ध्यन्तीब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४७ ॥
ॐ नमऽ उगणाब्भ्यस्त्तर्ठ० हतीब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ४८ ॥
ॐ नमो गणेब्भ्यो गणपतिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ४९ ॥
ॐ नमो व्व्रातेब्भ्यो व्व्रातपतिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ ५० ॥
ॐ नमो गृत्सब्भ्यो गृत्सपतिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ ५१ ॥
ॐ नमो व्विश्रूपेब्भ्यो व्विश्श्वरूपेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ ५२ ॥
ॐ नमः सेनाब्भ्य सेनानिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ ५३ ॥
ॐ नमो रथिब्भ्योऽ अरथेब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ५४ ॥
ॐ नमः क्षत्तृब्भ्यः सडग्ग्रहीतब्भ्यश्श्च वो नमः स्वाहा॥ ५५ ॥
ॐ नमो महद्ब्भ्योऽ अर्ब्भकेब्भ्यश्च्च वो नमः स्वाहा॥ ५६ ॥

ॐ नमस्तक्षब्भ्यो रथकारेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ५७ ॥
ॐ नमः कुलालेब्भ्य कर्म्मारेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ५८ ॥
ॐ नमो निषादेब्भ्यः पुञ्जिष्ट्ठेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ५९ ॥
ॐ नमः श्श्वनिब्भ्यो मृगयुब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ६० ॥
ॐ नमः श्श्वब्भ्यः श्श्वपतिब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ ६१ ॥
ॐ नमो भवाय च रुद्द्राय च स्वाहा ॥ ६२ ॥
ॐ नमः शर्व्वाय च पशुपतये च स्वाहा ॥ ६३ ॥
ॐ नमो नीलग्ग्रीवाय च शितिकण्ठाय च स्वाहा ॥ ६४ ॥
ॐ नमः कपर्द्दिने च व्व्युप्तकेशाय च स्वाहा ॥ ६५ ॥
ॐ नमः सहस्राक्क्षाय च शतधन्वने च स्वाहा ॥ ६६ ॥
ॐ नमो गिरिशयाय च शिपिविष्ट्टाय च स्वाहा ॥ ६७ ॥
ॐ नमो नमीढुष्ट्टमाय चेषुमते च स्वाहा ॥ ६८ ॥
ॐ नमो ह्रस्वाय च व्वामनाय च स्वाहा ॥ ६९ ॥
ॐ नमो बृहते च व्वर्षीयसे च स्वाहा ॥ ७० ॥

ॐ नमो व्वृद्धाय च सवृधे च स्वाहा॥ ७१॥
ॐ नमोऽग्रया च प्प्रथमाय च स्वाहा॥ ७२॥
ॐ नमऽ आशवे चाजिराय च स्वाहा॥ ७३॥
ॐ नमः शीग्घ्र्याय च शीब्भ्याय च स्वाहा॥ ७४॥
ॐ नमः ऊर्म्म्याय चावस्वन्न्याय च स्वाहा॥ ७५॥
ॐ नमो नादेयाय च द्द्वीप्प्याय च स्वाहा॥ ७६॥
ॐ नमो ज्ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च स्वाहा॥ ७७॥
ॐ नमः पूर्व्वजाय च परजाय च स्वाहा॥ ७८॥
ॐ नमो मद्ध्यमाय च पगल्भाय च स्वाहा॥ ७९॥
ॐ नमो जघन्न्याय च बुद्ध्न्याय च स्वाहा॥ ८०॥
ॐ नमः सोब्भ्याय च प्प्रतिसर्य्याय च स्वाहा॥ ८१॥
ॐ नमो याम्म्याय च क्षेम्म्याय च स्वाहा॥ ८२॥
ॐ नमः श्श्लोक्क्याय चावसान्न्याय च स्वाहा॥ ८३॥
ॐ नमऽ उर्व्वर्य्याय च खल्ल्याय च स्वाहा॥ ८४॥

ॐ नमो व्वन्याय च कक्क्ष्याय च स्वाहा ॥ ८५ ॥
ॐ नमः श्श्रवाय च प्प्रतिश्श्रवाय च स्वाहा ॥ ८६ ॥
ॐ नमऽ आशुषेणाय चाशुरथाय च स्वाहा ॥ ८७ ॥
ॐ नमः शूराय चावभेदिने च स्वाहा ॥ ८८ ॥
ॐ नमो बिल्ल्मिने च कवचिने च स्वाहा ॥ ८९ ॥
ॐ नमो व्वर्म्मिणे च व्वरूथिने च स्वाहा ॥ ९० ॥
ॐ नमः श्श्रुताय च श्श्रुतसेनाय च स्वाहा ॥ ९१ ॥
ॐ नमो दुन्दुब्भ्याय चाहनन्न्याय च स्वाहा ॥ ९२ ॥
ॐ नमो धृष्ष्णवे च प्प्रमृशाय च स्वाहा ॥ ९३ ॥
ॐ नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च स्वाहा ॥ ९४ ॥
ॐ नमस्तीक्क्ष्णेषवे चायुधिने च स्वाहा ॥ ९५ ॥
ॐ नमः स्वायुधाय च सुधन्न्वने च स्वाहा ॥ ९६ ॥
ॐ नमः स्स्रुत्याय च पत्थ्याय च स्वाहा ॥ ९७ ॥
ॐ नमः काट्ट्याय च नीप्प्याय च स्वाहा ॥ ९८ ॥

ॐ नमः कुल्ल्याय च सरस्याय च स्वाहा ॥ ९९ ॥
ॐ नमो नादेयाय च व्वैशन्ताय च स्वाहा ॥ १०० ॥
ॐ नमः कूप्प्याय चावट्ट्याय च स्वाहा ॥ १०१ ॥
ॐ नमो व्वीद्ध्याय चातप्प्याय च स्वाहा ॥ १०२ ॥
ॐ नमो मेग्घ्याय च व्विद्युत्त्याय च स्वाहा ॥ १०३ ॥
ॐ नमो व्वर्ष्ष्याय चावर्ष्ष्याय च स्वाहा ॥ १०४ ॥
ॐ नमो व्वात्त्याय च रेष्म्याय च स्वाहा ॥ १०५ ॥
ॐ नमो व्वास्तव्व्याय च व्वास्तुपाय च स्वाहा ॥ १०६ ॥
ॐ नमः सोमाय च रुद्द्राय च स्वाहा ॥ १०७ ॥
ॐ नमस्ताम्म्राय चारुणाय च स्वाहा ॥ १०८ ॥
ॐ नमः शङ्ग्वे च पशुपतये च स्वाहा ॥ १०९ ॥
ॐ नमऽ उग्ग्राय च भीमाय च स्वाहा ॥ ११० ॥
ॐ नमोऽग्ग्रेवधाय च दूरेवधाय च स्वाहा ॥ १११ ॥
ॐ नमो हन्त्रे च हनीयसे च स्वाहा ॥ ११२ ॥

ॐ नमो व्वृक्षेब्भ्यो हरिकेशेब्भ्य: स्वाहा॥ ११३॥
ॐ नमस्त्ताराय स्वाहा॥ ११४॥
ॐ नम: शम्भवाय च मयोभवाय च स्वाहा॥ ११५॥
ॐ नम: शङ्कराय च मयस्क्कराय च स्वाहा॥ ११६॥
ॐ नम: शिवाय च शिवतराय च स्वाहा॥ ११७॥
ॐ नम: पार्य्याय चावार्य्याय च स्वाहा॥ ११८॥
ॐ नम: प्प्रतरणाय चोत्तरणाय च स्वाहा॥ ११९॥
ॐ नमस्त्तीर्त्थ्याय च कूल्ल्याय च स्वाहा॥ १२०॥
ॐ नम: शष्प्प्याय च फेन्न्याय च स्वाहा॥ १२१॥
ॐ नम: सिकत्त्याय च प्प्रवाह्याय च स्वाहा॥ १२२॥
ॐ नम: किर्ठ० शिलाय च क्षयणाय च स्वाहा॥ १२३॥
ॐ नम: कपर्द्दिने च पुलस्त्तये च स्वाहा॥ १२४॥
ॐ नमऽ इरिण्ण्याय च प्प्रपत्थ्याय च स्वाहा॥ १२५॥
ॐ नमो व्व्रज्जायाय च गोष्ट्ठ्याय च स्वाहा॥ १२६॥

ॐ नमस्तल्प्याय च गेह्याय च स्वाहा ॥ १२७ ॥
ॐ नमो हृदयाय च निवेष्प्याय च स्वाहा ॥ १२८ ॥
ॐ नमः काट्टायाय च गह्वरेष्ठाय स्वाहा ॥ १२९ ॥
ॐ नमः शुष्क्क्याय च हरित्त्याय च स्वाहा ॥ १३० ॥
ॐ नमः पार्ठ० सव्व्याय च रजस्याय च स्वाहा ॥ १३१ ॥
ॐ नमो लोप्प्याय चोलप्प्याय च स्वाहा ॥ १३२ ॥
ॐ नमऽ ऊर्व्वाय च सूर्व्व्याय च स्वाहा ॥ १३३ ॥
ॐ नमः पर्ण्णाय च पर्ण्णशदाय च स्वाहा ॥ १३४ ॥
ॐ नमऽ उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च स्वाहा ॥ १३५ ॥
ॐ नमऽ आखिदते च प्प्रखिदते च स्वाहा ॥ १३६ ॥
ॐ नमऽ इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ १३७ ॥
ॐ नमो वः किरिकेभ्यो देवानार्ठ० हृदयेभ्यः स्वाहा ॥ १३८ ॥
ॐ नमो व्विचिन्वत्केभ्यो देवानार्ठ० हृदयेभ्यः स्वाहा ॥ १३९ ॥

ॐ नमो व्विक्षिणत्केब्भ्यो देवानार्ठ० हृदयेब्भ्यः स्वाहा॥ १४०॥

ॐ नमऽ आनिर्हतेब्भ्यो देवान्नार्ठ० हृदयेब्भ्यः स्वाहा॥ १४१॥

ॐ द्रापेऽ अन्धपस्प्पते दरिद्द्र नीललोहित आसाम्प्रजानामेषां पशूनां माभेर्म्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत् स्वाहा॥ १४२॥

ॐ इमा रुद्द्रायतवसे कपर्द्दिने क्षयद्द्वीरायप्प्रभरा महे मतीः यथा शमसद् द्विपदे चतुष्प्पदे व्विश्श्वम्पुष्ट्टं ग्रामेऽ अस्म्मिन्ननातुरम् स्वाहा॥ १४३॥

ॐ या ते रुद्द्र शिवा तनूः शिवा व्विश्श्वाहा भेषजी शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृढ जीवसे स्वाहा॥ १४४॥

ॐ परि नो रुद्द्रस्य हेतिर्व्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्म्मतिरघायोः। अवस्त्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीड्ढ्वस्तोकाय तनयाय मृड स्वाहा॥ १४५॥

ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव परमे व्वृक्षऽ आयुधन्निधाय कृतिं व्वसानऽ आचर पिनाकम्बिब्भ्रदागहि स्वाहा॥ १४६॥

ॐ व्विकिरिद्द्र व्विलोहित नमस्तेऽ अस्तु भगवः। यास्त्ते सहस्त्रर्ठ० हेतयोऽन्न्यमस्म्मन्निवपन्तु ताः स्वाहा॥ १४७॥

ॐ सहस्त्रणि सहस्त्रशो बाह्वोस्त्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि स्वाहा॥ १४८॥

ॐ असङ्ख्याता सहस्त्राणि ये रुद्द्राऽ अधि भूम्म्यायम्। तेषाठं० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १४९॥

ॐ अस्मिन्महत्यर्ण्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽ अधि। तेषाठं० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५०॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवठं० रुद्द्राऽ उपश्श्रिताः। तेषाठं० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५१॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्व्वाऽ अधःक्षमाचराः। तेषाठं० सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५२॥

ॐ ये व्वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्ग्रीवा व्विलोहिताः। तेषाठं० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५३॥

ॐ ये भूतानामधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः। तेषाठं० सहस्त्र-योजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५४॥

ॐ ये पथाम्पथिरक्षयऽ ऐलवृदाऽ आयुर्य्युधः। तेषार्ठ० सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५५॥

ॐ ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषार्ठ० सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५६॥

ॐ येऽन्नेष व्विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषार्ठ० सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५७॥

ॐ यऽ एतावन्तश्च्च भूयार्ठ०सश्च दिशो रुद्द्रा व्वितस्त्थिरे। तेषार्ठ० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १५८॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो ये दिवि येषां व्वर्षमिषवः। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नोटिद्वेष्ट्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा॥ १५९॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो येऽन्तरिक्षे येषां व्वातऽ इषवः। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्ध्वाः। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो द्वेष्टिट तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा॥ १६०॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो ये पृथिव्व्यां वेषामन्नमिषवः। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोर्द्ध्वाः। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो द्वेष्ट्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्मः स्वाहा॥ १६१॥

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः । ॐ व्वयर्ठ० सो० (८ मन्त्राः) (पाठमात्रम्)

ॐ उग्रश्च (७ मन्त्राः) स्वाहा (पाठमात्रम्)

ॐ व्वाजश्च० ॥ १ ॥ प्राणश्च० ॥ २ ॥ ओजश्च० ॥ ३ ॥ ज्येष्ठ्यं च० ॥ ४ ॥ स्वाहा। २. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ सत्यञ्च० ॥ १ ॥ ऋतञ्च० ॥ २ ॥ यन्ता च० ॥ ३ ॥ शञ्च० ॥ ४ ॥ स्वाहा। ३. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ ऊर्क् च० ॥ १ ॥ रयिश्च० ॥ २ ॥ वित्तश्च० ॥ ३ ॥ व्व्रीहयश्च ॥ ४ ॥ स्वाहा। ४. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ अश्मा च० ॥ १ ॥ अग्निश्च० ॥ २ ॥ व्वसु च० ॥ ३ ॥ स्वाहा। ५. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ अग्निश्च मऽ इन्द्रश्च० ॥ १ ॥ मित्रश्च० ॥ २ ॥ पृथिवी च० ॥ ३ ॥ स्वाहा । ६. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ अꣳ० शुश्च० ॥ १ ॥ आग्ग्रयणश्च० ॥ २ ॥ स्रुचश्च० ॥ ३ ॥ स्वाहा । ७. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ अग्निश्च० ॥ १ ॥ व्रतञ्च० ॥ २ ॥ स्वाहा । ८. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ एका च० ॥ १ ॥ स्वाहा । ९. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ चतस्रश्च० ॥ १ ॥ स्वाहा । १०. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ त्र्यविश्च० ॥ १ ॥ पष्ठुवाट् च० ॥ २ ॥ स्वाहा । (पुनः) ॐ यञ्जाग्रत० (६ मन्त्राः) मस्तु स्वाहा ।

ॐ सहस्रशीर्षा० (१६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः० (६ मन्त्राः) स्वाहा ।

ॐ आशुः शिशानः० (१२ मन्त्राः) स स्वाहा ।

ॐ बिभ्राड् बृहत् पिबतु० (१७ मन्त्राः) स्वाहा । ११. ॐ नमस्ते० (१६१ आहुतयः)।

ॐ व्वाजाय स्वाहा० ॥ १ ॥ आयुर्य्यज्ञेन कल्पताम् ॥ २ ॥ स्वाहा । ॐ ऋचं वाचं० स्वाहा । ॐ यन्मे छिद्रं० स्वाहा । ॐ भूर्भुवः स्वः० तत्सवितुः० स्वाहा । ॐ कयानश्चित्रः० स्वाहा ।

ॐ कस्त्वा सत्योमदानाम्० स्वाहा। ॐ अभी षु णः० स्वाहा। ॐ कया त्वन्नऽऊत्यभिः स्वाहा। ॐ इन्द्रो विश्वस्य० स्वाहा। ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः स्वाहा। ॐ शन्नो व्वातः० स्वाहा। ॐ अहानि शंभवन्तु नः० स्वाहा। ॐ शन्नो देवी० स्वाहा। ॐ स्योना पृथिवि० स्वाहा। ॐ आपो हि ठा० स्वाहा। ॐ यो वः शिव० स्वाहा। ॐ तस्माऽ अरं गमामवः स्वाहा। ॐ द्यौः शान्ति० स्वाहा। ॐ दृते दृꣳ० ह मा मित्रस्य माचक्षुषा० स्वाहा। ॐ दृते दृꣳ० ह माज्योक्ते० स्वाहा। ॐ नमस्ते हरसे शोचिषे० स्वाहा। ॐ नमस्ते ऽअस्तु व्विद्युते० स्वाहा। ॐ यतोयतः समीहसे० स्वाहा। ॐ सुमित्रिया नः ऽआपः० स्वाहा। ॐ तच्चक्षुर्देवहितम् स्वाहा। ॐ सद्योजातं० (५ मन्त्राः) (पाठमात्रम्)।

ततः षडङ्गन्यासं कुर्यादिति।

अथ रुद्रयागस्य षड्भिः प्रकारैर्हवनमन्त्रविभागस्तत्र एकधाहवनमन्त्रविभागपक्षः प्रथमः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यारभ्य तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ इति षट्षष्ठिमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ १ ॥

अथ त्रेधाहवनमन्त्रविभागपक्षः द्वितीयः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यारभ्य अर्ब्भकेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ इति षड्विंशतिमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ १ ॥

ॐ नमस्तक्षब्भ्य इत्यारभ्य सुधन्वने च स्वाहा ॥ इति दशमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ २ ॥

ॐ नमः स्रुत्यायेत्यारभ्य तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा ॥ इति त्रिंशन्मन्त्राणामेकाहुतिः ॥ ३ ॥

अथ षोढा (षडधा) हवनमन्त्रविभागपक्षतृतीयः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यारभ्य अर्ब्भकेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ इति षड्विंशतिमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ १ ॥

ॐ नमस्तक्षब्भ्य इत्यारभ्य सुधन्वने च स्वाहा ॥ इति दशमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ २ ॥

ॐ नमः स्रुत्यायेत्यारभ्य यऽ एतावन्तश्च० मसि स्वाहा॥ इति सप्तविंशतिमन्त्राणामेकाहुतिः ॥ ३ ॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः। तेभ्यो दश प्राची० तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ४॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां व्वातऽ इषवः। तेभ्यो दश प्राची० तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ५॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषा मन्नमिषवः। तेभ्यो दश प्राची० तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ६॥

अथ षोडशधा हवनमन्त्रविभागपक्षश्चतुर्थः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव इत्यारभ्य अर्ब्भकेब्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ इति षड्विंशतिमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १॥

ॐ नमस्तक्षब्भ्य इत्यारभ्य सुधन्वने च स्वाहा॥ इति दशमन्त्राणामेकाहुतिः॥ २॥

ॐ नमः स्रुत्यायेत्यारभ्य पराचीना मुखा कृधि स्वाहा॥ इति सप्तदशमन्त्राणामेकाहुतिः॥ ३॥

ॐ असङ्ख्याता सहस्राणि ये रुद्द्राऽ अधि भूम्म्यायम्। तेषाठ० सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ४॥

ॐ अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवाऽ अधि। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ५॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः दिवर्ठ० रुद्द्राऽ उपश्श्रिताः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ६॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्व्वाऽ अधःक्षमाचराः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ७॥

ॐ ये व्वृक्षेषु शष्प्पिञ्जरा नीलग्ग्रीवा व्विलोहिताः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ८॥

ॐ ये भूतानामधिपतयो व्विशिखासः कपर्द्दिनः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ९॥

ॐ ये पथाम्पथिरक्षयऽ ऐलवृदाऽ आयुर्य्युधः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १०॥

ॐ ये तीर्त्थानि प्प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषार्ठ० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ११॥

ॐ येऽन्नेष व्विविद्ध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषार्ठ० सहस्त्र-योजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १२॥

ॐ यऽ एतावन्तश्च्च भूयार्ठ०सश्च दिशो रुद्द्रा व्वितस्त्थिरे। तेषार्ठ० सहस्त्रयोजनेव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ १३॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो ये दिवि येषां व्वर्षमिषव:। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोद्र्ध्वा:। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नो वन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नोटिद्वेष्ट्टि तमेषाञ्जम्भे द्द्ध्म: स्वाहा॥ १४॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो येऽन्तरिक्षे येषां व्वातऽ इषव:। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोदीचीर्द्दशोर्ध्वा:। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो द्वेष्टिट तमेषाञ्जम्भे दद्ध्म: स्वाहा॥ १५॥

ॐ नमोस्तु रुद्द्रेब्भ्यो ये पृथिव्व्यां वेषामन्नमिषव:। तेब्भ्यो दश प्प्राचीर्द्दश दक्षिणा दश प्प्रतीचीर्द्दशोद्र्ध्वा:। तेब्भ्यो नमोऽ अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यन्द्विष्म्मो यश्च्च नो द्वेष्ट्टि तमेषाञ्जम्भे दद्ध्म: स्वाहा॥ १६॥

अथ चतुश्चत्वारिंशद्धवनमन्त्रविभागपक्षः पञ्चमः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव० स्वाहा॥ १॥
ॐ या ते रुद्र शिवा० भि चाकशीहि स्वाहा॥ २॥
ॐ यामिषुं गिरिशन्त० पुरुषञ्जगत् स्वाहा ॥ ३॥
ॐ शिवेन व्वचसा० सुमनाऽ असत् स्वाहा॥ ४॥
ॐ अद्ध्यवोचदधिवक्ता० परासुव स्वाहा॥ ५॥
ॐ असौ यस्ताम्रो० ईमहे स्वाहा ॥ ६॥
ॐ असौ योऽवसर्प्पति० उतैनं गोपा० मृडयाति नः स्वाहा॥ ७॥
ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय० तेभ्योऽकरन्नमः स्वाहा॥ ८॥
ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो० भगवो व्वप स्वाहा॥ ९॥
ॐ विज्ज्यं धनुः कपर्दिनो० निषङ्गधिः स्वाहा॥ १०॥
ॐ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते० परिभुज स्वाहा॥ ११॥
ॐ परि ते धन्वनो हेति० निधेहि तम् स्वाहा॥ १२॥

ॐ अवतत्य धनुष्ट्वर्ठं० सहस्राक्ष० सुमना भव स्वाहा॥ १३॥

ॐ नमस्तऽ आयुधाया० धन्वने स्वाहा॥ १४॥

ॐ मा नो महान्तमुत० रीरिषः स्वाहा ॥ १५॥

ॐ मा नस्तोके० हवामहे स्वाहा॥ १६॥

ॐ नमो हिरण्यबाहवे० स्वाहा। ॐ नमो बभ्लुशाय० स्वाहा। ॐ नमो रोहिताय० स्वाहा। ॐ नमः कृत्स्नायतया० स्वाहा। ॐ नमो व्वञ्चते० व्विकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १७॥

ॐ नमऽ उष्णीषिणे० स्वाहा। ॐ नमो व्विसृजद्भ्यो० स्वाहा। ॐ नमः सभाभ्यः० स्वाहा। ॐ नमो गणेभ्यो० स्वाहा। ॐ नमः सेनाभ्यः० अर्भकेभ्यश्च वो नमः स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १८॥

ॐ नमस्तक्षभ्यो० स्वाहा। ॐ नमः श्वभ्यः० स्वाहा। ॐ नमः कपर्दिने० स्वाहा। ॐ नमो ह्रस्वाय० स्वाहा। ॐ नमऽ आशवे० स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १९॥

ॐ नमो ज्ज्येष्ठाय० स्वाहा। ॐ नमः सोभ्याय० स्वाहा। ॐ नमो व्वन्याय० स्वाहा। ॐ नमो बिल्मिने० स्वाहा। ॐ नमो धृष्णवे० स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ २०॥

ॐ नमः स्रुत्याय० स्वाहा। ॐ नमः कूप्याय० स्वाहा। ॐ नमो व्वात्याय० स्वाहा। ॐ नमः शङ्ग्वे० नमस्ताराय स्वाहा। इति मन्त्रचतुष्टयस्यैकाहुतिः॥ २१॥

ॐ नमः शम्भवाय० शिवतराय च स्वाहा॥ २२॥

ॐ नमः पार्य्याय० स्वाहा। ॐ नमः सिकत्याय० स्वाहा। ॐ नमो व्व्रज्ज्याय० स्वाहा। ॐ नमः शुष्क्याय० स्वाहा। ॐ नमः पर्ण्णाय० आनिर्हतेभ्यः स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ २३॥

ॐ नमो वः किरिकेभ्यो देवानार्ठ० हृदयेभ्यो नमो व्विचिन्वत्केभ्यो नमो व्विक्षिणत्केभ्यो नमऽ आनिर्हतेभ्यः स्वाहा॥ २४॥

ॐ द्रापेऽ अन्धसम्पते० किं चनाममत् स्वाहा॥ २५॥

ॐ इमा रुद्राय तवसे० अस्मिन्ननातुरम् स्वाहा॥ २६॥

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा० मृड जीवसे स्वाहा॥ २७॥

ॐ परि नो रुद्रस्य० तनयाय मृड स्वाहा॥ २८॥

ॐ मीढुष्टम शिवतम० बिभ्रदा गहिस्वाहा॥ २९॥

ॐ व्विकिरिद्र व्विलोहित० विपन्तु ताः स्वाहा॥ ३०॥

ॐ सहस्राणि सहस्रशो० मुखा कृधि स्वाहा ॥ ३१ ॥

ॐ असंख्याता सहस्राणि० तन्मसि स्वाहा ॥ ३२ ॥

ॐ अस्मिन् महत्यर्णवे० तन्मसि स्वाहा ॥ ३३ ॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर्ठ० रुद्रा० तन्मसि स्वाहा ॥ ३४ ॥

ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा शर्व्वाऽ अधः० तन्मसि स्वाहा ॥ ३५ ॥

ॐ ये व्वृक्षेषु० तन्मसि स्वाहा ॥ ३६ ॥

ॐ ये भूतानामधिपतयो० तन्मसि स्वाहा ॥ ३७ ॥

ॐ ये पथां पथि रक्षयऽ ऐल० तन्मसि स्वाहा ॥ ३८ ॥

ॐ ये तीर्थानि० तन्मसि स्वाहा ॥ ३९ ॥

ॐ येऽन्नेषु० तन्मसि स्वाहा ॥ ४० ॥

ॐ यऽ एतावन्तश्च० तन्मसि स्वाहा ॥ ४१ ॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो ये दिवि० जम्भे दध्मः स्वाहा ॥ ४२ ॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे० जम्भे दध्मः स्वाहा ॥ ४३ ॥

ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्न० जम्भे दध्मः स्वाहा ॥ ४४ ॥

अथाष्टचत्वारिंशद्धवनमन्त्रविभागपक्षः षष्ठः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव० मुतते नमः स्वाहा॥ १॥
ॐ या ते रुद्र शिवा० भि चाकशीहि स्वाहा॥ २॥
ॐ यामिषुं गिरिशन्त० पुरुषं जगत् स्वाहा ॥ ३॥
ॐ शिवेन व्वचसा त्वा गिरिशाच्छा० सुमनाऽ असत् स्वाहा॥ ४॥
ॐ अध्यवोचदधिवक्ता० परासुव स्वाहा॥ ५॥
ॐ असौ यस्ताम्रोऽ अरुणऽ उत० हेडऽ ईमहे स्वाहा ॥ ६॥
ॐ असौ योऽवसर्प्पति० नीलग्ग्रीवो० मृडयाति नः स्वाहा॥ ७॥
ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय० मीढुषे० करन्नमः स्वाहा॥ ८॥
ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्ज्याम्० भगवो व्वप स्वाहा॥ ९॥
ॐ विज्ज्यन्धनुः कपर्द्दिनो० निषङ्गधिः स्वाहा॥ १०॥
ॐ या ते हेतिर्म्मीढुष्टम हस्ते० परिभुज स्वाहा॥ ११॥
ॐ परि ते धन्वनो हेति० निधेहितं स्वाहा॥ १२॥
ॐ अवतत्य धनुष्ट्वꣳ० सहस्राक्ष शतेषुधे० सुमना भव स्वाहा॥ १३॥

ॐ नमस्तऽ आयुधायाना० तव धन्वने स्वाहा॥ १४॥

ॐ मा नो महान्तमुत० रुद्द्र रीरिषः स्वाहा ॥ १५॥

ॐ मा नस्तोके तनये मा नऽ आयुषि० सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा॥ १६॥

ॐ नमो हिरण्यबाहवे० स्वाहा। ॐ नमो बभ्लुशाय० स्वाहा। ॐ नमो रोहिताय० स्वाहा। ॐ नमः कृत्स्नायतया० स्वाहा। ॐ नमो व्वञ्चते० व्विकृन्तानाम्पतये नमः स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १७॥

ॐ नमऽ उष्णीषिणे गिरिचराय० स्वाहा। ॐ नमो व्विसृजद्भ्यो व्विध्यद्भ्यश्च० स्वाहा। ॐ नमः सभाभ्यः सभा० स्वाहा। ॐ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च० स्वाहा। ॐ नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च० अर्भकेभ्यश्च वो नमः स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १८॥

ॐ नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च० स्वाहा। ॐ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च० स्वाहा। ॐ नमः कपर्द्दिने च व्युप्तकेशाय० स्वाहा। ॐ नमो ह्रस्वाय च व्वामनाय० स्वाहा। ॐ नमऽ आशवे चाजिराय च० दीप्याय च स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ १९॥

ॐ नमो ज्ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च० स्वाहा। ॐ नमः सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च० स्वाहा। ॐ नमो व्वन्याय च कक्ष्याय च० स्वाहा। ॐ नमो बिल्मिने च कवचिने च० स्वाहा। ॐ नमो धृष्णवे च प्प्रमृशाय च० सुधन्वने च स्वाहा। इति पञ्चमन्त्राणामेकाहुतिः॥ २०॥

ॐ नमः स्त्रुत्याय च पत्थाय च० स्वाहा। ॐ नमः कूप्याय चावट्याय च० स्वाहा। ॐ नमो व्वात्याय च रेष्म्याय स्वाहा। ॐ नमः शङ्गवे च पशुपतये च० हनीयसे च नमो व्वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय स्वाहा। इति चतुर्मन्त्राणामेकाहुतिः॥ २१॥ ॐ नमः शम्भवाय० शिवतराय च स्वाहा॥ २२॥ ॐ नमः पार्य्याय चावार्य्याय च० स्वाहा। ॐ नमः सिकत्याय प्रबाह्याय च० स्वाहा। ॐ नमो व्व्रज्ज्याय च गोष्ठ्याय च० स्वाहा। ॐ नमः शुष्क्याय च हरित्याय च० स्वाहा। ॐ नमः पर्ण्णाय च पर्ण्णशदाय च० धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा॥ २३॥

ॐ नमो वः किरिकेभ्यः स्वाहा॥ २४॥ ॐ देवानार्ठ० हृदयेभ्यः स्वाहा॥ २५॥ ॐ नमो व्विचिन्वत्केभ्यः स्वाहा॥ २६॥ ॐ नमो व्विचिणत्केभ्यः स्वाहा॥ २७॥ ॐ नमऽ आनिर्हतेभ्यः स्वाहा॥ २८॥ ॐ द्रापेऽ अन्धसस्पते० किञ्चनाममत् स्वाहा॥ २९॥ ॐ इमा रुद्राय तवसे० अस्मिन्ननातुरम् स्वाहा॥ ३०॥ ॐ याते रुद्र शिवा० मृडजीवसे स्वाहा॥ ३१॥ ॐ परि नो रुद्द्रस्य० तनयाय मृड स्वाहा॥ ३२॥ ॐ मीढुष्टम शिवतम शिवो नमः० बिभ्रदा गहिस्वाहा॥ ३३॥ ॐ व्विकिरिद्र त्रि विपन्तु ताः स्वाहा॥ ३४॥ ॐ सहस्त्राणि सहस्त्रशो० मुखा कृधि स्वाहा॥ ३५॥ ॐ असंख्याता० धन्वनि् तन्मसि स्वाहा॥ ३६॥

ॐ अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे० तन्मसि स्वाहा॥ ३७॥
ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा दिवर्ठ० तन्मसि स्वाहा॥ ३८॥
ॐ नीलग्ग्रीवाः शितिकण्ठा शर्व्वाऽ अधः० तन्मसि स्वाहा॥ ३९॥
ॐ ये व्वृक्षेषु शष्पिञ्जरा० तन्मसि स्वाहा॥ ४०॥
ॐ ये भूतानामधिपतयो० तन्मसि स्वाहा॥ ४१॥
ॐ ये पथां पथि० जनेऽव धन्न्वनि तन्मस्रि स्वाहा॥ ४२॥
ॐ ये तीर्थानि प्रचरन्ति० तन्मसि स्वाहा॥ ४३॥
ॐ येऽन्नेषु व्विविद्ध्यन्ति० तन्मसि स्वाहा॥ ४४॥
ॐ यऽ एतावन्तश्श्च भूयार्ठ०सश्श्च० तन्मसि स्वाहा॥ ४५॥
ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो ये दिवि० तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ४६॥
ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे० तमेषाञ्जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ४७॥
ॐ नमोऽस्तु रुद्द्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्न तमेषां जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ४८॥

●

महामृत्युञ्जययागन्यासविधिः

रुद्रसूक्तेन न्यासः

विनियोगः-नमस्त इति षोडशर्चस्य परमेष्ठी ऋषिः, नमस्त इत्यस्य गायत्रीछन्दः, यात इति त्रयाणामनुष्टुप्छन्दः, अध्यवोचदिति त्रयाणां पङ्क्तिश्छन्दः, नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति सप्तानामनुष्टुप्छन्दः, मा नो महान्तमिति द्वयोः कुत्स ऋषिःर्जगतीछन्दः, सर्वेषामेको शिवो देवता, न्यासे हवने च विनियोगः।

१. ॐ नमस्ते०—वामकरे। २. ॐ याते रुद्र शिवा०—दक्षिणकरे। ३. ॐ यामिषुं गिरिशन्त०—वामपादे। ४. ॐ शिवेन वचसा०— दक्षिणपादे। ५. ॐ अध्यवोचदधिवक्ता०—वामजानौ। ६. ॐ असौ यस्ताम्रः०—दक्षिणजानौ। ७. ॐ असौ योऽवसर्पति०—वामकट्याम्। ८. ॐ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय०—दक्षिणकट्याम्। ९. ॐ प्रमुञ्च०—नाभौ। १०. ॐ विज्यन्धनु०—हृदये। ११. ॐ या ते हेतिः०—वामबाहौ। १२. ॐ परि ते धन्वनः०—दक्षिणबाहौ। १३. ॐ अवतत्त्य-धनुष्ट्वम्०—कण्ठे। १४. ॐ नमस्त आयुधाय०—मुखे। १५. ॐ मा नो महान्तम्०—नेत्रयोः। १६. ॐ मा नस्तोके०—मूर्ध्नि।

पुनः— १. या ते हेतिः०—हृदयाय नमः। २. परि ते धन्वनः०—शिरसे स्वाहा। ३. अवतत्त्य धनुष्ट्वम्०—शिखायै वषट्। ४. नमस्त आयुधाय०—कवचाय हुम्। ५. मा नो महान्तम्०—नेत्राभ्यां वौषट्। ६. मा नस्तोके०—अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

हस्ताम्भोज-युगस्थ-कुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के स-कुम्भौ करौ।
अक्ष-स्रग्-मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रं स्रवत्
पीयूषोऽन्न तनुं भजे स-गिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम्॥ १॥
चन्द्रोद्भासित-मूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं वहद्,
हस्ताब्जेन दधत् सुदिव्यममलं हास्याय-पङ्केरुहम्।
सुर्येन्द्वग्नि-विलोचनं करतले पाशा-ऽक्षसूत्रा-ऽङ्कुशा-
म्भोजं बिभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरे॥ २॥

महामृत्युञ्जययागस्य हवनमन्त्राः

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः स्वाहा॥ १॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा॥ २॥ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिर्ठ०सीः पुरुषं जगत् स्वाहा॥ ३॥ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाऽच्छावदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मर्ठ० सुमना असत् स्वाहा॥ ४॥ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीर्ठ०श्च सर्वान् जम्भयन् सर्वांश्च

यातुधान्योऽधराचीः परासुव स्वाहा ॥ ५ ॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनर्ठ० रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषार्ठ० हेड ईमहे स्वाहा ॥ ६ ॥ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः । उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः स्वाहा ॥ ७ ॥ नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे । अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः स्वाहा ॥ ८ ॥ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् । याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप स्वाहा ॥ ९ ॥ विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ । उत । अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः स्वाहा ॥ १० ॥ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः । तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज स्वाहा ॥ ११ ॥ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः । अथो इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् स्वाहा ॥ १२ ॥ अवतत्य धनुष्ट्वर्ठ० सहस्राक्ष शतेषुधे । निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव स्वाहा ॥ १३ ॥ नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे । उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने स्वाहा ॥ १४ ॥ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः स्वाहा ॥ १५ ॥ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषुमा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा ॥ १६ ॥ (शु.य.सं. १६/१–१६)

अथवा

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः स्वाहा॥ १॥ या ते रुद्र शिवा
तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि स्वाहा॥ २॥ यामिषुं
गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिर्ठ०सीः पुरुषं जगत् स्वाहा॥ ३॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाऽच्छावदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मर्ठ० सुमना असत्
स्वाहा॥ ४॥ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहीर्ठ०श्च सर्वान् जम्भयन् सर्वाश्च
यातुधान्योऽधराचीः परासुव स्वाहा॥ ५॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनर्ठ०
रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषार्ठ० हेड ईमहे स्वाहा॥ ६॥ असौ योऽवसर्पति
नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनं गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः स्वाहा॥ ७॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः
स्वाहा॥ ८॥ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप
स्वाहा॥ ९॥ विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२। उत। अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य
निषङ्गधिः स्वाहा॥ १०॥ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया
परिभुज स्वाहा॥ ११॥ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः। अथो इषुधिस्तवारे
अस्मन्निधेहि तम् स्वाहा॥ १२॥ अवतत्य धनुष्ट्वर्ठ० सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा

शिवो नः सुमना भव स्वाहा ॥ १३ ॥ नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने स्वाहा ॥ १४ ॥ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः स्वाहा ॥ १५ ॥ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषुमा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे स्वाहा ॥ १६ ॥ नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः स्वाहा ॥ १७ ॥ नमो बभ्लुशाय व्याधिनेनानां पतये नमो नमो भवस्य हेत्त्यै जगतां पतये नमो नमो रुद्रातुतायिने क्षेत्राणां पतये नमो नमो सूतायाहन्त्यै वनानां पतये नमः स्वाहा ॥ १८ ॥ नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायोषधीनां पतये नमो नमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणां पतये नमो नमऽ उच्चैर्घोषायाक्रन्दयते पतीनां पतये नमः स्वाहा ॥ १९ ॥ नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचे रवे परिचरायारण्यानां पतये नमः स्वाहा ॥ २० ॥ नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तंचरद्भ्यो विकृन्तानां

पतये नमः स्वाहा ॥ २१ ॥ नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नमं इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २२ ॥ नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २३ ॥ नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमो नमोश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च वो नमो नम आव्याधिनीभ्यो विविद्ध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २४ ॥ नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २५ ॥ नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २६ ॥ नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलाळेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः स्वाहा ॥ २७ ॥ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च स्वाहा ॥ २८ ॥ नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्त्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च स्वाहा ॥ २९ ॥ नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो

बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च स्वाहा॥ ३०॥ नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च स्वाहा॥ ३१॥ नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च स्वाहा॥ ३२॥ नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चाव सान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च स्वाहा॥ ३३॥ नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च स्वाहा॥ ३४॥ नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च स्वाहा॥ ३५॥ नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः स्वायुधाय च सुधन्वने च स्वाहा॥ ३६॥ नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च स्वाहा॥ ३७॥ नमः कूप्याय चाऽवट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च स्वाहा॥ ३८॥ नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च स्वाहा॥ ३९॥ नमः शंगवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय

च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय स्वाहा ॥ ४० ॥ नमः शंभवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च स्वाहा ॥ ४१ ॥ नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च स्वाहा ॥ ४२ ॥ नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किर्ठ०शिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च स्वाहा ॥ ४३ ॥ नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च स्वाहा ॥ ४४ ॥ नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पार्ठ०सव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च स्वाहा ॥ ४५ ॥ नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानार्ठ०हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः स्वाहा ॥ ४६ ॥ द्रापेअन्धसस्पते दरिद्रं नीललोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोड्म्यो च नः किञ्चनाममत् स्वाहा ॥ ४७ ॥ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् स्वाहा ॥ ४८ ॥ या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी। शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे स्वाहा ॥ ४९ ॥ परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु

परि त्वेषस्य दुर्मति रघायोः। अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड स्वाहा ॥ ५० ॥ मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि स्वाहा ॥ ५१ ॥ विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः। यास्ते सहस्रꣳहेतयोन्यमस्मन्निवपन्तु ताः स्वाहा ॥ ५२ ॥ सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः। तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि स्वाहा ॥ ५३ ॥ असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५४ ॥ अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५५ ॥ नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳरुद्रा उपश्रिताः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५६ ॥ नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५७ ॥ ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५८ ॥ ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ५९ ॥ ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ६० ॥ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ६१ ॥ येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। तेषाꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा ॥ ६२ ॥ य एतावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा

वितस्थिरे। तेषाठ॰सहस्त्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि स्वाहा॥ ६३॥ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु तेनो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ६४॥ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ६५॥ नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवस्तेभ्यो अन्नमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वास्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः स्वाहा॥ ६६॥

पुनः आचार्य **ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥** (शु.य.सं. ३/६०) इस महामृत्युञ्जय मन्त्र की ग्यारह माला से अथवा एक माला से प्रातःकाल और सायंकाल हवन करावे।

●

शिवादिप्रतिष्ठासु चतुर्वेदोक्तमन्त्रैर्वास्तुपूजनम्

विशन्तु भूतले नागा लोकपालाश्च सर्वतः।
मण्डपेऽत्रावतिष्ठन्तु आयुर्बलकराः सदा॥

इति मन्त्रावृत्या आग्नेयादितश्चतुरः शङ्कून् संरोप्य—अग्निभ्योप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तान् समाश्रिताः। बलिं तेभ्यः प्रयच्छाभि पुण्यमोदनमुत्तमम् १. नैर्ऋत्याधिपतिश्चैव नैर्ऋत्यां० २. वायव्याधिंपतिश्चैव वायव्यां ये० ३. ईशान्याधिपतिश्चैव ४।

ततः—सुवर्णशलाकया प्रागग्रा उदक्संस्था नवरेखाः कुर्यात्—लक्ष्म्यै नमः १ यशोवत्यै० २ कान्तायै० ३ सुप्रियायै० ४ विमलायै० ५ शिवायै० ६ सुभगायै० ७ सुमत्यै० ८ इडायै० ९ तत उदगग्राः प्राक्संस्था नवरेखा कार्याः—धान्यायै० १ प्राणायै० २ विशालायै० ३ स्थिरायै० ४ भद्रायै० ५ जयायै० ६ निशायै० ७ विरजायै० ८ विभवायै० ९।

१—(ऋ०) अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥ १॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ २॥ (सा०) अभित्वा शूर नो नुमोऽदुग्धा इव धेनवः। ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः॥ ३॥ (अ०) ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम्॥ ४॥ समाह्वयन्तं शिखिनं महोज्वलं मेषाधिरूढं सुरराज वन्दितम्। त्रिशूलहस्तं वरदे महेशं भजामि देवं स्वकुलाभिवृद्धै॥ शिखिने नमः शिखिनमावाहयामि स्थापयामि॥ ५॥

२-(ऋ०) पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मील्हुषे। स नो यवसमिच्छतु॥ १॥ (य०) शं नो वातः पवतार्ठ० शन्नस्तपतु सूर्यः। शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽ अभिवर्षतु॥ २॥ (सा०) महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ ३॥ (अ०) विद्या शरस्य पितरं पर्जन्यं भूरिधायसम्। विद्यो ष्वस्य मातरं पृथिवीं भूरिवर्पसम्॥ ४॥ एह्येहि जीमूतसुधाप्रमृष्टे चराचरैः सेवितधर्ममूर्ते। पवित्रदेवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भवन्नमस्ते। पर्जन्या० पर्जन्यमा०॥ ५॥

३-(ऋ०) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहु जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्॥ १॥ (य०) मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणो तु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु॥ २॥ (सा०) गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा। इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम्॥ ३॥ (अ०) प्रब्लीनो मृदितः शयां हतो ३ मित्रो न्यर्बुदे। अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया॥ ४॥ एह्येहि देवेश जयन्तसूनो शच्याः सदा सर्वसुरैकसेव्य। पीठेऽत्र यज्ञेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भगवन्नमस्ते। जयन्ताय० जयन्तमा०॥ ५॥

४-(ऋ०) रमध्वं वर्चसे सोभ्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवेः। प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषाऽ वस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः॥ १॥ (य०) आयात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः। वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात्॥ २॥ (सा०) इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते

यत्पार्यापुनजते धियस्ताः। शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आगोमति व्रजे भजा त्व नः ॥ ३ ॥ (अ०) आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तू तु जानस्तुविष्मान् प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ ४ ॥ एह्येहि वृत्रघ्न गजाधिरूढ सहस्रनेत्र त्रिदशैकराज। शचीपते शक्र सुरेश नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ कुलिशायुधा० कुलिशायुधमा० ॥ ५ ॥

५-(ऋ०) त्यान् नु क्षत्रियाँ अव आदित्यान् याचिषा महे सुमृडीका अभिष्टये ॥ १ ॥ (य०) बण्महाँ २ ॥ असि सूर्य बडादित्य महाँ २ ॥ असि। महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ २ ॥ अस्ति ॥ २ ॥ (सा०) बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥ ३ ॥ (अ०) यथा सूर्यो मुच्यते तमसस्परि रात्रिं जहात्युषसश्च केतून् एवाहं सर्वं दुर्भूतं कर्त्रं कृत्वाकृतं हस्तीव रजो दुरितं जहामि ॥ ४ ॥ (बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि। महांस्ते महतो महिमा त्वमादित्य महाँ असि ॥) समाह्वयन्तं द्विभुजं दिनेशं सप्ताश्ववाहं द्युमणिं ग्रहेशम्। सिन्दूरवर्णं प्रतिभावसंभवं भजामि सूर्यं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ सूर्याय० सूर्यमा० ॥ ५ ॥

६-(ऋ०) सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः। ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोम अधि श्रितः ॥ १ ॥ (य०) व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्। दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ २ ॥ (सा०) सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता। वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावतिः श्रुतः ॥ ३ ॥ (अ०) को अस्मिन् यज्ञमदधादेको देवाऽधि पूरुषे। अस्मिनृत्सत्यं कोऽनृतं

कुतो मृत्युः कुतोऽमृतम्॥ ४॥ एह्येहि सत्येश महामहेश दुष्टान्तकृत्स्वच्छसुधर्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भवन्नमस्ते॥ सत्याय० सत्यमा०॥ ५॥

७-(ऋ०) अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम्। सदावन् भागमीमहे॥ १॥ (य०) आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः। विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्॥ २॥ (सा०) यथा गौरो अपाकृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्। आपि त्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषुसु चा पिब॥ ३॥ (अ०) आ त्वा विशन्तु सुतास इन्द्र पृणस्व कुक्षी विड्ढि शक्रऽधियेह्या नः। श्रुधी हवं गिरो मे जुषस्वेन्द्र स्वयुग्भिर्मस्त्वेह महे रणाय॥ ४॥ समाह्वयन्त द्विभुज भृशं हि नीलोत्पलाभासविशालनेत्रम्। नीलाद्रिवर्णं प्रतिभावभासं भजामि देवं कुलवृद्धि हेतोः॥ भृशाय० भृशमा०॥ ५॥

८-(ऋ०) अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः। उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे॥ १॥ (य०) या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥ २॥ (सा०) अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूप तेजः पृथिव्यामधि यत्संबभूव। अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः॥ ३॥ (अ०) रक्षतु त्वा द्यौ रक्षतु पृथिवी सूर्यश्च त्वा रक्षतां चन्द्रमाश्च। अन्तरिक्षं रक्षतु देवहेत्याः॥ ४॥ समाह्वयन्तं गगनं दिवौकसां निवासभूतं सुविनिर्मलं च। आरक्तहीनं रुचिरं पुराणं भजामि नाकं स्वकुलाभिवृद्ध्ये॥ आकाशाय० आकाशमा०॥ ५॥

९-(ऋ०) वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान् त्सोमपीतये॥ १॥ (य०) वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरागहि। नियुत्वान्सोमपीतये ॥ २॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं शंभु मयो भुनो हृदे। प्र न आयूँ षि तारिषत्॥ ३॥ (आ०) वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि। स हिरण्यजाः शङ्खः कृश नः पात्वंहसः॥ ४॥ धूम्राह्वयं गन्धवसुरम्यं मृगाधिरूढ त्रिदशैकवन्द्यम्। सुपूजकानन्दकरं पुराणं भजामि वायुं स्वकुलाभिवृद्धयै। वायवे० वायुमा०॥ ५॥

१०-(ऋ०) पूषणन्व १ जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते॥ १॥ (य०) पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन। स्तोतारस्त इह स्मसि॥ २॥ (सा०) शुक्रं ते अन्यतजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधावन्भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ ३॥ (अ०) अपन्यधुः पौरुयेयं वधं यमिन्द्राग्नी धाता सविता बृहस्पतिः। सोमो राजा वरुणो अश्विना यमः पूषास्मान्परि पातु मृत्योः॥ ४॥ एह्येहि पूषन् सुविचारदक्ष हयाधिरूढाखिलधर्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भवन्नमस्ते॥ पूष्णै० पूषणमा०॥ ५॥

११-(ऋ०) वि दद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः। अग्नं नयेत् सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात्॥ १॥ (य०) तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततठं० सञ्जभार। यदेदयुक्त हरितः सधस्तादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ २॥ (सा०) अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा

पुरुषवाक् ॥ २ ॥ (सा०) अभी षु णः सखीनामविशा जरि तृणाम्। शतं भवा स्यूतये ॥ ३ ॥ (अ०) अग्ने प्रेहि प्रथमो देवतानां चक्षुदेवानामुत मानुषाणाम्। इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वऽर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ४ ॥ समाह्वयन्तं शिखिपृष्ठसंस्थं श्रीभृङ्गराजं जगतः शरण्यम्। खट्वाङ्गहस्तं वरदं जनेशं यजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ भृङ्गराजाय० भृङ्गराजमा० ॥ ५ ॥

१६-(ऋ०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताहि विमृधो नुदस्व ॥ १ ॥ (य०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावतऽ आजगन्था परस्याः। सृकठं० सठं०शाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ २ ॥ (सा०) मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः। सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रूं ताढि वि मृधो नुदस्व ॥ ३ ॥ (अ०) परेहि कृत्ये मा तिष्ठो विद्धस्येव पदं नय। मृगः स मृगयुस्त्वं न त्वा निकर्तुमर्हति ॥ ४ ॥ एह्येहि गोरोचनदिव्यमूर्ते मृगप्रकृष्टार्तिहरासुरारे। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां ममाध्वरं पाहि भगवन्नमस्ते ॥ मृगाय० मृगमा० ॥ ५ ॥

१७-(ऋ०) यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ। यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः ॥ १ ॥ (य०) उशन्तस्त्ववा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि। उशन्नुशत आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥ २ ॥ (सा०) अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रियं उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ॥ ३ ॥ (अ०) क्रव्यादमग्निमिषितो

हरामि जनान् दृंहन्तं वज्रेण मृत्युम्। नि तं शास्मि गार्हपत्येन विद्वान् पितृणां लोकेऽपि भागो अस्तु ॥४॥ समाह्वयान् दिव्यपितृन् कुलेशान् रक्तोत्पलाभानिह रक्तनेत्रान्। सुरक्तमाल्याम्बर-भूषितांश्च नमामि पीठे कुलवृद्धिहेतोः ॥ पितृभ्यो० पितृनावा० ॥ ५ ॥

१८-(ऋ०) द्वे विरूपे चरतः स्वर्थेअन्यान्या वत्समुप धापयते हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ् शुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥ (य०) द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापयेते हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुकोऽ अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ २ ॥ (स०) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् ॥ ३ ॥ (अ०) यद् दुर्भगां प्रस्नपितां मृतवत्सामुपेयिम्। अपैतु तव मत्पापं द्रविणं मोप तिष्ठतु ॥ ४ ॥ एह्येहि दौवारिकदण्डपाणे विशालपङ्केरुहलोचनेत्र। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां शिवाय नः पाहि भगवन्नमस्ते ॥ दौवारिकाय० दौवारिकमा० ॥ ५ ॥ –

१९-(ऋ०) शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ १ ॥ (य०) नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवठं० रुद्राऽ उपश्रिताः। तेषाठं० सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ २ ॥ (सा०) वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ॥ ३ ॥ (अ०) रुद्रो वो ग्रीवा अक्षरैत्पिशाचा पृष्टीर्वोऽपि शृणातु यातुधानाः। वीरुद्वो विश्वतोवीर्या यमेन समजीगमत् ॥ ४ ॥ एह्येहि सुग्रीव सुरेशपूज्य दशाश्ववाहत्रिगुणात्ममूर्ते। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां मनोरमां त्वं भगवन्नमस्ते ॥ सुग्रीवाय० सुग्रीवमा० ॥ ५ ॥

२०-(ऋ०) ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः। अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥ १ ॥ (य०) नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २ ॥ (सा०) कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ ३ ॥ (अ०) एषा यज्ञानां विततो बर्हिष्ठो विष्टारिणं पक्त्वा दिवमा विवेश। आण्डीकं कुमुदं सं तनोति विसं शालूकं शफको मुलाली। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ४ ॥ एह्येहि विघ्नाधिपते सुरेन्द्र ब्रह्मादिदेवैरभिवन्द्यपाद। देवेश विद्यालय पुष्पदन्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ पुष्पदन्ताय० पुष्पदन्तमा० ॥ ५ ॥

२१-(ऋ०) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस् तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस० मा न आयुः प्र मोषीः ॥ १ ॥ (य०) इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय त्वामस्युराचके ॥ २ ॥ (सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः । आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥ ३ ॥ (अ०) अयं देवानामसुरो वि राजति वशा हि सत्या वरुणस्य राज्ञः। ततस्परि ब्रह्मणा शाशदान उग्रस्य मन्योरुदिमं नयामि ॥ ४ ॥ एह्येहि लोकेश्वर पाशपाणे यादोगणैर्वन्दितपादपद्म। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते ॥ वरुणाय० वरुणमा० ॥ १ ॥

२२-(ऋ०) प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म। घृतं न यज्ञ आस्ये ३ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम्॥ १ ॥ (य०) यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनो दिन्द्रियाय। इमन्तर्ठ० शुक्रं मधुमन्तमिन्दुर्ठ० सोमर्ठ० राजानमिह भक्षयामि॥ २ ॥ (सा०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः॥ ३ ॥ (अ०) सोद्क्रामत्सासुराना गच्छत्तामसुरा उपाह्वयन्त मयि एहीति॥ ४॥ एह्येहि देवेश जगत्प्रताप महोग्ररूपासुरविश्वमूर्ते। महाबलः खड्ङ्गगदास्त्रपाणे पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते॥ असुराय० असुरमा०॥ ५॥

२३-(ऋ०) शेषन् नु त इन्द्र सस्मिन् योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना। सृजदर्णांस्यव यद् युधा गास्तिष्ठद्हरी धृषता मृष्ट वाजान्॥ १॥ (य०) शं नो देवीरभिष्टयऽ आपो भवन्तु पीतये। शं योरभिस्त्रवन्तु नः॥ २॥ (सा०) त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः। त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः॥ ३॥ (अ०) यस्ते स्तनः शं शयुर्यो मयोभूर्यः सुम्नयुः सुहवो य सुदत्रः। येन विश्वाः पुष्यसि वार्याणि तमिह धातवे कः॥ ४॥ एह्येहि कीलावलिलीढ विश्वयज्ञेऽत्र देवर्षभसंघसेव्ये। गृहाण पूजां विधिना प्रदत्तां शोषे सुदक्षाय नमोऽस्तु शोष॥ ५॥

२४-(ऋ०) पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून् तनूभिः॥ १॥ (य०) एतत्ते रुद्राऽवसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिर्ठ० सन्नः शिवोऽतीहि॥ २॥ (सा०) अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः। अरं वहन्त्याशवः॥ ३॥

(अ०) न वा उ ते तनूं तन्वा १ सं व पृच्यां पापमाहुर्य स्वसारं निगच्छात्। असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय॥ ४॥ एह्येहि पापेन सदा विजेन देवासुराणां सचराचराणाम्। मां पाहि नित्यं सकलत्र पुत्रं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ पापाय० पापमा०॥ ५॥

२५-(ऋ०) नाशयित्री पलाशस्या रुषसौ पथिकामसु। अथो ततस्य यक्ष्माणमपापा रोगनाशिनी॥ १॥ (य०) द्रापेऽ अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित। आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किञ्चनाममत्॥ २॥ (सा०) य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा। अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज। ओ३म् वर्मीव धृष्णवा रुज॥ ३॥ (अ०) शीर्षक्तिं शीर्षामयं कर्णशूलं विलोहितम्। सर्वं शीर्षण्यं ऽते रोगं बहिर्निर्मन्त्रयामहे॥ ४॥ एह्येहि रोगाधिपतेऽमरेश नानाविधैश्वर्यहयादिमुक्त। ब्रह्मादिदेवैरभिवन्दनीय गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ रोगाय० रोगमावाहयामि॥ ५॥

२६-(ऋ०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमार्ठ० परि पातु विश्वतः॥ १॥ (य०) अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान्पुमार्ठ० सं परिपातु विश्वतः॥ २॥ (सा०) विपश्विते पवमानाय गायत मही न धारात्यन्धो अर्षति। अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः॥ ३॥ (अ०) ये पाकशं सं विहरन्त एवैर्येः वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः। अहये

वा तान्प्रददातु सोम आ वा दथातु निर्ऋतेरुपस्थे॥ ४॥ समाह्वयन्तं फणिराजमग्न्यं नानाफणामण्डलराजमानम्। भक्तैकगम्यं जनताशरण्यं यजाम्यहं नः स्वकुराभिवृद्ध्यै॥ अहये० अहिमा०॥ ५॥

२७-(ऋ०) मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा। वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः॥ १॥ (य०) अवतत्य धनुष्टवर्ठ० सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव॥ २॥ (सा०) विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वं ३ स्वा हि ते। मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मधवा सूरिरस्तु॥ ३॥ (अ०) निर्बलासं बलासिनः क्षिणोमि मुष्करं यथा। छिनध्मस्य बन्धनं मूलमूर्वार्वा इव॥ ४॥ आवाहयेऽहं सुरदेवसेवितं जीमूतसंकाशमुमाधिनाथम्। मुख्याभिधं देवमिहार्थताद्यैः पाहि त्वमस्मान् भगवन्नमस्ते॥ मुख्याय० मुख्यमा०॥ ५॥

२८-(ऋ०) भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा। मूर्धानं राय आरभे॥ १॥ (य०) इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः। यथा शमसद्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥ २॥ (सा०) यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि। मघवन् छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि॥ ३॥ (अ०) पलालानुपलालौ शर्कुं कोकं मलिम्लुचं पलीजकम्। आश्रेषं वव्रिवाससमृक्षग्रीवं प्रमी लिनम्॥ ४॥ एह्येहि भल्लाटशशाङ्कमूर्त्ते सुरासुरैरर्चितपादपद्म। देदीप्यमानोप्सरसां गणेन गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ भल्लाटाय० भल्लाटमा०॥ ५॥

२९-(ऋ०) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः। भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे॥ १॥ (य०) सोमर्ठ० राजानमवमेऽग्निमन्वारभामहे। आदित्यान्विष्णुर्ठ० सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिर्ठ० स्वाहा॥ २॥ (सा०) सोमं पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति। अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत्॥ ३॥ (अ०) सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे। आदित्यं विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्॥ ४॥ एह्येहि ताराधिपते सुरेश श्वेतोत्पलाभाससुधाकरेशा पीठेऽत्र देवश गृहाण पूजां पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते॥ सोमाय० सोममा०॥ ५॥

३०-(ऋ०) न चोरभयं न च सर्पभयं न च व्याघ्रभयं न च मृत्युभयम्। यस्यापमृत्युर्न च मृत्युः सर्वं लभते सर्वं जयते॥ १॥ (य०) नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः॥ २॥ (सा०) यदद्य सूर उदितेऽ नागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः॥ ३॥ (अ०) गन्धर्वाप्सरसः सर्पान्देवान्पुण्यजनान् पितृन्। दृष्टानदृष्टानिष्णामि यथा सेनाममूं हनन्॥ ४॥ आगच्छतागच्छत सर्पदेवाः संसारभीतिप्रमुखा वरेण्याः। धराधरा रत्नविभूषिताश्च गृहीत पूजां वरदा नमो वः॥ सर्पेभ्यो० सर्पामावा०॥ ५॥

३१-(ऋ०) रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः। इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति॥ १॥ (य०) इड एह्यदित एहि काम्या एत। मयि वः कामधरणं भूयात्॥ २॥ (सा०) उत स्यानो दिवा मतिरदितिरूपागमत्। सा शन्ताता मयस्करदप

स्त्रिधः ॥ ३ ॥ (अ०) अष्ट जाता भूता प्रथमजर्तस्याष्टेन्द्र र्त्विजो दैव्या ये। अष्टयोनिरदितिरष्टपुत्राष्टमी रात्रिमभि हव्यमेति ॥ ४ ॥ एह्येहि मातरदिते शुभप्रदे यज्ञाधिपे सर्वजगत्प्रिये शुभे। सुराप्रिये नो भव विश्वधात्रि यजामि देवीं प्रकृतिं पुराणीम् ॥ अदितये० अदितिमा० ॥ ५ ॥

३२-(ऋ०) इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चाऽऽदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥ १ ॥ (य०) अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ २ ॥ (सा०) त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम् शश्वत्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ता मदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ (अ०) मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभि। हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ ४ ॥ एह्येहि देवि त्वमिहात्रयज्ञे प्रसीद मातर्दनुजान्वयस्थे। दिते! महामोहकरी त्वमस्मान्पाहीन्द्रवन्दे प्रणता वयं ते॥ दितये० दितिमा० ॥ ५ ॥

३३-(ऋ०) आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महेरणाय चक्षसे ॥ १ ॥ (य०) अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे। गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ २ ॥ (सा०) शं नो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्त्रवन्तु नः ॥ ३ ॥ (अ०) यत्ते अपोदकं विषं तत्त एतास्वग्रभम्। गृह्णामि ते मध्यमनुत्तमं रसमुतावमं भियसा नेशदादु ते ॥ ४ ॥ समाह्वयाः श्वैतसुपावनेशीरापस्वरूपाः प्रबल-प्रसन्नाः। सुपाशहस्ता वरदा अपोऽत्र यजामि देवीः कुलवृद्धिः हेतोः ॥ अद्भ्यो० अप आवा० ॥ ५ ॥

३४-(ऋ०) तत् सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् । श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १ ॥ (य०) हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिर्ठ० हिरण्ययीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ २ ॥ (सा०) इदं श्रेष्ठं ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेत्तो अजनिष्ट विभ्वा । यथा प्रसूता सवितुः सवायैवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ ३ ॥ (अ०) ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् । त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्तेनो मुञ्चन्त्वं हसः ॥ ४ ॥ समाह्वयं दिव्यमुदारकीर्तिं कलाकलाभिस्तु महोग्ररूपम् । सावित्रमग्न्यं सुविशालमूर्तिं यजामि देवं स्वकुलाभिवृद्ध्यै ॥ सावित्राय० सावित्रमा० ॥ ५ ॥

३५-(ऋ०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ १ ॥ (य०) आषाढं युत्सु पृतनासु पप्रिर्ठ० स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् । भरेषुजार्ठ० सुक्षितिर्ठ० सुश्रव सं जयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥ २ ॥ (सा०) इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् । महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥ ३ ॥ (अ०) प्रेता जयता नर उग्रावः सन्तु बाहवः । तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा अबलानुग्रबाहवः ॥ ४ ॥ एह्येहि सर्वायुधशोभमानसुरासुराणां जयकृन्महोग्र । जयाभिदंत्वं भव नो जयाय नानाविधालङ्कृतिमन्नमस्ते ॥ जयाय० जयमा० ॥ ५ ॥

३६-(ऋ०) इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः । यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥ (य०) नमस्ते रुद्र मन्यवऽ उतोतऽ इषवे नमः ।

बाहुभ्यामुत ते नमः॥ २॥ (सा०) जराबोधं तद्विविड्ढि विशे विशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकम्॥ ३॥ (अ०) मा नो रुद्रः तक्मना मा विशेष मा नः संस्त्रा दिव्येनाग्निना। अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम्॥ ४॥ एह्येहि सर्वज्ञ पिनाकपाणे सुरासुरैर्वन्दितपादपद्म। पीठेऽत्र देवेश गृहाण पूजां रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते॥ रुद्राय० रुद्रमा०॥ ५॥

३७-(ऋ०) वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम्। अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान् आशत॥ १॥ (य०) यदद्य सूरऽ उदिते नागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः॥ २॥ (सा०) प्र मित्राय प्रार्यम्णे स चथ्यमृतावसो। वरूथ्ये ३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत॥ ३॥ (अ०) गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम्। अर्यमा नाम यो देवस्तेनो मुञ्चन्त्वं हसः॥ ४॥ आवाहये आ्यर्मणं महेशं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्। नीलाम्बुजाभासमथेश गुण्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ अर्यमणे० अर्यमणमा०॥ ५॥

३८-(ऋ०) सविता पश्चातात् सविता पुरस्तात् सवितोत्तरात्तात् सविताधरात्तात्। सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः॥ १॥ (य०) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्नऽ आसुव॥ २॥ (सा०) आपानासो विवस्वतो जिन्वत उषसो भगम्। सूरा अण्वं वितन्वते॥ ३॥ (अ०) श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत। वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम्॥ ४॥ एह्येहि पीठे सवितर्दिनेशा सप्ताश्वसंयुक्तरथाधिरूढ़। रक्तोत्पलाभासविशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ सवित्रे० सवितारमा०॥ ५॥

३९-(ऋ०) परेयिवांसं प्रवनो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य॥ १॥ (य०) विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्त स्मिन्मत्स्व। श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः। पुमान्पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे॥ २॥ (सा०) आपानासो विवस्वतो जिन्वना उषसो भगम् सूरा अण्वं वि तन्वते॥ ३॥ (अ०) अङ्गिरोभिर्यज्ञियैरा गहीह यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्बर्हिष्या निषद्य॥ ४॥ एह्येहि रक्ताम्बर रक्तदेह सर्वैनसोनाशनरं गहर्तः। आरोग्यदातः सकलार्थनेत्रे विवस्वते तुभ्यमहं नमामि॥ विवस्वते० विवस्ततमा० ॥ ५॥

४०-(ऋ०) उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात् पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऋता वृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु॥ १॥ (य०) स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्। युयोध्यस्मद्द्वेषाᳬंसि० विश्वकर्मणे स्वाहा॥ २॥ (सा०) अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। तत्रादिष्ट पौंस्यम्॥ ३॥ (अ०) अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे। यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति॥ ४॥ आवाहयेऽहं विबुधाधिपं त्वां चतुर्दतं पर्वतसन्निभं प्रभुम्। गजाधिरूढं सकलासिदोहं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ विबुधाधिपाय० विबुधाधिपमा० ॥ ५॥

४१-(ऋ०) यस्मिन् देवा यन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये ३ न वयमस्य विद्म। मित्रो नो अत्रादितिरनागान् त्सविता देवो वरुणाय वोचत्॥ १॥ (य०) मित्रस्य चर्षणोधृतोऽवो देवस्य

सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्॥ २॥ (सा०) मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये। या जाता पूतदक्षसा॥ ३॥ (अ०) इटस्य ते विचृताम्यपिनद्धमपोर्णु वन्। वरुणेन समुब्जितां मित्रः प्रातर्व्युऽब्जतु॥ ४॥ एह्येहि रक्ताम्बरधारिमित्र सप्ताश्ववाहत्रिदशैकनाथ। श्वेतोत्पलाभास विशालनेत्र गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ मित्राय० मित्रमा०॥ ५॥

४२-(ऋ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्॥ १॥ (य०) नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि। अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी॥ २॥ (सा०) तरत्स नन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्स मन्दी धावति॥ ३॥ (अ०) मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्रमुमुक्तमेनम्॥ ४॥ एह्येहि सर्वायुधशोभमान श्रीराजयक्ष्मन् त्रिगुणात्ममूर्ते। पीठेत्र देवेश गृहाण पूजां देवाधिदेवेश भगवन्नमस्ते॥ राजयक्ष्मणे० राजयक्ष्माणमा०॥ ५॥

४३-(ऋ०) द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम्। यज्ञं देवेषु यच्छताम्॥ १॥ (य०) स्योना पृथिवी नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः॥ २॥ (सा०) यज्जायथा अपूर्व्य मधवन् वृत्रहत्याय। तत् पृथिवीमप्रथयस्तभ्ना उतो दिवम्॥ ३॥ (अ०) इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना। अथ गच्छेम सुकृतस्य लोकम्॥ ४॥ एह्येहि पृथ्वीधरशार्ङ्गपाणे

उदारकीर्ते सुविशालमूर्ते। चतुर्भुजत्वमिह पूजयामि वरिष्ठदेवं स्वकुलाभिवृद्ध्ये॥ पृथ्वीधराय० पृथ्वधरमा० ॥ ५ ॥

४४-(ऋ०) आपा अद्यान् वचारिषं रसेन समगस्महि। पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा॥ १ ॥ (य०) यस्यास्ते घोरऽआसन्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः॥ २ ॥ (सा०) पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधी नो यससी जने। विश्वा अप द्विषो जहि॥ ३ ॥ (अ०) आपो वत्स जनयन्तीर्गर्भमग्रे सनैरयन्। तस्योत जायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥ एह्येहि यज्ञेश्वर आपवत्सं महाबलस्त्वं प्रथितः सुरेश। मयूरवाट त्रिदशेकवन्द्य गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ आपवत्साय० आपवत्समा० ॥ ५ ॥

४५-(ऋ०) ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता। इमा जुषस्व हर्यस्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि॥ १ ॥(य०) ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ २ ॥ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः॥ ३ ॥ (अ०) य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदन्। तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया॥ ४॥ एह्येहि विप्रेन्द्र पितामहेश हंसाधिरूढ त्रिदिशैकवन्द्य। श्वेतोत्पलाभास कुशाब्जहस्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा० ॥ ५ ॥

४६-(ऋ०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥ (य०) वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान् त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वे महे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव शं चतुष्पदे ॥ २ ॥ (सा०) वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सौम्यानाम्। द्रप्सः पुरां भेत्ता शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ ३ ॥ (अ०) इहैव स्त माप याताध्यस्मत्पूषा परस्तादपथं वः कृणोतु। वास्तोस्पतिरनु वो जोहवीतु मयि सजाता रमतिर्वो अस्तु ॥ ४ ॥ एह्येहि पातालतलाधिवासन् वास्तोष्पते स्वच्छ सुधर्ममूर्ते ग्रहाधिदेवेश परेश नित्यं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ वास्तोष्पतये० वास्तोष्पतिमा० ॥ ५ ॥

४७-(ऋ०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ १ ॥ (य०) यं ते देवी निर्ऋतिराबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्। तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्द्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै येदं चकार ॥ २ ॥ (सा०) आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययज्ञं रोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नोरचिताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ ३ ॥ (अ०) यत्ते देवी निर्ऋतिराबबन्थ दाम ग्रीवास्वविमोक्यं यत्। तत्ते वि ष्याम्यायुषे वर्चसे बलायादोमदमन्नमद्धि प्रसूतः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽहं चरकीमिह त्वां सुरारताक्ष्णीं गुरुशङ्खधारिणीम्। ईशानकोणस्थितिमत्र कृत्वा गृहाण पूजां वरदे नमस्ते ॥ चरक्यै० चरकीमा० ॥ ५ ॥

४८-(ऋ०) ऋषभं मा समानानां सपत्नाना विषासहिम्। हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम्॥ १॥ (य०) अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापराधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणु मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विष्कृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम्॥ २॥(सा०) यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः। राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर॥ ३॥ (अ०) अनाप्ता येवः प्रथमा यानि कर्माणि चक्रिरे। वीरान्नो अत्र मा दमन्तद्व एतत्पुरो दधे॥ ४॥ एह्येहि दैत्ये मम वास्तुयज्ञे मार्जारतुल्याननहस्तजे त्वम्। चापासि खट्वाङ्गधरे विदारि गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ विदार्यै० विदारीमा०॥ ५॥

४९-(ऋ०) विदद् यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः। अग्रं नयत् सुपद्यक्षराणामच्छा र वं प्रथमा जानती गात्॥ १॥ (य०) इन्द्रस्य क्रोडोऽदित्यै पाजस्यं दिशां जत्रवो-ऽदित्यै भसज्जीमूतान्हृदयौपशेनान्तरिक्षं पुरीतता नभ उदर्येण चक्रवाकौ मतस्नाभ्यां दिवं वृक्काभ्यां गिरीन्प्लाशिभिरुपलान्प्लीह्ना वल्मीकान्क्लोमभिर्ग्लौभिर्गुल्मान ह्रिराभिः स्त्रवन्ती र्ह्रदान्कुक्षि-भ्यार्ठ० समुद्रमुदरेण वैश्वानरं भस्मना॥ २॥ (सा०) उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव। महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम्॥ ३॥ (अ०) हृदा पूतं मनसा जातवेदो विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। सप्तास्यानि तव जातवेदस्तेभ्यो जुहोमि स जुहोमि स जुषस्व हव्यम्॥ ४॥ एह्येहि

दैत्यैऽसुरसङ्घमुक्ते सुपूतने मे मखकर्मणि त्वम्। पाहि त्वमस्मान् सततं शिवाय गृहाणमेऽर्चां वरदे नमस्ते। पूतनायै० पूतनामा० ॥ ५ ॥

५०-(ऋ०) अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः। पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम्॥ १ ॥ (य०) यस्यास्ते घोर आसन्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्र मन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः ॥ २ ॥ (सा०) परि प्रासिष्यदत्कवि सिन्धोरूर्मावधि श्रितः। कारुं बिभ्रत्परु-स्पृहम्॥ ३ ॥ (अ०) पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिर्द्यौ शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मे देवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्वे शान्तिभिः शसयामोऽहं यदिह घार यदिह क्रूरं यदिह पावं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ ४ ॥ आवाहयिष्ये त्वामध्वरचारुसिद्ध्यै पापे तथा राक्षसि धूम्रवस्त्रे। रक्तानने शस्त्रधरे महेशि गृहाण पूजां शुभदे नमस्ते॥ पापराक्षस्यै० पापराक्षसीमा० ॥ ५ ॥

·५१-(ऋ०) यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन् त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥ १ ॥ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यान्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥ २ ॥ (सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः। आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्तारं विव्रतानाम्॥ ३ ॥ (अ०) द्रप्सश्च स्कन्द पृथिवीमनु

द्यामिमं च योनिमनुपश्च पूर्वः । समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्रा ॥ ४ ॥ एह्येहि देवेशि षडानन त्वं कपर्दितेजाऽशमुद्भवो हि। मयूरवाहो जितकामदेवो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ स्कन्दाय० स्कन्दमा० ॥ ५ ॥

५२-(ऋ०) यदद्य सूर उदिते नागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ १ ॥ (य०) यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥ २ ॥ (सा०) प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो। वरूथ्ये ३ वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥ ३ ॥ (अ०) अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ ४ ॥ आवाहयेऽन्नार्यमणं महेशं सुरासुरैरर्चितपादपद्मा नीलाम्बुजाभास महेशकीर्तिं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ अर्यम्णो० अर्यमणमा० ॥ ५ ॥

५३-(ऋ०) जिह्मश्ये ३ चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वम्। दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ १ ॥ (य०) हिङ्काराय स्वाहा हिङ्कृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा संदिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सꣳहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहा यनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ २ ॥ (सा०) तव त्यन्नर्यं नृतोऽयं इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्। यो देवस्य शवसा प्रारिणा असुरिणन्नपः। भुवो विश्वमभ्जदेव-

मोजसाविदेदूर्जं शतक्रतुर्विददद्विषम् ॥ ३ ॥ (अ०) ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती । ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमि जंभयतामिति ॥ ४ ॥ आवाहये त्वां प्रहरं च मुख्यं जृम्भायमाणं वरखड्गहस्तम् । प्रत्यग्दिशायां च सुरक्षणीयमत्राधिवासं कुरु जृम्भक त्वम् ॥ जृम्भकाय० जृम्भकमा० ॥ ५ ॥

५४-(ऋ०) आपश्चित् पिप्युः स्तर्यो ३ न गावो नक्षन्नृतं जरितो रस्त । इन्द्र याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्व हि धीभिर्दयसे विवाजान् ॥ १ ॥ (य०) का स्विदासीत्पूर्वचित्ति किर्ठ० स्विदासीद्बृहद्वयः । का स्विदासीत्पिलिर्प्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ २ ॥ (सा०) प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न प्पिये अर्णसा । अंशो पयसा मन्दिरौ न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥ ३ ॥ (अ०) नैन रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवनामोजः प्रथमजं ह्ये ३ तत् । यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं सजीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ४ ॥ आवाहये तं पिलिपिच्छिकं च मयूरपिच्छानि विधारयन्तम् । वामे तु हस्ते धनुरादधनं बाणं दधानं त्वितरे तु हस्ते ॥ पिलिपिच्छाय० पिलिपिच्छमा० ॥ ५ ॥

५५-(ऋ०) त्वमिन्द्र स्त्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः । त्वद् वावक्रे रथ्यो ३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥ १ ॥ (य०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रर्ठ० हवे हवे सुहवर्ठ० शूरमिन्द्रम् । ह्वयामि शक्रं पुरुहतभिन्द्रर्ठ० स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्राः ॥ २ ॥ (सा०) त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवे हवे सुहवं शूरमिन्द्रम् । हवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिदं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥ ३ ॥ (अ०) इन्द्र त वृषभं वयं सुते सोमे हवामहे स पाहि मध्वो अन्धसः ॥ ४ ॥ एह्येहि

सर्वामरसिद्धसाध्येरभिष्टुतो वज्रधरामरेश। संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेश रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते॥ इन्द्राय० इन्द्रमा० ॥ ५ ॥

५६-(ऋ०) त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः। देवेभिर्मानुषे जने ॥ १ ॥ (य०) त्वन्नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाठं० सि प्रमुमुग्ध्यस्मत्॥ २ ॥ (सा०) अग्निस्तिग्मने शोचिषा यं सद्विश्वंन्य ३ त्रिणम्। अग्निर्नो वंसते रयिम्॥ ३ ॥ (अ०) अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायती मुषासम्। यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र मानवः सिस्त्रते नाकमच्छ॥ ४॥ एह्येहि सर्वामर हव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टम्। तेजोवतालोकगणेन सार्द्धं ममाध्वरं पाहि कवे नमस्ते॥ अग्नये० अग्निमा० ॥ ५ ॥

५७-(ऋ०) दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम स लक्ष्मा यद्विपुरूषा भवाति। यमस्य यो मन वते सुमन्वग्ने तमृष्व पाह्य प्रयुच्छन्॥ १ ॥ (य०) यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा। स्वाहा धर्माय स्वाहा धर्मः पित्रे॥ २ ॥ (सा०) नाके सुपर्णमुपयत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। हिरण्यपक्ष वरुणस्य दूतं यमस्य यो नो शकुनं भुरण्युम्॥ ३ ॥ (अ०) क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु। रिप्रवाहः। इहायमितरो जातवेदा देवो देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्॥ ४ ॥ एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैर्चितधर्ममूर्ते। शुभाशुभानन्द शुचामधीश शिवाय नः पाहि भगवन्नमस्ते॥ यमाय० यममा० ॥ ५ ॥

५८-(ऋ०) सुषुप्वां सं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्। शुभे रुक्मं न दर्शनं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय॥ १ ॥(य०) असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहितस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सात इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥ २ ॥(सा०) वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम्। अहरहः शुन्ध्यु परिपदामिव॥ ३॥ (अ०) इह तेऽसुरिह प्राण इहायुरिह ते मनः। उत्त्वा निर्ऋत्याः पाशेभ्यो दैव्या वाचा भरामसि॥ ४॥ एह्येहि रक्षोगणनायक त्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः। विद्या-धरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन् नमस्ते। निर्ऋतये० निर्ऋतमा० ॥ ५ ॥

५९-(ऋ०) नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तद्दते समर्पत। दूरेदृश देव जाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत॥ १ ॥(य०) तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशर्ठ० स मा न आयुः प्रमोषीः ॥ २ ॥(सा०) यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः आदिद्वन्देत वरुणं विपा गिरा धर्त्तारं विव्रतानाम्॥ ३ ॥(अ०) कामस्येन्द्रस्य वरुणस्य राज्ञो विष्णोबलेन सवितुः सवेन। अग्नेर्होत्रेण प्र णु दे सपत्नांछम्बीव नावमुदकेषु धीरः ॥ ४ ॥ एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्य सहाप्सरोभिः। विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहित्वमस्मान् भगवन् नमस्ते॥ वरुणाय० वरुणमा० ॥ ५ ॥

६०-(ऋ०) वायो ये ते सहस्त्रिणो रथासस्तेभिरा गहि। नियुत्वान् त्सोम पीतये॥ १ ॥(य०) आ नो नियुद्भिः शततिनिभिरध्वरर्ठ० सहस्त्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम्। वायो ऽअस्मिन्त्सवने मादयस्व

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २ ॥ (सा०) वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे । प्र न आयूꣳषि तारिषत् ॥ ३ ॥ (अ०) वायुर्मान्तरिक्षेणैतस्या दिशः पातु तस्मिन्क्रमे तस्मिछ्रये तां पुरं प्रैमि । स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मानं परि ददे स्वाहा ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश समीरण त्वं मृगाधिरूढः सहसिद्धसङ्घैः । प्राणस्वरुपिन् सुखतासहायः गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ वायवे० वायुमा० ॥ ५ ॥

६१-(ऋ०) आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः । भवानः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १ ॥ (य०) वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः । प्रजावन्तः सचेमहि ॥ २ ॥ (सा०) तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे । पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥ ३ ॥ (अ०) सोम ओषधी भिरुदक्रामत्तां पुरं प्र णयामि वः । तामा विशत तां प्र विशत सा वः शर्म च यच्छतु ॥ ४ ॥ एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम् । सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥ सोमाय० सोममा० ॥ ५ ॥

६२-(ऋ०) ईशान इमा भुवनानि वीयसे युजान इन्दो हरितः सुपर्ण्यः । तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः ॥ १ ॥ (य०) तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्व-मवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ २ ॥ (सा०) अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रः तस्थुसः ॥ ३ ॥ (अ०) ईशां वो वेद राज्यं त्रिसन्धे अरुणैः केतुभिः सह । ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ॥ ४ ॥ एह्येहि

यज्ञेश्वर नस्त्रिशूल कपालखट्वाङ्गधरेणसाकम्। लोकेन यज्ञेश्वर यज्ञासिद्ध्यै गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते॥ ईशानाय० ईशानमा०॥ ५॥

६३-(ऋ०) ब्रह्माण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः। विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व॥ १॥ (य०) अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः। यः शर्ठ० सते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ२॥ अवन्तु देवाः॥ २॥ (सा०) मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः। परमेष्ठी प्रजापतिर्दिव द्यामिव दृंहतु॥ ३॥ (अ०) ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः। स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ ४॥ एह्येहि सर्वाधिपते सुरेन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः। सर्वस्य धातास्यमितप्रभावो विशाध्वरं नः सततं शिवाय॥ ब्रह्मणे० ब्रह्माणमा०॥ ५॥

६४-(ऋ०) तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरूपस्थेः अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद् हरितः सं भरन्ति॥ १॥ (य०) स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म स प्रथाः॥ २॥ (सा०) अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्या अधि सानवि॥ ३॥ (अ०) शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम्। इन्द्र सोमं पीतये॥ ४॥ एह्येहि पातालधरामरेन्द्र नागाङ्गनाकिन्नरगीयमानः। यक्षोरगेन्द्रामर लोकसार्धमनन्तरक्षाध्वरमस्मदीयम्॥ अनन्ताय० अनन्तमा०॥ ५॥

●

शिवविषये विशेषविचारः

१. आक, कनेर, बेल तथा बकपुष्प इन चार जाति के पुष्पों की गन्ध शिव ग्रहण करते हैं।

२. जो मनुष्य बिल्वपत्र के द्वारा शिव का पूजन करता है, उसकी दरिद्रता का नाश होता है और सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।

३. शिव के आगे पूर्व दिशा में नहीं जाना चाहिए, इसका निषेध है। अन्तराल पूर्व दिशा शिव की नहीं होती है।

४. लिंगपुराण के अनुसार बिना भस्म से, त्रिपुण्ड से और बिना रुद्राक्ष की माला से जो प्राणी शिव का पूजन करते हैं, उन्हें पूजा का फल प्राप्त नहीं होता है।

५. भविष्यपुराण के अनुसार जो मनुष्य एक बार ही धत्तूर फल के द्वारा शिव के लिंग की पूजा करता है, वह सौ गोदान के फल को प्राप्त कर शिव लोक को प्राप्त करता है।

६. शिव का नैवेद्य, पत्र, पुष्प, फल और जल इनको कदापि ग्रहण नहीं करना चाहिए।

७. शिव के लिंग की प्रतिष्ठा माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ इन पाँचों महीनों के शुक्लपक्ष में करने का निर्देश धर्मग्रन्थों में प्राप्त होता है। इन महीनों में इनके लिंग की प्रतिष्ठा करना सर्वोत्तम कहा गया है।

८. उत्तरायण सूर्य में शिवलिंग की प्रतिष्ठा करना उत्तम कहा गया है। दक्षिणायन सूर्य में शिवलिंग की प्रतिष्ठा करने से लगभग डेढ़ वर्ष तक भय की प्राप्ति होती है।

९. शास्त्रों के मतानुसार दक्षिणायन सूर्य में अपना सुख चाहने वाले को अपने घर में शिवलिंग की प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए। शिशिर आदि तीन ॠतुओं में इनकी प्रतिष्ठा करना श्रेष्ठ कहा गया है।

१०. वर्षाॠतु में जो प्राणी शिवलिंग की प्रतिष्ठा करते हैं, उनके ऊपर प्रसन्न होकर भगवान् शिव निःसन्देह वर प्रदान करते हैं। हेमन्त ॠतु में जो प्राणी शिवलिंग की प्रतिष्ठा करते हैं, उन्हें भगवान् शिव अपार ज्ञान प्रदत्त करते हैं। धर्मसिन्धु के अनुसार शिवलिंग की प्रतिष्ठा के निमित्त श्रावण और भाद्रपद मास ये दोनों श्रेष्ठ कहे गये हैं। मार्गशीर्ष और पौष इन दो मासों में भगवान् शिव की प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए।

११. रुद्रयाग में प्रधान वेदी ईशानकोण में तथा प्रधान वेदी के दक्षिण में ग्रह वेदी बनती है। प्रधान वेदी एक हाथ ऊँची और दो हाथ चौड़ी होती है। ग्रह वेदी तीन सीढ़ी (वप्र) होती है।

१२. भगवान् रुद्रयाग में चारो दिशाओं में लगे हुए चारो तोरण द्वारों के ऊपर त्रिशूल बनाना चाहिए।

१३. भगवान् रुद्रयाग में शुक्लयजुर्वेद संहिता के सोलहवें अध्याय के समस्त मन्त्रों से आहुति दी जाती है।

१४. अकाल मृत्यु एवं असाध्य रोगों की प्राप्ति होने पर यजमान को महामृत्युञ्जय जप करवाना चाहिए।

१५. न्यायालय, विवाद एवं आपसी विरोध में यजमान को भगवान् शिव के शिवताण्डव स्तोत्र का पाठ करना चाहिए। इसके पाठ करने से निःसन्देह लाभ होता है।

१६. ईशान संहिता के अनुसार भगवान् शिव के शिवरात्रि पर्व पर जो मनुष्य व्रत करता है, उसके बारह वर्ष या चौबीस वर्ष के किये गये पापों का नाश होता है।

१७. रुद्रयाग में १९९२१ आहुति होती है। महारुद्रयाग में २१९१३१ आहुति होती है। अति रुद्रयाग में २४१०४४१ आहुति होती है।

१८. भगवान् शिव का रुद्रयाग तीन प्रकार का होता है—रुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र। रुद्रयाग पाँच, सात अथवा नौ दिन में, महारुद्रयाग नौ या ग्यारह दिन में, अति रुद्रयाग नौ या ग्यारह दिन में सम्पन्न होता है।

१९. वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा और त्रिशूल ये पताकाओं के आयुध हैं, इन पताकाओं को दस-दस हाथ के लम्बे बाँस में लगाना चाहिए। महाध्वज एक होता है और यह त्रिकोण होता है। महाध्वज पंचरंगा या चित्र-विचित्र रंग का होता है।

२०. महाध्वज को दस हाथ, सोलह हाथ, इकतीस हाथ या बत्तीस हाथ के लम्बे बाँस में लगाना चाहिए। महाध्वज़ को यज्ञमण्डप के मध्य में या यज्ञमण्डप के ईशानकोण में ही लगाना चाहिए।

२१. शास्त्रों के मतानुसार रुद्र के पाँच भेद कहे गये हैं—रूपक, रुद्र, रुद्री, महारुद्र और अतिरुद्र।

●

रुद्रयाग-सामग्री

रोली एक पाव, मौली एक बड़ी लच्छी, अबीर (गुलाब), बुक्का (अभ्रक), धूपबत्ती पाँच पैकेट, केसर छह मासा, कर्पूर चार तोला, सिन्दूर दो तोला, पीसी हलदी एक पाव, यज्ञोपवीत पचास, रूई एक पाव, चावल पाँच किलो, पान पचास प्रतिदिन, सुपारी पाँच किलो, विविध मिष्ठान्न प्रतिदिन, ऋतुफल एक दर्जन प्रतिदिन, बतासा डेढ़ किलो, पंचमेवा डेढ़ किलो, मिश्री डेढ़ किलो, छोटी इलायची दो तोला, जावित्री दो तोला, लवंग दो तोला, जायफल पन्द्रह, अतर की शीशी एक, गुलाबजल की शीशी एक, कस्तूरी की शीशी एक, शक्कर एक पाव प्रतिदिन, दूध आधा लीटर प्रतिदिन, दही एक पाव प्रतिदिन, गो घृत दो टिन, शहद एक पाव, गाय का गोबर, गोमूत्र, पीली सरसों, कच्चा सूत एक बड़ी लच्छी

पुष्पमाला एक दर्जन, बिल्वपत्र, धतूरफल, दूर्वा, तुलसीपत्र (प्रतिदिन,) कुशा, गंगाजल प्रतिदिन, नारियल जटादार पच्चीस, गिरि के गोले ग्यारह, चन्दन का मुट्ठा, हरसा एक, रुद्राक्ष की माला एक, लाल रंग, हरा रंग, पीला रंग, काला रंग दो-दो रुपये का, पंचरत्न की पुड़िया सात।

पंचपल्लव—आम्रपत्र, गूलर-पत्र, पाकरपत्र वटपत्र, पीपल-पत्र।

सप्तमृत्तिका—हाथी के स्थान की मिट्टी, घोड़े के स्थान की मिट्टी, बिल (दीमक) की मिट्टी, नदी संगम की मिट्टी, तालाब की मिट्टी, राजद्वार (चतुष्पथ) की मिट्टी, गोशाला की मिट्टी।

सप्तधान्य—यव, गेहूँ, धान, चना, तिल डेढ़-डेढ़ किलो, ककुनी एक पाव, सावाँ आधा किलो।

सर्वौषधि—५ रुपये का मुरा, ५ रुपये का जटामासी, ५ रुपये का वच, ५ रुपये का कूट, ५ रुपये का शिलाजीत, ५ रुपये का आंवाहलदी और दारू-हलदी, ५ रुपये का सठी (कचूर), ५ रुपये का चंपा, ५ रुपये का नागरमोथा।

नवग्रहकाष्ठ—मदार की लकड़ी १०८, पलाश की लकड़ी १०८, खैर की लकड़ी १०८, अपामार्ग की लकड़ी १०८, पीपल की लकड़ी १०८, गूलर की लकड़ी १०८, शमी की लकड़ी १०८, दूर्वा १०८, कुशा १०८।

मृगचर्म १, कम्बल १, सूत की डोरी १० हाथ की, लोहे की कटिया ४, ताँबे का तार २५ हाथ, काष्ठ की चौकी २, काष्ठ का पीढ़ा ४, काला उड़द १॥ सेर।

यज्ञपात्र— प्रणीता, प्रोक्षणी, स्रुवा, स्रुचि, स्फय, वसोर्धारा, अरणी-मन्था। शंख १, घण्टा १, आरतीदानी १, प्रधान कलश चाँदी या ताम्र का १, वास्तुकलश ताम्र का १, क्षेत्रपाल कलश ताम्र का १, योगिनीकलश ताम्र का ३, रुद्रकलश ताम्र का १, प्रवेशकलश ताम्र का १, कलश

ताम्र के १८, पूर्णपात्र १, प्रधानकुण्ड का कलश ताम्र का १, आज्यस्थाली बड़ी १, चरुस्थाली १, अभिषेकपात्र १, कांसे की थाली १, कलछुल १, सड़सी १, छायापात्र कांसे का २, कटोरी पूजन के लिए ११, बाल्टी १, गंगासागर १।

रुद्रदेवता को चढ़ाने के लिए वस्त्र—

रुद्रदेवता के लिए रेशमी पीताम्बर एक, रेशमी जनानी साड़ी एक, कब्जा जनाना एक, रेशमी चुंदड़ी एक, सौभाग्य पिटारी एक, शृङ्गारदान एक, दुशाला अथवा ऊनी चादर एक, धोती पन्द्रह या ग्यारह, दुपट्टा पन्द्रह अथवा ग्यारह, अँगोछा पन्द्रह अथवा ग्यारह।

ध्वजा-पताका तथा वेदी के लिये वस्त्र

सफेद कपड़ा पचीस मीटर, लाल कपड़ा पन्द्रह मीटर, हरा कपड़ा पन्द्रह मीटर, काला कपड़ा पन्द्रह मीटर, पीला कपड़ा पन्द्रह मीटर, चंदवा पचरंगा बड़ा एक, मण्डपाच्छादनार्थ वस्त्र सफेद थान दो।

भगवान् रुद्र की स्वर्ण प्रतिमा एक, वास्तुकी प्रतिमा सुवर्ण की छह, क्षेत्रपाल, योगिनी, नवग्रह की प्रतिमा सुवर्ण की, स्वर्ण की शलाका एक, स्वर्ण की जिह्वा एक, सुवर्ण खण्ड इक्यावन, चाँदी का सिंहासन एक, चाँदी का छत्र एक, चाँदी का चंवर एक, चाँदी के सभी भोजन पात्र, चाँदी का पंचपात्र एक, चाँदी की धूपदानी एक, चाँदी की आरतीदानी एक, चाँदी का चौकोरपत्र एक।

आचार्यवरण-सामग्री—

पीताम्बर रेशमी एक, दुशाला एक, सिल्क रेशमी एक, एक स्वर्ण की अंगूठी, अंगोछा एक, लोटा एक, गिलास एक, पंचपात्र एक, आचमनी एक, अर्घा एक, तष्टा एक, रुद्राक्ष की माला एक, ऊनी आसन एक, गोमुखी माला एक, खड़ाऊँ एक, यज्ञोपवीत एक।

ब्राह्मणों की वरण-सामग्री—

धोती रेशमी तथा सूती, डुपट्टा ऊनी, रेशमी अथवा सूती, अंगोछा एक, लोटा एक, गिलास एक, पंचपात्र एक, आचमनी एक, गोमुखीमाला एक, खड़ाऊँ एक, यज्ञोपवीत एक, आसन एक (जितने ब्राह्मणों का वरण किया जाय उन सभी को उपरोक्त सामग्री देनी चाहिए)।

शय्यादानसामग्री—

पलंग नेवार का एक, दरी एक, गद्दा एक, चांदनी एक, चदरा एक, सुजनी एक, रजाई एक, कम्बल एक, तकिया एक, धोती एक, दुशाला एक, पीताम्बर एक, भोजन के सभी पात्र, सौभाग्य-पिटारी एक, शृंगारदान एक, गीता की पुस्तक एक, वेद और पुराण की पुस्तकें, घृत टीन एक, सौभाग्यपिटारी एक, स्वर्ण के आभूषण (शक्ति के अनुसार)।

रुद्रयज्ञहवनसामग्री—

तिल ६ मन, चावल ३ मन, यव १॥ मन, चीनी १ मन, घृत २ टीन, कमलगट्टा १ सेर, चन्दन का चूरा २ सेर, गुग्गुल १ सेर, पञ्चमेवा १ सेर, भोजपत्र २ पाव, आम की लकड़ी २० मन।

●